अद्वैतादर्श

प्रस्तुत अद्वैत सिद्धांत शैलीकी मीमांस

(द्वैतअद्वैत-तत्वसंशोधक—जिज्ञासु मज्ञामबोधक.)

एक संन्यासि महात्मासे

संपादक

भानुशंकर रणछोडजी शुक्ल.

प्रकाशक

हरिराम भीमजीवर्मा—नेत्रा-कच्छ.

सं. १९६६

जुनागढ.

सद्धर्मसूर्योदय मुद्रायंत्र.

मूल्य रू. २

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ॥
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२
अथर्व. कां. ८ अनु० २ ॥ १०

\+ × ×

आनयतत्वेऽपिनायौक्तिकस्यसंग्रहोऽन्यथाबालोन्मत्तादिसमत्वम्
सांख्य. द. अ. । सू. २६

× × × × +

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ भ. गी. अ. ६

\+ × × × ×

ज्ञप्तेस्तु कारणं राम शिष्यप्रज्ञैव केवलं ॥ यो. वा.

* * * *

उतत्वः पश्यन्नददर्शवाचमुतत्वः शृण्वन्नशृणोत्येनाम् । उतोत्वस्मै
तन्वं विसस्रे जायेवपत्यउशतीसुवासाः ॥ ऋ. मं. १० सू.

* * * *

ये नाम केचिदिह नः प्रथयंत्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ भ

* * * *

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः
कालिदास.

वेदांतविद्या कि जो, अध्यात्म ज्ञानके नामसे व्यव
हारी जाती है;-जो, सांकेतिकवाणी-भाषाद्वारा याथातथ्य
"वस्तुदर्शन" की एक सर्वमान्य सामग्री मानी जाती है;-
जो, स्थूल-सूक्ष्म-दृश्य-गम्य-तत्वविवेक पुरःसर सृष्टिनि
यम-क्रम-व्यवस्था-व्यवहारके अमुक स्वरूपके 'निदान
ज्ञानपूर्वक चिकित्सापारंगत कोई अनिर्वाच्य-' अगम्य
रूप निष्कर्ष सिद्धिपर्यंतकी सत्तासूचक-पर्य्यवसित विज्ञान
स्वीकारनेमें आती है;-और इतने सिद्धांतपद पर पहोंचाने
पीछे वहांसे परिक्रमण करके जिस साधनद्वारा जो कुछ सिद्धकर
बताने-दरसानेका कृहतीथी उसी साधनको निरूपयोगी
समान 'नेति नेति' 'मनवाणीसे अगोचर' इत्यादि कह
के जो अत्यंत अद्भुत आश्चर्यकारक कथन करती है:-एसे
कथन-एसे अनुभव-एसी अनुभवभाषा-एसी प्रतीति-एसे
ज्ञानमें कितनी अतुल विस्मयता-कितना महत्व-गौरव-कित
नी व्यापकता-विशालता-कितना गांभीर्य और कितना 'रहस्य'
समाया हुवा होगा; और उसके समझने-अवधारण करनेके लि-
ये किस रीतिका उच्च आधिकार, केसी प्रबल शक्ति, केसी
शुद्ध सामग्री और किस प्रकारके सतत अभ्यासकी आवश्य
कता होगी सो,-वास्तविक रीतिसे तो इस विषयमें यथार्थ
तः उतरे हुये सुसंस्कारी पुरुषकी अनुभव-तुलामेंही आया
होगा, इतनाही नहीं, किंतु तदुपरांत प्रत्येक सामान्य पात्र

१ यथार्थ-अबाध्य ज्ञान-ज्ञानका सार-ज्ञानकी अवधि-मुख्य
ज्ञान-ज्ञानका पर्यवसान; न कि रूपांतर हुवा जो प्रचलित है-जि
स अशंका दोषदर्शक यह ग्रंथ है

द्धिभी तत् संबंधी महत्ताका अनुमान करसकेगा. अतएव
स विषय संबंधमें विशेष बोलने-विस्तार करनेकी आवश्य
ता नहीं; इस सिवाय मेरा जैसा अल्पमति एसे अगाध
मुद्रमें चूंच डबोने जितनीभी अपनेमें शक्ति-गति नहीं
खनेसे अभिप्राय देनेमें सर्वथा योग्य नहीं-असमर्थ हे; तथा
पे उसमें रहा हुवा यही अल्पत्व दोष अभिव्यक्त होके-उ
क्त विषयके यथार्थ अनुभवी महात्माओंके बचनकाही आलं
न करके-कुछ कहनेके लिये साहस करता हे. वोह यह
कि:-प्रस्तुत विषय संबंधी आजकल तो प्रायः परिवर्त्तन-
विपरीतता-ओर व्यतिक्रमही प्रतीत होता हे. एक समय
एसाभी था कि जब एक सूक्ष्म गम्यसे लेके ' अगम्य' पर्यंत
के सिद्धि सूचक-ज्ञान-ग्रंथ रसायन-उत्पादक-बुद्धिराशि
आर्य पुरुष हुये थे, ओर उत्तरोत्तर अब एसा समयभी
आताजाता हे कि जिसमें उक्त ज्ञान-रसायनीओंके अमृ
तुल्य दिव्य-पुष्ट रसायनके गंधमात्रकी असरसेभी आर्य सं
तानको अरुचि करके भागते देखते हें. तथा अमुक 'विरले
को छोडके यदि कोई उक्त रसायनका शोकीन [जिज्ञासु-
इच्छक] मिल आते हें तो वे बहुत करके (उक्त) रसायन
भक्षण संबंधी यथार्थ निदान परीक्षापूर्वक विधिसूचक
चिकित्सक सद्वैद्यके अभाव-असंपूर्णतासे तथा रसायनियोंके
' लेख ' मात्रपरही मोहित होके अपनी योग्यता-अधिका
रादिके दीर्घ विचार किये विदून स्वयमेव मुग्धवत् उपचार
करने लगजानेके कारण, उसके यथार्थ फल-रोग निर्मूलनता-
तरुणता-पुष्टता-अमरताको प्राप्त हुये देखनेमें नहीं आते;
प्रत्युत विपरीत परिणाम दशाप्राप्त-अर्थात् विलक्षण रोगमें
ग्रस्त हुये दृष्टिगोचर होते हें. निदान एसे हरकोई कारणसे

जबकि आरंभमेंही अधिकार-साधन-समझ-उपयोग-संबंधी न्यूनता-अयोग्यता-दोष हों तो, तज्जनित वर्त्तन और फल प्राप्तिमें व्यतिक्रम होवे और आरंभक-प्रयोगकर्त्ता को अंतमें अनिष्ट परिणाम प्राप्त हों तो, उसमें कुछभी आश्चर्य माननेका है? नहीं. प्रसंगमें कहनेका तात्पर्य मात्र इतनाही है कि-हरकोई ग्रंथकारके लेखका हेतुगर्भित सांगोपांग रहस्य समझे और उसको युक्ति अनुभव-प्रमाणकी तुलामें तोलेविना केवल "शब्दार्थ" मात्रपरही निर्भरता रखने वा अंधपरंपरा संस्कार-अभ्यास बलपरही प्रवाहित रहने-तनानेसे यथार्थ "तत्व-निर्णय" नहीं होसकता; इतनाही नहीं किंतु सृष्टिनियम अनुसारही वस्तु पहिछानने पर साभिमान-स्वतंत्र स्वलक्ष्य हुयेभी, निज नियम भंग होने-अज्ञात-स्वदोष-व्यवधानसे, वस्तुस्थितिका निर्दोष-यथास्थित भान नहीं होसकता. जिसकालके आर्य लोकोंमें एसी स्वतंत्र पवित्र-सत्यसंशोधक बुद्धि और योग्यताथी उस समयके लोक उस उस कारणसे उस देशकालमें सृष्टिसिद्ध नियम समझके तिस अनुसार आचार-विचार-उपचार नियोजके [नियत करके] व्यवहार परमार्थमें परम उन्नति पाके, उभय (सार्वत्रिक) सुखाभ्युदयके उपभोक्ता हुयेथे. इतनाही नहीं किंतु अन्य लोकसमग्रके सुखप्राप्तिके पूरे पूरे निमित्त होके अन्योंको अनुयायी करनेमें प्रेरक बनेथे. इसी कारणसे यह प्राचीन पवित्र आर्यावर्त्त, अखिल भूमंडलके इतिहासविषे प्रथम पदवीमें गिनाया-गाया गया. तथा 'स्वर्णदेश और स्वर्गसदन' की उपमाशिखरपर

† मध्यकालमें यथासमय न्यूनाधिक होना-करना तो, तदुपरांत शेष है.

पहोंचा. ओर वहकावही भरतखंड उत्तरोत्तर ऐसी [प्रसिद्ध] अधम-पराधीन स्थितिमें आपहोंचा ! इसका कारण क्या ? मुख्यतः अविद्या-स्वत्व-परत्व (में पना-तूं पना-मनुष्यत्व) संबंधी अज्ञानता, मनुष्य ज्ञातव्य-कर्त्तव्य-प्राप्तव्य संबंधी अविवेक-अंधता हे. इसलिये व्यावहारिक-पारमार्थिक अर्थात् शारीरिक-मानसिक-आत्मिक शक्ति-सत्व-पुरुषार्थकी मूढता-शिथिलता-दीनता-अनिष्टता; और इन्हीं कारणों करके क्रमशः सिरपर आनपडी हुई सार्वत्रिक क्षीणतासे परोपकारी पूर्व पूज्य वडील-ऋषि मुनिओंकी ज्ञान-प्रसादीका सत्य आस्वादन मात्रकाभी असामर्थ्य, अथवा केवल आच्छादन, किंवा दुरुपयोग-विपरीतवर्त्तनही (हे). इसके प्रत्यक्ष प्रमाणमें वर्त्तमान भरतखंड विषे प्रचलित नाना (विरोधी) धर्म-मत-पंथ-संप्रदाय-जाति-वर्णाश्रम-आचार-विचार ओर तज्जन्य कुसंप-क्लेश-अवनति-दुर्दशाही संक्षेपमें बस हे. ओर इस विषयका विशेष विवेचन यहां अप्रासंगिक हे, एसा जानके दिग्मात्र दर्शाते, इस प्रस्तुत कथनकी सिद्धिमें ओर वेदांत जेसी परमोत्कृष्ट ज्ञानसाध्य विद्या-कि जिस अद्भुत ज्ञानके आधारपर सृष्टिके समग्र स्थिति व्यवहारका स्वतः सिद्ध क्रम-नियम निर्भर हे ओर जिस संबंधी, मात्र आर्य ऋषि मुनिही अद्यापि पर्यंत पारंगतपनेका स्वतंत्र सर्वमान्य आदि अधिकार रखते हें,-उस ब्रह्मविद्या जेसे अति गहन-गूढ विषय संबंधमेंभी उपर कहे अनुसार उन प्राच्य पंडितोंके सत्य 'आशय विरुद्ध' आजकल कितनी विरुद्ध समझोती ओर अज्ञानता फेलाई हुई हे ओर उससे कैसा विपरीत वर्त्तन ओर फल निवडा हे तथा अभी ओरभी (सविशेष) आना संभव हे; सो (वात)

लोक दृष्टिमें यत्किंचित् गोचर होनेकी आशासे यह-उपयुक्त उत्तेजक "अद्वैतादर्श" ग्रंथ जैसाका तैसा[1] "उदाहरण दाखिल" लोकसमाजकी सेवामें रखता हुं. ओर तत्संबंधी अभी तो आवश्यक इतनाही वृत्तांत जनानेकी आज्ञा लेता हूं कि, यह ग्रंथ मुझको एक साधु महात्मा पाससे मिला है. उनके साथ कोइ अभ्यासके कारण कितनेक काल-समागम रहाथा. (प्रसंगवशात् कहने विना नहीं चलता कि-) होते होते उसकी तत्वज्ञानं (फिलोसोफी) संबंधी असाधारण बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता उपरांत वोह व्यक्ति ब्रह्मनिष्ठ, योगकुशल, व्यवहारनिपुण, साधुतायुक्त, निस्पृह, स्वतंत्र, निष्पक्षपात, समदर्शी, परोपकारी, शांत, दयालु, निरभिमानी, सरल स्वभाव, स्वदेशानुरागी, लोकोन्नतिकी महेच्छावान वगेरे उत्तम गुणोंसे सुशोभित मेरी दृष्टिमें प्रतीत होने लगे. उत्तरोत्तर समागमविशेष होते-रहते उनके पास कितनेक "लिखित ग्रंथ" मेरे देखनेमें आये. उनमें प्रत्येक ग्रंथ प्रायः "तत्वशास्त्र" संबंधी जान पडा.-वे मेरी दृष्टिमें अत्यंत उपयुक्त मालूम हुये. उनमेंसे एक "अपूर्व लेख" अपूर्ण स्थितिमें था, परतुं तद्गत विषय ओर उसकी 'लेखन शैली'से इत-

---

१. न्यूनाधिक कियेविना. भाषामें बहुधा अपभ्रंश पद ओर अन्य भाषाके शब्दभी प्रचलित होते हैं,-रुढी बलसे-ह्रस्व, दीर्घ ओर दीर्घ, ह्रस्व तथा जुडे अजुडे, अजुडे जुडे हुये बोले लिखे पढे जाते हैं,-बकार वकारादिका बदलभी होजाता है,-तदेतर व्याकरणादिके कितनेक दोष एसे होते हैं कि जो दोषरूपमें नहीं गिने जाते; अतएव ग्रंथगत भाषाकी शैली नहीं जाननेसे जैसाका तैसा रखा हैं. पाठकको भाषा मर्यादा ओर लेखककी परिपाटी ओर प्रेसदोषपर ध्यान रखके सार-वक्ताका भाव-लेना चाहिये. हा कोइ जरूरी नोंट मेरी तरफसेभी है.

ना उपयोगी जानपडा कि, जो वोह किसी प्रकारसे यथार्थ संपूर्ण स्थितिमें पहोंचकर प्रसिद्धिमें आवे तो, "वर्त्तमानके नवीन प्राचीन विचारवाले तत्वनिर्णयके जिज्ञासु ओर अध्यात्म विद्याके उपासकोंको फलप्रद हो; तथा विशेषतः पाश्चात्य 'जडवाद' वगेरे फिलोसोफीसे संमोहित इंग्रेजी संस्कारवाले सुधारेके भक्तोंको पाश्चात्यरीतिसेही उनके सिद्धांतमें यथार्थ दोष दरसाकर उनको स्वल्प श्रमसे फेर पीछे ठिकाणे (पश्चिममेंसे पूर्वमें) लानेमेंभी अत्युपयोगी हो पडे." (इस सत्ररूप ग्रंथमें, आर्यावर्त्तके सर्व दर्शनोंके निष्कर्ष उपरांत आज पर्यंत दुनियामें प्रसिद्ध मुख्य मुख्य धर्माचार्यों ओर फिलोसोफरोंके जो "तात्विक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक" सिद्धांत हें, उनके उचित दिग्दर्शन साथ खंडन मंडन-आंदोलन पूर्वक "वस्तुयाथार्थ्य-सत्य क्या हे ओर केसे निर्णय होना चाहिये" तत्संबंधी सृष्टिसिद्ध नियमानुकूल प्रशस्त श्रम ओर सूक्ष्म संशोधन-अवलोकनपूर्वक-स्वयमेव निर्णय होजावे एसे, भगीरथ प्रयत्न-पूर्वक प्राचीन दर्शनोंकी 'सूत्रपद्धति-वत्' सविवरण योजना हे.)—

संक्षेपमें आज पर्यंत वेंदांतादि संबंधी जो गूढ सिद्धांत सूचक प्रकृष्ट सूक्ष्म 'थियरी' शोधमें आई-जनाइ हे, उस प्राचीन मान्य 'थीयरी' (प्राक्रिया) के प्रायः विशेष स्पष्टीकरण पूर्वक-सरलतासे उपयोगी होने-जनानेके अर्थ मुख्यतया श्रम करना ज्ञात होता हे. ओर तिसके प्रथम आरंभक प्रयास तरींके-मूल सिद्धांतकी आच्छादक वर्त्तमान प्रचलित दूषित 'थीयरी' के आंदोलकरूपही-मानो "दूसरे ग्रंथ" न लिखाये हो ? एसा जान पडता हे. ओर इसी प्रकार यह "अद्वैतादर्श" ग्रंथभी एसेही हेतुसे लिखा गया

हो, एसा धारनमें आता हे. तथा "यह क्या[1]? हम कोन[2]? कैसे[3] ओर क्यों हे[4]?. तथा जिस[5] अगम्यको हम नहीं जानते-प्रतिबंधक अभाव सहित उसके जानने (-पाने-ज्ञान होने समझने) तथा सर्वमान्य सद्धर्मद्वारा सदाचारी

1 दृश्य शरीर ओर जगत. 2 जड़, चेतन वा. 3 जन्य अजन्य वा. 4 यह सृष्टि ओर हम किस प्रयोजन वास्ते हें. हमको ज्ञातव्य, कर्तव्य, प्राप्तव्य क्या हे . 5 सर्व-भाव वा अभावादि का विधायक कोई 'नेति'से शेष होने योग्य, यहभी जिसका प्रकाश्य-अगम्य.

इस प्रकारके गुह्याशयवाले प्रश्न-शंका-जिज्ञासाके उद्देशका रहस्य यह हे कि, "दृष्टश्रुतकीही इच्छा होती हे-(जिज्ञासाका विषय होता हे) " यह नियम हे; इष्ट-प्राप्तव्य वस्तु, जहांतक प्राप्त न हो-(सोमलता-वल्लीकी इच्छावाला जहांतक सोमरस नहीं पीवे) वहांतक, इच्छावानका विक्षेप नहीं जाता-उसे संतोष नहीं होता, यह स्पष्ट हे. अब यदि कोई-एक ग्रंथ वा उपदेशकका विश्वासु-इष्टके नाना लक्षण मतभेदसे नावाकिफ़-विश्वासु-अज्ञ किंवा किसी धूर्त्तकेद्वारा, उस-(इष्टको निर्णित लक्षणयुक्त न जाने-नअनुभव करनेवाले-गिलोको न जाननेवाले) जिज्ञासुको इष्ट (सोमलता वा गुड) के बदले अन्य (गलो वा निंबफल वगेरे) मिले-(देनेवाला जानके कहे कि यही सोमलता हे ओर जिज्ञासु, यही सोमलता हे एसा जानके लेवे) तोभी, जिज्ञासु उसीको स्व इष्ट (सोमलता) मानके संतुष्ट-शांत होजायगा. क्योंकि उसने इष्टको पूर्वमें नहीं जाना-नहीं अनुभवा हे. पुनः अन्यसे परीक्षा करानेपर किंवा अन्य कारणसे, अन्य कोइ दूसरा, उसके पाये हुये इष्ट-मंतव्यमें अन्य ग्रंथगत वा पुरुषमत-लक्षण-भेद बताके-दोष देखाके स्वनिश्चय वा इच्छानुसार इष्ट (सोमलता-गलो-निंबफल) बदले अन्य

चनन, वा सद्धर्म सदाचार प्रवृत्तिकी जिज्ञासा उत्पन्न होने का गुह्याभिप्रायसे उत्तेजक (प्रयत्नशील)" अवस्थांतर प्राप्त, कर्त्ताके ग्रंथोंमेंसे अधुना सविशेष लोकोपयोगी [शोधमार्ग-प्रवर्तक] लोक हितकारी जानके; प्राधान्यतः वृत्त

(लता वा मांसादि) देके कहे कि, यह तुम्हारा इष्ट हे; तोभी, जिज्ञासु पुरुष, उक्त कारणसे उसीको इष्ट जानेगा-उसे मानना पडेगा. किंवा अनहुये इष्ट (जडमूर्तिफलप्रद-किमियादि)की इच्छा हुये तिसकी प्राप्ति अर्थ प्रयत्न किया जाय ओर कोई उसको आप धोका खाके वा धोका देके-छलकपट करके इष्ट बतावे-अन्यथा इष्ट रूपसे निश्चय करावे, तोभी वोह अज्ञ उसे इष्ट मान लेता हे. कदाचित् सत्य इष्ट (सोमवल्ली-परितापनिवारक) भी मिलजावे तोभी, दूसरे करके सच्चे झूठे दोष दरसानेसे, उसमें इष्ट बुद्धि नहीं रहती (यथा वैद्यकग्रंथगत ओषधियोंके लक्षण स्वरूपके मतभेद ओर उपयोग हे). प्रयोजन यह हे कि, लक्ष्य [इष्ट] के लक्षणमें मतभेद हे. अतएव सलक्षण इष्ट जाननेवालेको जिस तिसकी वार्ता-कथन-मंतव्य-बुद्धि-युक्ति माननी पडती हे. मानो कि, उस झूठे इष्ट मिलनेमेंभी भाव-विश्वास-अज्ञान-संस्कारवश करके [जेसे क्षुधातुरको विभूति घोलके देवें ओर कहें कि यह क्षुधानिवारक अन्नका रस हे. उसके पीनेसे उसकी क्षुधा निवारण होके उस समय तृप्ति होजाती हे वेसे] मनकी शांति हो; तोभी, वस्तुतः उससे अनहुये इष्टेच्छा तत्प्राप्ति अर्थ व्यर्थ प्रयत्न समान वा उससे न्यूनाधिक इस [जिज्ञासु] की हानी संभव हे-वा होती हे. एतद्दृष्टि जिज्ञासा ओर इष्ट परीक्षाको किसी [अन्य] एकपर छोडके **'यह क्या? इत्यादि'** प्रश्न स्वभावतः उठें-जिज्ञासा होती हे-एसा होनेपर, उस जिज्ञासाके पूर्णार्थ सृष्टि-नैसर्गिक नियमादि सामग्री-साधनको लेके लक्षण, स्वरूपका निर्णय ओर परीक्षा कर्तव्य होते हें-कहे वा माने जासकते हें; परंतु किसी

मान व्यवस्थामें संप्रदायसिद्ध-मर्यादाबद्ध तत्वसिद्धांत सं-
बंधी सूक्ष्म विवेचक-आंदोलक-हृदयोद्घाटक समझके
तथा उक्त महात्माकीभी स्वाभाविक एसीही प्रकारकी "स-
त्प्रवर्तक पारमार्थिक बुद्धि" पाके, उनसे इस ग्रंथको छ
पाके प्रसिद्धिमें डालनेकी आज्ञा मांगली. तत्पश्चात् कि
तनीक प्रतिकूलताके कारण मेरी इच्छा तुर्तमें पार नहीं पड
सकी. इतनेमें अनायास मेरे मित्रद्वारा यह हकीकत जानके
कितनेक महाशय सद्गृहस्थोंने आप अपने धर्म ओर शौकसे
छपानेका उदारतावाला उत्साह दरसानेपर, यह ग्रंथ (उन
सद्गृहस्थोंद्वारा) आज प्रसिद्धिमें पाके मेरी प्रतिज्ञा सिद्ध हुई
देखके हर्षित होता भया खरेखर निमित्तरूप हुये उ

ग्रंथ वा मनुष्यके विश्वास वा कथनमात्रपर आधार नहीं रहता-नहीं
रखा जासकता-रखना उचित नहीं.-यह कथन वा मंतव्य सामा
न्यतः सर्वमान्यदृष्टिसे हे [विशेष-स्वपर लाभ हानीको न जाने
वाले-बालबुद्धि-अज्ञ-विश्वासु-एक देशी-एकके भक्त, जो हैं उनके
वास्ते नहीं-वे किसीके कुच्छ कहनेपर जिज्ञासा ओर इष्ट तथा
प्राप्ति ओर परीक्षाका मूल बांधें वा अन्य प्रकारसे-सो वे जाने].
यद्यपि इस मूल प्रसंगविषे आद्य [पहिले पहिल] विश्वास, प्रवाह-
सकंप-निष्कंप,-यथार्थ-अयथार्थ,-प्रवृत्ति निवृत्तिके संबंधमें अन्यभी
(अनेक) शंका समाधान हें; तथापि प्रसंगोपयोगी न जानके नहीं
लिखे, कुदरती-स्वभावतः सृष्टिदर्शनद्वारा उन प्रश्नोंकी उत्पत्ति,
निर्णयकी जिज्ञासा ओर परीक्षा होती हे-होसकती हे.-यह बात
किंचित् विचारसे जाननेमें आसकती हे. इसलिये केवल ग्रंथकारके
अभिप्रायपर दृष्टि जावे-इस इच्छासे, कर्त्ताके गुह्याभिप्रायकी सूच-
नार्थ इतना लिखा हे-जनाया हे.

धर्मात्मा सद्गृहस्थोका आभारी होना अपना कर्त्तव्य मानताहूं.

अंतमें आशा हे कि, यह ग्रंथ योग्यको उपयोगमें आवे, तथा विवेक [पदार्थके स्वरूप गुण कर्मका ज्ञान तथा परीक्षापूर्वक सत्यासत्यका शोधन], सद्धर्म, सदाचार, सद्विचारकी अवधारणा होवे तो, ग्रंथकर्त्ताका महदाशय सूचक श्रम सफल हुवा माना जासकता हे. तद्वत् प्रसिद्धकर्त्ताका संकल्पभी जो उक्त प्रकार कोईभी रीतिसे सिद्ध हुवा जाननेमें आवेगा तो, अपना श्रम सार्थक हुवा, एसा समझेगा. अस्तु.

इस ग्रंथ संबंधी सूचना विशेष जनाने वा जाननेकी आवश्यकता ग्रंथकारके 'पत्रसहित' ग्रंथ बांचनेसे नहीं रहती हे. और हरकोई स्वबुद्धि संस्कारानुसार, उसके लेखकी यथार्थता अयथार्थता-निर्णय-जानने-मानने-स्वीकार अस्वीकार करनेमें स्वतंत्र हे; इसलिये मेरी ओर[तरफ]से अन्य कुछभी नहीं लिख सकता. हां इतना लिखना-जिताना अपना फर्ज वा आवश्यक समझता हूं कि, जिनसे यह ग्रंथ लिया गया उन्होने एसा कहाथा कि जो, "इस ग्रंथके विरुद्ध उत्तरमें कोइ योग्य पुस्तक बाहिर पडे-प्रसिद्ध होतो, उसकी एक प्रति मेरी ओर भेजदेना. उसका लाभ लूंगा. ओर प्रतिउत्तर योग्य हुवा तथा मुझसे प्रत्युत्तर बन सकेगा, ओर उसके साधन मिले तो उत्तरभी लखुंगा."

सं. १९९६
जुनागढ
(काठियावाड)

भवदीय,
भानुशंकर वि. रणछोडजी शुक्ल.
ग्रंथ प्रसिद्धकर्त्ता.

——(:०:)——

ॐ ॥

हितोपदेश-कर्त्ताका पत्र.

"सत्यं परं धी महि."

पूज्य-इष्ट[1]-परीक्षक[2]-महाशय[3]( )की सेवामें प्रणाम पंक्तयः[4] ॥

विदित होकि, अल्प बुद्धिके रचे हुये कितनेक ग्रंथ हैं, उनमेंसे-जिनके लिये इस पत्रकी आवश्यकता हुई उन के यह नाम हैः—

१-"न्यायनाटक"-इस पुस्तकमें कणाद, गौतम, रामानुज, आर्यसमाज, फीसागोरस (पीथागोरस-यवनाचार्य), अरस्तु (अरिस्टोटल) आदि,-जीवेश्वर प्रकृति अनादि अनंत माननेंवालोंके मत [तत्ववादसंबंधि मंतव्य] की चर्चा [दूषण भूषण-खंडन मंडन] है.

१-जिसको यह ग्रंथ अनुकुल है, एसा इष्ट मंडल. २-जिसको यह समग्र ग्रंथ वा उनका कोई भाग प्रतिकुल है, एसा प्रतिपक्षी मंडल वा समालोचक-विवेचक-समीक्षक २-३ तटस्थ. ४-उभय मंडलके नाम पत्र लिखनेका यह कारण है कि ग्रंथकार कोई प्रकारका पक्ष-दुराग्रह नहीं रखता ओर न रखना मांगता है-न लोककी कुनिंदासे डरता है-न अपनी भूल स्वीकारनेमें भूल करना चाहता है; किंतु परीक्षा पूर्वक जो यथार्थ हो-उसकी प्राप्ति ओर प्रवृत्तिमें दृष्टि रखता है. अबभी जो कदाचित् प्रतिपक्षी मंडल परीक्षा विना अन्यथा उतर पडे, तो इष्ट, परीक्षक किंवा तटस्थ महाशय उसको योग्य दवाई देके उसकी आंखें खोल देंगे.—शांत करेंगे; तो अयथार्थमें फंसे हुये लोकको फंदेमेंसे निकलनेका अवसर मिले ओर अन्य लोक अयथार्थ-असत्में न फंससकें.

२–" बुद्ध बुद्ध."–इसमे उसकी शाखासहित बौद्ध मतकी चर्चा हे.

३–" जिन जून."–इसमें उसकी शाखासहित जैन मतकी चर्चा हे.

४–" पुराणपाट."–इसमें वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, स्मार्त, ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, इरानी–पारसी,–देवसमाजी, थियोसोफिकल सोसाइटी, अभावजन्य मत वा अभाववादि मतोंकी चर्चा हे.

५–" सांख्यसाखी."–इसमें कपिल ओर योग (पतंजली) मतकी चर्चा हे.

६–" जैमिनि हवन."–[जज्ञ–यज्ञ]–इसमें पूर्वमीमांसा ओर कर्मवादियोंके मतकी चर्चा हे.

७–" जडोजड."–(जडोच्छेद)–इसमें चारवाक-दहरिया–लोकायत-पंचतत्ववाद–आकर्षणवाद–सायन्स पक्ष–स्वभाववाद–इत्यादि जडवादि पक्ष–मतोंकी चर्चा हे.

८–"बाइबल बल."–इसमें याहूदी, ईसाई [ख्रिस्ति] मतकी चर्चा हे.

९–' मोहम्मदमति "–इसमें उसकी शाखासहित मुसलमानी मतकी चर्चा हे.

१०–" दयानंदीदीया."–इसमें दयानंद स्वामीके मत ओर आर्यसमाजकी चर्चा हे.

---

१० वर्तमानकाल विषे भूमंडलमें जितने छोटे बडे व्यवहारिक् बाडे-मत-पंथ वा धर्म प्रचलित हें, उन सर्वसे (मेरी समझमें) **जैनमत** उत्तम हे–लोकोपयोगी हे, एसाभी इस ग्रंथ विषे दरसाया गया हे. ओर धूम दीपक न्यायभी जनाया हे.

११–" द्वैतदीपक. "–इसमें सध्रमदीपक समान जो भेदवाद–उसकी चर्चा है.

१२–" अद्वैतादर्श. "–(अद्वैत परीक्षा)–इसमें एकता वाद (जीव ब्रह्मकी एकता) ओर अद्वैत (अर्थात् एक वस्तुको मानके व्यवस्था करनेवाले पक्ष) मतकी चर्चा है. तथा द्वैतवादकीभी चर्चा है. ओर अर्थापत्तिकी रीतिसे वही, उसमें, वोह सर्वमें, उससे,–इन चार मतोंका दर्शन होजाता है.

१३–" पारदर्शक. "–इस ग्रंथमें विवेकख्याति–योगादि साधनसहित घरजानीं× विद्याका विषय है. ईश्वर-प्रकृ-

---

१२ यद्यपि प्रचलित सर्व फिलोसोफियों (तत्व विद्या) से वेदांत कर्त्ताकी फिलोसोफी उत्कृष्ट-प्रबल है, यह वात तो प्रसिद्ध है; परंतु जिनको अनुभव नहीं है–केवल शब्द वा विश्वासके उपरही आधार रखते हैं,- वे वेदांत विद्याको नहीं जानते, एसाभी इस ग्रंथसे स्पष्ट होजाता है. द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, ओर क्षणिक विज्ञान वाद तथा थियोसोफिस्ट मतकीभी इस ग्रंथमें चर्चा है, हरेक मत-पक्षको तोल सकें, एसा प्रकारभी संक्षेपमें दिखाया है.

× स्वाधिष्ठान–आधार (घर)-अपर (पर रहित, पार वा पर) को जनाने–सिद्ध करनेवाली; वा स्वगृह (स्वत्व-अहमत्व–ममत्व वासना) नाशनी, वा जिस घरमें रहते हों उस घर (शरीर–उसका उपादान प्रकृति वा ब्रह्मांडके रहनेका जो स्थान) को जनाने सिद्ध करने वाली जो विद्या (ब्रह्म विद्या - तत्व विद्या). १३ उक्त विद्याकी चर्चा वा सो विद्या इस ग्रंथका विषय है. सर्व स्वतंत्र मतोंकी इस ग्रंथमें एकताभी दिखाई गइ है. यह ग्रंथ एक महात्माके संसर्ग पीछे [यह प्रसंग आगे वांचोगे] उनकी कृपा–सहायता–से बनाया गया.

ति-जीव-पुनर्जन्म-बंध-मोक्षादिकीभी चर्चा की गई हे.

☞ पूर्वोक्त ग्रंथ, मत-पंथोंके कारणवादमें हें. अर्थात मूल तत्वोंके स्वरुप ओर उनके परिणाम-फल-के संबंधी हे. कार्यवादकी चर्चापर नहीं हें. १-१३

---

१ से १३ तक. यद्यपि कितनेक आग्रही, स्वार्थी, हठी, विश्वासी, लोकेष्णाग्रसत, लोभी, अज्ञ, अविद्वान, अल्पज्ञ, वा अभिमानी भाई ग्रंथोंको वांचके कदाचित् निंदा पर उतरके निंदक ठरावेंगें; तथापि निंदा स्तुतिका मूल मुख्यतः मान्य,-सच्चाई,-नीयत,-परअज्ञातता,-संबंध,-फर्ज,-ओर लाभ हानीके उपर निर्भर हे; अतः में उनकोभी त्वच्छ दृष्टिसे नहीं देखना चाहता.

चोरको चोर कहना, सर्प अग्नि वगेरेके दोष जनाना, शिष्य-मित्र-पुत्रादिकों के सामने दुष्टोंके दोष दरसाके उनको उनसे बचाना, बुरे कार्य करते हुयेको पकडना, पदार्थोंके गुण दोष कथन करना, राजा वगेरेके दोष गुणवाले इतिहास लिखना-इत्यादि यथार्थ निंदा स्तुति करने वाले दोषपात्र-निंदक-वा वोह कथन निंदा नहीं हे. यथा राम, कृष्ण, व्यास, शंकर, बुद्ध, महावीर, बाइबल-कुरान-पुराणकर्त्ता, देवता वगेरेंने नामभी लेलेके परदोष कथन किये हें, उनमें जो यथार्थ हे सो निंदा नहीं मानीजाती.

किंतु साहुकारको चोर कहना, वा सर्प समान निष्प्रयोजन किसी दूसरे निरपराधीकीभी हानी करना वा चोरकोभी साहुकार कहना पाप-निंदा-त्याज्य कर्म हे.

जो उक्त व्यवहार न मानाजाय, तो सच्ची निंदा स्तुतिके विना जीवोन्नति, राज्य व्यवहार, प्रवृत्तिनिवृत्ति मात्रका उच्छेद होके हानी ओर जीवन व्यवहारकी अव्यवस्था होजाती हे; अतः दंभी कपटियों समान मुझको इस प्रसंगमें कोइ मिथ्या दोष आरोपका भय नहीं हे.

इन तमाम ग्रंथोंका यह आशय नहीं हे कि कोइ अपने धर्म वा धर्म शास्त्रको छोडके परधर्म धारण करे [यथा हिंदु, मुसलमान वा मुसलमान हिंदु होजाय]; तथापि इतना आशय तो जरुर हे कि, धर्म-मतके असल मूल तत्व ओर उसके परिणाम तथा रीफार्मरों (आचार्य-पेगंबर-इमाम-धर्मगुरु) की पॉलीसी ओर आशयको समझें. यद्यपि एसी समझ होनेका नतीजा-परिणाम-सत् धर्मका प्रकाश ओर सर्व धर्मकी ऐक्यता हे; अतः पूर्वोक्त मनशाय कल्पना मात्र हे; तथापि " जो सर्व वा विरोधी दो पक्षोंमें मिलना चाहता हे, वोह व्यवहार कुशल पद्वीके योग्य हो, परंतु अंतमें सर्व वा दोनों पक्षकारोंके रुचीका विषय नहीं होता, उलटा उनकी अरुचीका विषय होपडता हे उससे अच्छा तो मौन-तटस्थ हे; क्योंकि विरोधियोंमें मिलनेवाला दंभी वा

में किसी एकके विश्वास वा लोक रंजनतासे लिप्त नहीं हूं. क्योंकि जो केवल परविश्वास वा लोकप्रियता परही आधार वा उद्देश रखता हे, उससे मुझको ओर मुझसे उसको संतोष नहीं होता. ओर जब कि में केवल (अकेले) स्व बुद्धि विश्वास (वा अकेले प्रत्यक्षादि प्रमाण) परही नहीं रहता, तो किसीको अपना अनुयायी बनाना वा समझना वा अपना विश्वास दिलानाकेसे पसंद करुंगा? नहीं. ओरभी न मुझको अपनी यथार्थताका (में जो जानता वा मानता हूं सो यथार्थही हे, एसा) घमंड हे; किंतु अभीतक इस अपार सागरके शोधकोंकी सेवामें रहने योग्यभी अपनेको नहीं समझता हूं. एतदृष्टांतसे जेसे धोबी मेले वस्त्रोंकोही पत्थरपर पछाडता हे, निर्मल-उज्वलको नहीं, वेसे में अपने दोषसे अज्ञात अपने दोषकी शिक्षासे इनकारीभी नहीं हूंगा; मेरा एसा निश्चय सदा [जन्मान जन्म] रहो.

छली, कपटी पद्वीका पात्र होजाता है; अतः विरोधी पक्षों-
के सर्वांशमें मिलना नहीं बनता. और जो उनमेंसे कोई कोई
अंशमें मिले, कोइ पक्षमें नहीं मिले तो, उन पक्षकारोंकी रु-
ची संपादन नहीं करसकता. जो एक अंश स्वीकारे और
शेष अंशको मनमें धिक्कारे तोभी, गुप्त मौन निंदक होनेसे
अरुचीका विषय रहता है. जो सर्व पक्षोंको छोडके अन्य
कहे तो, पूर्व वालों समान वोह भी एक पक्षकार ठेरता है."—
इत्यादि दृष्टिसे यही ठीक मालूम होता है कि दूषण भूषण
समक्षमें लाये जावें और यथा परीक्षा-बुद्धि, सृष्टिनियम
और निर्णायक नियम देखाये जावें-विद्याकी तरफ दोराया
जाय, तो आपही असत्का त्याग और यथार्थका ग्रहण हो-
गा.—द्वेषका मूल उखडेगा.—संप—ऐक्यभाव—का उदय होगा,
एसा आशय है. पूर्वोक्त तमाम वा उनमेंसे कोइ लिखित ग्रं-
थ जब तब जिस तिस (उक्त) महाशयोंको मिले, एसा कुछ
प्रबंध किया गया है.

यद्यपि यह तमाम छोटे छोटे निबंध हैं, तथापि सरल
युक्ति और थोडेमें अधिक विषय लिखे जानेसे भाषाज्ञान
वालोंको विषेश उपयोगी होपडेंगे; एसा समझता हूं; क्योंकि—
(१) एसा कोइ मत वा पंथ नहीं होगा कि जिनका कारण-
वाद इन ग्रंथोंसे बाहिर हो, वा उनके यथार्थायथार्थत्वका
वाचककी बुद्धिमें दर्शन न हो. [२] में अपने निश्चयसे एसा
कहसकता वा मानता हूं कि, उन ग्रंथोंमें [धर्म तत्व बोधक,
सत्य प्रवर्त्तक और सुबोध वा तिन संबंधी विषयके सिवाय]
मुझ मत विनाकी नीयतसे लिखे गये वा मेरे जाननेमें हों,
एसे-किसीकी नीति विरुद्ध, मन भेदक, अरुचीकारक लेख
वा धर्म द्वेष पक्षादि सूचक वाक्य [ग्रंथोंमें] नहीं हें [३] यद्यपि,

वाद्यखंडन, षडदर्शन समुच्चय, सर्व दर्शन संग्रह, सत्यामृतप्रवाह, सत्यार्थ प्रवाह, सत्यार्थप्रकाश, जैन तत्वादर्श, तोहफ्तुलै हिंद, पंचदशी, तत्वदर्शन-इत्यादि ओर उनसे इतरभी परस्पर विरुद्ध पक्षवालोंके ग्रंथोंमें परस्परके विरुद्ध मतोंका खंडन है, " जेसे कि मुसलमानी मतकी मनोरचित मान्यता ओर अयथार्थतादि दोषोंके दर्शन वास्ते पंडित लेखराज आर्य मुसाफर-आर्यसमाजीके बनाये हुये "[1]तकजीब बुराहीन अहमदिया" " खब्ते अहमदिया " " जिहाद, " " सबूतेत-नासुख (पुनर्जन्म सिद्धि) " यह चार ग्रंथ ओर ख्रिस्ति मतके दोष दर्शन वास्ते उन्हींका बनाया हुवा " क्रिश्चियन मतदर्पन " तथा प्रसिद्ध ग्रंथ " इसू चरित्र " " इसाई मत खंडन " इत्यादि बस हैं. " अतः उक्त ग्रंथोंकी आवश्यकता नहींभी हे; तथापि उनकी शैली-प्रकार ओर भाषा कठिन होनेसे हरकोई सामान्य मनुष्योंके उपयोगमें नहीं आ सकते; उनमें कितनेक ग्रंथ तो, स्वपक्ष वा मंतव्यको मुख्य मानके, तदाधीन युक्तिका प्रवाह चलानेवाले हैं.-प्रथम सृष्टि नियमोंको मानके, स्वपक्ष सिद्धिपर नहीं आना चाहते. ओर उक्त ग्रंथोंमें सृष्टि-नैसर्गिक नियमोंको मुख्य रखके, जहां तक बनसका वहांतक सरल भाषा पूर्वक एसी शैली रखी हे कि, उस भाषाके जानने वाले शोकीन-जिज्ञासु-विचारवान-बुद्धिमानको, एक ग्रंथकेही विचार पूर्वक अवलोकनसे, अनेक मतोंमें जो उनके मूल तत्वों विषे दोष होंगे-उन दोषोंमेंसे मुख्य मुख्य थोडे बहुत त्याज्य दोष ओर स्वीकारनीय भूषण सहज जाननेमें आसकें. इत्यादि कारण विशेषको लेके, यथामति एसा समझा हे कि, यदि उक्त ग्रंथ प्रसिद्धिमें

---

१ तकजीबादि ग्रंथ यद्यपि उरदूमें हैं, तथापि कुछ कठिन उरदू हे

ावेग ता, मतवादि स्वदोष निवारण करनेमे तत्पर होंगे
इस नवीन सुधारे वा वर्त्तमान नवीन रोशनी [प्रकाश
से अंजाये हुये वा अंजानेवाले सामान्य पुरुषों वास्ते अ
त्युपयोगी होपडेंगे; नवीन परदेशी सुधारे वा परमतमें न
घुसके, प्राचीन प्रचलित दलदल-कीचडसे निकलेंगे, ओ
नवीन मशालकी रोशनीमें नहीं चुंधाके, "प्राचीन निर्धू
शुद्ध-प्रकाशको" प्राप्त होंगे वा उसकी प्राप्ति अर्थ प्रयत्न ओर-हृ
दय चक्षु साफ करेंगे-एकभाव होनेका अवसर लेंगे. [४] यद्यपि
न्याय पुराण, बौद्ध ओर वेदांत-इन चारोंके अंतर, सर्व मतोंक
समावेश हे. अन्य मतोंका खंडन मंडन-दूषण भूषण, इनके अं-
तर्गत आजाता हे; अतएव अन्य ग्रंथोंके रचनेकी आवश्यक-
ता नहीं थी; तथापि-जेसे, " वर्त्तमान प्रचलित युरोपियन-
की फिलोसफीका पर्यवसान-अंत ओर आर्य मूल फिलोसो-
फीका आरंभ." इतना उभयमें अंतर हे;-वेसे. वर्त्तमानके आ.
युवा वृद्धभी, बाल वृद्ध अंतर समान, इस विषयमें बालक
मान हें; अतएव उनके वास्ते भिन्न २ रचना, उचित स-
मझा गया.

निदान पूर्वोक्त कारणोंको आगे रखके आपसे आ
शा रखी जाती हे कि. जब तब जो आप पास कोई प्रकार
से उक्त एक वा अनेक लिखित ग्रंथ आजावें-आपको मिलें
तब प्रथम उसको अवलोकन करें, पुनः लोक हानीकारक
नहीं किंतु, लाभकारी हें-एसा मानें वा ध्यानमें आजावे
तथा अनुचित नहीं समझें ओर आपसे बन सके तो, श्रमको
स्वीकारके, प्रसिद्धिमें लावेंगे-छपवादेंगे.-अन्यथा नहीं.
एसे पि जिन महाशयों के नामपत्र हे उन (उभय मंडल)
वा धर्म नहीं [illegible] र्मको प्रत्युत्तर देने, [illegible] दोष वा लेखकी

अयथार्थता दरसाने, संपूर्ण वा कोई भाग त्याग ग्रहण करने न करने, वा उभय पक्षकारसे तटस्थ हुये मध्यस्थ समाने अनुकूल प्रतिकूल संमति देने न देनेका कुदरती (स्वभावतः) अधिकार है; तोभी, उसको सर्व वा किसी अंशमें निर्भयता पूर्वक उपयोग लेनेकी (याद कराता हुवा) प्रार्थना करता हूं. क्यों? स्वपरोपकार, तत्वनिर्णयार्थ.

मेरा कर्तव्यथा कि वे ग्रंथ स्वयं प्रसिद्ध करूं—अन्यको श्रम न दूं; परंतु जिनमें लोकैषणा, वित्तैषणा. वा बांड बंदीकी वासना हो, किंवा निर्पक्ष, सत्यशोधक दृष्टि न रखते हों, (वे मेरे अंग-मित्र-संबंधीभी क्यों नहीं) उनसे तो एसे कार्योंमें आशा रखनी व्यर्थ है. तद्वत साभिमानी धनाढय और नवीन रोशनीके अंजाये [आच्छादित] मनुष्योंसे. और मेरे जेसे साधन रहितकी जिज्ञासाका उच्छेद तो स्पष्ट है‡. तदुपरांत अन्य कारण विशेषसे स्वकर्तव्य पूरा नहीं कर सका. और " अवस्थांतर प्राप्त होनेवालेको अपनेसे जितना बने उतना योग्य उपाय [उपकार] कर्तव्य है, " इस मान्य नियमको आगे रख-वेसे दृष्टिवाले दीर्घदर्शी और इस विषयके इच्छावाले (उभय कोटी) महाशयोंपर छोडना पडा. कदाचित ग्रंथोंपर रुची न आवे, तोभी इस पत्र लिखनेका मुख्य कारण यहभी है कि, इस पत्रमें किसी देश हितैषी महात्माके हितोपदेशका सार है, सो लोकके समक्ष आवे,—उसपर ध्यान देंगे.

इन ग्रंथोंके रचनेका उद्देश और उद्देशकी उत्पत्ति.

‡ इन चार वर्ग और पांचवे अज्ञ वर्गको निकालदें तो, शेष बहुतही थोडे आदमी रहेंगे.

क्या है ? यह बात ध्यानमें लेने जेसी हे, अन्यथा ग्रथकारका रहस्य नहीं जाना जाता, अतएव संक्षेपमें जितानेकी आज्ञा लेता हुं:—

ग्रंथ रचनेके पूर्व प्रचलित नाना धर्म, मजहब, पंथ वा बाड़ेका अनुयायी हुवा; सबमें पोल पाई; अनेक मतोंमें यथा बुद्धि प्रवेश किया; बुद्धिविलास ओर शब्दविहारके सिवाय कुच्छ हाथ न लगा; नास्तिकताका बलभी मनपर पूरी असर नहीं करताथा; निदान यथावत् अप्राप्तिसे विलक्षण रंगतमें रहताथा. विशेष काल शोधमें जाताथा. अंतमें किसी हितकारीकी सूचना होनेपर उत्तराखंड निवासी एक योगी पास गया; ओर उनकी योग्यताने दिलपर स्वाभाविक असर किया. उनकी कृपा कटाक्ष पाके जिज्ञासा बताई. ओर नीति रीति पूर्वक प्रसंग प्राप्त होनेपर यथा मर्यादा उनसे प्रश्न कियाः-" ज्ञाता ज्ञेय-उभय परस्पर भिन्न होते हैं " इस अडिग्ग अटल नियमसे यह सिद्ध होता है कि, अपनेको आप कोईभी नहीं जान सकता. जब यूं है तो, जडमतसे इतर अन्य÷ सर्व मत पक्ष, असंगत-कल्पित सिद्ध होजाते

÷ 'जिसने जाना अपनेको उसने पहिछाना अपने रब्ब (ईश्वर) को,' यह मत अरस्तातालीस,-मुसलमीन ओर ईसाईयोंकाभी हे. 'अहंब्रह्मरूपसे अपना ज्ञान होना' वेदांत मत. 'अनुमान सिद्ध मन नाम साधन साथ संयुक्त हुये आत्माका ज्ञान गुणोत्पन्न होके आत्मा अपने, आपको जानता हे' न्याय वैशेषिक मत. जीव अपने स्वरूपको जानके केवली होता हे, तिर्थंकर सर्वज्ञ हें, जैनपक्ष. 'विज्ञानको क्षणिक विज्ञानका ज्ञान' बौद्धमत. 'आत्मा अपनेको प्रकृत्ति, बुद्धिसे भिन्न अपनेको शुद्ध जानके स्थित होता हे' सांख्य योग. सर्वज्ञ वादि अनेक मत. इत्यादि.

हैं और जबाकि अपनेसे भेद रहित अपना जो स्वरुप सोही नहीं जाना जाता तो, अपनेसे भेदवाले जो (ईश्वर, जीव, द्रव्य, गुण, कर्म,-इ.) पदार्थ वे यथावत् केसे जाने जासकते -विषय होसकते हैं? नहीं. जो सूर्य समान स्वयं प्रकाश मानें तोभी, स्वप्रकाश हो, परंतु इतना माननेसेभी "ज्ञातासे ज्ञेय द्रष्टासे दृश्य, प्रकाशक वा प्रकाशसे प्रकाश्य भिन्नही होता हे," इस प्रसंगका बाध नहीं होता अपना आप ज्ञाता, प्रकाशक, द्रष्टा और आपही प्रकाश्य, ज्ञेय, तथा दृश्य हो, एसा नहीं होसकता, यही सिद्ध होगा. कदाचित् एसा मान लेवें कि "अपनेको आप मत जानो, परंतु शब्द घटादिवत् अन्यको जान सकता-विषय करसकता हे-इस रीतिसे एक जीव अन्य जीवोंके स्वरुपको विषय करके उसके सजातीय [वा साद्दश्य] अपनेको मान लेता हे-अपने अनुमानका विषय होता हे" सो कल्पनाभी नहीं बनती; क्योंकि जो ज्ञाता, किसी साधन द्वारा जानता हो-विषय करता हो, तबतो उसे साधनको विषय न कर सकनेसे उस साधनकोभी अनुमानका विषय मानना पडेगा. और पूर्ववत् सजातीय [वा साद्दश्य] मानलेना होगा; परंतु एसा माननेसे प्रकारोंको दोष प्राप्त होता हे,-ईश्वर जीव, मनादि साधनके विषय होंगे." साधनके अनुमान करनेकी साधक जो व्याप्ति [कारण-कार्यभाव, तादात्म्यत्व, अविनाभाव संबंध] उसकी सिद्धि न होसकेगी. जिस साधनको अनुमानका विषय माना हे, उस अनुमानको विषय करने वास्ते अन्य साधन कल्पने पडेंगे; इस कल्पना प्रकारसे अनवस्था अन्योऽन्याश्रय, चक्रिकादि दोष आवेंगे, और अव्यवस्था, प्राप्त होगी. जो "अपनेसे इतरको साधन विना स्वयं जानता-विषय क-

रता हो" एसा मानें तो, आप अपनाभी विषय होना चाहिये, क्यों न हो? परंतु एसा होना पूर्वोक्त नियमसे बाधित हे; इस लिये स्वयमेवभी विषय कर्ता नहीं. तथाहि कोई प्रकारसे एसा मानभी लेवें कि साधन द्वारा वा विना साधन विषय करलेता हे तोभी, परीक्षा करनेसे असिद्ध हे. अर्थात् ज्ञातृत्व-अपरोक्षत्व की असिद्धि हे.× जो किसी [ईश्वर, तिर्थंकर, योगी, पेगंबर के विश्वाससे मानें तोभी, संशय रहित निश्चय नहीं होता;× क्योंकि पूर्वोक्त नियमसे सर्वज्ञत्वका अभाव हे×-जबकि वोह अपनेकोही नहीं जान सकता तो, सर्वज्ञताका आपही बाध हे. असर्वज्ञका ज्ञान, सर्वथा यथार्थ हो. एसा सिद्ध नहीं होता. इसलिये विश्वास परभी आधार नहीं रहता. जो यह दोष न होता तो सर्व प्रसिद्ध सर्वज्ञोंके मत पंथोंमें अंनर-मतभेद नहीं होता.

इत्यादि प्रकारसे जीवादिके स्वरुपका ज्ञान नहीं होसकनेसे उसका संतोषक निर्णय नहीं होसकता. जब यूं हे तो, उसके मानेहुये ईश्वर जीवादिके स्वरुप ओर उसके निर्णयके आधारपर तद् कल्पित बंध मोक्ष तथा उसके मोक्ष वगेरे होनेके साधन मान्य नहीं होसकते-सिद्ध नहीं-होते. अतएव महात्मन्? यदि ईश्वर जीव हें, उनका जानना होसकता हे, तो मेरी शंकाका समाधान होना चाहिये? इस शंका करनेका मुख्य हेतु यह हे कि, "में कोन" [मेरा स्वरुप क्या ओर केसा हे]? ओर क्यों (मेरा उपयोग-कर्तव्य, प्राप्तव्य, ज्ञातव्य क्या हे)? -इन दोनों प्रश्नोंके समाधानमें तमाम पारमार्थिक [परलोक-मोक्ष] ओर बहुतसाव्यवहारिक विषयका निवेडा होजाता हे. किंतु "में कोन"? इस एक प्रश्नहीके समाधान अर्थात्

× ग्रंथमें वांचोगे.

स्व स्वरुपके यथार्थ ज्ञान होनेपर " मे क्यों " इसके समाधा-नका निवेडा तथा यह [ईश्वर-जगत्] क्यों ओर केसा ? इस प्रश्नका समाधानभी होजाता हे.

मेरी शंकाको सुनके वे कहने लगे कि, ओरभी कुछ ? मेंने कहा हां. निदान उन्होंने मेरा पंथ, श्रम ओर प्रश्नाशय तथा शुद्ध जिज्ञासा पहिछानके पूर्वकीहुई[1] अनुबंध सहित कितनेक ग्रंथों [अद्वैतादर्श, न्यायनाटक, जडोजड, बुद्ध बुद्धि] की मूल नोट[1] (यादी) सुनके विलक्षण हास्य किया;[2] शनैः शनैः उनके गांभीर्य ओर गौरवयुक्त स्वतंत्र,

१ - शोधक-कालमें बनाता रहताथा. कितनेक ज्ञानवान कहाते हुये गृहस्थ, साधु, संन्यासी, फकीर, ब्राह्मण, विद्वानोंके सा-मने, शिष्य समान-जिज्ञासु भावसे-सुनाता रहा; परंतु मुझे यथार्थ संतोष हो, एसा उत्तर नहीं मिलताथा. कितनेक माहात्माओंने उत्त-रमें उंपरामता बताई. कितनोंकने "तुमअभी योग्य नहीं हो," एसा उत्तर दिया. कितनोंक महापुरुषोंने कुछ उचित-योग्य संमतिदी. कितनेक विश्वासीभक्त-आंख बंध करके कोटडी (गुफा) में बे-ठनेवाले-कितनेक स्वार्थ, प्रतिष्ठाआकार हुये कथा वांचनेवाले-कितनेक शुष्क बाचाल मिले,-उनके मुखमेंसे नास्तिक, भ्रांत पदके सिवाय उत्तर नहीं मिलताथा; सो नोट.

२-कहने लगे कि अधुरा घडाही छिलकता हे, भरा हुवा नहीं. जो वहां-किनारे-पर नहीं पहोंचा, वही खंडन मंडन-बकबक करता हे. जो वहां-अगम्य धामपर पहोंच गया, उससे खंडन मं-डन तो कहां किंतु वहांका गुप्त भेद-रहस्यभी नहीं कहा जाता-गम्य हे वा अगम्य हे, एसाभी नहीं कह सकता. जो बकबक करता हे वा विषयको न जानके किसीकी परीक्षामें उतरता हे, उसको समझो कि यह कुछभी नहीं जानता-असल रहस्यपर नहीं पहोंचा.

पश्चात्, नाना प्रकारके थोडेही वाक्यों [उपदेश] ने तथ उस यथार्थ अनुभवी मूर्त्तिकी ओरा (प्रभा-भव्यता-नूर-शक्ति-प्राण-तेज-संकल्प) ने मेरे उपर भारी असर किया;-उनके महत्व[3] वा कृपासे[4] जो कुच्छ मेरी आशाथी, सो मेरी जिज्ञासा ओर अधिकारानुसार पूर्ण हुई. उत्तर न मिलने-न होसकने जेसी पूर्वोक्त शंकाका अकथनीय समाधान, उत्तर मिलेविना, होगया.-मेरे संशय-असंभावना विप-

(जेसा कि तू हे) ओर जो अधिकारीप्रति यथावत्-यथा अधिकार योग्य कहता हे ओर अपनेको समझता हे कि में कुछ नहीं जानता, उसने कुछ समझा हे. यथा वैद्य अपनेको पूरा वैद्य नहीं मानता इ.

३-सहवास, परीक्षा पीछे ज्ञात हुवा कि, यह माहात्मा संस्कृत इंग्रेजी, फारसी, अरबी, ओर बंगाली भाषामें कुशल,-पदार्थ, अर्थ, रसायनादि ओर शास्त्र तथा अध्यात्म विद्यामें पारंगत,-ज्ञानमूर्त्ति, बुद्धिमान चतुर, प्रवीण, कर्त्ता, गंभीर, धीर, दयालु, दिव्य, निर्मल, संयमी, अरिहंत (राग द्वेषादिरहित,- निमानिमोह, जितेंद्रिय), प्रत्येक शंकाका यथायोग्य-सयुक्त समाधान करने वाले, वैराग्यवान, निर्जन देशवासी, शांत, ब्रह्मविदोत्तम, पूज्य, महाशयथे. (यह मेरी दृष्टिकी परीक्षा हे, मुझे एसा भासतेथे.)

४-फकीरोंमें प्रसिद्ध हे कि "उपदेशविना; गुरु अपनी दृष्टिमात्रसे वा शिष्योंको छातीसे लगाके, मूर्छित करके [अनुवृत्ति वा विश्वदृष्टि करके] कुछ दिखाते वा बताते ओर अपनी इच्छानुकुल उसका निश्चय वा दृढता करादेते हें,-सो विश्वासमात्र हे, एसा करनेसे शिष्य-विधेय-की हानीभी होजाती हे.-यथा कोई दैवाना बनजाता हे, कोई शून्य होजाता हे (जिनको अज्ञ लोक औलिया कहते हें) इत्यादि कदाचित् वोह इष्ट-यथार्थ विषय-हो ओर तवज्जह-अनुवृत्ति-विनिमय-का असर निकृष्ट नहीं

रीत भावनाका अभाव हुवा[5] मनुष्य ज्ञातव्य कर्त व्यका अवधिफल[6] मिला होय नहीं, एसा समझ बेठा[6].
[ओर आगे चलनेका पंथ सूझा]में आश्चर्यमग्न-बेवकूफ-हुवा. उन नोटोंको फेंकने लगा कि वे महात्मा हंसके मधुर वाक्यों से समझाने लगे कि यह[7] (....) वोह[8] (....) भिन्न है.[9] अतः

निवडे तो, शिष्यकी हानी नहीं होती; तथापि इष्ट विषय विश्वासरुपसे ग्रहण रहता हे-साक्षात् दृढता पूर्वक नहीं. " एसा प्रकार •इस कृपाका अर्थ नहीं समझ लेना चाहिये; किंतु उससे भिन्न प्रकार-सर्वमान्य रीति हे. ५-यह कथन वा मतव्य मुझ मोहितकी दृष्टिसे मान्ना चाहिये. ६-विश्वासी, अज्ञ, मूर्खका उदाहरण हे. ७-प्रचलित धर्म, कर्म, व्यवहार, संप्रदाय,-विषयरुप जगत् जो कि मन वाणीके गोचर हे-प्रकृतिमात्र. ८-प्रकृतिभिन्न अकथ,-अवाच्य,-त्रिगुटि तम, प्रकाश, भाव, अभाव, संबंध, भेद, संशय, यथार्थायथार्थ बुद्धि, मन, " ज्ञातासे ज्ञेय भिन्न हे ओर सर्व ज्ञान सापेक्षक परिच्छिन्न हें " एसा जो जानता हे, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, प्रत्यक्ष, अनुमान, दुःख, सुख, ज्ञातृत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ज्ञान, शून्य, अपरोक्षत्वादि) जिसके प्रकाश्य-जिससे प्रकाशित हें,-नेतिसेभी पर,-निरपेक्ष ज्ञान-चित्-स्वरूप,-अगम्य,-एसा स्वप्रकाशस्वरूप. पर.

९-यद्यपि प्रस्तुत विषय सायन्स, फिलोसोफी वगेरे किसी विद्याका क्या, किंतु बुद्धि मन-वाणिकाभी विषय नहीं हे; तथापि ब्रह्मविद्या-फिलोसोफी-के प्रतिकूलभी नहीं हे. प्रत्युत ब्रह्मविद्याही उसके समीप पहोंचाने योग्य हे एसा व्यवहारमात्र कह सकते हें थियोसोफीस्ट किंवा अन्य कोई पक्षकार-जो एसा कहते हें कि "उस विषय (पारमार्थिक विषय-सूक्ष्म सृष्टिके विषय-अदृष्ट विषय-लॉगॉस-ब्रह्म वगेरे) को फिलोसोफर योगयुक्त परीक्षक डाहे मित्र-नहीं जानसकते,-फिलोसोफी वा तत्वविद्याकी यहां गम नहीं

भ्रमको क्यों गुमाता—निष्फल करता हे ! तुम्हारी शंका वा कथन, यथार्थ-वास्तविक तत्वज्ञोंके विपरीत वा मुख्य रहस्य के बाधक[१०] किंवा खंडन मंडनकारों समान शब्दमात्र अरुचि कारक तो नहीं हें; इत्यादि उपदेश सुनके इस विषयको विचारपर छोडके प्रत्युपकारमें साष्टांग प्रणाम सिवाय कुच्छ न पाके लज्जायुक्त दंडवत् प्रणाम करके आज्ञा मांगी. उस समय परोपकारार्थ-[संस्कार विस्तारार्थ] मुझे कुच्छ उपदेश किया, उस गंभीर उपदेशका सारमात्र यह हेः—

इत्यादि; " यह बात सर्वांशमें मान्य नहीं होसकती. अन्यथा उसकी गम्यता वा अगम्यता तथा उसके स्वरुपकीही सिद्धि नहीं होसकती. ओर वस्तुतः तो यूं हे कि नित्यप्राप्त-उपयोगमें आने वाले शब्द-तम-रंग-किरण-आकर्षण-रस-गंध-अभाव-ज्ञान-इत्यादि पदार्थोंकाभी यथावत् स्वरुप नहीं कह सकते, तब उसके संबंधमें तो क्या कहा जासकता हे; एसा लक्ष्यालक्ष्य हे.

१०-वेदोपनिषद्, गीतासार, योगादि वा योग्य ग्रंथ ओर अनुभवी योगी विद्वान महात्माओंके सिद्धांत-विशेषतः हमारी दृष्टिसे सर्व मनुष्योंको मान्ने योग्य सुबोधक उपनिषद्गत उस गुह्य अंतिम रहस्यके (कि " जो वाद विवाद-कथन श्रवण-लिखने पढने-में नहीं आता ओर न लौकिक धर्म व्यवहारका विरोधी हे ओर न उनका विषय हे; किंतु अधिकारी पुरुषोंको महात्माओंकी रीतिविशेषसे योग्य गुरुद्वारा हृदयमें मिलता हे.-किंवा विवेक-वैराग्य-योगयुक्त अधिकारी पुरुषही स्वयं पासकता हे, एसी परंपरासे प्राप्त होने योग्य हे.-जाति, मत, वर्णाश्रमादि भेद पर उसका अधिकार निर्णित-नियत नहीं हे "-तिस उक्त सिद्धांत-रहस्यके) भी विरुद्ध नहीं हे.

(१) नैसर्गिक अनादि अनंत नियमानुसार तमाम कार्य होनेका प्रवाह हे, उसको कोइभी नहीं बदल सकता. यथा उन्नति अनवनतिका प्रवाहचक्र.-निर्बलको बलवान दाबता वा मारता हे.-पुरुषार्थसे उन्नति होती हे. रंजकण, हीरा ओर हीरा, कोयला बनता हे.-आर्यावर्त्त उच्च हुवा अब नीचेको जा रहा हे. इ. अतः धैर्य-संतोष पूर्वक शारीरिक-आत्मिक ओर सामाजिक उन्नति करना मनुष्यका कर्तव्य हे.

(२) प्रचलित धर्म संस्कार मात्र हैं;* मनुष्य मात्रका जो एक धर्म हे सो तिरोभाव जेसा होगया हे. उसके सामान्य लक्षण यह हैंः–१ मनुष्यमात्र ओर कुदरतके प्रतिकूल न हो किंतु उभयानुकूल हो. २ जिसके विना जीवन न हो. ३ जिसका परिणाम तन मनका दुःख न हो किंतु सुख हो. ४ जो शब्दप्रमाणके विनाभी स्वयं सिद्ध होसकता हो. ५ मनुष्य जिसे धारण करसके, एसे धर्मका[१] प्रचार करो. क्योंकि प्रचलित धर्मोंका 'नानात्व'ही उनकी अयथार्थता सिद्ध करता हे.

(३) उक्त धर्म ओर धर्मभावनाका अमेरीका यूरोपादि देशोंमेंभी प्रचार हो तो, धर्मद्वेष नाश होके एक धर्म

---

* इसु बाइबल न माननेसे ख्रिस्तिपना, कुरान नबीको न माननेसे मुसलमानपना, पुराण न माननेसे-चोटी न रखनेसे हिंदुपना नहीं रहता !

१ धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इंद्रियनिग्रह, धीवृद्धि, विद्यावृद्धि, सत्य, अक्रोध वगेरे सर्वमान्य.

होसकता हे, जोकि सर्वको सुखका हेतु हे. इस भारी काम पूरा करनेके लायक यदि कोइ हे तो आर्यधर्मकी "फीलो-सोफी" हे, जोकि धर्मको सायन्स-व्यवहार-कुदरत-युक्ति ओर प्रकृति के अनुकूलभी प्रतिपादन करती हे. विश्वास मात्रको आधार नहीं बताती.

इसलिये आर्यावर्त्तके सर्व धर्मवालोंको योग्य हे कि धर्म-मंडल प्रति चार चार पुरुष छांटके एक धर्म-सभा बनावें; ओर एकसंमत कुछ नियत करके व्यापक उच्च सुगम नियम घडें; उन नियमोंमें एसा उद्देश ओर गौरव होना चाहिये के जिनके चलनेपर 'एकधर्म' हो, शरीर-वीर्य-बुद्धि ओर संपकी हानी न हो, द्वेषका अभाव हो; परमार्थ प्राप्तिके साधन हों ओर नीति-सदाचारको सहजमें प्रवर्त्तासकें.

परंतु यह काम जब होसकता हे के-उस धर्मसभाके एसे प्रतिनिधि हों:-विद्वान, बुद्धिमान, देशहितैषी, नाना धर्म पंथोंके ज्ञाता, दुराग्रह रहित, निस्पृहि, व्यवहार-नीति-राज्य-गृह ओर व्यापारादि कार्योंमें कुशळ, सदाचारी, प्रतिष्ठित, निरभिमानी, परोपकारी, वृद्ध, स्वपर दुःख सुख समान जाननेवाले.,

[प्र.] एसे पुरुष मिळना कठिन हे (उ.) एसे पुरुष पेदा-उत्पन्न न करें वहां तक, दुःखसागरमें गोते खाना कबूल करना पडेगा, किंवा नाना धर्म ओर तज्जन्य द्वेषका प्रबल शत्रु-फीलोसोफीका आरंभ हे, उसका अंत पूर्ण प्रवृत्ति वा निवृत्ति परिणाम लाता हे; अतः उसका प्रचार होना चाहिये.

(४) कुदरती वेद-सृष्टिनियमानुकूल वर्त्तन-लाभिष्ट ओर प्रतिकूल वर्त्तन अनिष्ट हे; इसलिये केवल शब्दप्रमाण मात्रके पशु मत बनो; क्योंकि परीक्षा ओर अनुभवही उ-

पयोगी होता है. परंतु उसको सर्वथा त्यागनाभी नहीं चाहिये; क्योंकि सुगमतासे परीक्षा ओर अनुभव तथा व्यवहार होसके, एसा साधन है.

(५) इन लक्षणवाला "ईश्वरीपुस्तक" नहीं होसकता:- जिसका लेख कुदरती नियमके विरुद्ध हो १. अपनेसे पूर्ववाले प्रचलित ज्ञानका बोधक हो २. जिसके प्रथम कोइ पुस्तक वा धर्म हो ३. जिसका लेख बदलाता वा बदलाने योग्य हो ४. जिसका अर्थ न होसकता हो ५. जिसमें किसीका इतिहास वा किसीकी साक्षी हो ६.

तद्वत् एसे वक्ताको ईश्वर वा ईश्वरअवतार वा ईश्वरका दूत वा ईश्वरका पुत्र नहीं मानना चाहिये. अन्यथा हानी है.

(६) असत्य त्याग ओर सत्य ग्रहण करनेमें आग्रह रखना चाहिये. लोक विषे असत्य वास्ते विशेष शिक्षा नियत हो तो, शायद उत्तम परिणाम निकले.

(७) आत्मोन्नति करना मनुष्यका पहिला फर्ज है ओर वोह अयोग्य लोकेषणा-कुशास्त्रवासनाके त्यागपूर्वक सृष्टिनियमानुकूल वर्तन-ब्रह्मचर्यपालन-नीति-सदाचार-ओर सद्विचार तथा योगरीति सेवनसे होसकती है.

(८) लक्ष्य [व्यवहार] ओर लक्ष्यालक्ष्य [परमार्थ]का भिन्न मार्ग है. इसको उसमें जो जोडता है वोह उस विषयमें अपूर्ण है; अतः परमार्थविद्याका तो 'अधिकारी' कोही एकांतमें उपदेश करना घटित है-अन्यथा नहीं.

(९) विशेषतः जीव, ज्ञात अज्ञात संस्कार ओर कुदरतसे बद्ध है तथा अपूर्ण है; अतः कुदरतकी दृष्टिसे किसीको अच्छा वा बुरा नहीं कहाजासकता; इसलिये किसीको तिरस्कार वा द्वेषका निशाना बनाना अनुचित है.

मनुष्यबुद्धि ओर उसकी अनुकूलता प्रतिकूलताकी अपेक्षासे उत्तम, निकृष्टकी मान्यता हे.–यथा गोभक्षक मुसलमान ख्रिस्ति, हिंदु कोमको अप्रिय ओर मुसलमान ईसाइओंको प्रिय हे; कुरान नबीपर वा बाइबल इसुपर विश्वास न रखनेवाले हिंदु, मुसलमान वा ईसाइओंको अप्रिय हें. इ. अतः सर्व सुखार्थ कोइ व्यापक मर्यादा होना चाहिये.

(१०) अपने धर्म–पंथ–चलानेवालोंने–शरीररक्षा, संप, स्वत्व, स्वाभिमान, संमति, आग्रह, दृढता, पॉलीसी, दुःख ओर उद्देशका–सेवन किया, जो चलाना था 'केसे स्वयं हें' एसा लोकको निश्चय करादिया, साम-दाम-भेद दंडको काममें लिया, " अल्दद्वद्वएरब्बतुन " पर ध्यान पहोंचाया; इस वास्ते छोटी कोम बडी, ओर बडी छोटी कोम होगइ. [आर्य ओर पारसी कोमका इतिहास देखो.]

(११) शरीर ओर प्रकृतिका बंधारण–प्रबंध–उपयोग उनके अंगोंके संप हुये विना नहीं होता, तो मनुष्यमंडलको संप किये विना केसे सुख होसकता हे ? नहीं. यथा हिंदु कोमको परस्परके द्वेषसे कितना भारी दुःख हे.

(१२) ' कोइ पक्ष धारण किये विना काम नहीं बनता,' एसा मानें तो, यह धर्म-पक्ष उत्तम मालूम होताहेः– " जीव, ईश्वर, प्रकृति–तीनों अनादि अनंत हें; जीव कर्म करनेमें स्वतंत्र ओर फल भोगनेमें परतंत्र हे; न्यायी, अक्रिय, निरीह ईश्वरकी सत्तासे जीवके कर्मानुसार फल भोगनेकी सामग्री [सृष्टि] बनती हे–बिगडती हे, ओर जीवको योन्यंतरमें फल भोगना पडता हे, एसा अनादि अनंत प्रवाह हे." इस प्रकारका मंतव्य, शंका ओर धर्मद्वेषको छोडके कोइ योग्य प्रकारसे प्रचारपाके दृढ होजाय, तो नीति-

सदाचार-व्यवहारकी उन्नति हो; बलके उभय लोकके सुख मिलनेकी संभावना हे, देशका श्रेयकारी पक्ष हे. इस विषयके आंतरीय रहस्यको व्यवहारनिपुण, राज्यविद्याकुशल-ब्रह्मवित् जानसकते हें. परंतु इस पक्षमें 'धर्मभावना' उत्पन्न करनेकी अपेक्षा हे, तब सत्य वस्तुको प्राप्त होसकते हें.

(१३) कसरत, ब्रह्मचर्य, विद्या, उद्यम-हुनर-व्यापारादि ओर परोपकारका खूब प्रचार होना चाहिये; इसमें तन-धन-संप-बुद्धिबलकी अपेक्षा हे.

(१४) भोजनव्यवहार ओर वर्णाश्रमकी मर्यादा यदि गुणकर्मपर होजाय [वीर्यमात्रपर न रहे] तो शीघ्र उन्नति होसकेगी; क्योंकि पूर्व संस्कार-रजवीर्य-मातापिताके मानसिक विचार-सूक्ष्मसृष्टिकी अदृष्ट असर-दूसरोंका संग [संबंध] ओर शिक्षक-यह षड्शास्त्र, मनुष्यकी उन्नति अवनतिके हेतु हें.

(१५) यथार्थ भावनापूर्वक जो दुःखनिवारक सामग्रीका सभा करके विचार किया जाय तो यथेच्छा परिणाम प्राप्त कर सकते हें, एकसे यह काम नहीं होता. १ पदार्थ-केमिस्ट्री-डाक्टरी-कला-यंत्र-व्यापार-गृह-राज्य-संप-विद्या, ओर सदाचार-नीति-धर्मभावना-शौर्य-स्वत्व-स्वधर्माभिमान. ओर स्वदेशाभिमान यथाशक्ति स्त्रि ओर संतानोंको अवश्य सिखाना चाहिये. संक्षेपमें जो कुछ करना चाहते हो सो कन्याओं [स्त्रियों] को सिखा देना चाहिये. २ कानूनकी नावाकिफी उपयोगी नहीं मानी जाती हे, इसलिये अत्युपयोगी राज्यनीति [कानून] भी उनको सिखाना जरूरी हे. ३ परभाषामें जितनी विद्या-हुनर-कला-हें, वे स्वदेशभाषामें करके विद्यार्थिओंको सिखाये जावें तो बहुत जल

दी सीख सकते हैं. ४ परभाषाभी सीखना और सिखाना चाहिये; परंतु " जिसकी भाषा उसका धर्म " यह नियम याद रखके योग्य प्रकारसे उपयोग लेना चाहिये. तद्वत् जब विद्या-कला-सीखनेकेलिये परखंडोंमें जावें तब भी यह नियम ध्यानसे बाहिर न जाना चाहिये. ५ जिनके विना जीवन न होसके वेसे पदार्थों [अनाज वगेरे] पर कर न होना और विशेषतः अनुपयोगी-मोज शोकवाले-हानीकारक [शराब-कुव्यय-वगेरे] पर कर विशेष होना, प्रजाको लाभदायक हैं. ६ बुद्धिको जब तब क्षीण करनेवाले और प्रफुल्लित न होने देनेवाले कारणोंके अभाव करनेमें योग्य उपाय होने चाहिये. ७ राजा प्रजाके प्रतिकूल कभीभी नहीं वर्तना चाहिये, किंतु उभयको जो लाभप्रद उपाय हों वे सोचके प्रसिद्ध करने चाहिये. ८ एक दूसरेके लाभके विरुद्ध वर्तन अघटित हे. ९ अपना ओर परका दुःखसुख समान समझके व्यवहार करना उत्तम हे. १० वर्तमानमें विशेष संतान पेदा करना दुःखका हेतु हे. ११ जब तब सेनामें अमुक वर्षतक नोकरी न करे, किंवा स्त्री संतानके पालने योग्य हुनर-धंधा वा विद्या संपादन न करे, वहांतक पुरुषका विवाह न हो; किंतु स्वयं कमाके विवाह करना उत्तम प्रकार हे. बनसके तो यह वात कानुनमें पास कराना चाहिये. १२ वीर्यका सृष्टिनियमविरुद्ध वा कोइ प्रकारसेभी व्यर्थ व्यय न हो, एसे उपायोंपर ध्यान देना उचित हे. १३ यदि आर्य राजा ओर राज्य (प्रजा) की मिलकीयतका प्रसिद्ध प्रकारसे विभाग रहे तो, प्रजाका धन अन्यथा (व्यर्थ-मोज शोकमें) बरबाद न होसके, राज्य करजदार न हो, और प्रजाको आपत्कालमेंभी दुःख न हो.

(१६) एक कोळी तकके छोकरी छोकरोंकोभी दिनको वा रातको विद्या पढाना चाहिये. बालकको उनके कुदरती तंतु ओर शौककी परीक्षा करके तदनुसार हुनर-विद्या वगेरे सिखाना उचित हे. अन्यथा शिक्षण निरूपयोगी जेसा हे. ओरभी एसी प्राइवेट स्कूलें खोली जांय वा नियत समयपर एसा शिक्षण हो के, जिससे ८ वर्षसे लेके २५ वर्षकी उमर तकके दरमियान, मगज स्वतंत्र बने-स्वयं विचार निकालने ओर वर्तनेकेलिये शक्तिमान हो. तद्वत् धर्म, एकता, शिक्षक पाठशाला ओर शक्ति-उत्साह-उद्यमवर्धक-आरोग्यता रक्षक कसरत शालाओंका विस्तार करना उचित हे.

उपदेशक स्कूल खोलके उपदेशक तैयार किये जाके उपदेशार्थ देश देशांतरमें भेजे जांय तो उत्तम फल होसकता हे.

(शंका) द्रव्यके विना कोइभी काम नहीं होता, अतः भूखे देशकेलिये तुम्हारा उपदेश व्यर्थ हे. [स.] द्रव्य एकत्र करनेके, देशप्रति भिन्न भिन्न उपाय हें.-यथा आर्यावर्त्तमें आर्य कोममें कुव्यय-निष्फल व्यय बहुत हे*, सभा करके उसको बंद करे ओर कुरुढियोंको* निकाल दें तो, किसीको दुःख न होवे एसी प्रकारसे, बहुत कुछ द्रव्य एकत्र होसकता हे. परंतु जहां द्रव्य विना जो कार्य होसकते हें [बाललग्न बंद करना, जरुरत कम कर देना इ.] वेभी नहीं करते, उस देशकी दुर्गति क्यों न हो ?

(१७) नीति-सदाचारके हेतु'धर्म'को प्रजा, ओर'विद्या'को राजा चलाना चाहता हे, इन दोनों [धर्मादि]को दंडकी अपेक्षा हे.

---

* प्रसिद्ध ग्रंथ 'व्यवहारदर्शन' ओर 'भिक्षुकनिबंध' देखो.

(१८) अपनी कोमकोही उन्नति वास्ते कोशिश करना-सिर तक देना, यह किसी एकदेशी वा द्वेषीका मत है, परंतु एसा होनेसेभी सत्पुरुषोंको संतोष नहीं होता; क्योंकि वे सत्यके घातको सहन नहीं करसकते; इस लिये जो सद्धर्म हे ओर जो रीति नीति सर्व मनुष्योंको देसकालप्रति सुखप्रद हें-वे, वा जिस कोममें वेसे विशेष हों उस कोमकी उन्नति करनेमें सबको कोशिश करना चाहिये. यथा प्राचीन आर्य कोमके धर्म-नीति-रीति*. यदि उसमें वर्त्तमानदृष्टिसे कोइ हानीकारक रीति हो तो उसको त्याग करनेमें ओर अन्य कोमोंमें कोइ उत्तम प्रकार होतो उसके ग्रहण करनेमें आग्रह रखना उचित हे; इस-

* परिशिष्ट पृष्ट ३४९ में शंका समाधान ओर इंग्रेजी नोट देखो. तथा—

* Soil of Ancient India, cradle of humanity, hail ! hail, venerable and efficient nurse whom centuries of brutal invasions have not yet buried under the dust of oblivion. Hail ! father-land of faith, of love, of poetry and of science ! May we hail a revival of thy Past in our Western future !

M. Louis Jagolliot.

(अर्थ) वृद्ध भरतखंडभूमि ! पुरुषत्वका पालणा ! तुझे वंदन [नमस्कार] हे. सेंकडों वर्षके निर्दय उपद्रवभी जिसको विस्मरणकी धूलमें नहीं गाड सके हें, वेसी पूज्य ओर समर्थ माता ! प्रणाम ! श्रद्धा वा सत्यकी, प्रेमकी, कविताकी, ओर शास्त्रकी पितृभूमि, तुझको नमता हूं, तेरे भूत कालकी खूबी, हमारे पाश्चिम (युरोप) के भविष्यमें सजीवन हो, एसा मांगते हें ! !

लिये आर्य वगेरे कोमोंको तन-धन-मनसे इस उत्तम पक्ष मनाने ओर चलानेमें उद्यत होना चाहिये.

(१९) जब सुखाभास मात्रसे दुःख उठाना पडता हे तब ठगी—मंत्र जंत्र-जफर-कीमिया-रमल-केरल-ज्योतिष-फलादेश-प्रारब्धमात्रका आधार-छल-असत्य-कपट-मिथ्या ग्रंथोंकी प्रवृत्ति-इंद्रजाल-भूत-पीर-पेगंबर-अवतार-जडसेवन-भीख मांगना-अनुचित राग रंग-खेल तमाशे-नशे-दुर्व्यसन-कुव्यय-कुरुढी-कुश्रद्धा-स्वार्थदृष्टि-अविद्या-असंभूति सेवन—इत्यादि असदाचारादि करना पडता हे [जेसा के वर्त्तमानमें हे.] इस प्रकार जब अत्यंत भूखे मरने लगते हैं तब उन्नतिके चक्रमें आते हैं क्योंकि फूल खिलता हे नाश होने वास्ते, ओर दुःख हुये विना संप उन्नाति के खयाल पेदा होना कठिन हे, जरूरत आप सिखा लेती हे.

(२०) जो किसीको जीवतेही गम्यागम्यरूप "यथार्थ सत्य" पर पहोंचने, वा राग, द्वेष, हर्ष शोक, रहित हुये 'निष्काम उत्तम प्रवृत्ति ओर परोपकार' [अपने अंग-मनुष्यमात्र का श्रेय] करनेकी इच्छा हो तो, वीर्य-बुद्धि-पदार्थविद्या-सदाचार-निष्कामता [कर्मफल त्याग] संपादन करके, विवेक का खड्ग ओर वैराग्य [अन्य इषणाका त्याग] का बकतर धारण कर, मन निरोधका अभ्यासी हुवा, निवृत्तिपूर्वक सद्गुरु [विद्वान-बुद्धिमान-सदाचारी-जितेंद्रिय-निस्पृहि-सत्यवक्ता-वेराग्यवान-विवेकी-दयालु-परोपकारी-शिष्यकी इच्छा पूर्ण करनेयोग्य-ओर यथार्थ अनुभवी] को, कितनेक काल श्रद्धायुक्त सेवन करना चाहिये. तब पूर्णकाम हुवा सर्वको अपना अंग समझेगा, परकी उन्नातिही अपनी उन्नाति हे, एसा ध्यानमें आजायगा, ओर उत्तम प्रवृत्तिके खड्गद्वारा

परदुःखभंजनमें प्रवत्त होगा.

(२१) किसी व्यक्तिका नाम लेके दोष कथन-खंडन-निंदा करना उच्च मार्ग नहीं है-किसीके मन-लागणीको दुःखाना-मूर्खाइ, पाप है. जिस सामग्रीसे दोष जाय उसका प्रतिपादन, ओर जिससे दोषोंकी वृद्धि हो उसका खंडन-निषेध करना नादुरस्त नहीं. जिसके त्याग ग्रहण करनेमें श्रोता स्वतंत्र हो उस विषयके [यथा बाललग्न-ब्रह्मचर्य-सत्य] दूषण भूषण स्पष्ट कहना ठीक है, सर्वमान्यका मंडन ओर सर्वअमान्यका खंडन करनेमें हानी नहीं है. जहां कहीं होमियोपेथिकी तरह रोग बढाके शांति करनेकी आवश्यकता हो[1] वहां वेसा करें; परंतु सभ्यता-नीति-हित-प्रेम-ओर सत्यका त्याग नहीं करना चाहिये. इत्यादि प्रकारसे यथा देश काल योग्य प्रकारसे उपदेश होना चाहिये.

(२२) वस्तीकी वृद्धि होनेसे आर्यकोमकोभी देश बदलाना ओर परसंसर्ग होनेसे धर्म बदलना पडेगा, इसलिये आर्यधर्मफीलोसोफी सिखाना चाहिये, वा तो स्वत्व ओर स्वदेशाभिमान पेदा कराना योग्य है. इस प्रकार अन्य देशवासियोंको ध्यान देना चाहिये. इस प्रसंगपर यह बात याद रखने जेसी है के, धर्म-पंथ [मजहब-रीलीज्यन] ओर मतके लक्षणमें अंतर है. परंतु व्यवहार-नीति-धर्म समीप हैं.

(२३) सुवर्ण-चांदि वा प्रबंधमात्रकी अपेक्षा न रहे ओर प्रजा यथेच्छा जिंदगी भोगे, एसा मार्ग कोनसा है? सबमें सद्धर्मकी भावना पेदा होजाना. वा परस्परके दुःख सुख समानताकी समझण हुये तदनुसार वर्तन.-किसीके तन-

१ यथा अद्वैतादर्श ग्रंथका पूर्वपक्षी भाग होमियोपेथिक आरंभ जेसा प्रयोग है. उत्तरपक्ष फलवत्.

न-धनका न दुःखानका रूढा डालना-असत्य रहित सत्य
र्वक संप होना-इ.

जो एसा होजावे तो एक पंत्र [पालनपत्र-व्यवहारपत्र-
यार्ड] द्वारा सर्व व्यवहार उत्तम प्रकारसे चल सकता हे.
रंतु वर्तमानविषे यह वात किसी देशकोभी नसीब नहीं हे,
तः एसे असंभव वा दुष्प्राप्त मनके लड्डुको शून्यसे आ-
त्र करते हें.

(२४) जिसका उपादान बिगडा [रजवीर्य निर्बल-माता
ता विद्याहीन] हो, जो द्रव्यहीन-विषयी-रोगी-आलसी-कायर
ौर भूखा हो वोह धर्मभावना, धर्माभिमान, स्वत्व वा मानका
त्र होसकता हे? धर्मात्मा तत्ववेत्ता बन सकता हे? निष्काम
ा तत्वविद्याका अधिकारी होसकता हे? कभी नहीं. यथा वर्त्त
ानमें आर्यावर्त्त देश हे! एसेको तो अभी शरीर-वीर्य-बुद्धि
विद्या-हुनर-धन ओर संप बलकी प्राप्तिके लिये कोशिश कर
ी चाहिये.-ब्रह्मचर्य ओर गृहाश्रम सुधारनाही योग्य हे. अन्य-
ा अपने पूर्वजोंके उत्तम मार्ग ओर उन्नतिको नहीं पासकता.

(२५) वर्तमानकाल बीज रोपने-संस्कार डालनेका हे,
ो पचास वर्षमें झाड होके फल फूल लगेंगे, उसको संतान
ाके तृप्त होगी-सुख पावेगी; एसी लंबी-गंभीर दृष्टि रखी
ाय तो कुछ कर सकते हो ओर करोगे तो कुछ हो सकेगा.
यर्थ बकवाद करके कालक्षेप करना मिथ्यालाप हे. आप ला
क हुयेविना परके सुख ओर फर्जको दोषरूप वा द्वेषदृष्टिसे
खना एक प्रकारकी भूल वा हलकाइ हे.

(२६) जिस वातकी इच्छा हो उसकी प्राप्तिके लायक
थम अपनेको बनाना चाहिये, तब मिलसकेगी. अन्यथा तृष्णा
रना व्यर्थ हे

(२७) अत्यंत अज्ञ और तज्ञ उपदेशके योग्य नहीं; विचले वर्गके लिये यथादेशकाल स्थिति-अधिकार उपदेश कर्तव्य है. [यथा कहीं एक विषयका मंडन, कहीं उससे उपेक्षा वा खंडन करना पडता है] अन्यथा उत्तम फल नहीं आता. बुद्धिमानको स्वयं विचारणीय है.

(२८) उत्तम पायेवाला उत्तम मकान पुराना होनेसे छिद्रवाला होगया हो तो, उसकी मरमत करना चाहिये, पूर्ण सामग्री नहीं मिले वहां तक उसको नहीं ढाना चाहिये; नहीं तो हानी-दुःख होना संभव है.—इसके उदाहरणमें प्राचीन और नवीन आर्यधर्म-व्यवहार-नीति वगेरेको समक्षमें रखते हैं.

(२९) अनुचित-असंभव भावना-श्रद्धा-विश्वास उडानेसे अत्युपयोगी उचितकाभी अभाव होजाता है, और उचितकी अति अनुचितपर लाती है, अतः 'योग्य-संभव भावनादि' पेदा करनेके लिये विचार पूर्वक सयुक्त उपाय लेना चाहिये; क्योंकि अज्ञोंको अन्य आश्रय नहीं मिलता.

(३०) अनुद्यमी-अनुपदेशक जंगलमें रहणे चाहिये; तो भूख उनको उद्यमी करे. भीख मंगोंको उपदेशक करना इस कालमें पाप है. भीख मांगे विना निष्काम उपदेश हो तो उत्तम फल होसकता है. अति फीलोसोफर उपदेशक बन्ने योग्य नहीं रहता.

(३१) देशहित-देशोन्नति क्या? इस विषें अनेक पक्ष हैं. हमारी दृष्टिमें सर्वको उनकी योग्यता अनुसार "हककी समानता" देशश्रेयका लक्षण है. इसका विस्तार*

* महात्माने बहुत प्रकारसे समझायाथा, परंतु कितनेक कारणसे नहीं लिखसका.

ना लिखके इतनाही जनाना बस है के, यथाशक्ति-यथाक्रमे इस दरजेपर पहोंचना योग्य है. यथा आर्यप्रजाको अभी बडी बडी बातें-मनोरथ छोडके केवल इतनी बातोंपरही ध्यान देना बस हैः—स्त्रिशिक्षा, ब्रह्मचर्य, कसरत, सतु, उत्तम शिक्षण, विद्या, हुनर, कुरुढीअभाव, भिक्षावृत्तिनिषेध, हिम्मत, उद्यम.—एसा होनेसे संप वगेरे उपयोगी-सुखकारक विषय सीखजावेंगे. अयोग्य उदारता-अनुचित शर्म और कुदयाका त्याग करना चाहिये.

(३२) संसार सुधारा-देशहित-श्रेयकेलिये उपदेश बहुत करने लग गये हैं; परंतु केसे करना, एसा अभ्यास वा प्रचार कोइ नहीं करता. श्रोताजन जानते ओर समझते हों तोभी कुछ नहीं करते. जो किसीकी सहायता विना स्वयं करसकें सो वातभी नहीं करते हैं.-यथा निषिद्ध भिक्षादान न देना, बाललग्न न करना, २० वर्षके पहिले पुत्रको न विवाहने देना, जडपूजाका नकामा खर्च न करना, अनुचित मोज शोकमें काल द्रव्य न गुमाना, इत्यादि. एसे कायर देशभक्त नहीं होसकते.

इसलिये अशक्त-आर्यावर्त्तवासियोंको चाहिये कि वर्त्तमानमें जितनी ओर जितने प्रकारकी सभा हैं, उनमेंसे योग्य प्रतिनिधि चूटके एक सभा बनावें इस सभामें हरेक जाति-धर्म-व्यापार वगेरे सभावाले प्रतिनिधि होसकेंगे. इस नूतन सभाका अन्य कुछ काम न होना चाहिये; केवल सर्वमान्य विचार करके आर्यावर्त्तमें प्रकट करें. ओर उनके चलानेका प्रकारभी प्रदर्शित करें. यथा स्त्रिओंका शिक्षण ओर उसका प्रकार, स्त्रियोंका साधु ओर मंदिरोंमें न जाना, कितनेक मिलके स्कूलके विद्यार्थियोंको एक घंटे

तक व्यवहारनीतिका शिक्षण दिया करें, उनको स्वतंत्र विचार करनेकी शैली पर लावें, फिलोसोफीके रूल सिखावें, प्राइवेट स्कूल ओर कसरतशाला खोलना. इत्यादि प्रकारके विचार ओर प्रचारसे भविष्यमें अच्छा लाभ होगा.

(३३) एसा मत समझो के—कोइ देवता, दूत, योगी, पेगंबर, ईश्वरका लडका वा अवतार आके तुम्हारे दुःख काट देगा, वा मंत्र जंत्रसे कुछ होजायगा, अगर ईश्वर अपराध क्षमा करके सुख देगा. किंतु जो प्रजा, पुरुषार्थ करके क्रमशः उत्तम संस्कारी होजाती हे तो, कोइ एक चमत्कारी-शूर वीर-विद्वान्-बुद्धिमान् सहायभूत होपडता हे, एसा ज्ञातव्य हे.

(३४) हरेक विषयको श्वेत ओर श्याम दो बाजु होती हें. यथा नाना कोमका एक देशमें आके आबाद होना अनिष्ट वा इष्टभी परिणाम निकालताहे, वा सत्ता हुये द्रव्य मिलनेपर मोज शौक ओर आलस्य, पराधीनता-उभय परिणाम निकलतेहें, अतः देश, काल, वस्तु, स्थिति विचारके त्याग ग्रहण कर्त्तव्य हे.

(३५) राज्यकी रक्षाके विना उन्नति होना कष्टसाध्य-कालसाध्य हे, अतः प्रजाको चाहिये के राजाके कानून [राज्यनीति-आज्ञा] के प्रतिकूल नहीं किंतु अनुकूल रहना चाहिये. यथा आर्यावर्त्तवासी अपने सत्ताधारी केसरेहिंदकी सेवा-ताबेदारी वफादारीके साथ करते हें, तबही उसकी छायामें सुख शांतिसे रहते हें, अपने दोष ओर अपूर्णता जानने लगे हें.-अपने पूर्वजोंके गुप्त धनका खजाना ओर अपनी उन्नति करनेका अवसर पायाहे.

३२, ३३ जब तक उत्तम उपदेशक पेदा न होसकें वहांतक जाति-मेले-त्योहार-मंडली वगेरे प्रसंगपर व्याख्यान देना. उक्त उपयोगी विषयोंके छोटे छोटे ग्रंथ बनाके ग्राम २ ओर घर २ में मुफ्त देना किंवा

पूर्वोक्त सूचना [उपदेश–हितदर्शक वाक्य] सर्व मनुष्यों वास्ते जानना (समझ लेना) योग्य हे.–जहां जेसा जिस वास्ते जितना उचित हो. वहां वेसा उस वास्ते उतना लेना–बताना–लगालेना चाहिये. मनुष्यमात्र अपनी मरजीके स्वतंत्र मालिक हैं, अतः वे मानें वा न मानें. स्वीकारें वा न स्वीकारें, परंतु आप जानके अन्योंको सुझाना–समझाना तो चाहिये. इति.

इतना कहके चुपहोगये-यहांतक कि, मैंने अन्य कुछ प्रश्न किया तो उसंकाभी उत्तर नहीं दिया. पश्चात् में उनका आज्ञाकारी शिष्य उनसे आज्ञा लेकर चलदिया.

पूर्वोक्त 'नोट' संबंधी विचारमें उक्त निश्चय ओर हितोपदेशने विलक्षण रंगत दरसाई-इस दरजेपर विचार को लेआइः—

" १–उस गम्यागम्य [चिद् जडका यथार्थ स्वरुप] का भेद जिसने पाया, (यथावत् साक्षात् किया,) वोह वहां ही फंसाया, पार न पाया, अचरजमें घुमाया, कुछ कहना बन न आया.–जो कुछ कहानी गाई तो, मुखपर खाई (अपूर्ण रहने वा खंडन योग्य होनेसे लज्जित हुवा). अंतमें थकित होके गुपचुप होगया. अतः उसके योग्य वे ग्रंथ नहीं होंगे.

बकवादसे उपेक्षा करके चुपचाप यथोचित जितना बने उतना कुछ करना–जिस तिसको उत्तम–योग्य संस्कार डालना उत्तम पक्ष हे. ओर जो माता पिता, गुरु [वा संबंधी] ही उत्तम उपदेशक हों तो इससे श्रेष्ट अन्य मार्ग नहीं. थोडेही कालमें हिंदुस्तान, आर्यावर्त्त बनजाय.

(७) इस सिवाय 'भारत दुर्दशा' ओर 'भारत चिकित्सा' ग्रंथ देखोगे तो आर्यावर्त्तके ७० रोग ओर उनके १०१ उपाय जान सकोगे.

२–जो अज्ञ हें वा जो अपने रोने [गोचर स्थूल विषयकी धामधूम–हायहूय इत्यादि] कोही नहीं जानते, उन्होंने मेरा रोना क्या समझना हे? अतएव उनके योग्यभी नहीं.

३–जिसको सत्यासत्यके निर्णय पूर्वक स्वज्ञातव्य–कर्तव्य,माप्तव्यकी इच्छा नहीं, एसे विषयी–अभिमानी तो वांचना कहां, सुनेंगेभी नहीं; इसलिये उनके कामकेभी नहीं.

४–जो विश्वासी, परधीके आधीन, दुराग्रही वा मन माना हांकनेवाले हें–वे तो हाथमें लेना कहां, उनका नाम श्रवणभी पाप समझेंगे; क्योंकि एसे ग्रंथोंके नाम श्रवणसे भी उन स्वधर्महटीलोंको मायश्चित्त (किफारा) करना पडता हे. इतनाही नहीं किंतु वे, ग्रंथकारको नास्तिक, चार्वाक समान पद्वी देके ग्रंथोंका तिरस्कार करेंगे. अतएव उनको भी उपयोगी नहीं.

५–जो अधूरे* हें वे, बडबड करने ओर अधाधुंध धज्जी उधेडने वा तानाबाना करनेमेंही पूरे हें, उनसे मेरा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता.

६–जो स्वमत पंथका अनुयायीपना करनेवाले हें उनकी–चर्चा करनाही व्यर्थ हे.

७–जीर्ण संस्कारवाले अभावके पास खडे हें. नवीन प्रजा–इंग्रेजीखां–को इसकी आवश्यकता नहीं, किंवा अपने घमंडमें उनको तुच्छ दृष्टिसे देखेंगे.

एतत्दृष्टि सर्व जड वा चेतन वा उभयवादि किंवा शून्य, क्षणिक, द्वैत, अद्वैतवादिमात्र ओर उनके अनुयायी को उपयोगी नहीं होंगे; इसलिये ग्रंथ किस काम आवेंगे-निष्फल होंगे." परंतु धर्म–व्यवहार–राज्य–योग–ज्ञान-कुश-

---

* शुष्क वेदांती वा मेरे विश्वासी भाई वा अन्य कोइ भाई.

* उक्त वृद्ध महात्मानेभी कुछ न कुछ समझके कहा होगा, जिसका मुख्य कारण में नहीं जान सकता हूं; तो भी दो कारण मेरे समझमें आते हैं:—

१-(अ.) जो कुछ नाना धर्म-पंथ-दीन-मजहब चल रहे हैं-ओर जिनके सबबसे परस्पर द्वेष वा मारामार-घमसान होरहा है वे-(धर्मपंथ), व्यवहार-रूढी वा कल्पना, संस्कारमात्र हैं-नकि उन्नति वा मनुष्यजन्म सफलकारी-यह बात ' नोट 'के विवेचन (उक्त ग्रंथों) से सहज जाननेमें आसकती हे. अंतः उनमे रुचि नहो ओर सुधारा वधारा करके व्यवहाररुपमें उनको सुधारें, कुरुढी-हठधर्मीसे किनारा करें;-क्योंकि-उक्त धर्मपंथादिका मूल-जीव, ईश्वर, प्रकृति, बंध, मोक्ष ओर मोक्ष साधनपर हे, ओर इन (जीवादि) का विवेचन उक्त ग्रंथोंमे, इसरुपसे हे कि, जिसप्रकार-रुपमें लोकप्रिय वा मान्य होके उसकी शाखा-नाना धर्म फेल रहे हैं-उस असमीचीन प्रकारकी अयोग्यता दरस आवे,-कल्पित नीव (जड) को कल्पित मानें; अतः किसीकोभी उपयोगी होने योग्य हैं; ओर परंपरासे बहुतोंको लाभप्रद होसकें. १

[ब] तथाहि जो मुख्य वात हे-जिसके वास्ते नाना धर्म पंथकी गडबड हे-सोतो मनकी शुद्धता-एकाग्रता-विवेकादि पूर्वक वहां गयेविना नहीं मिलती-प्राप्त नहीं होसकती; (वा अगम्य हे वा संशय रहित नहीं वा नहीं हे) तो, फेर पूर्वोक्त मतमतांतरके दुःखद दोष क्यों न देखाये जावें? प्राचीन फिलोसोफरों (तत्ववेत्ता) करके प्रतिपादित, संपसूचक, उन्नतिकारक सर्व मनुष्योंके मान्य, मनुष्यमात्र [जीवमात्र] में

स्वभावतः विद्यमान जो धर्म,-×जिसकेविना किसीका कोई भी कार्य नहीं चलता, और उस तत्व (गम्यागम्य) को पहोंचने वास्ते आद्यसीढी हे, तथा उसको यथायोग्य प्राप्त न करने-उपयोग न लेनेसे मनुष्यके व्यवहार परमार्थ [उभय] की हानी होती हे,-उसको, समझके यथाशक्ति पूर्णता परलावें, और अपनेको संभालें; एसा उपाय क्यों न लिया जावे ? २

उक्त दोनों वातें ग्रंथोंमें हें, अतएव उपयोगी होने संभव हें.

२-माना कि, जो उपर ७ वर्गके मनुष्यके लिये अनुपयोगी होना जनाया हे, उनको निकालके, शेष मनुष्य कोन रहा ? थोडे मनुष्य होंगे; तोभी, मनको यूं संतोष होता हे कि, कदाचित् विद्याके संस्कारी, संदिग्ध, सत्यके जिज्ञासु-किंवा नानाधर्मपंथ वा उनके मुखियोंसे दुःख पाये हुये, मेरी निष्फलताजन्य शरमको जला डालेंगे. " जिन खोजा तिन पाया " " करे सो पावे " प्रसिद्ध कहावतके संस्कार भी क्या काम न करेंगे ?-संस्कारोंकी अधिक महिमा हे.-जबतब फल देवेंगे.

तदुपरांत गुह्य कारण औरभी होंगे. निदान कुछभी हों; -परंतु ग्रंथ उद्देशकी सर्वांशमें तो, निष्फलता नहीं हे.

× धृति (आपत्ति कालमेंभी धैर्य), क्षमा (जिससे अजाने अपना अपराध वन गया हो उसको माफ करना), दम (मनका निग्रह), अस्तेय (अधिकार विना अनीतिसे किसीका तन मन धन अपने अधिकारमें न लेना), शौच (मन, वाणी, शरीर, वस्त्र, मकानादिकी शुद्धि रखना), इंद्रिय निग्रह, (वीर्य बुद्धि तथा विद्यावृद्धि करना,) सत्य (जेसा देखे सुने और मनमें जाने वेसाही कहना वर्तना), क्रोध नहीं करना. शंका समाधान सहित इनका विशेष विस्तार ग्रंथोंमें प्रसंगपर किया गया हे.

इस प्रकार उद्देशकी उत्पत्ति ओर उद्देश दृढ होनेपर उन 'नोटों' को ग्रंथके रुपमें बनाके प्रसिद्ध होनेकी जिज्ञासासे श्रम देनेके लिये उद्यस्त हुवा.

विदित हो कि, इस पत्रका (जो कि भूमिकारुप नहीं, तोभी, भूमिका समान उक्त सर्व ग्रंथोंके साथ हे) जेसा कि ' इष्ट–परीक्षक ' के साथ संबंध हे, वेसा ग्रंथके साथ नहीं हे, किंतु "इस पत्रको नहीं वांचा हो ओर ग्रंथ मात्रकोही बांचा हो, " एसी दृष्टि रखके कोइभी–(निष्पक्ष-पात, सत्पुरुष स्वीकार करें एसी, लोक मान्य), उक्त ग्रंथों-की टीका–निंदा–खंडन वा स्वीकार वा अनादर करो, यह आशय हे.

जिस महाशयको इस 'विज्ञाप्ति पत्र' करके श्रम उठाना पडे उनसे, श्रम देनेके बदलेमें उलटा क्षमा मांगता हूं ओर (दोहा. "–विषयारत, लोभी, हठी, अज्ञ, स्वार्थी, दुष्ट; । निंदक, गरवी, दंभी, शठ, सीख न माने इष्ट " ॥ १ ॥ एसे मनुष्योंसे उपराम हुये), उभय मंडलसे आशा रखता हूं कि-जो अनजाने अपराध बनागया हो तो, अपने महत्वपर ध्यान देंगे. क्योंकि दोहा–"जेसी जाकी बुद्धि हे वेसा कहे बनाय; वाको बुरो न मानिये लेन कहांसे जाय " ॥२॥ अतः सर्व आर्य वा उनसे अन्य–तमाम कोमोंके भूत वर्त्तमान ओर भ-विष्य महाशयोंको सविनय नमस्कार करके पत्रको समाप्त करताहूं. इति.

भवदीय

एक संन्यासी.

शुद्धिपत्र.

पृष्ठ	लीटी	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	भूणष	भूषण
२	२४	यह मत	जीवन मत
६	१७	युक्ति	युक्ति सहित
८	१	आवगे	आवेंगे
११	२५	होगी	होगी अनुमिति उसका विषय होजानेसे वोह अनुमानसे परही रहा
१२	२	है	है"
१४	७	विना	विना४
	२१	इत्यादि	इत्यादि.
१९	१२	मन,	मन, अनुमिति
२०	२३	(वीर्य	वीर्य
	२४	) सत्य	सत्य
२९	१२	हे,	हैं,
२७	१६	माग	मार्ग
"	१७	बीज	,उत्तम रुढी ओर प्राचीन सर्वमान्य सामान्य धर्मके बीज
	२२	परके	परके धर्म—
३६	( )	३६, ३७, ३८, ३९, ४०	३० ३१, ३२, ३३, ३४

पृष्ठ. विषय.

६२ लक्षणा, जीववाद, अपरोक्षत्व. दर्शन २.

१३१ "जीवविषय."

१८३ अज्ञान स्वरूप दर्शन १५

पृष्ठ. विषय.

२०८ अध्यारोप दर्शन १६

२३२ सत्ता दर्शन १९

२३४ विवर्त्त दर्शन २०

अजात दर्शन २३

३६० मतप्रचार दर्शन २६.

३६७ समाधि दर्शन २७.

ॐ

तर्कको खेल. शोधकको रेल.

अद्वैत परीक्षा.

अद्वैत दरपन.

मूरखको बेल. अज्ञको मेल.

सं. १९५६.

ओ३म्.

अद्वैतादर्श.

प्रस्तावना.

उपगीति.

येषामरिहंतॄणां, वेदादि परावरं चेष्टं ।
प्रणमे तानेक मति, मम मुखरत्वं क्षमंतां ते ॥१॥

कवित.

इष्ट[1] हे[2] परापर[3] वेदादि[4] अरिहंतनको[5] नमूं[6] रीतसारी[7] क्षमें भनत अजान[8] हे;
अद्वैतादर्शसेती[9] होत हे निदान[10] ताको, तेसो यह दर्पन हित दर्शन सुजान हे;
जो सबको खंडन हो खंडनको खंडनना, जा मंडन खंडन ना मंडनेकमान हे,
अज्ञान परिपाटीसे कब हू आरोप होय, ताको हो लोप पहिले गोप एसो तान हे.

॥ २ ॥

१॥ येषां अरिहंतॄणां परावरं च वेदादि इष्टं
तान् एक मतिः प्रणमे, ते मम मुखरत्वं क्षमंतां ॥१॥

कवितके पृथम पादमें जो मंगलाचरण हे उसका सार यह हे कि, में अजान जो कुछ (यह अद्वैतादर्श ग्रंथ) लिखना चाहता हूं (लिखा हे) उस लेखमें यदि कोई दोष होवे तो, अरिहंत–महात्मा क्षमा करेंगे–उन परापर ओर यथार्थ ज्ञान किंवा वेदादि–हरकोई मत पंथके यथार्थ बोधक ग्रंथ वा उनके वेसे भाग तथा तिन–परापरादिके अनुभवी (ज्ञाता) अरिहंत–महात्माओंके कटाक्षका पात्र नहीं ठेरूं. यही रहस्य संस्कृत छंदका हे.

१ पर (अगम्य–ब्रह्म–चेतन–पुरुष–शिव–विष्णु–गणेश–ईश्वर–ज्ञानस्वरुप–कूटस्थ–जिसके परकोई नहीं–पर विनाका अपर–अपरिछिन्न–असीम–पूर्ण–आत्मा–अल्लाह–गॉड–रुह–अजद–ईल–जात–स्पिरिट–हुरमजद.

संक्षेपमें अर्थ यह हे:—*गमागम्य सिद्धांत (वा गम्य—अगम्य) ओर यथार्थ ज्ञानादि (वा वेदादि हरएक सत् ग्रंथ) जिनको(का) इष्ट हे, ओर अजान पुरुष कुछ बोलता—कहता—लिखता हे उसपर दोष दृष्टि नहीं रखके क्षमा दृष्टि रखते हें, ऐसे अरिहंतन (निर्दोष महात्मा पुरुषों)को भली प्रकार नमस्कार करता हूं. किंवा वेसोंको नमना उत्तमाचार (शिष्टाचार) हे. किंवा

---

२ अपर (गम्य—माया—जड—प्रकृति—अजा—योनी—शक्ति—सक्रिय—परिणामी-परिछिन्न कुदरत-नेचर-अचेतन-अजीव-द्रव्यगुण-तत्वसमूह-त्रिगुणात्मक).

३ कुदरती-सृष्टिनियमज्ञान. अबाध्य-यथार्थ ज्ञान.

४ उपयोग-फल—मोक्ष--परमपद सदाचार--नीति—प्रेम-दया—निष्कामता वगेरे.

५ संशय, विपरीत भावना, असंभावना रहित यथावत उक्त परादिको जाने-अनभवनेवाला, दुर्गुण रहित-जितेंद्रिय-निर्दोष-अरिवर्ग, मल, विक्षेप ओर अज्ञानादि दोष रहित--महात्मा पुरुष.

६ नमस्कार-सत्कार-आदर-मान्यकरना-स्वीकारना.

७ परापर, यथार्थ ज्ञान-इनका स्वरुप-इनकी महिमा, अकथ (अवर्णीय) हे-उसके वर्णन करनेमें अशक्य हूं; अतः उनके स्वरुप जाने वाले-अनुभवनेवाले महात्माओंको ही नमस्कार करने योग्य होऊं, तो भी अहो भाग्य--यही अच्छा समझता हूं.

८ जीव मात्र, सर्वज्ञ वा सर्वथा अज्ञ नहीं. अतःविषय मात्रके संपूर्ण यथावत, यथार्थ ज्ञान अप्राप्तिसे अजान हे.--अज्ञ हे.

* हरकोई विषय (द्रव्य-गुण-शब्द-स्पर्श-रंग-रस-गंध-आकर्षणादि) सर्वथा गम्य नहीं हे-संपूर्ण प्रकारसे विषय नहीं होता. तद्वत् सर्वथा अगम्य नहीं हे. एसेही परापर (मूल प्रकृति ओर पुरुष) हें. जो सर्वथा अगम्य हें तो, अगम्य पदका प्रयोगही नहीं बनता. जो सर्वथा गम्य हों तो, मतभेद नहीं होते.

उक्त इष्ट वाले क्षमावान ओर सदाचारी महात्माओंको नमता हूं. किंवा जो उक्त इष्ट वाले ओर अजानोंपर क्षमा रखना, यह उत्तम रीति धारण करने वाले हें, तिन अरि हंतनको नमता हूं. इ. जोकि परापरादि उनका इष्ट हे, अतः अरिहंतनको नमस्कार करनेसे परापरादि--तीनोंको भी *नमस्कार हो गया, यह स्पष्ट हे. इस लिये उनको ही प्रणाम किया. निदान शिष्टाचार हे ओर-उनकी *क्षमा दृष्टि रहे, एसा जानके उनको नमता हूं.

किंवा--"यद्यपि में ईरानी, किरानी, कुरानी, पुराणी †स्वीडनबोर्ग, नवीन †पुराणी वगेरे जेसा वा उनके रहबरों जैसा वहमी वा चलता पुरजा नहीं हूं, तथापि मेंने धर्म पंथों वा मतोंसे क्या सीखा ओर वोह कितने अंशपर हे--तम रुप हे वा उजालेको बताता हे--वा क्या, उसकी परीक्षा मुझे हो इस लिये, किंवा जो में दूसरोंका रहस्य नहीं समझा सो लिखता हूं, इसलिये" अज्ञ हूं ओर क्षमापात्र; अतः उनको नमस्कार करता हूं.

अद्वैतका जो आदर्श हे उससे तिसका (प्रचलित अद्वैत पक्षोंका) निर्दोष हो जाता हे. १० तेसा (अद्वैतकी झांकी करानेवाला) येह दरपन

*ग्रंथ, मनुष्यकृत जड पदार्थ वा संकेत समूह हें. तद्वत् यथार्थ ज्ञान ओर प्रकृतिके संबंधमें ज्ञातव्य हे. अतः उनको नमस्कार करना, उनसे क्षमा मांगना व्यर्थ, अघटित, हे; एतदृष्टि उनके प्रति सत्कारादि योग्य पद ग्रहण करने योग्य हे. ओर क्षमा पदका यहां यह प्रयोजन हे कि, इस ग्रंथ में यथार्थ ज्ञान, सत्य बोधक ग्रंथ या उनके वेसे भाग, महात्माओंके रहस्य तथा गम्यागम्य के विरुद्ध लेख नहीं धारता, अतःग्रंथ कर्त्ता उनके कटाक्षका पात्र नहीं. शिष्टाचार प्रकारसे क्षमें वगेरे पद हें. (शंका) न्यायकारी-सत्यवक्ता को नमस्कार वा उसको प्रार्थना करना किंवा उससे क्षमा मांगना वा उसकी स्तुति करना व्यर्थ हे. (समाधान) शिष्टाचार-लोक व्यवहार-योग्यों प्रति आदर उपचार इत्यादि कारण हें.नकि खुशामद वा मिथ्याचार.

* शैव शाक्त वैष्णव †थियोसोफिस्ट.

९-१० प्रचलित नवीन अद्वैत सिद्धांत नवीन वेदांति-अहं ब्रह्मादि-जीव

(अद्वैतादर्शअद्वैत दरपन-ग्रंथ) हे. सुजानों (शोधकों)को अद्वैत सिद्धांत-पक्षका दर्शन हो, इसलिये यह रचा गया हे. वा शोधकोंको अद्वैत पक्षका उसके दूषण भूषण सहित दर्शन हो ओर उनके हितका दर्शन हो.

ग्रंथ वांचके कोई शंका करे कि "एसा पक्ष कोनसा हे कि जिसका खंडन न हो-सर्वपक्ष-मंतव्यको खंडन हो सकता हे; जेसा कि ग्रंथ विषे अद्वैत ओर द्वैत संबंधमें हे. परंतु द्वैतका प्रतिपादन करना स्पष्ट-सिद्ध हे, अपूर्वता तो अद्वैत सिद्धि मेंही हे, अतः सर्व खंडन पक्ष मान्य नहीं" इस शंकाके समाधानमें तीसरापाद हे:-

कितनोंकका एसा मंतव्य हे कि "जो कुछ मन बुद्धि, वाणीका विषय हो, उसके स्वरुप निर्णय वास्ते जो कुछ कहाजाय वा जो जो कल्पना की जाय, वे तमाम, खंडन हो जायगे—होजाने योग्य हे". जो यूंही हो तो, खंडन नामक विषयका खंडन नहीं होता (खंडन, अनवच्छिन्न प्रवाह रुप धारा हे), यह सिद्ध होता हे. परिणाममें कोई पक्ष-मत धर्म-सिद्धांत

ब्रह्मकी एकता माने वाले-अभिन्न निमित्तोपादान वादि-अभाव (नेसती)से भाव (हस्ती) मानेवाले (किरानी कुरानी वगेरे)-सूफी--केवल-अकेवल-शुद्ध-अशुद्ध अद्वैतवादि भाइयोंके मंतव्यका अप्रशंसनीय परिणाम-फल देखके वा उनके माने हुये सिद्धांतको अयुक्त-असंगत-असमीचीन सदोष जानके सयुक्त नहीं पाके उसके निदानकी आवश्यकता हे. जेसे दुसरेकी अपेक्षा विना अपने दोष, आपको प्रतीत नहीं होवे, वेसे अपना मुख अपनी चक्षुसे नहीं देखा जाता; किंतु उसकी निरिक्षामें अन्यकी अपेक्षा हे. फलितार्थ यह के, यथार्थ योग्य आदर्श विना, अपने मुखका ज्यूंका त्यूं प्रतिबिंबभी नहीं देखा जाता (मूल बिंब तो कहां). अतः अद्वैत नामक सिद्धांत रुप जो मुख हे वा जेसा उसका मुख (शिरोमणीसार-रहस्य) हे उसका वा वेसा प्रतिबिंब-यथावत फोटो देखना वा देखाना-देख पडना आवश्यक हे. तब उस मुखका वा उसको अपने मुखका निदान-गुण दोषका ज्ञान होजाता हे.

जिन्होंने किसीका मुख नहीं देखा हो, सो भी दरपनद्वारा उसका तादृश्य

स्वीकारणीय नहीं है*

दूसरा पक्षकार यह कहता है कि "जिस विषय (मंडन)का खंडन नहीं होता-खंडन भी जिसका विषय हो जाता हो, वही सिद्ध-मंडन है सो तमाम मंडन कारोंको एकही रुपमें विषय होने योग्य है. अर्थात् जो सत्य है सो एक प्रकारी है है जैसा है अन्यथा नहीं होता; अतएव तमाम विद्वान्, बुद्धिमान्, तत्व वेताओंका एकही मत-रहस्य-आशय होना चाहिये; अन्यथा (मनुष्योंको दुःखका हेतु होनेसे) खंडनीय वा खंडन होने योग्य है. सार यह है कि, जहांतक जिस विषय स्वरुप-परिणाम संबंधमें नाना मत-पक्ष हैं वहांतक, उन पक्षोंके संबंधमें निश्चित यथार्थताकी दृष्टि नही हो सकती, वा उस पदवीके योग्य वे नहीं हैं. जो यथार्थ है, उसका खंडन नहीं हो सकता. जिसका खंडन हो जाता हो वोह निर्दोष-यथार्थ नहीं है. क्योंकि "ब्रह्मांडमें जो अनादि, मूल तत्व-स्वरुप पदार्थ हैं-(वा है) वे जैसे हैं-वैसे हैं-अन्यथा नहीं होते और न होंगे-वा नहीं हो सकते." यह बात थोडे ही विचारसे जान पडती है-स्पष्ट है" तब उनके स्वरुपमें मत भेद क्यों? नहीं होना चाहिये. परंतु जीवोंकी अपूर्णता (अज्ञान)के सिवाय अन्य कुछ

यथावत फोटोजान लेता है; वैसेही अद्वैत पक्षकारसे इतर अद्वैत न जाने वाले शोधकको भी यह ग्रंथ उपयोगी है. अद्वैत पक्षोंमें कोई एक अद्वैत मतके निदानसे अन्य अद्वैत पक्षोंका भी निदान हो जाता है; इस लिये इस ग्रंथमें मुख्यतः जीवब्रह्मएकतावादी वा तिसके सिद्धांतकी छबी-फोटो और उसकी परीक्षा है; तदंतर गौण पक्षसे अन्योंकी है. अतः "अद्वैता-दर्श" नाम योग्य ही है.

*विचारना चाहिये कि जो "मन बुद्धि वाणीका विषय सो विषयी सहित खंडन हो जाता है;" एसा मानें तो, तमाम मत पंथ धर्म वा फिलोसोफीके ग्रंथ और मूलस्वरुपों (जीव-ईश्वर प्रकृति स्वभाव-मोक्ष-जड-चेतन वगेरे) के बाबत निर्णयकोंका उपदेश-मंतव्य त्याज्य है. और इधर कार्य-स्वरुपज-द्रव्य गुणोंको देखते हैं—जानते हैं तो, उनका रूपांतर होता रहनेसे

नहीं कहा जाता.*

पृथम पक्षमें वादि-पक्षकारके पक्षकी हानी स्पष्ट हे. उत्तर पक्षमें अखंड-निर्दोष होने तक मान्य नहीं हो सकता. इसलिये पृथम शंकाका खंडन तीसरे चरणसे हो गया.

दूसरी शंकाका समाधान भी इसी चरणमें अर्थापत्तिसे होता हे.-जो अद्वैत वा द्वैत पक्षका खंडन न होता हो तो, माननीय हे. अन्यथा नहीं. तद्वत् सर्व पक्ष वास्ते जान्ना चाहिये. अन्यथा "सत्यका मंडन हरकोई करता हे वा हो सकता हे वा स्वत. सिद्ध हे, अत:उसके मंडनमें अपूर्वता नाहें; किंतु असत्यका मंडन किया जाय तो अपूर्वता हे" यह सत्प्रतिपक्ष मान लेना पडेगा; जोके त्याज्य हे. अत:जिसका खंडन हो वोह अयथार्थ पक्ष हे, एसा मान्ना उचित हे.

चोथापाद, इस ग्रंथके रचनेके मुख्य हेतुको जनाता हे:- पूर्व ओर पश्चात फिलासोफीके सेलभेल-मिश्रण होनेसे जेसे कि मात्र परिपाटीके न जाननेसे ही कितनीक फिलसुफी (तत्व विद्या)में दोष आरोपा जाता हे, वेसे वेदांत (यथार्थ ज्ञान-ज्ञानका सार-रहस्य-वेद सार) जैसी सर्वमान्य सर्वोत्तम फिलोसोफीपर भी भविष्यमें आक्षेप हेवे, तिसके पहिलेही प्रबंधार्थ उद्देशसे एक उदहारण स्वरुपमें यह लेख-अद्वैतादर्श ग्रंथ प्रसिद्ध करके निर्दोष

उनका रुप ओर उपयोग भी निश्चियात्मक नहीं कहा जाता. अत:निर्णय करनसे हाथ खेंचके अपने अपने प्रमाण-इंद्रिय-बुद्धि-मन अनुकुल वर्तन होना चाहिये. पक्ष तानना वा अन्योंको बहकाना किंवा अज्ञानांध प्रवाहमें आप पडना वा दूसरेको डालना नहीं चाहिये-अनुचित हे. परंतु दूसरा पक्ष इस आलस्य होनेकी 'ना' करता हे; क्योंकि, मन मुखी वर्तन वा अनिर्णित का उपदेश होनेसे मनुष्योंको हानी हे. नाना दु:ख-क्लेशको प्राप्त होने योग्य होंगे, जेसाके वर्त्तमानमें हे. अतएव योग्य मनुष्योंकी योग्य मंडली होकर निर्णय हो, अर्थात चक्रवर्त्ति मंडली बनाई जाकर चक्रवर्ती निर्णय होके उपदेश हो.

निर्णय हो जाने उपर, मेरी दृष्टि (तान)का वेग हे. अर्थात आक्षेपका पृथमहीलोप हो जावे, यथार्थ दरसाया जावे, यह मेरा गोप गुप्त आशय हे. कुछ किसीके खंडन मंडनमें आग्रह नहीं हे, एसा जानना योग्य हे.

दोहा.

[illegible] वेदांतका, सर्व पक्षमें जाय;
शैली या प्रकारकी, ले विचार मनराय. ॥३॥

जो कि यह (जो कुछ लिखा गया हे–अद्वैतादर्श) ग्रंथ, अद्वैत-वेदांत पक्षका ही जांचक संबंधी हे, तोभी हरकोई-(धर्म-मत-दीन-पक्ष-मजहब-पक्ष=द्वैत ओर अद्वत संप्रदायका पक्षकार) जो शोधक-न्याय दृष्टिसे इस तमाम ग्रंथको सविचारपढे-उसको, अपने मंतव्य-निश्चयके आद्य अंतवाले तत्व वा सिद्धांतगत जितना अयुक्त मंतव्य हे, उसका दर्शन हो, ओर इस शोधक विचारवान पुरुषकी बुद्धिको सदासद्के निर्णय पूर्वक, उक्त अयुक्त अंशके त्याग तथा सयुक्त-यथार्थ रहस्य-सिद्धांत शोधन करने ओर जानेका फर्ज पडे, एसी प्रकारकी गुह्य-गंभीर-शैलीवाला, इस ग्रंथका लेख हे. क्योंकि इस ग्रंथके हरकोई शोधक पाठक मनराय (बुद्धिवान-स्वतंत्र-मनजीत)को विचार लेनाही पडता हे; अतः सामान्यतः सर्व मतवालोंको उपयोगी हो सकता हे.

दर्शनके प्रवेशसे, एक वाक्य इतिजान;
जल्प वितंडा वाद तज, अनुभव सार पिछान.॥४॥

ग्रंथ गत दर्शनों (प्रक्रियाकी झांकियों) में प्रवेश वत् जो ग्रथारंभमें प्रवेश हे, उसके आद्य अक्षरसे लेके ग्रंथकी समाप्ति--इति पद पर्यंत, ग्रंथ कर्त्ताका "एक वाक्य होय नहीं" एसा जानके जल्प वितंडा वादकी दृष्टि छोडके अनुभव ओर सारको लेना चाहिये; क्योंकि तमाम ग्रंथको सविचार पढे बिना, वक्ता वा ग्रंथकारका रहस्य, ध्यानमें नहीं आसकता. ॐ.

कोश-लक्षण.

इस अद्वैतादर्श ग्रंथमें कितनेक एसे पद हैं कि जो न्यून देशवर्ति ओर अन्य भाषाके पारिभाषिक हैं, ओर कितनेक एसे पदार्थ हैं कि, जिनके लक्षण वेदांतानुयायीसे इतर नहीं भी जानते हों; अतः उन पद पदार्थोंमेंसे जिनके अर्थ वा लक्षण यथा प्रसंग-कहीं न कहीं ग्रंथमें आचुके हैं,-उनको छोडके शेष उन पदोंका अर्थ वा पदार्थोंका लक्षण कि जिनका किसी[१] वाचककी सुगमतार्थ जनादेना उचित है-सो-संक्षेपमें लिख देते हैं:—

पद	अर्थ
अनुमिति	अटकल
अविवेकी	अशोधक, सत्यासत्य न जाननेवाला.
अविद्या	अन्यथा ज्ञान, विपर्यय ज्ञान, ज्ञान निवृत्त नीय, ज्ञानाभाव, ईश्वरी ज्ञान* (अ-ईश्वर-वि

१. प्रस्तुत पद ओर लक्षणोंका प्रसंगपर स्पष्टि करण होभी जाता है, अतः यहां लिखना विशेष उपयोगी नहींभी है; तथापि किसी अनजानको उपयोगी होना संभव है; इसलिये कर्त्ताने संक्षेपमें लिखे हैं, ओरभी इन अर्थ तथा लक्षणोंका योग्य संबंध प्रवेशक पत्रसे लेके ग्रंथके अंत पर्यंत ज्ञातव्य है. प्र. क.

इं—इंग्रेजी. गु—गुजराती. फ—फारसी. उ—उरदू. मे—मेवाड. अ—अरेबी.—के चिन्ह हैं. शेष पद हिंदी ओर संस्कृत हैं, एसा जानना चाहिये. प्र. क.

* इस प्रकारके अर्थोंसे चौंकना नहीं चाहिये, क्योंकि शब्दजाल महाजाल है. ओर संस्कृत शब्द सागरकी मर्यादासे व्युत्पत्तिद्वारा अनेक अर्थ होजाते हैं. यथा निम्न लिखित शब्दभी ईश्वर-तिर्थंकर-गुरु-उपदेशक-आचार्यादिके वाचक सिद्ध होसकते हैं:—

पद अर्थ

द्या-ज्ञान) मायाका अंश.

अलॅमेतल. इ.-सूक्ष्म अदृष्ट प्रातिकृति.

अनार्य-आर्य कोमसे अन्य कोमवाले, वा जो उत्तम नहीं सो.

आटा उ.-चून, लोट.

आकर्षण-गुरुत्व. गुण विशेष, पदार्थ विशेष.

आलात चक्र } लकडीके कि
आलात वेग } नारोंपर अग्नि लगाके व्यवधान रहित घुमावें तो.देशांतराय

~~~~~~

उल्लुकः गर्दभः विडालः कुक्करः यमः वृश्चिकः विट्ः मंदः गरलं. खलः पाषंडीः बलदः भगंदरः महिषः श्वाः अहिः अब्रः अमंगलः चंडालः चौरः दुःखं. दुर्जन. यथा चंडयाति दुष्टान् इति चंडालः अतः दुष्टोंपर कोप करनेवाला होनेसे ईश्वरका नाम चंडाल हे. इत्यादि. ईश्वरादिको नहीं मानने वाले एसे एसे अर्थ करते हें. इसलिये शब्द पदकी व्युत्पत्तिमात्रपर नहीं जाना चाहिये. शब्द विद्वानोंका खिलोना होता हे. निदान आकांक्षादिकी संगतिसे अर्थ लिया जाता हे.

पद अर्थ

रहित अग्निका गोल चक्र प्रतीत होता हे.

उक्त-उपर कहा हुवा-मजकूर.

औक्षिजन. इ.-जीवन रक्षक एक वायु. जलके उपादानका अंश.

कर-करनेवाला, करके, द्वारा हासिल, लागा, टिक्स.

कम दरजे. फं.-न्यून, हलका, ओछा, उतरता.

कर्म-क्रिया, गति, जिसपर क्रिया कीजाय.

कोम. फा.-जाति, मंडली, समान धर्मी मंडली. देशी मंडली.

केळवणी. गु.-शिक्षण, तरतीब, तरबीयत, तालीम.

कानशेंस. इ.-संस्कारी विवेक बुद्धि, दिल, जमीर.

क्रियावर-मरने पीछे कीर्त्ति भोजनादि कराना, बडाकाम, उपकार.

गपोडे } -अर्थशून्य विकल्प.
गप्प } सुनीसुनाई बात. दंतकथा, अयथार्थ.
~~~~~~

पद	अर्थ
चेले-	शिक्षकके अनुयायी. शिष्य.
चलतापुरजा-	निपुण, होशियार, चालाक, समयसूचक.
चूंटनी. गु.-	बीणन, छांटन, चुनना.
जोडे. गु.-	साथ, समीप, संयुक्त
जरुरयात. फ.-	आवश्यक, भोग्य, साधन, जिसके विना जीवन व्यवहार न चले वैसी वस्तु, हाजत.
जाती. फ.-	अपनी, कोम, ज्ञाति.
जात. फ.-	स्वत्व, स्वरूप.
जारी. फ.-	बहता, चलता.
तपास. गु.-	शोध, शोधन. परीक्षा. तहकीकात.
तदन. गु.-	सर्वथा, अत्यंत, बिलकुल.
दरमियान. फ.-	मध्य. बीच.
देश हित / देशोन्नति	देशवासियोंका श्रेय-कल्याण. इ.
धारो. गु.-	कल्पेलो. मानेलो. रसम, रीत, कायदो.
धारा. गु.-	कानून, जल प्रवाह. स्थापन.
धोरन. गु.-	रीति, चाल, रसम. प्रकार.

पद	अर्थ
धी-	बुद्धि, लडकी.
नलिये. गु.-	केलु, माटीके खुले हुये लघु नल.
नावाकिफ. फ.-	अज्ञ, न जाने वाला.
डाह्या. गु.-	बुद्धिमान. डाहे.
ढकोसले-	कल्पनामात्र. मंतव्यमात्र.
पुरावा. गु.-	सबूत, प्रमाण सिद्धि. वा इनकी सामग्री.
पर-	दूसरा, ब्रह्म, अगम्य, पांख, उपर, किनारा, परंतु
परोक्ष-	गुप्त, अदृष्ट
प्रतिपत्ति-	प्रयोग, उपयोग, योग, योजना, निर्णय, निर्धारण, कबूल, आशय, खात्री. अनमोदन.
फिलोसोफी. इं.-	ज्ञानकास्नेह. ज्ञानका इश्क. तत्वविद्या.
फिलोसोफर. इ.-	तत्वज्ञ. ज्ञानका स्नेही.
बाजु. फ.-	दशा, भुजदंड, स्पाटि-साइड.
बकवाद. उ.-	व्यर्थ भाषण, बडवड, कहना, बादाबाद विवाद.
बेतरनी-	दोभांत, बेंतन, रचना,

पद अर्थ

बुद्धि

बेवकूफ. फ. अज्ञ, मूर्ख.

मिथ्या-यथायोग्य देशकालमें जो उत्पन्न न हो. (यथा स्वप्नदृष्टि) झूट. इ.

मजकूर. फ.-पूर्वमें कहा गया सो. पूर्वोक्त.

मिलकीयत. फ.-स्थावर जंगम जायदाद.

मनशाय. उ.-मनाशय-भाव-रहस्य. प्रयोजन.

मत्ताक-मतमान्य.

या-वा, अथवा, के.

रहबर. फ.-शिक्षक, पेगंबर, आचार्य, अगवा.

लागु. गु.-संबंध, संबंधक, संबंधी, प्रति, लगती, आरोप.

वधारा. गु.-ज्यादे करना. वढाना.

वगेरे. फ. इत्यादि.

वाद-निर्णयार्थ परस्पर भाषण

विवाद-भांडण, बकवाद, तंटा, वादका हेतु

वाकिफकार. फ.-जाननेवाला.

वादानुवाद-परस्पर प्रश्नोत्तर.

पद अर्थ

बिल. इं.-पत्राविशेष, परिणामपत्र-नोट विशेष.

वेदांत-वेद ग्रंथोंका सार-रहस्य, यथार्थ ज्ञानका रहस्य, तत्वज्ञान, नवीन पक्ष विशेष.

वांचना. गु.-पढना. पाठ करना.

वाचो. गु.-पढो.

व्याघातदोष-आघात. कहे हुये के विरुद्ध कहनेसे जो पक्षघात-पात असत् दोष सो.

विगत. मे.-तफसील, विवेचन. विस्तार

वाजबी. फ.-योग्य. नीति पूर्वक, घटित.

शेषा-प्रकृतिका वोह सूक्ष्मांश जो व्यापक और इथरकाभी मूळ है.

श्रीजी-महाराजा-शोभायमान. राजोंमें मोटा राजा.

सरेरास. गु.-एकंदर, सरासरी, ओसत.

संप. गु.- ऐक्यता, इत्तफाक.

संकला-संकलना, परंपरा संबंध

पद	अर्थ
संतोषक	संतोष करने वा देने वाला.
सख्त. फ.	कठिन, कठोर, तुरा
सुधारा. गु.	संवारा. शोधा. संवारन, शोधन.
हक. अ.	अधिकार, वाजिब. सत्. ईश्वर. यथायोग्यता.
हाल. फा.	वर्त्तमान. अवस्था.
हिंदु. फ.	माशूक, गुलाम, चोर, काफिर, सिंधुवासी [सिंधके किनारेके रहवासी].
,	विराम–विभाग–कर्त्ता–सूचक चिन्ह.

पद	अर्थ
.	पूर्णविराम, वाक्य वा विषयका समाप्ति सूचक चिन्ह.
:–	पूर्व प्रसंग, संगति सूचक. अर्थात् वाचक. पर्यायका बोधक.
;	अर्धविराम. पूर्वोक्त उभय चिन्हका अर्थ बोधक. उत्तर संबंध सूचक.
,–	पूर्वोक्त उभय चिन्हवाले अर्थका बोधक.
" "	अवतरण चिन्ह.
.–	पूर्वोक्त उभय चिन्हवाले अर्थका बोधक.

लक्षण.‡

अद्वैत–सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद रहित. १ सजातीय भेद रहित. २ एकही ३.

सजातीय–तिसकी जातिवाला, समान, [मनुष्यका सजातीय मनुष्य हे. खिजूरका खिजूर हे].

विजातीय–तिस जेसा नहीं; किंतु अन्य प्रकारका.–असमान (बंदर. देव, छुहारा, मनुष्य–खिजूरसे विजातीय हें.)

स्वगत–अंश–सांश (शरीरके हस्तादि अंश हें).

विशेषण–अपने विशेष्यके स्वरूपमें प्रवेश करता हुवा विशे-

, इत्यादिका शेषार्थ प्रचलित रूढीवत्,

‡ इन लक्षणोंमें कोइ भाग वेदांत पक्षसे इतर प्रकारकाभी हे, यथोचित यथा प्रसंग उपयोग कर्तव्य हे.

ष्यका अन्यसे व्यावर्त्तक और (अपनी सीमा तक) अपने विशेष्यको अपने सहित जनानेवाला विशेषण कहाता है. यथा काला जल, खारा पानी, नील वस्त्र (यहां काला रंग और खार तथा नील विशेषण हैं और पानी, वस्त्र विशेष्य हैं)

विशिष्ट–विशेषण और विशेष्य दोनों मिले हुये विशिष्ट कहाते हैं. यथा वेदांतियोंका अंतःकरण [विशेषण] और कूटस्थात्मा (विशेष्य) मिलके विशिष्ट अर्थात् जीव कहाता है.

उपाधि–अपने उपहितके स्वरूपमें प्रवेश न करती हुई, अपने को उपहितसे पृथक जनाती हुई, अपने उपहितकी अन्यसे व्यावर्त्तक हो (जुदा जनावे) और [अपनी सीमा तक] अपने उपहितको अपने सहित जनावे–उस वस्तुको उपाधि कहते हैं. यथा घटाकाश. यहां आकाश की उपाधि घट है. आकाश उपहित है. घट आप पृथक हुवा घटआकाशको महाकाशसे भिन्न और अपने साहित जनाता है. तद्वत् वेदांतियोंका अंतःकरण, चेतनकी उपाधि है. अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन (कूटस्थात्मा) को ब्रह्म चेतनसे भिन्न अपने सहित जनाता है. १. जाति, गुण, क्रियासे भिन्न धर्म. २. कार्यमें असंबंधि वर्त्तमानमें व्यावर्त्तक. ३. उत्तरके २ लक्षण यथा प्रसंग घटाये जाते हैं.

उपहित–उपाधि वालेको उपहित कहते हैं.

अंतःकरण–जिस करण-साधन-प्रमाणसे शरीरके अंतरके दुःख सुखादि पदार्थोंका जीवको ज्ञान होता है. उसे अंतकरण कहते हैं. यह सूक्ष्म प्रकृतिके सूक्ष्म सत्वांशसे

बना है. ओर प्रकृतिके रज तम भागभी उसमें शामिल हैं. विद्युतसेभी अधिक शक्तिवाला मध्यम परिणामी है. तमाम शरीरमें व्यापक ओर लचकदार (स्थिति-स्थापकरूप) पदार्थ है. उसके रागादि परिणाम-अवस्था होते हैं. चित (स्मरण परिणाम), बुद्धि, मन, ओर अहंकार किंवा सुर्त, वृत्त, नृत्त, कृत, यहभी उसी के परिणाम-अवस्था-हैं. यह ओर इसके धर्म, बाह्यइंद्रियोंके विषय नहीं होते. यह पदार्थ किसी ज्ञान प्रकाश करके प्रकाश्य हुवा योगियोंको विषय होता है. ओर चेतनकी सत्ता करके लोह चंबुक समान उसका ओर उसके धर्म रागादिका उपयोग-प्रकाश-होता है. इ.

ज्ञान-प्रकाश समान स्वप्रकाश एक अनादि पदार्थ है. उसमें पूर्व वासना-अभ्यास-करके नाना परिणाम होतेहैं. त्रिपुटि मात्र जगत् उसीका रूपांतर होता है. अति शीघ्र क्षणिक परिणामी है; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, कर्त्ता, कर्म, क्रिया, भोक्ता भोग भोग्य,-इत्यादि उसीका क्षणिक परिणाम है. [बौधमत कृत लक्षण] (वेदांती इसे बुद्धि-अंतःकरणका परिणाम कहते हैं.)

लयविज्ञान-मजकूर विज्ञानका अहंप्रत्ययवाली धाराका नाम है. पक्षमें अहं जिसका स्थान है सो विज्ञान.

त्ति विज्ञान-मजकूर विज्ञानका नीलादि [इदमादि] प्रत्ययवाली धाराका नाम है. पक्षमें नीलादि[इदमादि]का उल्लेख करानेवाला जो विज्ञान सो.

ा-ज्ञान. चेतन-प्रमाणजन्य ज्ञान.

ामा-प्रमासे भिन्न प्रकारका ज्ञान. यथार्थ ओर अयथार्थ भेदसे दो प्रकारका है.

अयथार्थ-अप्रमा-दोषजन्य ज्ञान. इसको भ्रमज्ञान कहते हैं

भ्रम-स्व अभाव अधिकरणमें जो अवभास, सो भ्रम कहाता है १. दोषजन्यत्व २. निष्फल प्रवृत्ति जनकत्व ३ अधिष्ठानसे विषम सत्तावालेका अध्यास ४. विशेषणके अभाववालेमें विशेषण भासे ५. अयथार्थ ज्ञान ओर उसका विषय ६. इ. यथा रज्जुमें सर्प ओर उसका ज्ञान भ्रमरूप है. क्योंकि अन्यथा प्रतीति ओर एसी प्रतीतिका विषय अन्यथा है. इ.

भ्रमके दो प्रकार होते हैं. एक संशयरूप भ्रम होता है. (यथा स्थाणुको देखके यह स्थाणु वा नहीं १. यह स्थाणु वा प्रेत २. यह स्थाणु वा मनुष्य ३. यह मनुष्य वा प्रेत ४. इ.) १ यह स्थाणु नहीं किंतु मनुष्य है. यह निश्चयरूप भ्रम है. २

अध्यास-स्मृतिरूप पर विषय पूर्वदृष्ट सजातीय परका जो अवभास सो १. वस्तुमें जो अवस्तुका आरोप सो २, स्वाभावाधिकरणमें जो अवभास सो ३. अपने अधिष्ठानसे जो विषम सत्तावाला सो ४. इ. यथा रज्जुमें सर्पका अध्यास है. सर्प ओर उसके ज्ञानका अध्यास है. अध्यास (भासता है ओर भान).

इसके दो प्रकार हैं. अर्थ ओर ज्ञान.

ज्ञानाध्यास-दूसरे विषयमें पूर्व देखी वस्तुके समान जातिवान दूसरी वस्तुका जो स्मृति ज्ञानके सदृश ज्ञान होता है, उस ज्ञानको ज्ञानाध्यास कहते हैं. जिस ज्ञानका विषय अध्यासरुप विषय है,-सो ज्ञान. वा अध्यासकी जो प्रतीति सो. [कोइ पक्षकार ज्ञानाध्यासको नहीं स्वीकारता उसकी रीतिसे " न तिसमें तिसकी बुद्धि " एसा

लक्षण अध्यासका है.)

अर्थाध्यास-स्मृतिमें स्मार्य वस्तुके सदृश पूर्व देखे समान जातिवान दूसरी वस्तु दूसरे विषे जो भासती है. सो अर्थाध्यास कहा जाता है. वा अयथार्थ ज्ञानका विषय. यथा रज्जुमें सर्प अध्यास अर्थाध्यास है.

संसर्गअध्यास-जिसका स्वरूप तो प्रथमही सिद्ध हो; परंतु उसका अन्य वस्तुमें अन्यथा (विलक्षण-अनिर्णीय) संबंध उपजे. उसे संसर्गाध्यास कहते हैं. यथा लालवस्त्रपर श्वेत काच हो, तहां 'लाल काच' एसी प्रतीति संसर्गसेहै.

असंसर्गाध्यास-असंबंधीमें स्वरूपासिद्ध संबंधीका अवभास.*

स्वरूपाध्यास-स्वरूपासिद्धका अन्यथा-अनिर्वचनीय स्वरूपावभास. सत्से विलक्षण स्वरूपका अवभास.

अधिष्ठान-जिसके ज्ञान होनेपर अध्यास (भ्रम-अध्यास)की निवृत्ति होती हो. यथा रज्जु, सर्पका अधिष्ठान. और सर्प अध्यस्त है.

प्राकसिद्ध-जो प्रतीति और उपयोगसे प्रथम सिद्ध हो.

आधार-जिसकेविना वस्तुकी सिद्धि, स्थिति और उपयोग न होसके-एसा स्वरूपाधिकरण.

प्रातिभासिक-अज्ञानसे अतिरिक्त दोषजन्य हो, सो. अधिष्ठानके ज्ञानविनाभी जिसका बाध-निवृत्ति होसके सो. भ्रम

---

*इस विवादित-बाध्य अध्यासके कितनेक प्रकार हैं तहां अर्थाध्यास-ज्ञानाध्यासके संसर्ग और असंसर्ग यह दो भेद हैं. इन दोनोंमें एक एकके तीन तीन (धर्म-धर्मी-संबंधाध्यास) भेद हैं. इसप्रकार ६ भेद हैं. वेदांत पक्षमें इस प्रकारसे भेद नहीं, किंतु अन्यथा हैं और इस ग्रंथमेंभी इस प्रकारसे चर्चा नहीं है; इसलिये विशेष विस्तार नहीं किया. प्रसंगोपयोगी लक्षण लिखे गये.

तिनीकालमें नहो-प्रतीतिकालमें हो सो. अर्थात् प्रतीति
मात्रय-था स्वप्नसृष्टि. मृगजल.रज्जु सर्प, शुक्तिरजत. ब
लकके अन्यथा वे खेल जिनको अन्यथा नहीं जानता
सत्ता-अस्तित्व प्रकार. शक्ति. योग्यता.धर्मसत्ता.राज्यसत्ता.इ
परमार्थसत्ता-जिस सत्ताका बाध नहो-स्वतंत्र सत्ता. व्यव
हारिकादि सत्ताका आश्रय. यथा स्वप्नसृष्टिकी दृष्टिसे
जीव-द्रष्टाकी परमार्थसत्ता है.तद्वत् माया-प्रकृतिकी दृष्टिसे
ब्रह्मकी परमार्थसत्ता है.

व्यवहारिकसत्ता-अधिष्ठान ज्ञानविना-जिस अस्तित्व प्रका
रका बाध नहो, सो. यथा प्रकृतिके कार्यकी यह सत्ता
प्रातिभासिकसत्ता-जिस अस्तित्व प्रकारका अधिष्ठान ज्ञान
विनाभी बाध होता हो सो.यथा स्वप्न ओर रज्जु सर्पा
तथा उनके ज्ञानकी प्रातिभासिकसत्ता है.

दृष्टिसृष्टिवाद-दृष्टिमातही सृष्टि है, इस मंतव्यको सिद्ध कर
का प्रकार. इस पक्षमें पदार्थोंकी अज्ञात सत्ता नहीं हो
यथा स्वप्नमें कोइ अज्ञात पदार्थ विद्यमान नहीं. किंतु दृष्टि
मातही सृष्टि है.

स्वरुप संबंध-उपाधिका ओर अभावका जो अपने आश्रय
साथ संबंध है, उसे स्वरुप संबंध कहते हैं किंवा स्वरु
पके साथ स्वरुपत्वका जो संबंध माना जाय तो उसक
भी स्वरुप संबंध कहते हैं.

अविद्या-आवरण शक्ति विशिष्ट मूल प्रकृतिका अंश विशेष
ईश्वरी ज्ञानकोभी अविद्या कहते हैं. २ विद्यासे जिसक
बाध होजाय सो ३. विपरीत बुद्धि -ज्ञान ४.

अतिव्याप्ति दोष-अलक्ष्यमेंभी लक्षण जावे.

अव्याप्ति दोष-संपूर्ण लक्ष्यमें न वर्ते.-लक्ष्यके कोइ भागमें

असंभव दोष-लक्ष्य अवर्त्ति-प्रमाण असिद्ध लक्षण.
अविद्या लेश-अविद्याके संस्कार-सूक्ष्मावस्था.
अनुमित्ति-लिंग ज्ञानजन्य जो ज्ञान-सो. यथा धूमको देखके यह स्थल अग्नि वालाहे, एसा जो ज्ञान-सो. किंवा परोक्षाग्निका काचमें फोटो पडत देखके अग्निहे,एसा ज्ञान होता हे, उसे अनुमिति कहते हें. १. वा अटकल. २
अनुमानप्रमाण-अनुमितिप्रमाका जो करण-प्रमाण-साधन यथा व्याप्ति अनुभव वा व्याप्ति ज्ञानजन्य संस्कार वा इन संस्कारजन्य स्मृत्ति वा लिंग ज्ञान वा लिंग. इ.
व्याप्ति-अविनाभावरुप संबंध, कारण कार्यभाव संबंध. तादात्म्य संबंध. यथा अग्निका धूम साथ अविनाभाव संबंध हे. रजवीर्य ओर शरीरका वा जनक जन्यका कारण कार्यभाव संबंध हे. अतः अग्नि वगेरेकी धूममें व्याप्ति हे. अग्नि व्यापक ओर धूम व्याप्य हे. व्याप्तिके सम-परस्पर-व्याप्य व्यापकादि भेद हें.

व्यापक. साध्य लिंगी संज्ञी } व्याप्ति निरुपकको व्यापक कहते हें. अनुमिति ज्ञानका विषय सो साध्य. जिसके लिंग वा संज्ञासे जिसका ज्ञान होता हे सो लिंगी.

यथा धूम द्वारा अग्निका जहां परोक्ष ज्ञान हो वहां अग्निको व्यापकादि नाम दियेजाते हें.

व्याप्य साधन हेतु लिंग संज्ञा } साध्यका व्याप्य. साध्यकी सिद्धिका साधन. यथा परोक्षाग्निकी सिद्धिमें उसके परोक्ष ज्ञान होनेमें धूमको व्याप्यादि नाम दिये जाते हें.

अविनाभाव-जिस विना जो न होवे . उसका उसके साथ अविनाभाव-संबंध हे. यथा अग्नि विना धूम नहीं होता. अतः धूम अग्निका यह संबंध हे.

असंभावना-जिस संशयका विषय वस्तु स्वरुपभी हो. यथा स्थाणुमें स्थाणु वा मनुष्य, एसा द्विकोटी ग्राहक ज्ञान, मे यथार्थ ज्ञानका विषय [जो हो सोही विषय] १. जो हो उससे अन्यथा- अयथार्थ ज्ञानका विषय) इसके तीन भेद हें, विपरीत. अन्य. संशय. कुत्तेमें दीपडेका ज्ञान विपरीत. रज्जुमें सर्प अन्य. रज्जुमें सर्प वा लकडी, एसा भान संशय २. जो हो सो नहीं [अन्य हे वा नहीं इससे उपेक्षा.] ३. जो हो उसमें पूर्वोक्त संशय. यथा स्थाणुमें पुरुष वा स्थाणु ४. नं. ३-४ की असंभाव ना संज्ञा हे. पक्षमें संशयमात्रका वाचक हे. प्रमाण विपर्यय, विकल्प, स्मृति, निद्रा, उपेक्षा, उदासीन, संश य इन ८ वृत्तिके भेद जाननेसे असंभावनाका स्पष्ट भेद जान सकते हो.

असत्-ज्ञानबाह्य. अर्थशून्य. विकल्पमात्र. अक्षणिक. झूठ बोलना. मिथ्या. सत्र विलक्षण. सत् नहीं. यथार्थ नहीं इ

कर्म-गति-देश स्पर्शास्पर्श अवस्था. संयोगकी निमित्तावस्था.

उपासना-समीप जुडके स्थिति. विक्षेपाभाव. गतिअभाव इष्टके आकार होके स्थिति-चितनिरोध. *

ज्ञान-प्रतीति. अंतःकरण-मन-बुद्धि-जीवका परिणाम वि शेष-वा इनका गुण. विषय विषयीका सन्निकर्ष-वा अ भेद तादात्म्यरुप संबंध. वा गति विशेष. *

---

*मनुष्यसे हरकोइ कार्य-उपयोग-कर्म, उपासना तथा ज्ञान क विना नहीं होता.

युक्ति-सृष्टिनियमानुकूल बुद्धिका उपयोग [कथन-मनन]
प्रजासत्ताक राज्य-जिस राज्यमें प्रजाकी संमत्ति लीजाय सो राज्य.

देशहित } इसके लक्षणमें मतभेद हैं. यथाः—देशवासियों
देशोन्नति } का एक धर्म होना १. एक कोम होना २. एक मत-हमखयाल होजाना ३. एक संप होना ४. हुन्नर, कला, विद्या, सदाचार, ओर उद्यमकी उन्नति-वृद्धि ५. जहरियात पूरी पडना ६. अपने दुःख सुख समान दूसरेके दुःख सुख समझके वर्तन अर्थात् परस्परकी रक्षा ७. किसीकेभी योग्य हकका भंग न होना ८. स्वत्वके साथ अपने हक संभाल सकनेकी शक्ति होजाना ९. तन-धन-मन-संप-धर्म-बुद्धि-विद्या ओर सत्ता-बल-[सत्ता] की प्राप्ति वा उनमेंसे एक किंवा अनेककी उपलब्धि १०. न पराधिनता ११. स्वातंत्रीय १२. एक राजासत्ताक राज्य होजाना १३. एक धर्मी राज्य होजाना १४. एक कोमी राज्य होना १५. प्रजासत्ताक राज्य होजाना १६. राजा प्रजासत्ताक राज्य होजाना १७. पर स्वाधिन होजाना १८. दुःख सुखकी समानता १९. येथच्छा वर्त्तनकी योग्यता २०. सर्वको दुःख रहित सर्व सुख होना २१. हककी समानता २२. इत्यादि.

:-ज्ञान १. ज्ञान पुस्तक २. जिससे धर्म, अधर्म ओर ईश्वरका स्वरूप समझ सकाय सो [विदन्त्यनेन धर्मादिकमिति]३. धर्मब्रह्मप्रतिपादकमपौरुषेयं वाक्यं वेदः अर्थात् धर्म ओर ब्रह्म प्रतिपादक, जीव अकल्पित प्रमाण (यथार्थ बोधक) जो वाणी-वाक्य-सो वेद. मी. ४. तद्वचनादाम्नायस्य प्रमाण्यम्. वेद ईश्वरकाही कहा हुवा हे, अतः प्रमाण हे.

वे. (इत्यादि. वेदके मंतव्य ओर लक्षणमें शास्त्रकारोंका पक्ष हे. एक मत नहीं) ५. मंडली विशेषका बनाया हुवा पुस्तक ६. नाना मनुष्योंके रचे हुये मंत्र (विचार) का समूह पुस्तक ७. निशाचर धूर्त्तोंका बनाया हुवा पुस्तक (चार्वाक) ८. सर्वसे आद्य पुस्तक सत् विद्या-ज्ञानका भंडार, जिसमें किसीका इतिहास नहीं, उसके पूर्व वोह् ज्ञान नहीं था जो उसमें हे, सृष्टि नियमानुकूल बोधक, सर्व जगत्के वास्ते समानुपदेशक-इत्यादि ९.इस प्रकार यथा बुद्धि यथा पक्ष अनेक लक्षण करते हें. उसके कितने वाक्य-मंत्र हें. इसमेंभी तकरार हे.-कोइ ४ ब्राह्मण, उपनिषद् १० ओर ४ संहिता-इन तमामको वेद पुस्तक मानता हे. कोइ केवल ४ संहिताको, ओर कोई केवल ऋग्. यजुः दो संहिता, कोइ साम अर्थात् तीनोंको वेद मानता हे. इत्यादि. इस ग्रंथके अनुयायी ओर विरोधियोंके लेख-खंडन मंडन देखो तो, स्वयं यथार्थ निर्णय होजाय. ओर "चारों वेदकी एक उत्तम-लाभप्रद-माननीय ओर आद्य पुस्तक हे," यह बात उसको अंग उपांग सहित पढनेसे जानसकते हो. क.

(सूचना) शुद्धिपत्रमें जिस पद वा पंक्ति पास ▪ एसा चिह्न हो उसे अवश्य सुधारके वांचना चाहिये.

६-जो अनेकांतरूप पक्षकी अनवस्था स्वीकारी जाय तो, निष्कंप प्रवृत्तिका अभाव होनेसे जीवन व्यवहार नहीं होना चाहिये. (परंतु होता तो हे),-जैनियोंको जैन पक्षमें संशय रहना चाहिये. (परंतु वे अपना पक्ष निश्चित मानतें हैं),-अंधकी दृष्टिसे घट और ईश्वर असत् तथा सुज्ञकी दृष्टिसे उनकी अस्ति यथार्थ माननी पडेगी. [परंतु जैन ईश्वरका निषेध करता हे],-जैनमत ओर उसके अनुयायीका कथन-मंतव्य-खंडन-मंडन-साज्य होगा. तथा सर्वज्ञत्वका अभाव होगा, जोकि उनके मंतव्यके विरूद्ध हे.

७ a जो तत्वविद्याके विरोधि प्रकृतिमे भिन्न मानसिक-आंतरीय सृष्टि मानके लोकोंको लुभानेवाले (स्वीडनबोर्ग वगेरे) उपासक विश्वासी हैं, उनको विपरीत भावनाका आवेश होना चाहिये. जब योग साधित चक्रविद्या, शेषास्वरूप ओर संस्कारविद्याका अनुभव लेंगे, आंतरीय स्नेह, सत्य ओर ज्ञानद्वारा उनको भली प्रकार जानलेंगे, तब उनके मानसिक (नाटकालंकार-मनपरिणाम, स्वप्न, संस्कार, गुप्त फोटो-मेस्मेरिझमकी विश्वदृष्टि-इ.) स्वर्ग नरकादि इष्ट दर्शन एक प्रकारके स्वप्नसृष्टि समान जान पडेंगे. ओर जो " नो थाईसेल्फ ". पर आये तो उनके माने हुये स्नेह-हित-ज्ञान-इच्छा-ओर श्वेत लाल मनुष्याकृतिवाले स्वामी वगेरेका पता भी नहीं लगेगा. यदि वहांसे भी आगे चले तब तो ओरभी आश्चर्यमें निमग्न होजायगे.

परंतु वेसे भाइ दूसरोंको विश्वासमें डुलाते हैं, आर्य योगविद्या ओर फिलोसोफीकी तरफ नहीं लाते वा नहीं आनेदेते; इसलिये एसोंको कहना चाहिये कि-इस हमारी "लेखिनी"का सूक्ष्मस्वरूप, 'तमाम-जीव-ईश्वर-स्वर्ग-नरकादिका

कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता है,-इसकी गुप्त महिमा विश्वासियोंका आं
रीय स्वामीभी नहीं जानसकता, जो कुछ है सो यही है
इसीका स्नेह-सत्य-हित सर्वमें है, इसी कलमका सर्व च
मत्कार है,-इसीका विश्वास रखो' यथेच्छा फल मिलेगा.'
(शं.) इसमें क्या प्रमाण ? (उ.) अन्य प्रमाणोंसे रहित जो
विश्वासियोंका विश्वास है सो. अर्थात् जैसा यह वेसा वोह
ओर जेसा वोह वेसा यह-[विशेष पूर्व प्रसंगों समान ज्ञातव्यहे]

[शंका] तुम्हारी [आर्य] धर्म फिलोसोफी-तत्त्वविद्या उत्तम माननेमें क्या प्रमाण हे ? [उ.] हमारे प्रमाण ओर कुद रती पुरावोंको हाल एक तरफ रखके यूरोपके शोपनहेयर, मान्यरविलियम, एम लुइस जेगोलियट, सरविलियमजोन्स, फे- ड्रीकवनसेलेज, विकटरकाझीन, मेक्षम्यूलर ओर थियोसोफीक ल सोसाइटी वगेरेके लेख वांचो. उनमेंसे दो विद्वानोंका लेख यहांभी लिखदेते हैं.-उसके वांचनेसे आर्यावर्तके विज्ञान-वि द्याकी उत्तम असाधारणता ओर यूरोप तथा बाइबल वगेरेके विज्ञान-विद्याकी न्यूनता ओर साधारणता स्वयं जान सकोगे.

In India our religion (Bible) will now and never strike root; the primitive wisdom of the human race will never be pushed aside by the events of Galilee. On the contrary, Indian wisdom will flow back upon Europe, and produce a thorough change in our knowing and thinking. *A. Schopenhauer.*

*　*　*　*　*

We are in our Eastern Empire not brought into contact with tribes who melt away before the superior force and untelligence of Europeans. Rather are we placed in the midst of great and ancient peoples who attained a high degree of civilsation, when our forefathers were barbarians, and had a polished language, a cultivated literature and abstruse system of philosophy, centuries before English existed even in name. Manior Williams. इ.

ओ३म्

अद्वैतादर्श

(प्रवेश)

"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव नापरः"

(वेदांत सिद्धांत)

* पूर्वपक्षी—(समीक्षक—शोधक—जांचक) *

जो स्व वा पर मंतव्य—सिद्धांत—लक्ष्य—अनुभव—निश्चय,—परीक्षा वा बोध प्रसंग समय प्रतिपक्षीकी परीक्षा वा जिज्ञासुके ध्यानमें, परीक्षा विषे पार उतारने वा दरसानेवाली कोइ योग्य रीति-प्रकारसे योग्य परीक्षाका विषय न हों वा न होसके अर्थात यथार्थ-अबाधित ज्ञानका विषय न हो-न होसके-सो मंतव्य, (उक्त दोषाभाव होने तक) अर्थ शून्य जैसा हे-मानो कल्पित-वा भ्रम रुप अथवा "अकेले कहानो गुडसेभी मीठी" इस कहावत समान होय नहीं. अतएव किसीके विश्वासवाले वा कथन मात्र सिद्धांतके ऊपर आधार नहीं रखा जाता; यह नियम, सर्व धर्म (पंथ-संप्रदाय-दीन-मजहब-वाडा), आचार्य (गुरु, पादरी, इमाम, मुरशद, विसपादि) वा ग्रंथ वा उपदेश प्रति, नियत होसकता हे. वे (धर्माचार्यादि) जबतक, परधर्मी विद्वान, बुद्धिमानों कीसंमति सहित अपना मुख्य (सिद्धांत-धर्म-) विचार पूर्वक नहीं देखें और स्व दोषोंको नहीं सुधार सकें तब तक, दूसरोंको केसे आकर्षसकेंगे; वा विश्वास दिलासकेंगे ? नहीं. किंतु अज्ञान, छल, अधर्म, दंभ, दंड, अन्याय वा धूर्तताके सिवाय, सत्य यथार्थ और नीति मार्ग पूर्वक उनका मनोरथ सिद्ध नहीं होसकता.

---

* यह ग्रंथ वेदांत पक्ष जांचका संबंधी हुये भी हरकोई मतके अनुयायी साधक जिज्ञासुको उपयोगी हें, देखो प्रस्तावनागत दोहा नं. ३ की टीका.

एतद्दृष्टि जो, भारतगत, मत–पंथो (न्याय, वैशेषिक, योग, धर्म मीमांसा, सांख्य, बृहस्पति, बौद्ध, जैन चार्वाक, याहूदी, नसारा–ख्रिस्ति, पारसी, मुसलमान, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, पौराणी–वैष्णव, शैव शाक्त, स्मार्त, नारायण स्वामी वगेरे-नानक, कबीर, दादुपंथी, रामस्नेही, थियो सोफिस्ट, सायन्सी, आकर्षणी, इत्यादि) मेंसे लोक विषे सर्व शिरोमणि, प्रसिद्ध प्रचलित वेदांत सिद्धांत माना जाता हे; जो कि संक्षेपसे यह हेः—

वेदांत सिद्धांत:*

१–"जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे (जोके, ऋग्, यजु, साम, अथर्व यह अपरा विद्यारूप कर्मोपासना, व्यवहार प्रतिपादक भाग–स्वतः प्रमाण चार संहिता श्रुति ग्रंथ इतर तत् संबंधी तदेतर स्वतः प्रमाण-ज्ञानभाग–परा–ब्रह्मज्ञानकी साक्षात्से बोधक–विद्या रूप उपनिषद्की श्रुति-ईश्वरोपदेश-तत्त्वमस्यादि महावाक्य शोधन विना, अन्यप्रमाण वा प्रकारसे नहीं होता, अर्थात ब्रह्मज्ञान वा जीव ब्रह्मकी एकताका ज्ञान, कर्मोपासना किये हुये अधिकारी-विवेक, वैराग्य, समादि और मुमुक्षुता साधन संपन्न पुरुषको उपनिषद् ग्रंथके एकता बोधक महावाक्य विना कदाचित् भी, नहीं होता) जीवका मोक्ष-"अनृत -अज्ञान-ओर उसके कार्य अध्यासरूपबंधकी अत्यंत निवृत्ति ओर नित्य परमानंद स्वरूपकी प्राप्ति" होता हे. उसके विना, अन्यप्रकार–धर्म, पंथ, मतमतांतर मानने वा उनपर चलने से नहीं होसक्ता. ज्ञान पश्चात् विदेह मोक्ष हुये पीछे, पुनरावृत्ति नहीं होती.

---

* मंतव्यके हेतु, उदाहरण सहित–समग्र विस्तार, इस लिये नहीं लिखते के, इस ग्रंथका उपयोग विशेषतः वेदांतीको किंवा संशयात्मक पुरुषको होनेवाला हे; जो के वेदांत पक्ष ओर तद्गतप्रक्रिया, शैली ओर उसकी परिभाषाका ज्ञाता होगा. इतनाही नहीं किंतु उक्त दृष्टि ओर विस्तार भयके कारण वक्ष्यमाण खंडन मंडन–प्रसंगमेंभी संक्षेपसे उपयोगी विषयकाही कथन हुवाहे, एसा जान लेना.

२—ब्रह्म (सत्* चित्-चेतन ज्ञान प्रकाश स्वरूप-आनंद र्यात् अस्ति भाति प्रियस्वरूप-अखिल ब्रह्मांडके बाह्यांतर व्यापक चेतन, सर्वका अधिष्ठान-आधार) अबाध्य-अनादि अनंत-सत्य है, तदेतर भाविरूप त्रिगुणात्मक माया-अज्ञान-ओर उसके नाम रूपात्मक जगत—ब्रह्मांड-कार्य मात्र-सदसद् विलक्षण—अनिर्वचनीय अध्यासरूप-बाध्य, अनादि सांत हे.

३—ब्रह्म (१) माया (अविद्या-मूलाज्ञान-आवरण विक्षेप शक्तिवाली वस्तु विचित्र रूप-प्रकृति) (२) जीव (साधिष्ठान साभास अविद्या वा व्यष्टि अज्ञान वा अंतःकरण अवच्छिन-विशिष्ट चेतन) (३) ईश्वर (साधिष्टान साभास माया वा समष्टि अज्ञान अवच्छिन्न विशिष्ट चेतन—जगतका अभिन्ननिमितोपादान कारण) (४) जीवेश्वरका भेद (५) ओर जड चेतनका संबंध (६) यह षट अनादि पदार्थ हैं. परंतु ब्रह्मेतर अन्य, सर्व सांत तथा मायिक—मायाकी अपक्षासे हैं ओर व्यवहारिक दृष्टिसे सत्य, ओर पारमार्थिक दृष्टिसे प्रातिभासिक (सत्तावाले) मिथ्या हैं; ब्रह्म परमार्थ (सत्तावाला) सत्य हे.

४—मिथ्या माया ओर उसके कार्य नामरूप मात्र, रज्जु सर्पमें जेसे रज्जुका सर्प, विवर्त हे वेसे—ब्रह्म चेतनके विवर्त हैं-ओर इस परतंत्र अध्यस्तकी—जेसे रज्जुज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति होती हे वेसे-अधिष्ठान ब्रह्मके ज्ञानसे निवृत्ति होती हे.

५—भावरूप मिथ्या-अध्यासरूप—प्रातिभासिक, दृष्टमात्र होनेसे ब्रह्म वस्तु विषे इस अवस्तु (जगत—माया) का अध्यारोप किया वा कहा जाता हे. क्योंकि उस कल्पितको निवृत्ति अधिष्टान स्वरूप होती हे. तद्भिन्न अन्य नहीं.

---

* श्रीमद्भगवद्गीतामें सत् वा असत् नहीं कहा जाता एसा, विलक्षणभी मानाहे. "अनादिमत्परं ब्रह्म नसत्तनासदुच्यते." १३-१२

६—पूर्वोक्त समग्र कथनका सार यहहे ' के जीव ब्रह्मका, उपाधी-त्यागके अभेदहे (सोपाधी जीवका व्यवहारमें भेदहे) ओर केवल० (सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित, अद्वितीय, निर्धर्म, अक्रिय, अपरिणामी, अच्छेद्य, अभेद्य, शुद्ध, चिन्मात्र व्यक्ति) ब्रह्म सत्यहे. तदेतर सर्व—माया० (अज्ञान, ओर उसके कार्य जीव, ईश्वर, भेद, संबंध, भाव, अभाव, नभादितत्व, उत्पत्ति स्थिति प्रलय, कर्मोपासना, साधन, साध्य, वेद, ज्ञान, उपदेश, वक्ता, श्रोता, बंधमोक्ष, ओर त्रिपुटी मात्र,—ब्रह्मांड मात्र) स्वप्नवत् मिथ्याहे''

उस सिद्धांतके अभिमानी—अनुयायी वा उपदेष्टा भाइओंके सन्मुख, नित्य प्रति उनके मुखरूप मंतव्य-परखने—दर्शन करने—वास्ते प्रश्न समूहात्मक यह, अद्वैतादर्श (अद्वैत दर्पन) अर्पण करतेहैं. कृपा पूर्वक सेवाको स्वीकारके ओर ''वादी भद्रं न पश्यति'' इस वाक्य समान कथनवाला, दोषपात्र नहीं ठरता, एसा ध्यानमें लेके ओर विचार—निर्णय—सर्वदा उत्तमहीहे, स्वपरको लाभिष्ट होपडताहे इत्यादि शील दृष्टि रखके, मेरेसे कदाच अरुची आवे तो, मुझे क्षमा करके उभयके हित सुधारनेमें प्रवृत्त रहनेकी आशा रखताहूं.

* * * * * * *

(सूचना)—''इस छोटेसे ग्रंथमें प्रसंगों विषे, कोइ विषयका विस्तार इस दृष्टिसे कियाहेकि जिसकी प्रसिद्धि नहीं वा न्यूनहे. यथा—उपनिषदकी स्वतः प्रमाणताका विस्तार कियाहे. ओर कोइ विषयका विस्तार इस दृष्टिसे नहीं लिखा के वेदांतके ग्रंथोमें अति प्रसिद्धहे, इतनाही नहीं किंतु उसके अनुयायीके कंठस्थहे. यथा विवर्तवाद, वा पारिभाषिक पदोंका अर्थ (ब्रह्मको कहींज्ञाता, कहींज्ञान स्वरूप, कहीं केवल

प्रकाश स्वरुप कहीं साक्षी–वृत्ति उपहित वा अंतःकरण उपहित चेतन–इत्यादि),–वेदांत संप्रदायीको सम्यक् ज्ञात होनेसे विस्तार नहीं कियाहे.

कोइ विषयका रूपांतर वा उसी रूपसे पुनरुक्ति रखनेका हेतु, वाचकके श्रमका बचाव, लाभ विशेष और प्रसंग वश हे. जेसा के अपरोक्षत्व ओर ज्ञातृत्व प्रसंगमें हे; अतःवे पूर्वोक्त न्यूनता दोष नहीं हे.

इस ग्रंथमें जोकुछ वेदांतमत विषे लिखा हे वोइ, हिंदी भाषावाले साधारण वाचक जिज्ञासुओंको, झट समझमें आ जावे ओर उपयोग योग्यहो; इस दृष्टिसे सरल प्रकार ओर सुगम रीतिसे संक्षेपमें लिखा हे; अन्यथा वेदांतकीफीलोसोफी. न्याय, जैन, बौद्धादि सर्वकी खंडनकर, सूक्ष्म विचारवालोंके योग्य हे. अतःवाचक महाशयको ध्यान रखनाचाहीए के वर्तमानरूढी अनुसार इस ग्रंथ मात्रके वांचनसे वेदांत पक्षके खंडन वा मंडन करनेको उद्यत न हों. वा उस योग्य, अपनेमें योग्यता नहीं समझलेवें. परंतु हां, जो वेदांत संप्रदायके ग्रंथ,[1] जोके विशेषतः संस्कृत ओर कुछ हिंदीमेंभी हें, उनका ठीक श्रवण मनन ओर कुछभी निदिध्यासन कियाहो तो, उद्यत हों; ओर सृष्टि नियम जान लियेहों तो, खंडन वा मंडनकी

---

१ जेसेकि वेदांत सूत्र, उपनिषद, श्रीमद्भगद्गीता ओर इन तीनोंका भाष्य तथा टीका, चित् सुखी, संक्षेप शारीरक, पंचदशी, ख्यातिवाद, विचार सागर, विचार माला, वृत्ति प्रभाकर, वेदांतादर्श, पदार्थमंजूषा, एकादशस्कंध, उपदेश सहस्री, अद्वैतकौस्तुभ–तत्त्वानुसंधान, योगवाशिष्ट, अष्टावक्र, आत्मपुराण, अनुभूति प्रकाश, अद्वैतसिद्धि, नैष्कर्म्यसिद्धि; वेदांतसार, वेदांत मुक्तावली, स्वाराज्यसिद्धि, विवेकचूडामणी, अपरोक्षानभूति वगेरे—

अपनेमें योग्यता समझलेवें, अन्यथा व्यर्थ विलाप मात्र हे.

मेरे इस ग्रंथ गत लेखके खंडन होनेसे मैं, मेरा अपमान वा निंदा नहीं समझता, क्योंकि १ जेसेकि पराधीन रहना, स्वतंत्र होनेका उपाय नहीं लेना, स्वदेश वा स्वआर्य स्वाभिमानाभाव, हिंदु भाइयोंका स्वभाव पडगयाहे तद्वत् परस्परके खंडन मंडनकाभी हे. एसे स्वदोषको न जाननेवालेकी निंदा, दोष नहीं. २वर्त्तमान विषे अपने (सत्यहों वा नहीं परंतु) संस्कार (खयाल) बाहिर डालने वा पडनेकी धाराप्रवाह होरहाहे उसके विना, कुविरोधियोंका निवारण होना अशक्य होगा, एसा माना जाताहे, सारांश एसी व्यवस्थामें सुनीयतवान प्रयोजककी निंदा, अपमान, निंदा अपमान नहीं ३मेरा उद्देश किसीकी निंदा वा खंडनमें नहींहे; किंतु जो किसीके दरसाये हुये दोष, अपने वा स्वमतमें होंतो, मतवादी उनको निवारण करके पक्षपात रहित सन्मार्गपर आवें वा दरसावें ओर यदि निर्दोष होंतो, अन्य सदोषियोंका परास्त करें वा तदार्थ उचित्त उपाय लें; अर्थात उनके दोष सिद्ध करके प्रसिद्धिमें जनावें ओर उनको समझाके लोक हितार्थ एकमत–धर्मस्थापनका उपायलें. एसे सुउद्देशमें खंडनखंडन, निंदानिंदा, अपमान अपमान नहीं. ए तदृष्टि* अपनेमें अयथार्थ दोषभी सुनके मुझको प्रसन्न होना चाहिये परंतु कब ? जबके उद्देश सफल हो.

क्या अच्छाहो कि जो, इस ग्रंथका लेख अयथार्थ मानतेहों वे भाई, क्लिष्ट शब्द ओर लक्षण रहित, सरल शब्द ओर लक्षण तथा लेख पूर्वक, साधारण लोकोंको बुद्धिमें भी

---

१. २. ३. * जेसी जाकी बुद्धिहे वेसा कहे सुनाय, उसका बुरा न मानिये लेन कहांसे जाय.

आजावे एसे प्रकारसे, ग्रंथ गत शंकाओंका निवारण (ग्रंथके लेखका खंडन) जोकि शब्दोंकी मारामारी मात्र वा अयथार्थ नहो किंतु यथार्थ हो, ग्रंथ लिखित सरल भाषामें लोकोपकारार्थ प्रसिद्ध करें. ओर जो यथार्थ समझें वे, इसको स्वीकारने पर, जैसा योग्य—उचित्त जाने वेसा करें.

दर्शन पहिला—१

(जीव ब्रह्मकी एकताका प्रमाण प्रसंग.)

"जीव ब्रह्मकी एकता हे" इसमें क्या प्रमाण हें? इस प्रश्नके उत्तरमें जो विचार किया जाय तो, यह विषय किसी प्रमाणसेभी सिद्ध नहीं होता हे क्योंकि ज्ञानके साधन—करण-को प्रमाण कहते हें. सो वे प्रत्यक्षादि हें उनमेंसे

(प्रत्यक्षाभाव)

वेदांत रीतिसे "विषय चैतन्याभिन्नं प्रमाण चैतन्यं-प्रत्यक्षप्रमा" यह प्रत्यक्ष ज्ञानका लक्षण हे अब यदि, जीव ब्रह्मैकताके ज्ञानका साधन—करण श्रोत्रादि इंद्रिय, मन वा बुद्धि वृत्ति*को मानें तो, ब्रह्म, इंद्रियादिकका विषय होगा. परंतु "यतो वाचो[१] निवर्त्तंते अप्राप्य मनसा सह" (जहां वाणी ओर मन नहीं जासक्के, एसा ब्रह्म है) तथा "[२]यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्म इत्यादि" (जिसको श्रोत्रादि इंद्रिय ओर मन नहीं विषय कर सक्के—नहीं जानसक्के, किंतु श्रोत्रादि जिस करके प्रेरित होते हें ओर श्रोत्रादिको जो जानता हे वा जिसके विषय हें सो, ब्रह्म हे) इत्यादि वेदांति

---

* यह वेदांत रीतिके साधन हें. वेदांतेतर शास्त्रकारोंके विकल्प (इंद्रिय संनकर्ष, संयोगादि, विषय संबंधादि) का इन्हींमें समावेश होना, जान लेना चाहिये. १ तैतरीयोपनिषद्. २ केनोपनिषद्.

योंकी श्रुति हैं सो, अप्रमाण होंगी. जो यह कहें के वेदांतियोंकी श्रुतिमें "मनसै वेद मासव्यं" (यह ब्रह्म मन करकेही जाना जाता है) मन करके जाननाभी लिखा है. तो, उभय श्रुतिमें विरोध दोष होगा. जो यह मानें के "एक श्रुतिमें संस्कारित–साधन संपन्न–वृत्तिका विधान है ओर एकमें असंस्कारित का निषेध है अतः विरोध नहीं, एसा अर्थ अध्याहार है" सोभी समीचीन नहीं क्योंके उनके सिद्धांतमें मनतो जड है–मायाका कार्य है, जडमें ज्ञातृत्वका अभाव है अतः मनमें ज्ञातृत्वके* अभावको लेके उक्त अध्याहार अर्थकी कल्पना अनुचित है; किंतु विरोधका परिहार नहीं होता. इससे यह सिद्ध हुवाके जीव–ब्रह्म है. सो इंद्रिय ओर मनका (प्रत्यक्ष प्रमाणका) विषय नहीं. ओर जो पूर्वोक्त लक्षण पर दृष्टि डालके विचारें तब तो, अद्वैत पक्षमें प्रासंगिक विषय (जीव ब्रह्म चेतन वा उनकी एकता) गत चेतनसे इतर किसी अन्य विषय चेतन वा प्रमाण चेतनके अस्वीकारसे उक्त लक्षणके लक्ष्य-प्रत्यक्ष ज्ञानका, प्रसंगमें अवसर वा उपयोग नहीं होसकता† निदान पूर्वोक्त उभय रीति करके सहेज विचार बलसे यह परिणाम निकल आता है के उनकी एकतामेंभी प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं. ओर न प्रत्यक्ष प्रमाका विषय.

(अनुमानाभाव.)

जब यूंहै तो, अनुमान प्रमाणकाभी विषय नहीं होसकता. क्योंके उसका विषय जोलिंगी, उसका ज्ञान स्वप्रत्यक्ष लिंगके आधीन है. जेसेके जब कहीं धूम प्रत्यक्ष देखें तब, पू-

---

* इसका विवेचन आगे वांचोगे. वेदांत पक्षमें ब्रह्म,मनादि प्रमाणका विषय नहींहै. एसा मानतेहैं अतः यहां विस्तार नहीं लिखा.

† विशेष आगे वांचोगे.

वैं कालमें धूम अग्निके सहचारका प्रत्यक्ष ज्ञान जन्यजो अनुभवहे उसकूरके व्यभिचार रहित व्याप्ति सहचारकी स्मृति होके "यहां अग्निहे" एसा परोक्ष ज्ञान अनुमानसे होताहे. परंतु जिसने अग्नि ओर धूमके व्यभिचाररहित सहचारके दर्शन नहीं कियेहें उसको धूम देखनेसे अग्निकी अनुमिति नहीं होती. दार्ष्टांतमें विचारनेका यहहेकिः—ब्रह्म किसीका लिंग नहीं ओर न ब्रह्मका कोइ लिंगहे; एसा अद्वैत मतका मुख्य सिद्धांतहे. (जो एसा नहीं मानें किंतु लिंग लिंगी भाव मानें तो, द्वैतापत्ति होतीहे.) ब्रह्म किसोने प्रत्यक्ष [1]देखा नहीं, यह बातभी, अद्वैत मतसे सिद्धहे. क्योंकि वे ब्रह्मसे इतर कोइभी ज्ञान स्वरूप वा साक्षी—ज्ञाता नहीं मानते. ओर मिथ्या माया—अविद्या—अंतः करण उस सत् चित्का साक्षात्, करभी नहीं सकते. अतः ब्रह्म प्रत्यक्षका विषय नहीं. जो कदाचित किसीने उस (ब्रह्म)को देखाहे वा अनुभव कियाहे, एसा मानभी लेवें तो, स्वसिद्धांतका त्याग होगा; क्योंकि "ज्ञाता ज्ञेय भिन्न २ होतेहें" यह नियमहे, इस प्रकार द्वैतापत्ति होगी. ओर अबभी जो अद्वैतवादी उसके अनुभव होने वा अपरोक्ष होजानेकी कहेगा तो, स्वपक्ष त्याग परिणाम निकलेगा. अर्थात् द्वैत सिद्धांत मानलेना पडेगा. तथा वेदांतियोंकी पूर्वोक्त श्रुति अप्रमाण होजायगी.

---

१ योग वा अन्य ग्रंथोंमें जो ब्रह्मको साक्षात् मानाहे सो तो, द्वैतवादकी रीतिसे मानाहे (वा सिद्ध होताहे) अतः उनकी साक्षीकी आवश्यकता नहीं. तथाही यहां प्रसंगमें वेद रुप वा स्वतः प्रमाण रूप जो ग्रंथ नहींहें उन ग्रंथ वा शास्त्रोंका प्रसंग नहीं, इसलिये उनका वा उनकी साक्षीका यहां उपयोग नहीं.

जो, यह कहो के एकतामें अनुमान प्रकार होसकता है; जेसे के, जीव ब्रह्म एकहे, चेतन होनेसे; जहां जहां चेतनत्व, वहां वहां ब्रह्म अभेद. जेसे ब्रह्ममें. इस अनुमानकी साक्षी यहहै कि श्रुति "अद्वितीय-एकहो-चेतन, बतातीहे." यह अनुमान प्रकार समीचीन नहीं किंतु हास्य जनकहे. कहां अनुमान मर्यादा ओर कहां उसमें श्रुति प्रमाण घुसादेना. ओर वोह भी साध्य× ॥ तथा इसका विरोधी अनुमान भीहे. जेसे के, जीव ब्रह्म भिन्नहे. स्वरूप भेद (ब्रह्म चेतन व्यापक, जीव चेतन व्याप्य, परिच्छिन, जीव कर्त्ता भोक्ता अल्पज्ञ, ओर ब्रह्मअकर्ता अभोक्ता सर्वज्ञ इत्यादि) होनेसे. जहां जहां स्वरूप भेदत्व वहां वहां ब्रह्मका भेद, जेसे ब्रह्म नभ ओर परमाणुमें (हम अनुमान प्रमाणमें शब्द प्रमाण नहीं देते; क्योंके सो, अनुमान प्रकारसे विपरीतहे.) उपरांत जो, आग्रह करके वेदांती भाइ, जेसे आद्य ज्ञाता अनुपदेश, विषयसाधनके भिन्न व्यापारकी व्याप्ति अनुभव करके स्वभिन्न अदृष्ट नाना इंद्रियों (रूपादि विषयके चक्षवादि भिन्न करण) का अनुमान करताहे वेसेही, अदृष्ट ब्रह्म ओर जीव ब्रह्मकी एकतामें कोई रीतिसे भी, अनुमानका उपयोग लेगातो, व्यभिचार रहित सहचार व्याप्तिके स्वीकारनेसे स्वसिद्धांत विरुद्ध द्वैतापत्ति मान्नी पडेगी. ओर तिसपरभी व्याप्ति, तद्दर्शन तथा तद्द्रष्टाके विवादका निवारण शेष रहेगा.

निदान पूर्वोक्त प्रकारसे अनुमानका वहां उपयोग नहीं, ओर वेदांती लोकभी इसको ब्रह्म वा ब्रह्म जीवकी एकतामें स्वतंत्र प्रमाण नहीं स्वीकारते; इसवास्ते विस्तार नहीं लिखा. अतः ब्रह्म (जीव) प्रत्यक्षका विषय नहीं होनेसे अनुमानका

× आगे वांचोगे

विषय नहीं. इस रीतिसे ब्रह्म स्वरूप जीव, जीव स्वरूप ब्रह्म, अनुमानका विषय नहीं. इससे यह स्वयं सिद्ध होगया के जीव ब्रह्मकी एकता अनुमानकाभी विषय नहीं.

(शब्द प्रमाणाभाव.)

वेदांत संप्रदाय मान्य षट् प्रमाणोंमेंसे तीसरा शब्द प्रमाणहे; उसका विचार करतेहैं:—तहां, शब्द प्रमाणमें मुख्य वेद (४ संहिता भाग) को मानें तो, उस वेदमें वेदांतियोंके मान्य, जीव ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक 'तत्त्वमसि" "अहंब्रह्म" यह महा वाक्य नहींहैं. वेसेही 'अयमात्मा ब्रह्म' 'प्रज्ञानमानंद ब्रह्म' वाक्यभी नहींहैं; अतः इसमें शब्दप्रमाणभी नहींहे. क्योंके यह वाक्य उपनिषद् ग्रंथोंकेहैं. यदि जीव ब्रह्मकी एकतामें उपनिषद् ग्रंथ प्रमाण मानें तो, वेदरूप न होनेसे उनके साथी आर्यजनको प्रमाण नहींहे.

(उपनिषद्, वेद ओर स्वतः प्रमाण नहीं.)

जो कहोके उपनिषदभी वेद ग्रंथहैं अर्थात् वेदका एक भागहे (ब्राह्मण ग्रंथ गत वेदका ज्ञान कांडहे) सो, यह बात समीचीन नहींहे. अर्थात उपनिषद ग्रंथ उसके वाक्य नहींहैं के जिसके (सर्वज्ञ ईश्वर वा अन्य कोइ पुरुषके वा स्वभावतः स्वयं अनादि) वेद ग्रंथमें वाक्यहैं; अतः वेद अनुयायीकोभी वे स्वतः प्रमाण नहीं. उसका पुरावा नीचे लिखतेहैं.—यदि हमारा शोधन अयथार्थ होतो, युक्ति, सृष्टि नियम, ओर प्रत्यक्ष प्रमाणसे* खंडन करना चाहिये.

छांदोग्य, बृहदारण्यादि उपनिषदोंमें (जिसमें तत्त्व मसि, अहं ब्रह्म, महा वाक्यहे) गार्गी, जनक, उदालक, श्वेत-

* तिन अनुकूल वा तिन अविरूद्ध अनुमानकाभी अर्थापत्तिसे यहां ग्रहण हो सकताहे.

केतु, मैत्रेयी, नारद, सनतकुमारादि और देवकी नंदन (कृ-ष्ण) और अनेक ऋषि तथा राजाओंके संवादरूप इतिहास तथा नामहे तथा ब्रह्म वेत्ताओंकी बंसावलियें लिखीहें; यथा ब्र-ह्मासे मांडुक्य ऋषितक १२पेढी; नाम लेकर जनाइहें, मांडुक्य पुत्र सांजीवसे लेके पौतमाशी ऋषितक ३७ नाम लिखेहें. निदान ब्रह्मासे लेके बृहदारण्य बननेके काल जो विद्यमान पौतमाशी, वहां तक, पचास पेढी बताइहें ओर दूसरे वंशमें हिरण्य गर्भादिसे पौतमाशीतक ६६ छहासठ नाम *जनायेहें. तथा उपनिषदोंमें भूत वा भविष्य प्रत्ययसे कोइभी वाक्य नहींहे. जेसे "तत्त्वमसि" वाक्य प्रसंगमें उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतुको वर्त्तमान प्रत्ययसे उपदेश करताहे; एसा नहीं लिखाहेके उद्दालक ओर श्वेतकेतु हुये वा होंगे, उनका उप-देशहे. वेसेही बंसावलीमें यह नहीं लिखाहे के अमुकको अ-मुकसे ब्रह्मविद्या प्राप्त होगी.

पूर्वोक्त वृत्तांतसे सिद्ध होताहे के उपनिषद ग्रंथ सृष्टिके आरंभ पीछे बहोत काळ पश्चात् बनाये गयेहें. क्योंकि गार्ग्या-दि सृष्टि उत्पत्तिके बहुत काल पीछे हुयेहें. कुछ नहीं तोभी, सृष्टि आरंभके ६६ छहासठ पेढी पीछे उपनिषद ग्रंथ बनाये गयेहें;यह उपनिषद ग्रंथोंसेही स्पष्टहे ओर वेदांती तथा आर्योंको मानना पडेगा. ओर वेदतो, सृष्टि उत्पत्ति कालमेंही हुयेहें, एसा पौराणिक,वेदांती ओर आर्यलोक मानतेहें; अतःउपनिषद ग्रंथ वेदसे भिन्न, मनुष्यकृत होनेसे वेदवत् स्वतः प्रमाण नहीं.

---

* रामायण ओर भागवतमें ब्रह्मासे लेके रामचंद्र तक ६५ पेढी जनाइहें; इससे ज्ञात होताहेके वृहदारण्य, छांदोग्य, रामचंद्रजी महा-राजके आसपास के समयमें बनेहें. वामदेव जनकादि उसी कालमें हुये हें; यह वात रामायण आदि ग्रंथोंसे स्पष्टहे.

यदि उपनिषदोंको ईश्वरकृत मानें सोभी, नहीं बनता; क्योंके ईश्वरको किसीके इतिहास वा साक्षी लेके इतिहास वा संवाद वा वंसावली लिखनेकी अपेक्षा नहींहे. कारण के ईश्वरको स्वतः सर्वज्ञ मानितेहें.

जो कदाचित् स्वसर्वज्ञताके अभावमें इतिहासरूपभी कहताती "उद्दालकादि हुयेथे" 'उन्होंने एसा उपदेश किया वा उनमें एसा संवाद हुवाथा' एसे भूत प्रत्ययसे कथन होता. ओरमानलोकि कदाचित् इसी प्रकारसे लेखहोता तोभी, ईश्वरकी सर्वज्ञता और जीवोंकी साक्षी लेनेसे ईश्वरकी स्वयं प्रमाणतामें बाध आजाता. परंतु एसा लेख नहीं पानेसे उक्त आरोप नहीं करसक्ते. किंतु वर्तमान प्रत्ययके दर्शनसे "भूत कल्पोंमें गार्गी आदि नहीं हुये किंतु वर्तमान कल्पमेंही हुये हें—सृष्टि आरंभ के पीछे हुयेहें." यह सिद्ध हुवा. जोंके मनुष्योंके इतिहास, संवाद ओर साक्षीरूप लेख उपनिषदोंमें हें तथा सृष्टि आरंभके बहोत काल पीछे बनेहें अतः मनुष्यकृत होनेसे ईश्वर वाक्यवत् स्वतः प्रमाण नहीं.

जो, यह मानेंके गार्गीआदि भविष्य कल्पमें होंगे उनका संवाद लिखाहे. सोभी; सिद्ध नहीं होता, क्योंके "उद्दालकादि होंगे" एसा कहीं नहीं लिखाहे. अतः वर्तमानकल्पकेही उद्दालकादि हें ओर सृष्टिके आरंभ पीछे हुये हें. यही समीचीन हे.

जो, यह कहोके "उपनिषद वेदवत् अनादि कालसेचले आतेहें, इसलिये गार्गी उद्दालकादिकोंके कल्पकी कल्पना व्यर्थ हे." यह बातभी नहीं बनती; क्योंके जो, एसा मानेंके "उद्दालकादिक कभीभी नहीं हुये ओर उनके नामसे संवादरूप कथन हे." तो, ईश्वर मिथ्यावादी होगा. ओर मिथ्यावादी-

के वाक्य अप्रमाण होते हैं. जो, एसे कहोकि "कभी किसी कल्पमें हुये होंगे." तो, उस कल्पके पूर्व उपनिषद् नहींथे, यह सिद्ध होगा. अथवा वही दोष (मिथ्यावाद) आवेगा; क्योंके वेद ग्रंथतो, कभीभी नहीं बदलता, कल्पांतमेंभी पूर्ववत् रचाजाताहे (यथा पूर्वमकल्पयत्. इति श्रुतिः), एसा पौराणिक, वेदांती ओर आर्योंका मंतव्य हे. इसरीतिसे उपनिषद्, वेदसे भिन्न मान्नें पडेंगे.

जो, यह मानेंकि "भावी कल्पोंमें उद्दालकादि कभी होंगे" तो, उनके संवादसे ईश्वरको साक्षी लेना व्यर्थ हे, उलटा उसकी सर्वज्ञतामें बाध आता हे. तथा दुराग्रहसे एसा मानभी लेवें तो, भविष्य प्रत्ययसे संवादका कथन होता. जो "भविष्यको वर्त्तमान प्रत्ययसे लिखें हैं" एसा कहोगे, तो ईश्वर मिथ्यावादी वा छलीवा भूलवाला ठेरेगा. अनहुयेको साक्षीसे ज्ञान कथन वेदरूप नहींकहाजासक्ता, किंतु पूर्व श्रुत मानना पडेगा. बंसावलीमें नाम लिखे हें उनको भविष्य वक्ता ईश्वरके रखे हुये मान्नेसे, जीवकी स्वतंत्रता ओर नाम कथन—संज्ञामात्र का निषेध होजायगा. (इसका वृतांत आगे वांचोगे.)

जो, यह कहोकि उपनिषद् अनादिसे (संहितावत्) एसेही चले आतेहें, पूर्व उत्तरकी कल्पना नहींकीजासक्ती तो, "यथा पूर्वमकल्पयत्" (पूर्ववत् सृष्टि रचीजातीहे) श्रुति के अनुसार जिनजिन बंध मुक्त पुरुषोंका इतिहास उपनिषदोंमेंहे उनउनका जन्म, कल्पप्रति नित्य होनाचाहीए. जब यूं हेतो "[1]ब्रह्मज्ञानसे मोक्ष होतीहे, पुनरावृत्ति नहीं होती" यह नवीन वेदांतियोंका सिद्धांत व्यर्थ होजायगा. क्योंके उद्दालक ओर श्वेतकेतु तथा याज्ञवल्क्यादिको जब तब

---

१ "ज्ञाना देवतु कैवल्यं." "नस पुनरावर्त्तते" इत्यादि श्रुति.

किसी कल्पमें) यथार्थ ज्ञान प्राप्त हुवा, एसा उपनिषदोंमे सिद्धहे. फेर उनका जन्म क्योंहो. जो, यह कहोके अधिकारी पुरुषोंका कितनेक कल्पतके जन्म होताहे तोभी, उक्त दोषका परिहार नहीं हुवा; अर्थात् गत श्रुतिसे तो, अनंत कल्पों तक नित्य जन्म होना कहना पडेगा. जब यूं हे तो, उद्दालकादिका जन्म मरण अनादि अनंत रहना चाहिये. क्योंकि जबतब किसी कल्पमें ज्ञान होनेकर मोक्षको सादी मानके अनंत मानना ओर उद्दालकादिककी बंधको अनादि मानके सांत कहना, यह सृष्टि नियमके प्रतिकूलहे. अतः उद्दालकादिकको ब्रह्मज्ञान नहीं हुवा, एसा मानना पडेगा. वा ब्रह्मज्ञानसे कुछभी फल नहीं हुवा, एसा स्वीकार करना पडेगा. क्योंके गर्भवास ओर शरीर पास, यही मुख्य बंधहे. सो, उनको प्राप्त होतारहताहे. जो, यह कहोके वे अज्ञानरहित ज्ञान स्वरूप, स्वेच्छासे जन्म लेतेहें. वस्तुतः मोक्षहें; तो, वे सदा मोक्ष स्वरूप हुये, एसा मानना पडेगा. जब यूंहे तो, उनको कभीभी बंध न प्राप्त होनेसे श्वेतकेतुको उपदेश निष्फल हुवा, एसा सिद्ध होगा. ओर उपनिषदोंमें तो, अनेक प्रकारसे उसको उपदेशहे. अतः वे नित्य मुक्त नहीं कहेजासक्ते. जो, यह कहोकि लीलारूप संवादहे तो, नित्य मुक्त ब्रह्म स्वरूपका जन्म होना मानना पडेगा, क्योंके वे अपनेको तो, सदा "अहंब्रह्म" जानतेथे तब "सो तूं हे" एसा वारवार कथनरूप लीला, बने नहीं, कारण यहके, वेदांतकी रीतिसे उनकी दृष्टिमें "सर्व ब्रह्मस्वरूपहे, ब्रह्म नित्य मुक्त ओर शुद्धहे. उसको उपदेश असंभवहे ओर तद्भिन्नको मुक्ती नहीं किंतु मिथ्याहे इत्यादि" समाया हुवा होना चाहिये अतः लीलारूप कथन व्यर्थ वा बकवाद होगा. इस रीतिसे उप-

निषदोंका अनादित्व सिद्ध नहीं होता.

जो, उद्दालकादिकका संवाद वर्तमान कल्पकाही मानें तो, सृष्टिके बहोत काल पीछे उनकी उत्पत्ति होनेसे उनके इतिहास वा संवादके वक्ता उपनिषद्, वेदरूप नहीं हुये. तथा हि "मनुका वचन औषधीकी औषधी हे." इत्यादि ब्राह्मण ग्रंथोंके वाक्योंसे, वेद ग्रंथको साक्षी प्रद मनुस्मृतिके कर्त्ता मनुमहाराजके पीछे, ब्राह्मण ग्रंथ बनेहें यह स्पष्ट हे.*

ओर उपनिषद् बननेके पूर्व लाखों वर्षोंमें जो ज्ञानवान हुये उनको ज्ञान नहीं हुवा, एसा "तंत्वौपनिषद पुरुषं पृच्छामि" इत्यादि वाक्यों करके सिद्ध होजानेसे उपनिषद् गत ब्रह्मज्ञान—परविद्या प्राप्त करनेवाले ज्ञानियोंकी जो बंसावली लिखीहे सो, झूठ हे; क्योंके वेदांती लोक उपनिषद् गत तत्वमस्यादि महावाक्योंसे इतर के, ब्रह्मज्ञानका अन्य साधन नहीं मानतेहें—ओर पूर्वकालमें तो, उपनिषद नहीं थे. अतः क्यातो, तत्त्वमस्यादि वाक्यवक्ता उपनिषद्के विनाभी, ब्रह्मज्ञानका अन्य साधनहे, एसा मानना पडेगा. अथवा तो, उक्त बंसावली कल्पितहे, एसा स्वीकारना पडेगा; उभय प्रकारसे उपनिषद ग्रंथोंकी वेदरूपताका बाधहे.

जो, एसा मानेंके "ईश्वरका ज्ञान अनित्य हे, जीवोंके कर्मों अनुसार सृष्टिके आरंभकालमें उत्पन्न होता हे, ओर एक कल्प पीछे उसका अभाव होता हे. इस रीतिसे वेद उपनिषद इस कल्पके वास्ते हें ओर इस कल्पमें रचे गये हें. अनादि अनंत नहीं हें" तोभी, ईश्वरोक्त सिद्ध नहीं होते, क्योंके जिनका उनमें इतिहास वा संवाद हे, वे सृष्टिके आरंभ पीछे

* विशेष पूरावे देखने हों तो, स्वामी दयानंदकृत वेदभाष्य भूमिका ओर सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ बांचो.

बहुतकाल पश्चात हुये हैं. औरभी पूर्वोक्त (साक्षी लेनेसे ईश्व-
रकी अप्रमाणता, अनहुयेका संवाद इत्यादि) दोष आवेंगे.

जो, ईश्वरका ज्ञान नित्य मानें तो, पूर्वोक्त सर्व दोष (मु-
क्तका जन्म, पूर्ववत न रचना इत्यादि) प्राप्त होजावेंगे.

जो, उपनिषदकर्ता-ईश्वरको असर्वज्ञ मानें तो, उसके वा-
क्य स्वतः प्रमाण नहीं होसक्ते. औरभी विचारो के नारद-
ऋषि, सनत्कुमारसे कहता है कि मैंने ऋग्, यजु, साम औ-
र अथर्व यह चारुं वेद और सिक्षा कल्पादि पढे, परंतु मेरी
शांति नहींहुइ (देखों, छांदोग्य). मुंडक उपनिषद गत "त-
त्रापरा" इत्यादि वाक्योंमें ऋगादि चारुं वेदोंको अपरा
विद्या लिखा है. (पराविद्या-ब्रह्म विद्या नहीं कहा है)

केनोपनिषदमें "इति सुश्रुम पूर्वेषां" (इस प्रकार पूर्वपू-
र्वके महात्माओंसे सुनते हैं) वाक्यसे स्पष्ट जानाजाता है कि
उपनिषद् ग्रंथ बननेसे पहिलेभी ब्रह्मविद्याके ज्ञाता थे. केनमें
भी "उपनिषदंभो ब्रूहो" अर्थात् शिष्य प्रश्न करताहे के उ-
पनिषद कहो; तब गुरुने उत्तर दिया कि, जो एक कहीहे दूसरी
कहता हूं. यदि उपनिषदका अर्थ ब्रह्मविद्या करें तो, वहां-
भी ब्राह्मी उपनिषद् कहनेका लिखा है. निदान उक्त प्रसंगसे
भी, इस केननामक ग्रंथसेभी, उपनिषद् कोइ भिन्न ग्रंथ होना
सिद्ध होता है.

कठवल्लीमें मृत्यु नचिकेताको उपदेश करता है "मृत्यु
र्धावति पंचम" मृत्यु आपही यदि उपदेष्टा होतो "मैं" पदही
कहेता. इससे यह जाना जाता है कि यह आख्यायिका अ-
न्य कोइकी बनाइ हुई इसग्रंथमें डाली गई. वा बनानेवाला
मृत्युसे अन्य है.

प्रश्नोपनिषदके प्रारंभमें भाष्यकार कहतेहैं कि "अथ-

वेण वेदके मंत्रोमें जो कहाहे उनका विस्तारसे अनुवाद करने वास्ते इस ब्राह्मण ग्रंथका आरंभहे.''–महात्मा शंकराचार्य भी वेद मंत्रोंसे ब्राह्मण भाग भिन्न होना स्वीकारतेहै; फेर क्या!

मुंडक उपनिषद विषे अपराविद्यामें चार वेद गिनेहें, ओर प्रश्नोपनिदमें तथा अन्य स्थलोंमें तीन वेद गिनेहें, इससे सिद्ध होताहे केः–सब उपनिषदभी एक कालमें नहीं बनेहें, उन्होंके बननेमेंभी बहोत वर्षोंका अंतर होना चाहिये. ओर पाहिले तीन वेद प्रसिद्धथे, काल पाके चार वेदकी प्रसिद्धि हुइ मानें तो, जिस ग्रंथमें तीन वेद लिखेगयेहें उससे बहुत काल पीछे 'चार वेद बतानेवाले ग्रंथ' बनेहें, एसा सिद्ध होताहे. ओर जिसमें वेदकी गिनती बताइहे व्हो ग्रंथ वेदसे भिन्नहे, एसा तो मूर्ख जनभी समझ सकतेहें. शिक्षा आदि छ अंग वेदके पीछे होनेका सबको मान्यहे; तो, जिसमें शिक्षा आदिको विद्यमानता बताइहे सो ग्रंथ, उनके पीछे बनाहे, एसा सहेज समझमें आजाताहे.

तैत्तिरीयोपनिषदमें ''शिक्षां व्याख्यास्यामः'' एसे बहुत मनुष्य मिलके शिक्षा देतेहें. ओर कहीं तो, हम दोनोंको प्रशादि प्राप्तहों, वेसी स्तुति कीहे. फेर कहाहेके ''संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः (हम संहिताका उपनिषद कहतेहें) इससे, सो लेख एकसे ज्यादे मनुष्योंने मिलके तैयार कियाहो ओर संहितासे उपनिषद भिन्नहों, एसा स्पष्ट सिद्ध होताहे.

तैत्तिरीय, आपही ऋषीकृत होना कहताहे–''एतददि विधाय ऋषिरवोचत'' (ऋषि–महात्मा–यह उपदेश करतेहें)–एसा ग्रंथकार आपही कहताहे. ओर इस उपनिषदमेंही राथीतर, पौरुशिष्टि, मोद्गल्य आदि ऋषि आचार्योंका

मत बताके-साक्षी लेके-धर्मोपदेश कियाहे. और ऋषि साथ मिलके उपदेश करतेहें केः-"नो इतराणियेके ब्रास्म च्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः तेषांत्वया आसनेन प्रश्वसितव्यम्" इत्यादि.-हमसे इतर जो हमसे उत्तम ब्राह्मण होवे उसका आसनसे आश्वासन करना. इत्यादि वाक्योंसे, उपनिषद् ऋषिकृत हें, एसा ध्यानमें आजाताहे. मात्र दुराग्रह छोडके निष्पक्षपात सहज विचार करनेकी आवश्यकताहे. उसग्रंथके बनानेवाले ऋषि, अभिमानरहित हुये समझ रहेहें के हमसे श्रेष्ठ ब्राह्मणभी होंगे वाहें. अर्थात् वोह ग्रंथ ईश्वरकृत मानना, सर्वथा ईश्वरपर अन्यायारोप करना वा हठ मात्रसे दुराग्रहहे.

ऐतरेयोपनिषदमें "तदुक्तं ऋषीणां" (सो ऋषीने कहा हे) एसा स्पष्ट लिखा हे.

भृगु वरुणका संवाद, मृत्युनचिकेताका संवाद, वामदेवका अनुभव, सनत्कुमार नारदका संवाद, जनक याज्ञवल्क्यका संवाद, इत्यादि बहुत साक्षीसे यही सिद्ध होताहे कि जिसमें जिसका संवाद वा नाम आता हे, सोग्रंथ, उससे पीछे वा उस कालमें बना हे. अतः "सृष्टि उत्पत्तिके लाखों वर्ष व्यतीत हुये पश्चात् उक्त ग्रंथ तैयार हुये हें." एसा सिद्ध होगया.

औरभी अनेक पुरावेसे स्पष्ट सिद्ध होता हे के जिन ग्रंथोंमें वेदको इतर कहाहे, वा वेद ग्रंथको जिनमें चर्चाहे वे ग्रंथ, वेदसे भिन्नहें. अब क्योंकर मानेंके उपनिषद वेद हें वा वेदका भाग हे.

जो, कहोके जेसे ईशोपनिषद यजुर्वेदका चालीसमा अध्याय हे-(इसीको वाजसनेयसंहितोपनिषद् कहेते हें,) वेसे अन्य उपनिषदभी समझो, यह वार्ताभी नहीं बनती. क्योंके

जेसे वेद ग्रंथोंके अध्याय, वर्ग, सूक्त इत्यादि विभाग हैं उनमें ईशोपनिषदवत् अन्योंकी गणना नहींहे. ओर वेदके तो, पद पदकी गणनाहे उस गणनामें ईशावास्यादि मंत्रोंके सिवाय अन्यकी गणना नहीं हे. अतःअन्य उपनिषद वेदरूप नहीं.

जो कहोके कितनेक मंत्र जो, वेद संहितामेंहें वेही उपनिषदोंमें हें अतः वेदरूप हें. इसका उत्तर यहहे के वे, संहिताके मंत्र लियेहों. यदि यह वास्तवमें उपनिषदके होते तो, जेसे उपनिषदोंमें वेदोंके नाम ओर साक्षी हें; वेसे, संहिताके मंत्रोमें उपनिषदोंके नाम लेकर लेख होता; सो नहीं हे. किंतु "तंत्वौपनिषदं पुरुषंपृच्छामि" इत्यादि उपनिषद वाक्योंसे उलटा यह सिद्ध होताहे के उक्त वाक्य सूचक ग्रंथसे भिन्न, उपनिषद ग्रंथ हें ओर व्यवहारमें तो, इस वाक्य सूचक ग्रंथकोभी उपनिषद कहतेहें. यदि उपनिषद कोइ ग्रंथ नहीं किंतु ब्रह्म विद्याका नाम वा अन्य अर्थ मानें, तोभी, जिस ग्रंथमें यह वाक्य हें उससे भिन्न, सोहोने योग्य हे. यहां उपनिषद नामसे प्रसिद्ध 'ग्रंथ'–शब्द प्रमाणकी चर्चाहे.

जो, यह कहोके जिननामोंसे इतिहास सिद्ध करतेहो उनका अर्थ अन्य अलंकार रूपसे होगा. जेसेके "यक्षका रूपालंकारसे उपनिषदमें वर्णन हे." तो, मुझको यह कहनेका हे कि, जब तक शुद्धार्थका निर्णय करके प्रसिद्ध नहीं करो वहांतक तत्त्वमस्यादि महावाक्योंका अन्यहो अर्थ हो, एसा क्यों न माना जाय?

जो यह कहोके उपनिषद, वर्तमान कल्प विषे कभीभी बने हों. परंतु उसमें जो कुछ ऋषियों करके कथन हे सो, स्वेच्छासे नहीं; किंतु ईश्वर प्रेरित हे. अतः उनके वाक्य स्वतः

प्रमाण हैं. सो वारताभी नहीं बनती. क्योंके परस्परके संवादोंसे यह निर्णय नहीं कर सकोगे के ईश्वर प्रेरितकोनसेहैं और अप्रेरित कोनसे हैं. जेसेके नारद सनत्कुमारके संवादमें "वेद पराविद्या नहीं" यह वाक्य ईश्वर प्रेरित मानते हो अनेक दोष आवेंगे. किंवा सर्वके कथन, इतिहास ईश्वर प्रेरितही मान लियेजावें तो, अरेबियन नाइट, पंचतंत्र, बायबल, कुरानभी ईश्वर प्रेरित समझके चुप रहना पडेगा. किंवा जिसकाल ईश्वरने प्रेरा, उस क्षणमें उस ऋषि (जिसके हृदय में प्रेरा) को सुधथी वा नहीं? जो कहो के अपनी और वाक्योंकी सुध (ज्ञान) थी तब तो, उसीके प्रेरित सिद्ध होजायंगे. और न्यूनाधिकता आनेसे प्रमाण रूप नहींहोंगे. उत्तर पक्ष मानो तो, उन वाक्योंके अर्थ वहीहैं, वा ईश्वर अचिंत्य कलाका रहस्य अन्य है, यह निर्णय करना कठिण होजायगा. जो कोइ रीतिसे ईश्वर प्रेरित मानभी लेवेंतो, यह ग्रंथ वा मेरे रचे हूये ग्रंथमात्र ईश्वर प्रेरित नहीं माननेमें क्या हेतु दोगे? अर्थात् जो जो हेतु दोगे, वे सर्व, उन ग्रंथों वास्तेभी लगसकेंगे. और जब यथार्थता वा युक्ति प्रमाण पर आवोगे तो, आपका मंतव्य कपूर (उडता है वेसे) होजायगा.

जो, यह कहो के "जेसे मनुस्मृति ग्रंथ बहूत प्राचीन कालका होनेसें उसमें घालमेल (क्षेपक श्लोक)-"नमांस भक्षणे दोषो न मद्येनच मैथुने" इत्यादि हैं, वेसे उपनिषदोंमेंभी होगा; अतः क्षेपक भाग त्यागके अन्यके ग्रहण करनेसे उक्त दोष नहीं आवेंगे." तो, स्वपक्षका त्याग होगा; क्योंके वामदेव उद्दालक, श्वेतकेतुका संवाद निकालनेसे तत्वमस्यादि महा वाक्य क्षेपक जानके निकाल देने होंगे. जोइसको क्षेपक नहीं जानके रखोगे तो, जितने ईतिहास गत उपर दोष लि-

खे हैं वेसर्व, प्राप्त होंगे तथाहि जेसे एकमण आटेमें अर्ध सेर सोमल मिळजावे तो, उसको त्याग करना पडताहे. वेसेही उपनिषदका त्याग करना पडेगा. नहीं तो, महाहानी होजायगी.—सत्यासत्यका त्याग ग्रहण यथायोग्य नहींहोगा. एतद्दृष्टि (पूर्वोक्त कारणोंके विवेकसे) तत्त्वमस्यादि वाक्य बोधक उपनिषद ग्रंथ, वेदरूप (ईश्वर कृत वा प्रेरित वाक्य) नहीं. स्वतः प्रमाण नहीं. किंतु सृष्टि आरंभ मानें तो, केनादि उपनिषद ग्रंथ सृष्टि आरंभके बहुत (हजारो वा लाखों) वर्ष पीछे मनुष्योंने बनाये हैं, यह स्पष्ट सिद्ध होताहे. यद्यपि वेदांतियोंको मान्य ईशादि दस उपनिषदोंके बननेका एक काल नहीं होगा तथापि "तत्त्वमसि" बोधक छांदोग्य ओर "अहंब्रह्म" बोधक बृहदारण्य तो, सृष्टि आरंभके दद पेढी पहिले नहीं बने किंतु पीछें बने हें. यह बात निर्भ्रांत सिद्ध होजाती हे.

(सू.) अनेक नाना ऋषिओंके काळांतरसे बनाये हुये उपनिषद ११२७ ग्रंथहें उनमेंसे १०८ ग्रंथ ज्ञान भागमें हें,* इनमेंसे ५२ उपनिषद प्रसिद्धिमेंहें, उनमेंसे ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडुक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, वृहदारण्य, यह दस उपनिषद, वेदांती प्रमाण गिनतेहें, उनमेंसे ईशोपनिषदतो यजुर्वेदकी चालीसवीं ४० अध्यायहे. शेष ऋषिकृत ब्राह्मण ग्रंथोंके भाग गतहें. ओर ५२ बावनमेंसे इन दस उपनिषदोंसें जो इतर, वे इन दसोंके पीछे बने हें; इसलिये पूर्वोक्त शंका—दोष जिनजिन उपनिषदोंमें प्राप्त होसके, उनउनमें यथोचित लगालेना चाहिये.—सर्वदोष सर्व उपनिषद् वास्ते नहीं समझना चाहिये.

---

* एसा ग्रंथोंमें लेख पातेहें.

जो उपनिषद पदमात्रके अक्षय-अर्थ-वाच्यमें विवाद लोगे तो, कुरानी-मुहम्मद मत सिद्धकर, अल्लोपनिषदभी (जिसमें "महंमदं रसूलं अकंबरं" आदि मंत्ररूप लिखे हैं) प्रमाण माननेसे, कुरानी मतभी मानलेना पडेगा अतः यहां पद मात्रकी चर्चा नहीं समझ लेना."

(उपनिषद् ग्रंथ, परतःप्रमाण प्रसंग)

यदि कहोके "उपनिषद वेदरूप मतहो और स्वतः प्रमाणरूपभी मतहो, परंतु परतः प्रमाणरूपतो हो; क्योंके ऋगादि ४ संहितारूप वेदग्रंथ ईश्वर प्रेरित स्वतः प्रमाण हैं, एसा आर्य लोकोंने सिद्ध कियाहे. यद्यपि वेदांती ओर पुराणियोंकी रीति वा अर्थ अनुसारतो, पूर्वोक्त दोष ऋगादिमेंभी प्राप्त होते हैं. जेसेकेः-ऋग्वेदमें वृत्रासुर और इंद्रकी लडाइ हे, "त्र्यायुषं जमदग्ने" इत्यादि मंत्रोंमें जमदग्नि नामा ऋषिकी चर्चा हे, कश्यपादि ऋषियोंकी चर्चा हे, सुरासुरके संग्रामका इतिहास हे. इत्यादि अनेकोंके इतिहास वेदोंमें हैं; अतः पूर्वोक्त दोषसे ग्रस्त हैं. तथापि इन मंत्र ओर प्रसंगोंके अर्थ अन्य हैं (देखो दयानंद कृत भाष्य ओर कुमारिल भट्टके किये हुये अर्थ)-प्रसंगमें वृत्रासुर, मेघका ओर इंद्र, सूर्यका नाम हे, बादल बनने ओर वर्षा होनेका प्रकार जनाया हे. वोह प्रसंग, वृत्रासुर नामा असुर ओर इंद्र नामा सुरपतिका इतिहास नहीं हे. किंतु पदार्थ विद्यामें रूपालंकारहे. जमदग्नि ईश्वरका नाम हे. कश्यप प्राणके अर्थमें हैं. उत्तम पुरुषोंको सुर ओर दुष्ट, नीच, दस्यूको असुर कहतेहैं, उभयकी रूपालंकारसे चर्चा हे. किसीका इतिहास नहीं हे.

इत्यादि प्रकारसे अन्य स्थल*मेंभी जान लेना. विस्तार भयसे ओर निरुपयोगी जानके नहीं लिखते. जिसको देखनाहो वोह दयानंद स्वामी कृत ऋग्वादि वेद भाष्य भूमिका और उसका बनाया हुआ ऋग् यजुर्वेदका भाष्य देख लेवे. उसमें वेदके ईश्वर प्रेरित होने ओर स्वतः प्रमाण होनेमें अन्यभी अनेक शंका समाधान लिखेहें. महीधर, सायन, मोक्ष मुलरादिने वेदके षडांग यथार्थ नहीं जानके प्राचीन महर्षियोंके अर्थको नहीं समझके वेदोंके अर्थ बिगाडदिये हें, परंतु स्वामी दयानंदजीने उनके अर्थके दोष और अन्यवादियोंकी शंकाका समाधान सविस्तृत लिखके वेदकोस्वतःप्रमाण सिद्धकर बताया हे; अतः वेद सर्वमे आद्य ग्रंथ, इतिहास ओर पर साक्षी विनाका, पक्षपात रहित, सर्व सृष्टिके उपयोगी, सर्व सत्य विद्याओंका भंडार ईश्वरी ज्ञानका निर्दोष पुस्तक हे. उस स्वतः प्रमाणरूप पुस्तक गत यजुर्वेदके अध्याय ४० मं-१६. (ईशोपनिषद) में लिखा हे के "योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि" (जीव कहता हे के जो यह आदित्य मंडल विषे पुरुष हे सो यह में हुं); वेदके इस आशयको लेके जीव ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक "तत्त्वमसि" "अहंब्रह्म" इत्यादि महा वाक्य कहे हें, अतः परतः प्रमाणरूप उपनिषदके वाक्य, प्रमाण होनेसे वेदानुयायी को मान्य हें" इति पूर्वपक्ष.

सो वार्ताभी समीचीन नहीं होसकती—यद्यपि वेदांति-

---

* जेसे वेदमें अग्नि, सूर्य, चंद्र, इंद्र, अश्व, वरुणादिकी जहां स्तुति प्रार्थना हे सो, जड वा जीव विशेषकी नहीं हे किंतु निराकार व्यापक ईश्वर चेतनकी हे अर्थात अग्नि आदि ईश्वरके नामभी हें, एसा जानना.

यों प्रति संहिताकी स्वतः प्रमाणताका प्रसंग नहीं
वे उसको अपराविद्या मानतेहैं तथा यहां केवल उपनिष-
दोंका प्रसंग हे. तथापि वे लोक यजुर्वेदकी अध्याय ४०
को उपनिषद मानते हैं और कोईभी अन्यपक्षकारों (आर्यस-
माजी) के सिद्धांतको लेके स्वपक्षको सिद्ध करना चाहें,
एतदृष्टि वेद विषयमें प्रवृत्ति होनेसे संक्षेपमें लिखते हैं:—

वेद प्रमाण प्रसंग.

"इति शुश्रुम धीराणां (यजु. अ. ४०)–(एसा हमने धी-
र पुरुषोंसे सुना हे). इति ब्रह्मविदो वदंति (अथर्व)–(एसा
ब्रह्मवादी पुरुष कहते हें). तस्माद्यज्ञात्सर्व हुत ऋचः (पुरुष
सूक्त)–उस परमेश्वरसे ऋग् यजु साम ओर अथर्व–चारुं वेद
उत्पन्न हुये." इत्यादि अनेक वाक्य ओर युक्तियोंसे स्पष्ट
होताहे के वेदोंमें किसीकी साक्षी हे. जो एसा नहीं मानें
तो ईश्वर मिथ्यावादी होताहे; क्योंके हमने बुद्धिमानोंसे सु-
नाहे, एसा कहना ईश्वर प्रति अघटित हे. अतएव अन्यका
कथनही सिद्ध हुवा. अर्थात् किसी वा कोइभी बुद्धिमान मनु-
ष्यसे सुनाहे, एसा बलात्कारसे मानना पडेगा. यदि यह मा-
नेंके ईश्वर जीवोंको उपदेश करताहे के, तुम एसा कहो कि
"सो हमने धीर पुरुषोंसे* सुना हे," तो ईश्वर मिथ्यावादी
हुवा. क्योंके वेद, आद्य उपदेश कहतेहो ओर मनुष्य तो पी-
छे उत्पन्न हुये हें. जो धीर पुरुषोंसे सुने पीछे ईश्वरका लेख
मानो तो, पूर्वोक्त (उपनिषिद प्रसंगमें जो लिखे हें वे) दोष

---

* बहुवचन होने ओर धीर पद आनेसे [धीर पुरुषों] ईश्वर
वाचक नहीं किंतु, ईश्वर भिन्न अनेक मनुष्य–जीव विशेषका वाच-
क वाक्य हे.

आनेसे स्वतः प्रमाणताका बाध होगा. जो वेद ओर मनुष्य– उभय साथके साथ मानो तोभी, उक्त दोष निवारण नहीं हो-ता, यह स्पष्टही हे.

जिस ग्रंथमें यह लिखा हे के, उस ईश्वरसे ऋगादि उत्प-न्न हुये; सो ग्रंथ, ऋगादिसे भिन्न होना चाहिये. अतः प्रचलि-त वेद ग्रंथ, ईश्वर प्रेरित नहीं. जो कहो के जीवोंको ईश्वर उ-पदेश करता हे तो "यथेमां वाचं कल्याणि" (यजुः) वत् "यह ऋगादि मुझसे उत्पन्न हुये" एसा लेख होता. परंतु वे-सा नहीं होनेसे कोइ भिन्न ग्रंथ होना चाहिये. अथवा तो किसी नयोग्य विद्वानका रचा हुवा होना चाहिये. अथवा सं-हिता वा तदंतर सूक्तादि विभाग भिन्न भिन्न मनुष्योंके रचे हुये थे; उनको किसीने एकत्र किया.—इस समूहसे भिन्न वेद हे. वा इस समूहमें आपके ईश्वरका प्रेरित भागभी हो, इसकी त-करार यहां नहीं हे; परंतु उक्त वाक्य ईश्वर प्रेरित नहीं हैं यह स्पष्ट हे.

जो वेदको अनादि अपौरुषय मानोगे, तो मीमांसा ओर सांख्य मतका स्वीकार होगा. स्वपक्ष त्याग होगा. सत्य ओर अनंत होनेसे द्वैतापत्ति होगी. तथाही उसका उपदेश वा ज्ञान मनु-ष्योंको अनादि परंपरासे केसे हुवा, यह निर्णय होना कठिन होगा.

जो वेदको पौरुषेय (नित्यज्ञानवाले ईश्वर कृत वा प्रेरि-त वा आकाशवाणी द्वारा उपदेशक) मानोगे, तो न्याय मत स्वीकार होगा. ओर नित्य ज्ञानवाला ईश्वर अनादि अनंत सत्य होनेसे तथा उसके गुणका उपयोग नित्य मानना पड-नेसे प्रकृत्यादिको नित्य मानना पडेगा. उससे द्वैतापत्ति होगी. तथा किस प्रकार उपदेश किया, इसका निर्णय नहीं बता स-कोगे. जो मूर्तिमान होके उपदेश किया मानोगे तो, व्यापककी

मूर्त्ति न होसकनेसे पक्ष असमीचीन रहेगा. जो आर्य समाजियोंके समान–वाजिंत्रवत् हृदयमें प्रेरा मानोगे वा सीखे सिखाये मनुष्य उत्पन्न किये, एसा मानोगे तो, ईश्वरने प्रेरे, एसा सिद्ध नहीं होसकेगा; किंतु मंत्र वक्ताकी चालाकी वा मूर्ख जंगलियोंके सामने स्व रचनाको प्रमाण मनाने वास्ते रचना रचो, यह सिद्ध होगा. वेद मंत्रके अनिच्छित उच्चारण कालमें उसके पद पदार्थका ज्ञान केसे हुवा, यह नहीं बता सकोगे. जो योग ध्यान होकर ऋषियोंको अर्थ ज्ञात हुये, एसा मानोगे तो, पुनः चालाकी सिद्ध होगी. इसी प्रकार आकाशवाणी द्वारा माननेसेभी दोषापत्ति होगी.

जो ईश्वरको ओर उसके ज्ञानको अनित्य मानके सृष्टिके आरंभमें उपदेश होना मानोगे, तो परोक्ष उपदेश करनेमें तो उक्त दोष आवेंगे. ओर मूर्तिमान होके उपदेश करनेमें ईश्वरकी परिच्छिन्नता सिद्ध होनेसे ईश्वरत्वका बाध होजायगा.

उक्त सर्व विकल्पोंमें शब्द, पदोंको रचना ओर पद पदार्थोंके संबंधका ज्ञान, किस प्रकार हुवा सो, संशय रहित यथार्थ सिद्ध नहीं करसकोगे. अंतमें, गडबडी कुरान बायबल समान वेदको मनुष्य घडत मानना पडेगा. हां, यथार्थ हे वा अयथार्थ हे, इतने अंशमें कुरानादिके साथ तोलना वा समान करना हमारा दुराग्रह वा अज्ञान मान लेंगे.[1]

जो कदाचित हठसे मानभी लेवेंके, वेद ईश्वर प्रेरित वा उपदेशित हे, तो उसको एसे करनेका कारण क्या ? उसका उत्तर यही दोगे के "जीवोंमें सर्वज्ञ उपदेष्टा विना यथार्थ विशेष ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होसकती, उनमें सामान्य ज्ञानसे

1 वेद ओर कुरानादि वांचके स्वयं निर्णय करलोगे. कहां वेद ओर कहां कुरान; सोना, रती गिनें नादान.

इतर, विशेष ज्ञान स्वयंपानेकी योग्यता नहीं हे. अतः उनके उपकार उन्नत्ति अर्थ उपदेश हे." जब एसा मान लेवें तो, जेसे के आद्य उपदेशक विना, पहेले पहिले सद्विद्या–सद्विशेष ज्ञान मनुष्य नहीं पासकते तो; झूट छल कपटादि महान* विशेष ज्ञान केसे पासके होंगे ? अर्थात् वोहभी किसी आद्य गुरुसे मिला होगा. इसके उत्तरमें क्या तो एक फिरके (पंथ) समान दोखुदा (भलाइका एक, बुराइका दूसरा) माननें पडेंगे. अथवा वेदोपदेशकही असदादिकाभी शिक्षक मानना पडेगा. जो यह कहोकि सद्विशेष ज्ञान होने पीछे स्वतंत्र जीवने स्वेच्छासे असदादिकी रचना कीहे. तो में यह कहूंगा के जो उनको विशेष ज्ञान न मिलता तो, असद् कर्म गणमें प्रवृत्त नहीं होते; अतः सदुपदेष्टा उनके अपराध करानेमें सहायक हे. जो यह कहोगे के आद्य उपदेशकने सत्य असत्यका स्वरूप ओर विवेक बताके विधिको कर्तव्य कहा ओर असदादिको निषिद्ध कहके वर्ज दिया; फेर जो जीव स्वेच्छासे असद्कर्म करे, उसमें माता, पिता, गुरु वा ईश्वरका क्या दोष हे. इसके उत्तरमें मेरा यह प्रश्न होगा कि, यदि वोह असदादिका विवेक नहीं करता तो, जीवोंको असदादिके संस्कार न पडनेसे अनिष्टमें प्रवृत्ति नहीं होती; अतः सदुपदेष्टा, अपराधमें सहायी हुवा. क्योंके ईश्वरको तो यह ज्ञान था के इनमें रागादि स्वभावसे हें. अतः असद् संस्कार पडनेसे अनिष्टमें-

* सद्धर्म तो कोई एकहोगा, क्योंकि सत्य एकही होता हे.– नाना नहीं, किंतु झूटही नाना होसकती हें. निदान झूट छलरूपी नाना पंथ ओर मतमें, किरोडान किरोड मनुष्य फंसाये फंसे हुये हें जिस विशेष ज्ञानसे, वोह क्या सामान्य ज्ञान किंवा छोटासा विशेष ज्ञान होगा ? नहीं. यह आप विचार सकते हो.

भी प्रवृत्त होवेंगे. जो यह कहोकि जीव पूर्व पूर्व संस्कारोंके बलसे इष्ट अनिष्टमें प्रवृत्त होता हे; अतः ईश्वरको दोष नहीं; तो में यह कहूंगा कि पूर्व पूर्व संस्कार जीवके राग इच्छादि गुण ओर कुदरती (यह सृष्टि ओर विषयोंका संबंध) वेद, मनेंद्रिय वालोंको सदासद् विशेष ज्ञानका हेतु हे. (आद्य सृष्टि में वा अनादि परंपरासे मनुष्य समूह होने पीछे स्वयमेवके से विशेष ज्ञान होता हे? अब क्यों नही होता? इत्यादिका प्रकार यहां, ग्रंथ विस्तार भय तथा विशेष उपयोगी न होने ओर प्रसंग अप्राप्तसे नहीं लिखते). जब अधिक संकेत ओर ज्ञान फल गया तब; मंत्रादि कंठस्थ किये, पश्चात् लिपि होके अधिक ज्ञानका समूह किसीने वा मंडलोने वेदनामा चार पुस्तक लिख दिये. सो यथार्थ ओर अयथार्थात्मकभी कह सकते हें; क्योंकि जीव आप उत्पन्न किया हुवा ज्ञान भूल जाता हे. किंवा अयथार्थको यथार्थ ओर यथार्थको अयथार्थ माननेमें आजाना संभव हे. तो अन्यों (ईश्वर वा मनुष्य वा अन्य) के बताये हुयेमें उक्त दोष हों, इसमें क्या आश्चर्य हे. अतः हठ करके ईश्वर प्रेरित मनुष्य लिखित वा मनुष्यद्वारा उपदेश मानें तोभी, दोष होना संभव हे. निद्वान कुदरती वेदको आगेवान करना पडेगा.

(यहां सब वेद प्रसंग वास्ते अनुपयोगी जानके विशेष (उसके मंत्रोंके उदाहरण देदेके वा अन्य प्रकार) नहीं लिखा हे केवल प्रचलित वेदांत संबंधमें जो उपयोगी वार्ता हें सोही संक्षेपसे लिखी हें.)

विशेष कहां तक लिखें—वेदानुयायी शास्त्रकार ऋषि मुनियोंकोभी इस विषे संशय रहा हे.—तो मुझ अल्प बुद्धिपर आरोप करना भूल हे.—जैमिनि महाराज अनीश्वरवाद स्वीकारके वेदको

अपौरुषेय अनादि अनंत ग्रंथ मानते हैं. सांख्य कर्ता कपिलजी अनेश्वरवाद मानके सिद्धजीके श्वाससे अनायास होना मानते हैं. पतंजलि मुनी ओर न्याय वैशेषिक कर्ता, नित्य ज्ञानवाले ईश्वरोपदेशित मानते हैं. वेदांती, अनादि सांत मिथ्या ईश्वर कृत मानते हैं. इत्यादि. उनके मूल ग्रंथ ओर भाष्य, वृत्ति देखो. तथापि उक्त तमाम महाशय वेदोंको प्रमाण मानते आये हैं.

"वेद, ईश्वर प्रेरित स्वतः प्रमाण हे" इस विषे क्या प्रमाण हे? सो तद्भिन्न प्रमाण कहा चाहिये? अर्थात् आप (तुम), वेद, ओर ईश्वर–तीनों तो इस विषे प्रमाण नहीं होसकते, ओर जो मानोगे तो अन्यकाभी वचन प्रमाण मानना पडेगा; क्योंके उनउनके अनुयायी, महावीर, बुद्धादिको सर्वज्ञ मानते हैं ओर इंजील–बायबल, तथा कुरानका कर्त्ता कोइ खुदा भी सर्वज्ञ माना जाता हे. उनकी सर्वज्ञता ओर उनके वास्ते वेही प्रमाण हैं. जब एसा मानें तो, उनके ओर वेद ईश्वरके परस्पर विरोधी सिद्धांत होनेसे आपको स्व. सिद्धांतमें वेद प्रमाण कहना निरूपयोगी ओर निष्फल होजायगा. अथवा तो वेद अप्रमाण होजायगा. ओर ईश्वर वेदसे इतर प्रत्यक्षादिको तो आप लोक स्वतः प्रमाण नहीं मानते; अतः वेदकी सिद्धिमें कोई प्रमाण नहीं होनेसे वेदानुसार सिद्धांत सिद्ध करो तोभी, मान्य नहीं होसक्ता. तथाहो वेद सत्य वा मिथ्या? यदि सत्य हे तो द्वैतापत्ति होगी; क्योंके आपके सिद्धांतमें ब्रह्म इतर, सर्व मिथ्या हैं. जो, दूसरा पक्ष मानें तो मिथ्या वेद, सत्य ब्रह्मका, प्रतिपादक नहीं होसक्ता. जब ब्रह्ममें अप्रमाण, तो उसकी एकता केसे बता सकेगा. ओर मिथ्याको प्रमाणरूप सत्य मानना मिथ्या हे. जो यह कहोके "जे-

से स्वप्नमें स्वप्नादिकी इंद्रिय स्वप्न पदार्थोंके वास्ते प्रमाण हैं, वेसे व्यावहारिक सत्तारूपसे वेद प्रमाण हे, पारमार्थिक सत्ताकी दृष्टिसे मिथ्या हे; अतः कोइ दोष नहीं" यह वार्त्ताभी नहीं बनती, क्योंके जेसे स्वप्नके प्रमाण जाग्रतमें प्रमाण नहीं किंतु सर्वथा अनुपयोगी हैं. वे जाग्रत पदार्थोंके प्रतिपादन वा विषय करने योग्य नहीं; वेसेही मिथ्या वाव्यावहारिक सत्तावाला वेद, पारमार्थिक सत्तावाले ब्रह्ममें प्रमाण नहीं होसकता. ओरन उसका कथन उस वास्ते उपयोगी हे. जोके स्वप्नका द्रष्टा जो हे, वोह उभय (जाग्रत स्वप्न)का साक्षी हे, परंतु उन (प्रमाणों)का विषय वा उन करके प्रतिपादन करने या ग्रहण करने योग्य नहीं हे, यह वात आपकी रीतिसे सिद्ध हे. इत्यादि ओरभी अनेक रीतिसे प्राप्त प्रसंग प्रति वेदकी स्वतः प्रमाणतामें बाध हे.

तथा वेद ग्रंथको आपभी प्रमाण नहीं मानते हो; क्योंके उसमें तो यज्ञ विषे पशूवध, अतिथीको मांस भोजन, नियोग, गुणकर्म उपर वर्णाश्रम, स्त्रीकोभी वेदाध्ययन–इत्यादि उपदेश हैं. परंतु वर्तमानमें जो कोइ, जैमिनीवत् यज्ञमें पशुवध, करे; भारद्वाजने जेसे भरतादिकोंको मांसका भोजन दिया वेसे, अतिथी सत्कार करे; भीष्म पिताके भाइ क्षत्रीय राजाकी तीन स्त्रीसे पांडु धृतराष्ट्र ओर विदुर जेसे उत्पन्न हुये वेसे, तीन पुत्रोत्पन्न करने वास्ते कभी नियोग करे; वा भील पुत्र वाल्मिक, चांडाल पुत्र मातंग, झीमर (ढीमर)नी पुत्र व्याससजेसे किसीके गुणकर्म देखके ब्राह्मण बनावे, वा गार्गी मैत्रेयी (जिनशूद्रा (वेदांती भाइ स्त्रीको शूद्र समान गिनते हैं) के वाक्य वा उपदेशको, ब्राह्मण वा उपनिषदोंको वेद माननेवाले वेदांती, श्रुति मानते हैं) समान स्त्री, वेदोच्चारण करे;

सो आप मान्य नहीं रखते ओर उसको भ्रष्ट नीच मानके द्विजपतित्वसे गिरा देते हो; अतः वेदको अप्रमाण मानने वाले किंवा उसके विरोधी हुये वा क्या ?

जो कहो के रूढी बलवान है, रूढो विरुद्ध करनेसे व्यवहार–स्वार्थ–अटकता है, तो यह अर्थ हुवा कि वेद ग्रंथ प्रमाण[1] नहीं किंतु. वर्तमान प्रचलित अहंब्रह्म प्रमाण है. जो यह रूढी नहीं मानें तो, नास्तिक कहाते हें, मानप्रतिष्ठा नहीं पाते. विषयोंसे विरक्त होना पडता है, कोइ हमारी कथा नहीं सुनता, वणिग्वृत्ति नहीं चलती, कोइ गुरु नहीं मानता, वा श्रद्धा नहीं करता, मुफतके टके पैसे नहीं मिलते, खलडोंमें कोइ पाइभी नहीं चढादेता, मकान मेडी नहीं बनते; अतः रूढी वलसे जीव ब्रह्मकी एकता मानते हें अहो क्या स्वार्थ परायणता ? ? ?

यदि यह कहो के कलियुगमें "अग्निहोत्रं गवालंभं सन्यासं पल पैत्रिकं । देवराच्च सुतोत्पत्ति कलौपंच विवर्जयेत॥"

---

१ इसी प्रकार अन्यधर्म शास्त्र [मनवादि] वा अन्य ग्रंथोमें हिंदु भाइओंकी मनमानी प्रमाणता अप्रमाणता वा विश्वास अविश्वास हे. जेसे कि भागवतके एकादश स्कंधगत अध्याय १७ में लिखा हे कि–ब्राह्मण तीन वर्णकी, क्षत्री दोकी, वैश्य दोकी ओर शूद्र एकमात्र शूद्र वर्णकी कन्यासे विवाह करे. परंतु वर्त्तमानमें यदि कोइ उस अनुसार वर्त्ते किंवा एक जातिका ब्राह्मणही दूसरे प्रकारके ब्राह्मण जातिकी लडकी विव्राहे तो, उसे पदभ्रष्ट मानके जाति बाहिर कर देते हें. अर्थात् मनमानी प्रमाणता अप्रमाणता हे. सत्य असत्य ओर योग्य विश्वास हे वा अयोग्य हे, इस निर्णयको छोडदो तो, जेसा दृढ विश्वास–ईमान–वा स्वधर्माभिमान मुसलमानोंमें हे वेसा हिंदुओंमें नहीं हे ! !

इस वाक्यसे पशुवध, नियोग, मांस श्राद्धादि वर्जित हें; तो यह प्रश्न उठताहे के, वेदोंमें तो एसा कहीं नहीं लिखा. क्या अन्य स्मृति वा धर्म सिंधवादिका लेख, उक्त वेद लेख वा रूढीसे शिरोमणी हे? यदि शिरोमणी मानो, तो वेद प्रमाणरूप नहीं हुवा. ओर जो वेदका लेख शिरोमणी, तो आप लोक वेद नहीं मानते, एसा पूर्वोक्त प्रकारसे सिद्ध होजाता हे. (देखो, वर्तमान विषे काशी ओर सिद्धपुरमें जिन ब्राह्मणोंने यज्ञमें पशुवध किये उनको जातिसे निकाला.)

अथवा वेद असर्वज्ञ हे अर्थात् उसको यह ज्ञात नहींथा के कलिकालमें पशुवधादि अनुचित होंगे, अतः कलि वास्ते अमुक २ बातें निषेध कीजांय. इसी प्रकार अपवाद वाक्यों, वास्ते यथोचित्त समझ लेना चाहिये.

निदान आप वेदको अध्यासरूप प्रमाण मानते हो, अंतःकरणसे यथार्थ नहीं मानते. अतः उसके लेख पर आपकी रीतिसे आधार नहीं होसकता. किंवा जेसे वेदकी उक्त बातें कलि वास्ते मनमुखी निषेध मानली वेसे, यदि वेदमें जीव ब्रह्मकी एकता हे एसा हटसे मान लेवें तो, उसकोभी सतयुगसे इतर काल वा कलियुग वास्ते निषेध मान लेना चाहीये.[१]

---

१ इसका पुरावा यह हे के, आपकी रीतिसे द्वैतवादी कणाद, गौतम, पतंजलि, कपिल, जैमिनि, इत्यादि सर्वज्ञ ओर वेदानुयायी हुये हें.—वे यातो वेद ज्ञाता नहीं, यातो वेद द्वैत प्रतिपादक हे, या उन्होंने कलिकाल वा अमुक काल वास्ते जीव ब्रह्मकी एकताका निषेध किया, एसा मानना पडेगा. सर्व पक्षमें आपके पक्षकी हानी हे. जो यह कहो के वैशेषिकादि शास्त्रके कर्ता कणादादि तो वेदानुसार अद्वैत परही हें परंतु, उनके वृत्तिकार, भाष्यकार भ्रांत हुयें हें—उन्होंने द्वैतमें अर्थ किये हें. सोभी ठीक नहीं.—श्री मच्छंकराचार्यने शारीरि-

जो यह कहो के, वेद वाक्यके जो पशुवधादिमें अर्थ लगाये हैं सो, वैसे अर्थ नहीं हों किंतु, अन्य होंगे. (देखो स्वामी दयानंद कृत भाष्य) तो हम कहते हैंके दयानंदजीने तो द्वैतमें अर्थ किये हैं—जीव ब्रह्मकी एकताका निषेध किया है. (देखो दयानंदजी कृत सत्यार्थ प्रकाश, वेदांती ध्वांत निवारण, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और यजुर्वेदका भाष्य तथा अ. ४०). इतनाही नहीं किंतु, जैमिनि आदियों (उव्वट, सायनाचार्य, महीधरादि) के अर्थ मिथ्या* हुये, तो आपके किये अर्थभी भ्रांत रूप क्यों न हों ?

क भाष्यमें सांख्य सूत्रोंको लेकर खंडन किया है. सांख्यने कणादिके मतको, "वैशेषिकादिवत्" [१–२९] इत्यादि सूत्रसे अन्योंका खंडन किया है. "अथातो धर्म व्याख्यास्यामः" इस कणादके सूत्रसे द्वैत स्पष्ट है. निदान वृत्ति और भाष्य छोडके मूल सूत्र देखो तो उनसेभी द्वैतही सिद्ध होता है. "नात्यन्तोच्छेदः"—(सृष्टिका कभी उच्छेद नहीं होता. सांख्य) यह वेदांत पक्षके विरूद्ध है. "भेदव्यपदेशाच्च" (व्यास सूत्र) इत्यादिभी. (सर्वज्ञ कनादका उलूक और गोतमका अक्षपाद क्यों नाम हुवा ?).

* भागवतके एकादश स्कंध अ० २१ में लिखा है कि पशूवधसे निवृत्ति होनेके वास्ते वेदमें कहा है. मनुस्मृतिमें पशुवध, नियोग, मांस श्राद्ध इत्यादिका विधान है. उक्त शास्त्रादि वा पुराणादि स्वतः प्रमाण नहीं और यहां वेद प्रसंग है; अतः उनका वर्णन विस्तार पूर्वक नहीं लिखते. थोडेके प्रमाण टांक देते हैं. "यज्ञाय जग्धि मांसस्य" मनु अ. ५ (यज्ञमें विधान) "तस्माद् यज्ञे वधोअवधः" वहांही. "सौत्रामण्यां सुरांपिबेत्" "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" "अथेच्छेत्पुत्रोमे पण्डितो" इत्यादि (श. ब्र. अ. ९). आज्यमन्नाद्य काम (गृहसू.) "अग्निषोमीयं पशूमालभेत" "एतद्वास्वादिष्ठो यदवाधि गवांक्षीरं

तथाहि जबकि अन्यके ग्रंथोंको स्वतः प्रमाण न मान सकें तो, वेद ग्रंथकोही क्यों माना जाय ?—तहां—वेद, अनादि वेद (ज्ञान) रूप हे इस लिये (१), वा ईश्वरी ज्ञान हे इस लिये (२), वा उसमें यथार्थ वर्णन (ज्ञान) हे इस लिये (३) स्वतः

वा मांसं" (अथर्व. ९।६।३९) अतिथि मांस विधान. "नियोगविधि मनु अ. ९ श ६. "देवराद्वा सापिंडाद्वा स्त्रिया सम्यक् नियुक्तया" (मनु) "अन्य मिच्छस्व सुभगेपतिं" ऋ. मं. १ सु. १० मं. १ "कुहस्विद्दोषा" [ऋ. अ. ७ व. १८ मं. २] (नियोग) "इयंनारी पतिं लोकं" (अथर्व कां १८. अ. ३ व. १ मं. १) "इमं मंत्रं पत्नी पठेत्" (श्रोत सू.) स्त्रीविद्या वेदाध्ययन विधान. जो चारों वेद, चारों ब्राह्मण ओर गृह सुत्रों अनुसार हिंसा—पशुवध, नियोग इत्यादिकी सविस्तृ विधि देखना हो तो, उनके मंत्रोंके अर्थ सहित "निगम प्रकाश" प्रसिद्ध ग्रंथमें वांचो. यह ग्रंथ सं. १९३० में जिले अहमदावाद शहेर (इलाके मुंबई) गत मामाकी हवेलीमें युनाइटेड प्रिंटिंग ओर ज. ए. कंपनी लिमिटेडके प्रेसमें रणछोडलाल हीराचंदने छापा हे. उक्त ग्रंथ (वैदिक धर्मनो खुलासो)का कर्ता "लो. हि. निबंध संग्रह" का बनानेवाला तथा भोलानाथ भगवान शास्त्री रायकवाल हे. इस ग्रंथमें सायनाचार्य के भाष्य ओर गृह्य सूत्र, पुराण, स्मृति आदिको लेके वेद ओर ब्राह्मण ग्रंथ तथा सूत्रोंके दोष दरसाये हें—वेदोमें इतिहास हें ओर यज्ञमें पशुवध हे तथा मांस शराब भक्षण विधि हे.—जडको ईश्वर मान्ने वाला हे.—नियोग सूचक हे ओर अश्वमेदादि प्रसंगमें महान अरुचीकारक निंदनीय कर्मका विधायक हे इत्यादि वातें, संस्कारों सहित यज्ञ विधि ओर अनेक वृतांत जनाये हें, मंत्र ओर सूत्रोंके अर्थ सहित सविस्तर वर्णन किया हे.—परिणाम यह निकाला हे कि वेद त्याज्य हें ओर प्रमाण योग्य नहीं. दयानंद स्वामी कृत भाष्य अनुसार यह कह सकते हें कि, वे अनुचित मन घडत अर्थ हों. ओर इत्यादि का-

प्रमाण मानना चाहिये ? यह ३ विकल्प हैं. अब जो पहिला (सांख्य, मीमांसाका) पक्ष मानें तो, मिथ्या ज्ञानभी अनादि होनेसे प्रमाण होवेगा. वेद धूर्त निशाचरोंका बनाया हुवाहे, यह दस्यु ज्ञानभी प्रमाण होगा. दूसरा पक्ष प्रमाण मानें, तो जिस ईश्वरने भृगुका पद्म छलसे लेलिया, वालीको छलसे मारा, बलीराजाको छला, युधिष्ठिरको असद बोलनेका उत्तेजन दिया, गोपिकाका चोर उठाया एसे (पौराणिक) ईश्वरका ज्ञान (वेद), अयथार्थ वा असत्‌भी क्यों न हो ? किंवा सत् असत, भाव अभाव, तम प्रकाश, ज्ञान अज्ञान, परस्पर विरोधियों का "उपादान" माया, तद्विशिष्ट चेतन (वेदांतियोंके) ईश्वरका ज्ञान यथार्थ अयथार्थ क्यों न हो ? जो यह कहो के, जो अयथार्थ वा असत ज्ञानवाला वा अयथार्थ वक्ता होसो ईश्वरही नहीं, किंतु नित्य सत्य यथार्थ ज्ञानवाला (योग, न्याय, आर्य समाजका) ईश्वर होता हे; अतः वेदमें जो उपदेश हे सो, यथार्थ हे; इस लिये वेद प्रमाण हे. यह पक्ष उक्त सर्व विकल्प वालोंको मान्य होपडनेसे तीसरा पक्ष हो गया. उसमें यह विचार हे कि यथार्थ हे, इतने विश्वास मात्रसे प्रमाण मानें तब तो, ख्रिस्तियोंका ईश्वरी पुस्तक बायबलभी प्रमाण मानना चाहिये. क्योंकि वे एसा मानते हैं के, इसमें बहोतसी बातें एसी हैं कि जो प्रत्यक्ष वा मनुष्य बुद्धिसे अयथार्थ प्रतीत होती हैं, परंतु ईश्वर यथार्थ वक्ता हे; अतः मनुष्य बुद्धिके अर्थ वा असमझसे उसको अयथार्थ नही कहसक्ते. किंतु अ-

---

रणसे मेरी दृष्टिमें वेदकी निंदा कीहे. इसका मुख्य कारण वेदके अर्थोंकी गडबड सिवाय, अन्य नहीं जान पडता. और यदि वे अर्थ यथार्थ हैं, तो पौराणी, वेदांती वेदोक्त कर्म नहीं करते वा वेदको प्रमाण नहीं मानते; एसा मान्ना पडेगा.

ज्ञात वा संदिग्ध अर्थोंमें विश्वाससे यथार्थही माननाचाहिये. जब यूं हे तो, अभावसे भाव ओर अपुनर्जन्मादिभी मान लेना पडेगा; जो के वेद विरुद्ध हे. किंवा अर्थ ओर तद्ज्ञान विना, विश्वास मात्रकी यथार्थता किस कामकी हे.–जड समान निरुपयोगी हे. ओर जब उपयोगार्थ अर्थ बताओगे तो, भाष्यकारोंके नाना अर्थ होनेसें कोनसा अर्थ यथार्थ हे जिस पर विश्वास करें, एसा संशयही रहेगा. एसी व्यस्थामेंभी निरुपयोगी रहा. जो येह कहोगे कि अमुक प्रकारसे अमुक अर्थ ठीक अमुक अयथार्थ हे. वहां सृष्टिनियम, प्रत्यक्ष, युक्ति ओर बुद्धि उपयोग मध्यमें आगये. तो पूर्वोक्त "धीर पुरुषोंसे सुनाहे" वा "न तस्य प्रतिमाऽस्ति" इत्यादि अनेक शंकाके समाधान ओर समग्र अर्थ निर्णयके विना, प्रमाणताकी प्रतिज्ञा सिद्ध नहीं होसकेगी. इतने कथनसे यह सिद्ध हुवाके वेद (अपौरुषेयहो वा पौरुषेय हो वा ईश्वरकृत वा प्रेरित वा मनुष्यकृत हो) में यथार्थ ज्ञानहे, इसलिये अप्रमाण नहीं किंतु प्रमाण हे. (क्योंके उसको प्रमाण- मानने वालोंकी युक्ति, बुद्धि, लेख, फिलोसफी ओर यथार्थता यही परिणाम निकालतीहे. इत्यादि अनेक कारण हें.) परंतु उसके यथार्थ सयुक्त अर्थ (पद पदार्थ संबंध) ओर ज्ञान, बहुत कालका होने ओर नाना धर्म तथा परदेशियोंकी गडबडसे वर्त्तमानमें ज्ञात नहींहें; अतः यथार्थ अर्थ ज्ञात होने तक प्रमाणताकी प्रतिज्ञातो हे परंतु सिद्ध नहींहोती. प्रिय बंधवो ? यथार्थ कथन वा ज्ञान तो बालकका भी मान्य होताहे, वेदका तो क्यों न हो ? इसलिये आर्य संतानको यह चाहिये कि कुरीतिसे वेदकी मान्यताका अभाव न करावें (जेसा के पुराणोंने किया); किंतु उस अपूर्व अमूल्य पुस्तक

के यथार्थ अर्थ ओर ज्ञान (जो कि युक्ति, प्रत्यक्ष, अनुमान, कुदरत–सृष्टि नियम-से विरुद्ध न हों.–संशय रहित होवे.) संपादन करनेका उपायलें. ओर विश्वास मात्र वा अनुचित अयुक्त आग्रह मात्रसे "वेदमें कहाहे" "उसका अर्थ यूंहीहे" "इस लिये अमुक विषय प्रमाणहे" एसे, कथनार्थ तैयार नहीं होना चाहिये.

जो कोई कदाचित यह प्रतिज्ञा करे के "दूसरोंके किये हुये वेदार्थ यथार्थ नहीं; आवे कोई, हमारेसाथ शास्त्रार्थ करे, हम षडांगकी रीतिसे उसका खंडन करते हैं. ओर मूल यथार्थ अर्थ हम जानतेहें." तो उनसे यह कहना चाहिये कि आपके किये हुये अर्थोंमें वेद सिवाय इतर–(आपवा प्रत्यक्षादि) कोई प्रमाण नहीं माने जाते, अन्यथा वेदकी स्वतः प्रमाणताका वाध होजायगा. ओर उभय–वादी प्रतिवादीके कथनपर आधार रहही नहीं सकता. अब जो आपके किये हुये अर्थ ठीकहें, इसकी साक्षीमें प्रजावर्गको मानें तो, हिंसक यवन, अहिंसक जैन, मूर्तिपूजक वा ईश्वरोतार माननेवाले पौराणी, ईश्वरोतार न माननेवाले–मूर्ति खंडन करनेवाले आर्यसमाजी, मैमांसिक, सांख्यमतवादी, ब्रह्म, क्रिरानी, कुरानी, बौध वगेरे की संमतिमें अंतरही रहेगा; कोइ योग्य कोई अयोग्य कोई योग्य अमान्य इत्यादि संमति देंगे, उससे कुछ फेसला–निश्चय नहीं होनेका. जो षडांगको साक्षी मानेंगे तो, वे ऊभय पक्षकारको अवसरदाहें, जो एसा न होता तो, नाना अर्थ प्रचलितही नहीं होते. (देखो रामानुज उव्वट सायनाचार्य वगेरे के अर्थ.) अब हारके उन प्रतिज्ञाकर महाराजके किये हुये अर्थही ठीकहें, एसा विश्वाससे मान लेवें तो, वेदांग न पढे हुये अनुयायी बुद्धिमानको यह सं-

शय क्यों न होगा ? कि जो प्रतिज्ञकसे प्रबल, षडांगको फेर-फार करनेवालाहो तो, अन्य प्रकारके अर्थ क्यों न करसके वा क्यों न होसकें ? अतएव क्या तो अनगमता विश्वास स्वीकारेगा. वा तो संशयात्मक मन रहेगा. विश्वास मात्र फलका यथार्थ अयथार्थपर निर्णय होतव्यहे; जोकि संश-यके रूपमें आनेवालाहे. इसलिये उत्तम प्रकार यही सिद्ध होताहे कि, किये हुये अर्थका विषय, प्रत्यक्ष युक्ति आदिसे सिद्धहोतो (तबहो) मान्य, संतोषकारक वा सफल होसकताहे; अन्यथातो संशयरूपही रहनेका हे.

इत्यादि प्रसंगोंसे वेद ग्रंथ प्रमाण देनाही आपको प्रति-कूल फलदहे. ओर आपके यथार्थ प्रमाणमें न होनेसे उसकी प्रमाणता अप्रमाणतामें प्रयत्न करना व्यर्थ जानके संक्षेपमें लिखा हे.

(सूचना)—इस प्रसंगमें ईश्वर हे वा नहीं, वेद ईश्वर प्रे-रित हो वा न हो, ओर वेद प्रमाण हो वा न हो—इससे मुख्य—विशेष प्रयोजन नहीं हे. ओर न उनके खंडन मंडनमें हमारा प्रयत्नहे. किंतु यह विषय "दयानंदी दोया (दीपक)" नामा ग्रंथमें आर्य समाज प्रसंग विषे, जेसा हे वेसा लिखाहे. जो जाननेकी इच्छा हो तो, वोह ग्रंथ वांचना. यहां तो आपके संप्रदाय मान्य मुख्योपनिषद ओर उनके वाक्यमें आशयहे. अतः आपकी संप्रदायको लेके कथन हे.*

---

* यद्यपि ऋगादि चार संहिता ग्रंथके संबंधमें १—मनुष्य सृष्टि वा भारतके रक्षण, व्यवहार, नीति, ओर राज्यादि विषयके आद्य प्रबंध उत्पादक ओर प्रबंधक मनुजी जेसे महर्षिका लेख यह हे कि "खरा धर्मज्ञ वेदज्ञाता वोह हे कि वेदार्थको वा वेद लिखित विषयको युक्ति ओर तर्कसे सिद्ध करे" २—भारतके फिलोसोफरों (तत्ववे-

वेदोक्त नएकता.

यदि आपके उक्त कथन (वेदकी स्वतः प्रमाणता) को पांच पळ वास्ते मान भी लेवें तोभी, आपका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता; क्योंके तत्त्वमस्यादि वाक्य चारों वेदोंमें नहींहें; अतः यह वाक्य स्वतः प्रमाणरूप उपदेश नहीं माना जाता.

त्ताओं) के.वे सूत्रके जिनमें लिखी हुई फिलोसाफिका आरंभ (ओर) युरोपकी फिलोसफीका अंतहे; वेदको शिरोमणी स्वीकारते हें. (देखो षडशास्त्र); उनका सत्कार मुझको एसा उपदेश कररहाहे कि वेदमें इतिहासादि वा सृष्टि नियम विरुद्ध कोइ विषय नहीं होना चाहिये किंतु उसके सायंसादि विषय हितकारी, यथार्थहों ओर सर्व को समान उपदेष्टाहों. इत्यादि–हमारी अनेक रीतिसे वेद प्रमाण होना चाहिये, यह मेरा विश्वासहे. तथापि अनेकोंके भाष्योंमें उसके अर्थकी गडबड ओर मत भेद प्रसिद्धहे.– सृष्टि नियम विरुद्ध भी भाष्योंमें अर्थ वांचतेहें; अतः उसके निबेडे होने (अर्थकी गडबडके निर्णय, मत भेदके अभाव) तक पूर्वोक्त इत्यादि हेतुओंसे वेदकी प्रमाणताका विश्वास वा प्रतिज्ञा दिलमेंहे, परंतु सिद्ध करनेमें असमर्थ हूं. ओर अप्रमाणता भी नहीं कहसकता; क्योंकि आर्या वर्त्तके जन्मूव प्रसिद्ध ओर मान्य उत्तम ज्ञान, विद्या, नीति ओर व्यवहार आदिका मूल यही वेदतोहे. जिसको वर्त्तमानके लोक मान्य दृष्टिसे नहीं देखते. ओर कितनेक उपनिषदोंके रहस्यतो एसेहें कि, जिनकी बराबर कदाचित् तमाम सृष्टिमें शांतिकारक, अवधी सूचक (वेसा) उपदेश नहीं होगा. तथापि उनमें स्वतः प्रमाणताकी सिद्धि नहीं होसकती. ओर उपर जितने अंशका खंडनहे सो "वादी भद्रं न पश्यति" समान वेदांतियोंकी संप्रदाय वा मंतव्यपरहे. जेसेकि वेदक अर्थात् जो सांख्य वा पूर्व मीमांसाकी रीतिका ग्रहण अभिमत होतातो वेद अपौरूषये होने, ईश्वर नमानेसे जीव ब्रह्मकी एकता वा

ओर जो पूर्वोक्त प्रकारसे उपनिषद् परतः प्रमाण रूप मानके जीव ब्रह्मकी एकता सिद्धकी सोभी, नहींबनती; क्योंकि आदित्यो वैप्राणः (शतपथ ब्राह्मण देखो)—आदित्य प्राणका नामहे. "आदित्यो वैप्राणोरयिरेव" (मांडुक्य) —जो प्राणमें पूर्ण ओर प्राणमें सोया हुवा तथा प्राणका प्रेरक है सो जीवात्मा पुरुषमें हूं. अब उक्त अर्थोंसे पूर्वोक्त प्रसंगमें—सहजसे यह सयुक्त योग्य अर्थ सिद्ध होजाताहे कि "योऽसा वादित्यो पुरुषः सोऽसावहम्"—जो आदित्य (प्राण) में पुरुषहे वोहमें जीवात्मा हूं (दयानंद रामानुजादिकोंनेइसके अर्थ, भेदमेंही लियेहें.—एकतामें नहीं. इस रीतिसे आपके किये हुये अर्थोंसे विपरीत अर्थ होताहे ओर जीव वादीको सयुक्त अनुकूलहे ओर आपका किया हुवा युक्तियोंको (जो के पहिले कही ओर आगे वांचोगे) नहीं सहारता; प्रत्युत "कुर्वन्नेवेह कर्माणि इत्यादि" उसी इशोपानिषदादिके भेद बोधक वचनसे ही विरुद्ध हे.

जो यह कहोके श्रुतियोंके अनेक भेदहें; कोइ अभेद बोधकहे, कोई कर्म प्रवृत्ति, कोइ कर्मसे निवृत्तिकी बोधकहे,

---

ओर वेद तथा शब्दको अनादि अनंत [नित्य] ठेरानेसे द्वैतापत्ति कहना पडता. जो आर्यासमाजकी रीतिसे लेना प्रयोजन होता तो, रामकृष्णादि अवतार न मानके जीव ब्रह्मका भेद कहके द्वैतापत्ति मान लेते. ओर जो पुज्यपाद शंकराचार्यजीकी रीतिसे अभिप्राय लें तो, पूर्वोक्त लेखानुसार अनादि अनंत कहनेमें आजाता, परंतु वेदांती भाई तो अनादि सांत मानतेहें.

निदान वाचक महाशयको सारग्राही दृष्टिसे ध्यान देना चाहिये. द्वैतवादकी रीतिसे वेदकी सिद्धि अर्थ, स्वामी दयानंदजीकृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ओर सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ देखिये.

कोइ गौण कोइ मुख्यहे, कोइ व्यवहारिक कोइ पारमार्थिक प्रसंगकोहे; अतः विरोध दोष नहीं. सोभी आपके संप्रदायसेहे. जेसेके आप (वेदांती) "ब्रह्मसे इतर ईश्वर वेदादि सर्व मिथ्याहें" एसा कहके फेर वेदकोही सद्ब्रह्म विषे प्रमाण देते हो !!! इत्यादि व्याघातक व्यर्थवादवत् श्रुतियोंको स्वकल्पित सिद्धांतानुसार विभाग मान लियेहों, एसा क्यों न माना जाय[1]? क्योंके जैमिनी आदि मैमांसिकोंने आप (वेदांतियों)के विभागकी हुई हो श्रुतियोंके, वेदांतियोंके पक्ष (विभाग) से विरुद्ध स्वमंतव्यानुसार विभाग कर डाले हें ओर रामानुजादिकोंने ओर ही प्रकारसे मानेहें. कुछ भी हो परंतु विवादितहें. अतः विवाद प्रसंगमें एकको ही मन मानी वात स्वीकार नहीं होसकती. अर्थात् परस्पर विरोधी[1] वाक्यके सिद्धिवाले भाग दोष दर्शकहें.—आपको लाभिष्ठ नहीं. निदान केसे भी विभाग हों तोभी, पूर्वोक्त प्रसंगपर आनेसे पूर्वोक्त अर्थ भेदसे जीव ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक उपनिषद् भागमें आपकी रीतिसे परतः प्रमाणताभी सिद्ध नहींहोती. होकहांसे अभीवेदकोही स्वतः प्रमाणता सिद्ध नहींहे.

जो यह कहोके स्वामी दयानंदादि कृत (उक्त) अर्थ प्रमाण हों, श्री शंकराचार्यादिके न हों, इसमें हेतु क्या? इसका यह समाधानहेके, नैसर्गिक नियम (सृष्टि नियम), युक्ति, प्रमाण तथा उस कालके विद्यमान महर्षियोंके किये हुये जो ग्रंथ, उन अनुसार जो अर्थ हों सो मान्य होसक्तेहें. अन्यथा यह उत्तर देना उचित्त होगा कि स्वामी दयानंदादिके

---

१ क्यों कि सत्य ओर यथार्थ वक्ता ग्रंथमें पूर्वापर विरूद्ध ओर व्याघात दोष नहीं मान सक्ते.

किये हुये अर्थ क्यों न मानें जाय ? निदान एसे उभय प-क्षके निकममे तर्कोंसे पूर्व नियमही ठीक ज्ञात होताहे. (ओर अत्यंत विचार कर,देखें तो किसी ग्रंथ वा वाक्यके केसे भी नाना अर्थ करो, जो अर्थ वा लक्ष्य नैसार्गिक नियम, युक्ति, प्रमाण ओर अनुभवको सहारसके-उसके अनुकूलहो सोही ठीकहे. अन्यथा कोइ वक्ता स्वयंभी कुछ कहे, सोभी अमान्य हे. जिसका यहां प्रसंग नहीं.)

ओर जो उक्त प्रसंगमें आग्रह होतो, हमको दीर्घ दृष्टि करके यह जनाना चाहिये के वर्त्तमान कालमें वक्ताके तात्पर्यानुसार वेदार्थ होनाही कठिनहे; क्योंके उस कालके व्याकरण कोशके विना, उस ग्रंथके यथार्थ अर्थ नहीं होसक्के, यह बार्ता स्पष्टहे. अब आप पक्ष रहित विचार देखेंके रावण, उव्वट, महीधर, सायनाचार्य, दयानंदादिने जो अर्थ कियेहें उनमें परस्पर अंतरहे ओर कहीं कहीं तो परस्परके विरोधी अर्थहें. कहिये-उसमेंसे किसका मान्य किसका अमान्य ? इस निर्णयार्थ मुख्य व्याकरण कोशादि (षडांग) की आवश्यकता, तिस विना, झगडा समाप्त नहीं होसक्का.

अब जो अन्य झगडोंको छोडके केवळ अकेले व्याकरण ही उपर दृष्टि डाली जाय तो, वेदार्थ वास्ते मुख्य अष्टाध्यायी व्याकरण कहाताहे, परंतु उसीमें अन्य व्याकरणोंकी साक्षीहें, विकल्पहें, ओर मत भेद भीजनायेहें. जेसे "वासुप्यायशले" (देखो अष्टाध्यायि अंतर अचसंधी प्रकरण) "ऋतो भारद्वाजस्य" (ऋकारांत धातुकोही इट प्रत्यय होताहे, यह भारद्वाज ऋषिका मतहे.) "वाशाकटायनस्य" (द्वित्व प्रसंग देखो). ओर अष्टाध्यायीके कर्ता पाणिनि मुनी महाराज,श्री रामचंद्रजीके पीछे हुयेहें; क्योंकि "वामदे-

वह्ढारूण्यौ" [४।२।९] "गर्गादिभ्योयञ" (४।१।१०५) ओर पूर्वोक्त सूत्रोंसे भी स्पष्टहे. अर्थात् भारद्वाज ऋषि, रामचंद्रजीके समयथे यह वात जगत् प्रसिद्धहे, वामदेव ऋषि, राजा रामचंद्रके पिता श्री दसरथजीके मंत्री, वेद प्रसंगी ज्योतिष अंगके कर्त्ता गर्गऋषि, वेदकाल पीछे हुयेहें, यह तो सिद्धही हे. परंतु उक्त सूत्रोंसे एक ओर वार्ता सिद्ध हो पडतीहे, जरा के ध्यान देनेसे समझमें आसक्तीहे. वोह यहहे के जिन गर्गादिके कुल वास्ते प्रत्ययहें वे कुल, सृष्टि आरंभ वा जिनके नाम (गर्गादि) से कुल प्रसिद्ध हुवाहे उनके बहुत काल पश्चात् मानने पडेगें. क्योंके जिन कुल प्रत्यय विशेषको रूढी पडगई ओर नित्यके व्यवहारमें न आवे एसी, संस्कृत भाषाके जेसे, व्याकरणमें भी उनके प्रत्यय जनानेकी आवश्यकता पडी तो वे कुल, उस व्याकरणसे बहोत काळ पूर्वसे चले आते हें, यह वात बुद्धिमान विद्वान पुरुषोंकी समझमें आना सुगम हे, अतः अष्टाध्यायीका कर्ता; गर्ग ओर वामदेव ऋषिके बहुत काल पीछे हुवा हे.

संस्कृत व्याकरणमें जो अणादि १४ सूत्र हें उनसे सर्व प्रत्याहार बनाये जाते हें, वे चौदाही सूत्र, मुख्य व्याकरणके कर्ता श्री महेश (महादेव) ऋषीजीके बनाये हुये हें; जो के सृष्टि ओर वेदारंभ पीछे हुये हें.

महा भाष्यके कर्त्ता पतंजलि मुनी हुये हें जो के पाणिनिके शिष्य नहीं थे. यदि एसा न होता तो, महा भाष्यमें सूत्रकी वृत्ति ओर विरोधादि जना जनाके शंका समाधान नहीं होता. इस लिखनेका अभिप्राय यह हे के जेसे व्यास सूत्रोंके भाष्य श्रीमत् शंकराचार्य, रामानुज, वल्लभादिने किये हें ओर उनके परस्पर अर्थोमें रात दिन जितना (द्वैताद्वैत) भेद हे. अर्थात् व्यास-

जीका मुख्य आशय क्या हे इसमें संशय हे. तथाहि श्लोक-बद्ध गीताके भाष्योंमेंभी परस्पर अंतर हे; वेसेही महा भाष्य-के कर्तासें, पाणिनि मुनीका आशय छूटा वा बदल गया हो, इसमें क्या आश्चर्य हे. अर्थात श्लोकबद्ध ग्रंथके भाष्यकी यह गति तो, सूत्रोंकी वेसी गति हो इसमें क्या आश्चर्य? इस रीतिसे संभव हे के अष्टाध्यायी वा उसके महा भाष्यानुसार वेदके अर्थ किये जावें तो अन्यथाभी हों.

जो यह कहोकि वामदेव ओर भारद्वाज, रामचंद्रजीके कालवाले नहीं किंतु अन्य हें, तो उसका पूर्ण पुरावा होना चाहिये, सो तो अद्यापि नहीं हे. हां, इन नामवाले अन्य हुये होंगे, परंतु प्रसिद्ध विद्वान तो यही प्रसिद्ध हें. जो पूरावे विना ही मानोगे तो, जैनमतानुसार वा पुरुष सूक्त [1]गत पूर्वोक्त लेखकी अर्थापत्तिसे ये वेद अन्य हों, एसा क्यों न माना जाय? जिसका पुरावाभी हे. निदान केवल कल्पना मात्रसे नहीं मान सकते.

पूर्वोक्त वृतांतसे इतनी बातें ध्यानमें आगई होंगी (उन को विस्तारसे जनाना व्यर्थ समझा गया क्योंके स्पष्ट हें.):-

१ अष्टाध्यायी व्याकरण वेद कालमें नहीं बना किंतु बहुत काल पीछे (आर्य संतानकी रीतिसे लाखो वर्ष पीछे) बनाहे.

२ अष्टाध्यायीके पूर्व ओर वेद आरंभ पीछे, वेदार्थ होने वास्ते अन्य व्याकरण प्रचलित थे.[2]

---

१ पुरूषसे ऋगादि वेदोत्पन्न हुये हें. २ अष्टाध्यायी पूर्वके महेश, प्रातिशाख्य, बृहस्पति, इंद्र, चंद्र, पिशालि, शाकटायन, काश्मि, कृस्न (कृष्ण) इन व्याकरणो पर ध्यान दीजिये. हेमाचार्य कृत जिनेंद्र व्याकरण ओर अमरकोश तथा सिद्धांत कौमुदि देखिये. तो व्याकरणकी गडबड ज्ञात होजावे.

३ पूर्व पूर्व संकलना मानेभी अष्टाध्यायी अनुसारही वेदार्थ हों इसमें संशय हे.

४ पाणिनिका आशय संभव हेके भाष्यमें रहभी गया हो.

जो यह कहो के, "जेसे वेदका कोश वेदमेंही हे यथाः– इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि इत्यादि ऋ मं. १ सु. १६४ मं. ४६ में ईश्वरके नाम जनाये हें; वेसेही वेद ग्रंथोंका व्याकरणभी वेदोंमें होना चाहिये. अन्यथा (मनुष्य कृत व्याकरण) स्वीकार नहीं होता; अतः पूर्व दोष नहीं." तो हमको यह कहना योग्यहे के भाष्यकारोंके अर्थमें विवाद नहीं होनाचाहिये था. ओर विवाद तो हे; अतः उसमें व्याकरण नहीं हे. ओर न कोई एसा मानता हे. ओर न एसा व्याकरणप्रसिद्ध हे. स्वबुद्धिसे संगति प्रसंगोंको लेकर कल्पना करलेना दूसरी बात हे. भाषासे व्याकरण होता हे. व्याकरणसे भाषा नहीं, यह स्पष्ट हे. तथाही जो आपकी कल्पना मान लेवें ओर भाष्यकार व्याकरणियोंको भ्रांत समझें तो, प्रथम उसका उसकी रीतिसे व्याकरण प्रसिद्ध करिये, उसके निर्णय पीछे विद्वान वेद वक्ताओंके स्वीकारने पर अर्थका निर्णय होगा; वहां तक किसी एककी साक्षी पर आधार नहीं होसक्ता.

एतद्दृष्टि (पूर्व प्रसंग पर ध्यानको खेंचो) वेदके वेद कालके जो मुख्य व्याकरण हें वेहों ओर संशय रहित उनका आशय निर्णित हो जावे, तब उनकी साक्षीसे वेदार्थका निर्णय किया जावे तो, अथवा सर्व विद्वान संपूर्ण वेदांगोंको लेके धर्मराज सभाके स्वाधीन, दुराग्रह रहित परस्परमें निर्णयरूप विवाद करके जो अर्थ निश्चय करें तो, इसका निवेडा हो; अर्थात् संभव हे के वेद वक्ताका अभिप्राय ज्ञात हो (वोंह कथन यथार्थ हे, वा अयथार्थ, यह प्रथक बात हे); वहां तक कि-

सीकेभी अर्थकी साक्षी लेकर निर्णयरूप अर्थ नहीं कहसक्ते (अपरंच जो वेद कालके कोश ादिकी चर्चा शोधो तो, निर्णयरूप अर्थ करनेमें कितनी अपूर्णता हे, यह वात सहेज ध्यानमें आजायगी)

एतदृष्टि उक्त श्रुतिकी साक्षी देकर उपनिषदोंको परतः प्रमाण कहना नहीं बनता. ओर आपका किया हुवाही अर्थ ठीक हे अन्यका नहीं, एसा सिद्ध नहीं होता. किंतु आपके मंतव्यके विरुद्ध परिणाम निकलता हे; क्योंकि उसी वेद ग्रंथमें जीवेश्वरकी एकता तो स्वप्नमेंभी नहीं, उलटे (कर्मोपासनादिके प्रतिपादक) भेद वाक्य स्पष्ट हें. उन उभय (द्वैतवादी अद्वैतवादी] संमत्त श्रुतियोंके सन्मुख आने ओर विवादित मंत्रोका बल नहीं चलनेसे भेदवादही स्वीकार होगा. उसके विना उपदेश ओर प्रमाणता अप्रमाणताका प्रश्नभी नहीं होसक्ता.

यद्यपि मैमांसिक ओर रामानुजादिकोंने तत्त्वमस्यादि वाक्योंकेभी भेदमें अर्थ किये हें* तथापि हमको इनके अर्थ नि-

* मैमांसिक उन वाक्योंको अर्थवाद रुप कहते हें, द्वैतवादी एसा अर्थ करते हें कि तत्त्वमसि—प्रसंग प्राप्त पूर्वोक्त ईश्वरका तूं दास, भक्त आधीन् वा व्याप्य हे. हे श्वेत केतु? यहीं दासादि पद अध्याहार हें.—भावार्थ, लक्षणा प्रकारसे लिये जाते हें. ओर असि पद एकतामेंही लगे, एसा नियम नहीं हे. अतः उक्त अर्थ निर्दोष हे. १. किंवा "त्वं तत् अस्ति" अर्थात् पूर्वोक्त विशेषणवान (ईश्वर) आपंही हे—स्वयंभु हे, अद्वितीय हे, हे श्वेत केतु. २. अथवा सो (पूर्वोक्त विशेषणवान ईश्वर) तूं (ही) हे; हे श्वेत केतु! एसा जान. वा एसे उपासना कर. ३. किंवा तत् (शरीरादि जगत्का कर्ता ईश्वर) त्वं (शारीरी—जीव जिसका शरीर हे अर्थात् जीवमें व्यापक) हे. एसे समानाधिकरण मानके अभिप्राय हे. एककी एकता वास्ते सो,

र्णय न निर्णय करनेसे उदासीनता है; क्योंकि यदि उपनिषद् ग्रंथ स्वतः प्रमाणरूप ठेरें तब तो, इस प्रसंग वास्ते अर्थ ओर उसके उपक्रमोपसंहारादि षड्लिंगके निर्णय करनेमें प्रयास करना सफल हो अन्यथा व्यर्थ हे.

अतः उक्त प्रकारसे जीव ब्रह्मकी एकता वाचक उपनिषदादि स्वतः प्रमाण नहीं यह सिद्ध हुवा.

तब अब अन्य कोनसा शब्द प्रमाण माना जाय? अन्योंके ग्रंथ वा आचार्य तो उस सिद्धांतके विरुद्ध हें. केवल

कहना आवश्यक नहीं. (देखो रामानुज कृत अर्थ). ४. इत्यादि अर्थ करते हें. तथा अहं ब्रह्मास्मि—में ब्रह्म विषे स्थित वा में ब्रह्म में व्याप्य, वोह (परमात्मा) मेरा अधिष्ठान व्यापक ओर आधार हे; एसा वामदेवके अभिप्राय प्रसंग ओर योग्यतासे अर्थ होता हे. (कोइ, में ब्रह्मका दास, भक्त, व्याप्य, शरीर हुं, एसा अर्थ सिद्ध करते हें, तथा अयमात्मादि दो वाक्यके अर्थ तो समाधिस्थ योगी ओर शोधककी दृष्टिमें भेद बोधक ओर प्रसंगमें ब्रह्म सूचक स्पष्ट प्रतीत होसकते हें—जेसेकि समाधिस्थ योगी, ब्रह्मांड व्यापक पुरूष जो शरीर व्यापी आत्मा उसके साक्षात् होने कालमें कहता हे कि अयमात्मा ब्रह्म—यह आत्मा व्यापक—अपरिच्छिन्न हे. इत्यादि प्रकारसे अन्य महा वाक्यभी ब्रह्म बोधक जान लेना ओर इन उत्तर महा वाक्योंके अर्थमें वेदांती भाइभी विशेष आग्रह नहीं करते. पूर्वोक्त दो वाक्यों विषे आग्रह किया करते हें, जिनकी संक्षेपसे पूर्वमें व्यवस्था कही.

कहां तक लिखें—माया, अविद्या, अनृत, अभास—आभासादि पद पद ओर तमाम अद्वैतवादियोंकी श्रुतिके अर्थ रामानुज, आनंद तीर्थ इत्यादि द्वैतवादियोंने द्वैतमें लगाये हें.—जेसेकि, अ (परमेश्वर) विद्या [ज्ञान] अर्थात अविद्याका अर्थ ईश्वरकी ज्ञान शक्ति वा ईश्वरका ज्ञान इत्यादि. अतः शब्दार्थमें पडना तो झगडाहा हे.

स्वगुरु वा आचार्य वाक्य ओर उस पर विश्वासरुप प्रमाण कहोगे तो, अव्यवस्था ओर अनवस्था दोष आजाते हे. स्व स्वं विश्वासमें स्व स्वगुरु वा आचार्य वाक्य प्रमाण होनेसे भेदमें अभेदमें अव्यवस्था रहेगी. ओर परंपरा चलानेसे आद्य गुरु [वेदांतियोंका मिथ्या वेद ईश्वर] पर आनेसे अव्यवस्था होगी. जो वेद ईश्वर पर नहीं ठेरोगे तो, अनवस्था होगी. किसी गुरु वा आचार्यको नहीं बता सकोगे, जो कदाचित् बताओगे, तो पूर्वोक्त दोष [अन्यके गुरु आचार्यके वाक्य मान्य क्यों न हों?] प्राप्त होंगे. जो शब्द प्रमाणसे तइर युक्तयादिका आश्रय लोगे तो, स्व सिद्धांत त्याग होगा तथा वक्ष्यमाण युक्तिआदिसे आपका पक्ष सिद्धभी नहीं होता हे.

शब्द लक्षणा वृत्ति अभाव.

जो यह कहोगे के "जेसे पूर्वमें कहा गया हे के "वाणी ओर शब्द, ब्रह्मको विषय नहीं करते, अतः शब्द प्रमाण उस विषयमें नहीं होसक्ता." वेसेही हो, परंतु जीव, ब्रह्म, शब्दकी शक्ति वृत्ति (शब्दके मुख्यार्थ) का विषय नहीं हे, किंतु शब्दकी लक्षणा वृत्ति-(शब्दका गौणार्थ-भावार्थ) का विषय हे;" यह कथनभी हास्य जनक हे. क्योंके जब शब्द, वशक्यकाही बोधक नहीं तो, लक्षणासे कैसे बोधक होगा? लक्षणा तो, पद, शक्य ओर माने हुये मन संकेतके आधीन हे.

तथाही शब्द स्वयं तो जड हे, अतः ब्रह्मको किसीप्रकारसेभी विषय नहीं करसकता. ओर शब्द संकेत द्वारा, मन बुद्धि उसको विषय करे सोभी नहीं होसकता; क्योंकि मन बुद्धि वहां नहीं जासकते-उनका ब्रह्म विषय नहीं. जेसे कहीं दस लडके हों, उनमेंसे एक लडका गिनने लगा, वहां भूल वा अज्ञानसे अपनेको नहीं गिनता, तब कहता हे कि ह-

मनो ९ लडके हैं. फेर कोई वृद्ध पुरूष कहे कि "दसवां तू हे" इस पदको सुनके उसकी मनोवृत्ति दसम पदके आकार (पूर्व ज्ञात संकेत आकार) होके पश्चात पूर्वोक्त अभ्यासित–संस्कार बलसे वातदानुसार पदके शक्य जीव (शरीर विशिष्ट वक्तृत्व ज्ञातृत्व अभिमानी) का अपनेमें अभिमान होता है, वा सो (जीव) अभिमान करता है. अर्थात् तूहे, वा तू चेतन ज्ञान स्वरुप वा ज्ञानगुण वाला हे, एसा किसीको कहा जाय तोभी, विश्वास वा अनुमानसे इतर पृथक, कोई वस्तु विशेष, ज्ञानका विषय नहीं होती† वा नहीं होसकती, क्योंकि ज्ञाता ज्ञेय वा अनुभवी, अनुभव होने योग्य–यह परस्पर भिन्न होते हैं. ओर ब्रह्म प्रसंगमें तो इतनाभी नहीं बन सकता; (क्योंकि किसी शुद्ध वृत्तिवालेकोभी कहें कि "तू ब्रह्म हे" वा "मैं ब्रह्म हूं" एसा जान. इन वाक्य करके उसके माने हुये शक्य वा लक्ष्य पूर्व अज्ञात, अदृष्ट, परोक्ष ब्रह्मकार होके ब्रह्मका ब्रह्मस्वरुपसे किसीभी परिच्छिन्न–शुद्ध वृत्ति–मन–बुद्धि,–जीवको वा अन्यको ज्ञान नहीं होसकता (यह स्पष्ट हे); वो, ब्रह्मत्व (धर्म) रहितको, स्व स्वरूपका ब्रह्मत्व रूपसे ज्ञान केसे होसकेगा? नहीं. इस रीतिसेभी जीव ब्रह्मके स्वरूप वा एकताके ज्ञानमें शब्द प्रमाणका प्रवेश नहीं. क्योंके जेसे किसीने गुलाबके वृक्ष वा फूलको पूर्व नहीं देखा तो "गुलाबका फूल" इस वाक्यसे उसको ज्ञान नहीं होता. परंतु "इस! फूलका नाम गुलाब हे" एसा सुना ओर देखा हो, उसको कालांतरमें गुलाब पद सुनके उसके शक्यकी, वृत्तिमें स्मृति होके ज्ञान होजाता हे. तथाही नभ उष्णादि पद श्रवणसेही नभता उष्णताका ज्ञान हो, यह नियम नहीं; किंतु नैसर्गि-

---

† अद्यापि सृष्टिमें जितने मतहैं, उनमें जीव स्वरूप विषे मत भेद हैं.

क साधनसे* स्वयं होता हे ओर फेर उसके नभ उष्णादि नाम रखे जाते हें, परंतु ब्रह्मका सामान्य विशेष–उभय स्वरूप, पूर्व अज्ञात हें ओर उसको स्वयं विषय करनेके साधनभी नहीं हे; अतः शब्दद्वारा (वा स्वयमेवभी) मन–बुद्धि–वृत्ति, विषय-शब्द-के शक्य वा लक्ष्य पर नहीं जासक्ति.* जो अहं अहं† एसे सामान्य प्रतीति सर्व कोहे, सोतो स्वभावतः हे. ब्रह्मके सामान्य रूपसे नहीं. किंवा जीव वादीको जीवके सामान्य भावकी स्वभावतः प्रतीति हे; जो के आवरण विशेषके अभावमेंभी होती रहित हो. आवरण काल (सुषुप्तयादि) विषे असाधनतामे प्रयोगमें उदासीन रूप हे. ओर जब पदार्थ विद्या संपन्न हो, तब जीवके विशेष स्वरूपका विश्वास वा अनुमान वा युक्ति वा अन्य प्रकारसे कथन होना संभव हे. परंतु ब्रह्मरूपसे ज्ञान होना वा मानना सर्वथा असिद्ध हे.

जो हठसे मानोगे, तो हम यह पूछते हें के, "तूं ब्रह्म हे" "में ब्रह्म हूं" इस पदके शक्य वा लक्ष्यका मनको वा बुद्धिको वा वाणीको वा अंतःकरणको वा ब्रह्मके आभासको वा इन सबको वा ब्रह्मको वा किसको ज्ञान हुवा? जिस हेतुसे, जीव ब्रह्मकी एकताका बोध मान लिया जाय. उक्त सर्व विकल्पोंमेंसे मनादिको मानें तो, सो ज्ञान (तूं ब्रह्म में ब्रह्म) होना असंभव हे; क्योंके आपके सिद्धांतनुसार वे जड हें, उक्त ज्ञान करने योग्य नहीं. तथाही आपके सिध्धांतमें वे मिथ्या हें, अतः उ-

---

* नभ ओर उसका व्यापकत्व, बुद्धि वा अवकाशादि हेतुसे अनुमान का विषय होताहे. उष्णत्वादि (परिच्छिन्न) का त्वचादिसे ज्ञान होताहे.

† अद्यापि जितने मतहें उन सबमें, इस जीवके स्वरुप विषे मत भेदहें (देखो तत्व दर्शन), इस वास्ते संशयात्मक होनेसेभी, जीवको ब्रह्मका अंश नहीं ठेरासकते.

नका यह ज्ञान के "मैं ब्रह्म हूं" सोभी मिथ्या मान्ना पडेगा. ओर मिथ्या ज्ञानसे कुछ सिद्धि नहीं होती; उलटा दोष है. तथाहि अन्यके स्वरूपका अन्यको उस स्वरूपसे ज्ञान होना वा मानना झूटा ज्ञान है. यथार्थ नहीं. मनादि ब्रह्म नहीं, चेतन नहीं, किंतु जड ओर परिच्छिन्न हैं. अतः उनका ज्ञान वा विश्वास, झूट ओर मिथ्या हैं. ओर जो यह कहोकि ब्रह्मका ज्ञान हुवा, तो अनेक असंभव दोष प्राप्त होंगे. मनादिसे भिन्न अन्य ज्ञाता मानोंगे, तो द्वैतापत्ति, पूर्व दोष ओर स्व सिद्धांत त्याग होगा. तथाही "इस वाक्यके श्रवण पूर्व ब्रह्मस्व स्वरूपको नहीं जानता था, अब अपने स्वरूपको जाना" एसा सिद्ध होगा; परंतु "ब्रह्मको स्व स्वरूपका भूलना वा नहीं जानना, कहना-मान्ना, हास्य ओर लज्जाको प्राप्त करताहै. जो वोह स्वस्वरूपको भूला, एसा मानें तो, स्वसिद्धांत त्याग होगा;" क्योंके ब्रह्मको चिन्मात्र वा ज्ञानस्वरूप मानते हो, ज्ञान, ज्ञानको भूला ओर जाना, एसा कथनही अयुक्तहै. ओर भी, वोह नित्य मुक्त वा मोक्ष स्वरूप नहीं ठरेगा; क्योंके फेर भी स्वरूपको भूल कर वर्त्तमान वत् बंधको प्राप्त हो सकेगा. जो यह कहोके, अनादिसे एसाहै; ज्ञान पश्चात् स्वरूपको भूलना नहीं हो सकेगा. तोभी आश्चर्यहै,–स्वस्वरूपको भूला, एसा कथनही असंभवहै. जो अनादि अज्ञान बल करके भूला, एसा मानें तो, अनादि वस्तु सांत ओर सांत अनंत नहीं होसकती, यह नियम थोडेक विचारसे ध्यानमें आसकताहै. अतः स्वस्वरूपका ज्ञान होनाही असंभव होगा. ओर जो संभव मानोगे, तो अनादि कूटस्थता (निर्विकारता) का अभाव होगा. तथाही "कोन भूला ओर किसको भूला" इन दो विकल्पोंसे यह परिणाम निकल आताहै के ब्रह्म, स्व स्वरूपको,

भूलाथा अब उसने अपने स्वरूपको जाना. जब यूंहे तो, ज्ञाता पदका ब्रह्म ओर ज्ञेय पदका स्वरुप वाच्य वा लक्ष्यहें; निदान ज्ञाता ज्ञेय भिन्न २ होतेहें; इस नियमसे ब्रह्म ओर स्वरूप दो वस्तु भिन्न २ हुइ. सो आपके सिद्धांतके विरुद्धहे; क्योंके ब्रह्मसे इतर सर्व मिथ्या मानते हो. अतः यहांभी दोनोंमेंसे एकको मिथ्या कहना पडेगा. जो दोनोंको सत्य मानोगे तो, द्वैतापत्ति होगी पुनः ज्ञान वांस्ते, ज्ञाताज्ञेयकी अनवस्था चलेगी. जो राहुका माथा, इस मिथ्या दंत कथावत् किंवा अग्नि उष्णहे, इस दृष्टांतवत्, ब्रह्म सच्चिदानंद एकही स्वरुपहे. एसा समझाओगे; तो, इस प्रसंगमें यह नहीं लगता; क्योंके यहां स्वरूप मात्रका प्रसंग नहींहे, किंतु ज्ञाता ओर ज्ञेयका प्रसंग हे. ब्रह्म स्वगत भेद रहित हे; अग्नि, उष्ण—एकही पदार्थहें,—ज्ञाताज्ञेयवत् नहीं. अतः उक्त दृष्टांत यहां युक्त नहींहे.

इस रीतिसे ब्रह्म, स्व स्वरूपको भूलाथा, अब तत्व मस्यादि श्रवण करके स्व स्वरूपको जानने लगा—इत्यादि कथन बच्चोंकी कथा समान हे. अतः पूर्व वृत्तांतकी रीतिसे 'तू ब्रह्म' में ब्रह्म' एसा शब्द कथन वा श्रवण वा पठन वामनन करना निष्फलहोहे.—किसीकोभी उक्त पदके शक्य वा लक्ष्य-स्व ब्रह्मत्वका अनुभव नहीं होसकता. हो कहांसे, जो हो, तो हो.—जो वास्तवमेंही वेसी वस्तु न हो, उसका ज्ञान केसे होगा? किंतु नहीं होगा. जेसेके श्रोता संबंधमें पूर्व विषे कथन हुवा, वेसे उपदेष्टा संबंधमेंभी अनेक दोष समझ लेना, विस्तार भयसे पुनरावृत्ति नहीं लिखते.

अहं ब्रह्म तू ब्रह्म "एसे वक्ता वा श्रोता, मन—बुद्धि—अंतःकरण, आभास वा यह सर्व वा *साधिष्ठान यह सर्व, वा इनमें

* ब्रह्ममें वक्तृत्व वा श्रोतृत्व वा मंतव्य नहीं, एसा माननेप

में कोइ होना चाहिये; परंतु निराकार, निर्विकार ब्रह्ममें उक्त वक्तृत्व वा श्रोतृत्व वा मंतव्य वा ज्ञातृत्व हे नहीं, ओर मनादि जड हें, यह आपको संमत हे. तो उसके शक्य वा लक्ष्य (जीव ब्रह्मकी एकता, जीव ब्रह्मका स्वरूप, एसे लक्ष्य) के कथन श्रवण ओर ज्ञानके अभाव होनेसे, जीव ब्रह्मकी एकता मानना वा कहना, वाणीमात्र वा विश्वास वा रूढी मात्र वा अभ्यास मात्र हे. युक्ति अनुभव प्रमाणसे विरुद्ध हे. हां, मनादि ओर मायाको एकता कहो तो, संभव हे; तथापि इनमें ज्ञातृत्वादिके अभावसे उसका ज्ञान, जीव चेतन ज्ञाता माने विना, सिद्ध नहीं होगा.

बाध समानाधि करणाभाव.

जो यह कहो के यद्यपि निर्गुण ब्रह्म विषे उपदेश वा जानना वा भूलना वा अहं ब्रह्म अभिमान वा अनुमान किंवा अहं ब्रह्म रूपसे ज्ञान नहीं बनता; तथापि शब्द द्वारा (उसके शक्य वा लक्ष्य—ब्रह्म स्वरूप प्रति) मन—बुद्धि—अंतकरण, चिदाभासादि किसी एकमें वा सबमें अहंब्रह्मका मिथ्याभिमान होके बाध समानाधिकरणसे बनता हे. सो वार्ताभी समीचीन नहीं; क्योंके किसी रंकका "में राजा हूं" एसा अभिमान, उसको राजा नहीं बना सक्ता. ओर न उसका राजामें बाध होसकता हे. एसेही में ब्रह्म हूं, इसका लक्ष्यार्थ माननेवालेको सो अभिमान ब्रह्म स्वरूप नहीं बना सकता. अर्थात् निष्फल, व्यर्थ ओर झूट हे.

केवल जड मनादिमें ही कहना पडेगा. अतः ब्रह्माश्रित जो मनादि, एसा यहां अर्थहे. ब्रह्म ओर जड मनादि मिलके, श्रोता वक्ताहों, एसा अर्थ नहीं करना; क्योंके ब्रह्म स्वभावतः सत्तास्फुर्णा देताहे, कुछ सूचना नहीं करता; एसा वेदांतियोंको संमतहे.

जेसे दरपन (काच)में मुखका प्रतिबिंब पडता हे वहां मुख उपरसे प्रकाश (रोशनी) उठके काच पर आता हे. तब अन्य (मुखादि) रूपाकारवत् चक्षुमें विषय होता हे ओर काच पर मुखाकार प्रतीत होता,हे (वोहे केसे होता हे, इसका विस्तार करना यहां प्रासंगिक नहीं), सो काचके अभाव हुये सूर्य वा अंतरिक्षमें लय होता हे. उनका (रोशनी किरणोंका) काच वा मुखमें बाध नहीं होता. ओर वे मुखमें लय वा मुख रूप नहीं होजाती अर्थात् प्रतिबिंब रूप किरणका सूर्य प्रकाश में बाध समानाधि करण हे, मुखमें नहीं (देखो परीक्षा पूर्वक फोटोग्राफ ओर प्रत्यक्ष सिद्ध पुरावा). इसी प्रकार 'अहं ब्रह्म' 'तूं ब्रह्म' जीव ब्रह्म एक, इस प्रकारका अभिमानी जो मनादि वा उनका अभिमान ब्रह्ममें लय नहीं होता. किंतु उनका बाध समानाधि करण प्रकृतिमें होता हे. अतः अनुमान वा विश्वास रूपभी 'अहं ब्रह्म' 'तूं ब्रह्म' ब्रह्म वा कूटस्थ नहीं हो सकता. ओरन उसका बाध समानाधि करण ब्रह्ममें होताहे.

परंतु जेसेके निरूपाकाशका प्रतिबिंब नहीं होता ओर वेदांती लोक जलादिमें गंभीरताके दृष्टांतसे निरूपका आभास बतलाके बुद्धिको विभ्रम करते हें ओर व्याघात दोषमें फंसते हें. यह ध्यानमें नहीं लेतेकि, चक्ष्यका विषय, रूप ओर आकार हे. सो तो नभमें नहीं स्वीकारते हें ओर फेर उसका आभास दृष्ट बताते हें. वेसेही निरूप निराकार चेतन ब्रह्मका, माया–अंतःकरण–बुद्धि–वृत्तिमें आभास बताके 'अहं ब्रह्म' 'तूं ब्रह्म' वाक्योपदेशद्वारा चिदाभास प्रसंगको लेके बाध समानाधिकरण दृष्टांतसे अहं ब्रह्म (जीव ब्रह्म एक) सिद्धांतको सिद्ध करते हें, अर्थात् अयुक्त हे. यह नहीं सोचते के चेतनका आभास, चेतनका जडमें आभास, सत्का मि-

ध्यामें आभास और निरूप (शब्द आकाशादि)का आभास ही सिद्ध नहीं होता, तो बाध समानाधिकरण कैसे होगा? वा मिथ्याभिमान द्वारा लक्ष्य कैसे ग्रहण होगा? जैसेके पूर्वोक्त प्रकारसे ब्रह्ममें श्रोतृत्व, वक्तृत्व और ज्ञातृत्वका अभावहै, वैसे आभास होने और आभास लयका अभावहै. क्योंके जिसका आभास और जिसमें आभासहै, इन दोनोंसे भिन्न, आभास वा प्रतिबिंब—वस्तु विशेष होती है, यह पूर्वोक्त रीति और वक्ष्यमाण प्रकारसे प्रसिद्ध है (वेदांती लोक उसे अनिर्वचनीय मानते वा विवादमें डालते हैं सो परीक्षा और प्रत्यक्ष पदार्थ विज्ञानके विरुद्ध है). इस रीतिसे उनके मतमें दोष विशेषभी आता है. अर्थात् माया ब्रह्मसे भिन्न आभास वा (किरण समान) उसका उपादान तीसरा पदार्थ, उभय विलक्षण मानना पडेगा. उस करके स्वपक्ष त्याग होगा.

और जो स्थाणुमें पुरुषका बाध होके पुरुष स्थाणुका बाध समानाधिकरण मानते हैं, सोभी समीचीन नहीं है; क्योंकि वेदांतकी रीतिसेही पुरुषका उपादान साक्षीस्थ अविद्या है, स्थाणु ज्ञान पश्चात पुरुषका लय साक्षी आश्रित अविद्यामें होता है. स्थाणु उपहित चेतनमें नहीं; अतःपुरुषका स्थाणुके साथ बाध समानाधिकरण नहीं. तद्वत् अहं ब्रह्म वक्ताका ब्रह्म साथ नहीं; ऐसा पूर्व प्रकारवत् जान लेना. और जो प्रकाश विद्या (फोटो) की रीतिसे स्थाणुकी किरण चक्षुमें हैं. उसका ज्ञान मानो, भूमिस्थ स्थाणुका प्रत्यक्ष होना नहीं मानो तोभी, पुरुषका समानाधिकरण स्थाणुमें नहीं होता किंतु किरणोंमें वा उक्त अविद्यामेंही बनेगा.

अतः शब्द शक्ति वा लक्षणा वृत्तिद्वारा मिथ्याभिमान होके आभासद्वारा वा अन्यथा, बाधसामानाधिकरण प्रका-

इसे एकता वा अहं ब्रह्मका ज्ञान वा स्व ब्रह्मत्व भाव अलीकहे.

इसी प्रकार शब्दके माने हुये शक्य वा लक्ष्य ब्रह्म चेतन रूपका ग्रहण, कोइ युक्ति वा वृत्ति द्वाराभी वा किसी प्रकारसेभी नहीं होसक्ताः

इत्यादि प्रबल कारणोंको लेके जोव ब्रह्मकी एकतामें शाब्द प्रमाण नहीं हे. वेंद उपनिषदसे इतर प्रस्थानों (गीता, ब्रह्म सूत्रादि)की चर्चा इसलिये नहीं लिखते के, वे सर्व, वेद उपनिषदके आधीन हें, स्वतः प्रमाण रूप नहीं; एसा वेदांती लोक मानते हें.

(सूचना) पूर्व शब्द प्रमाण प्रसंग, जोव ब्रह्मकी एकताके प्रसंगमें हे; तद्देतर विषयोंमें वेद प्रमाण हे वा नहीं, सो चर्चा नहीं हे. अतः तदेतर प्रसंगमें नहीं समझ लेना. अर्थात् पूर्वोक्त लेखसे हमारा एसा दुराग्रह नहीं समझना चाहिये कि, वेदोपनिषद सर्वथा त्याज्य हें. यदि कोइ एसे अन्य अर्थ हों कि जो सृष्टि नियम ओर युक्ति प्रमाणके अविरुद्ध हों तो, उनके अर्थ स्वीकारनेमें दुराग्रह नहीं- किंवा उन्ही ग्रंथोमें यथार्थ उत्तम उपदेशभी होने योग्य हे ओर हे. उसके खंडनमें आग्रह नहीं हे. परंतु साथही यहभी जितादेना आवश्यक हे के, किसीके एक असत्य वा सत्य वचन करके उसके सर्व बचन असत्य वा सत्यही हों, एसा हमारा मंतव्य नहीं हे. किंतु सत्यासत्यके निर्णय पूर्वक त्याग ग्रहणमें अभिप्राय हे. चाहे वोह वाक्य ग्रंथकर्त्ताका हो वा किसीने उसमें मिला दिया हो वा हरकोइका होवे. निदान जहां तक उसको छाण वीण नहीं हुई वा नहीं होसक्ती वहांतक, उस पर विश्वास वा आधार नहीं रखा जाता.[1] अन्यथा त्याग ग्रहणमें आग्रह नहीं.

---

१ संभवहेके अनर्थ ग्रहण होके हानीमें पडें,

उपमान अर्थापत्ति अभाव.

शेष रहे उपमान, अर्थापत्ति ओर अभाव प्रमाण; सोभी इस विषयमें प्रमाण नहींहैं; क्योंके वे सर्व, प्रत्यक्ष, अनुमानके आधीन हैं. अतः उनउनके दोष आवेंगे. यदि उपमान प्रमाणको इनसे भिन्न स्वयं प्रमाण मानो; तो निरुपम, अगोचर ब्रह्ममें कोइ प्रकारसेभी उपयोग नहीं होता.

तद्वत् अर्थापत्तिको भिन्न प्रमाण मानें; तो दृष्ट श्रुत वा अनुमानसे भिन्न नहीं. तीनोंमें पूर्वोक्त दोष प्राप्त होंगे. ओर केवल भिन्न प्रमाण मानें; तो प्रत्यक्षके अंतर्गत होनेसे पूर्व दोष आवेंगे. जो उपमानादिको हठसे मानोगे, तो द्वैतापत्ति होगी.

(अभावाभाव)

अभाव प्रमाणभी, ब्रह्म जीव वा उनकी एकता विषे नहीं है; क्योंकि ब्रह्मादि भावरुप हैं. अभावको पदार्थ वा अधिकरण वा विशेषण वा शून्य अथवा अन्य कुछभी मानें परंतु इंद्रिय वा मनके विना ओर प्रतियोगी अनुयोगी विना, गम्य नहीं होता. जिनका ब्रह्मके साक्षात् अपरोक्ष होनेमें बाध है. वेदांती लोकभी उपमानादिको ब्रह्मका विषय कर्त्ता नहीं मानते; अतः विशेष विस्तारकी आवश्यकता नहीं.

तथा स्मृति प्रमाणकोभी उनके मतमें प्रमाणरुप नहीं माना है; इस लिये उसकोभी प्रत्यक्षादिके आधीन जानकर विस्तार नहीं करते.

जो स्वपक्ष सिद्धिमें सर्व प्रमाण मानोगे, तो स्व सिद्धांत (तंत्त्वोपनिषद)का त्याग होगा. इतनाही नहीं किंतु पूर्वोक्त सर्व दोष प्राप्त होंगे.

निदान वेदांती लोक षट् प्रमाणकोही मानते हैं अन्य नहीं; सो जीव ब्रह्मकी एकता सिद्धिमें उनकी रीतिसेही उपयो-

गी वा मान्य नहीं होसक्ते; जेसाकि, यथोचित उपर वर्णन हुवा.

(अनुभवाभाव.)

जो यह कहो के उक्त विषयमें अनुभवही प्रमाण हे अन्य नहीं. यह कथनभी शांति प्रद वा यथार्थ पुरावा नहीं हे. क्योंके अनुभव पदही अपने अर्थको पराधीन जनाता हे. अर्थात् यह स्वतः प्रमाण नहीं किंतु प्रत्यक्षादि करके जो यथार्थ ज्ञान हो उसीको अनुभव कहा जाता हे. (अयथार्थ अनुभवका यहां प्रसंग नहीं हे.) ओर प्रत्यक्षादिकी उपर व्यवस्था कही गई; अतः अनुभवकोई, स्वतः प्रमाण नहीं. जो कोइ भिन्न प्रमाण मानो, तो यह प्रश्न उठता हे के, मनेंद्रिय जन्य अनुभव वा इनके विना स्वयं होता हे? प्रथम विकल्प मानें, तो पूर्ववत् दोषकी प्राप्ति होगी ओर दूसरा विकल्प मानें, तो किसका अनुभव माना जाय? अर्थात् जगत्में प्रसिद्ध बात हे के कोइ कहतो हे ईश्वर हे, कोइ नहीं बताता हे, कोइ जीवकी अणु कोई मध्यम कोइनाना व्यापक कहता हे. ओर सर्व उसमें स्व स्वानुभवको साक्षीमें देते हें. नहीं मालूम इनमें किसका अनुभव प्रमाण हे. जो इंद्रिय अजन्य ईश्वरका अनुभव प्रमाण मानें, तो ईश्वरके अस्तित्वमेंही तकरार हे. तथा उसका अनुभव उसपास हे, अन्यको विश्वास सिवाय उपयोगी नहीं. जो यह कहो के "योगद्वारा संस्कारित वृत्ति करके परीक्षा करलो. हमारे अनुभवानुसार जीव ब्रह्मकी एकता ज्ञात होजायगी!" तो मेरा यह कहना हे के, बौद्ध, जैन, पातंजल–इत्यादि सर्व, एसाही कहते हें. अब इनमेंसे किसके प्रकारवत् अपनी आयुष्य गुमावें? कदाचित् व्यर्थ काल जावे तो, पीछे मनुष्यत्व निष्फल होने ओर वेसीकी वेसी तकरार रहने ओर अन्योंकी शंका निवारण न होनेसे पस्तावा रह-

गा. किंवा चार्वाकका मंतव्य है के "मरनेके पीछे कोई मोक्ष पद नहीं है, किंतु मरण, यही मुक्ति. क्योंके जोव पंचभूत जन्य पदार्थ है, तदेतर कोई तत्व रूप नहीं* यह हमारा अनुभव है." जो कहो के वक्ताके अनुभवकी जो विषय सो, युक्ति प्रमाणसे सिद्ध करलेना चाहिये. तो आपके मतमें पूर्वोक्त तथा वक्ष्यमाण यौक्तिक दोष प्राप्त होते हैं, अतः त्याज्य होगा. ओर अनुभव प्रमाणको बाध आवेगा.

तथाही चर्मगिर (चमार)के स्थानमें जो राजाके कुवरको ले जाया जाय, तो दुर्गंध करके मस्तकमें वेदना हो पडती है, ओर यहां महा दुर्गंधी है, एसा स्वानुभव कहता है, परंतु चर्मगिरसे पूछो तो, दुर्गंधीका अभाव कहेगा. कदाचित् सामान्यतः दुर्गंधी बतावेगा. इनमें किसका अनुभव प्रमाण? तद्वत् पाचक ओर राजकुमारके अनुभवमें अग्निकी उष्णताकी प्रतीति विषे न्यूनाधिक रूप अंतरहे. इस प्रकार किसी एकके अनुभव पर विश्वास सिवाय आधार नहीं होसक्ता. कदाचित् हठसे मानोगे, तो परस्पर विरोध आनेसे सर्वका अनुभव अप्रमाण वा सर्वका प्रमाण, एसा माननेसे प्रमाण युक्ति करकेही परीक्षा करनी पडेगी. वा अव्यवस्था रहेगी.

ओर जो अनुभवको प्रमाण मानभी लेवें तो, जीव ब्रह्म वा उनकी एकता नामा विषय (वा अनुभवका विषय) ओर जिसका अनुभव, विश्वास करके मान्या है वह अनुभव कर्ता, जीवादि विषय (वा विषय मात्र)से भिन्न मान्ने पडेंगे; क्योंकि "अनुभव कर, स्व विषयसे भिन्न होता है" यह नियम प्रसिद्ध है. अतएव द्वैतापत्ति होगी; जोकि आपको असंमत है;

* शरीर, तिसके यंत्र, मगज, हृदय, चक्र, ब्रह्मरंध्रादिके खोलके, तपासके अनुभव किया ओर करासक्तेहैं.

क्योंकि मिथ्या-(ब्रह्मेतर अविद्या, अंतःकरण, मनादि तमाम), सत्य ब्रह्मको विषय करने योग्य नहींहे. नहीं करसकता. ओर जो जीवादिको अनुभव स्वरूप मानते हो तो, अनुभव प्रमाणका प्रसंगही नहीं रहा; उसकी सिद्धिमें प्रत्यक्षादि मानेसे उक्त दोष प्राप्त होवेंगे. इसलिये आपके मंतव्यमें अनुभव प्रमाणको कोईभी स्वीकार नहीं करसकता.

जो प्रमाणका प्रमाण नहीं, एसा कहोगे, तो प्रत्यक्षादिमें प्रत्यक्षादि तो प्रमाण नहीं होसकते, तब स्व सिद्धांतकी सिद्धि केसे कर सकोगे?, परको केसे अनुभव करासको वा मनासकोगे? नहीं. ओर न स्व पक्षकी प्रतिज्ञा करसकोगे. तथा उक्त विषय (जीव, ब्रह्म, ओर एकता) अज्ञेय, तो प्रमाण मात्रकी आवश्यक्ता नहीं. ओर जो ज्ञेय, तो आपकी पूर्वोक्त श्रुतिके विरुद्ध ओर द्वैतापत्ति.

निदान पूर्वोक्त प्रकारसे जीव ब्रह्मकी एकतामें कोईभी एसा योग्य प्रमाण ज्ञात वा सिद्ध नहीं होता कि जिससे संतोष मिले. जब यूं हे तो, एकता, केवल कल्पना मात्र लेख हे वा विश्वास मात्र कथन श्रवणहे वा संप्रदायकी रूढी रूप शैली हे, एसा, क्यों नहीं मान लिया जाय? ओर उस पर क्यों कर विश्वास रखा जाय? (संक्षेप में--सयुक्त परीक्षामें न लासकें, एसी प्रकारका किसी-ग्रंथ वा महात्मा-का प्रमाण देना, उलटी उसकी निंदा करने जैसाहे; क्योंकि प्रामाणीक वाक्य अयुक्त नहीं होते, ओर यह अयुक्तहे; अतःप्रमाण नहीं, एसा विश्वास होजाताहे. यहां वक्ताकी युक्ति अज्ञात मानें, तो उस (वेदवक्ता-ईश्वरादि) का आशय वा अर्थभी हमारेसे अज्ञात-अन्य होना क्योंन मान जाय?-एसा होना संभवहे. वा कोन जानें किस दृष्टि, देशकालके आशयसे एसा लिखा? वा किसी अन्यका (महाभारतादि ग्रंथगत क्षेपकसमान) मिलाया हुवा वाक्य क्योंनहो?-एसा होना संभवहे. तद्वत् उक्त अन्य प्रमाणों विषे अनेक बातें विचारणीय होती हैं). अतः केवल एक प्रकार [विश्वास वा शब्दादि प्रमाण) के आधारपर उक्त विषय मान्य नहीं होसकता.

लक्षणा, अपरोक्षत्व दर्शन २.

(तत्त्वमसि महा वाक्यकी लक्षणा–अर्थ)

(एक जीववाद–एकताका अपरोक्षत्व.)

जो हठाकारसे विश्वासमें आकर आपका सदोष (दोष आगे वांचोगे) सिद्धांत मानभी लेवें तोभी, साधारण युक्ति ओर सृष्टि नियमसे हठ ओर विश्वास भंग होजाता हे. किंतु अनर्थ प्राप्त होता हे. सो संक्षेपसे जनाते हैंः–

"एकदो न दोएक" यह अटल नियम हे–अर्थात् जो स्वरूपसे एक वे दो, ओर जो दोहें, वे एक, कभी नहीं होते (१). तथा स्वरूप मात्र स्वरूपसे भिन्न २हें. अर्थात् स्वस्वरूप संबंध विना, अन्य स्वरूपोंके साथ, स्वरूप संबंध नहीं कह सक्के वा नहीं होता (२). यह सर्व मान्य ओर सृष्टि नियम हें–तथा सर्वको अनुभव गम्य होने योग्य हे. एतदृष्टि अब जो, जीव–ब्रह्म उभयको स्वरूपसे भिन्न २ मानें, तब तो, इनकी एकता, जीवके जीवन्मुक्त वा विदेह मुक्त हुये वा किसी कालमें, कभीभी नहीं होसक्की ओर जो एकही स्वरूप हें–व्यवहार मात्र पर्याय रूप दो नाम रखें हें–तो, उनकी एकताका कथनही झूठ–अयोग्य–अनुचित वा असंभव हे, जेसेके जल ओर पानीकी एकता हे–एसा कथन अयोग्य हे; किंतु जल ओर पानी एकही वस्तुके दो पर्य्याय नाम हें, एसा कहना योग्य हे. दो भिन्न लक्षण, वाचक नाम कहके एकता कहना झूठ वा अनुचित हे. वेदांती लोक जीवको, संसारी-बद्ध,-कर्त्ता-भोक्ता-व्याप्य ओर परिच्छिन्न मानते हें; ओर ब्रह्मको तद्विरुद्ध (असंसारी, मुक्त, अकर्त्ता, अभोक्ता

ओर व्यापक) विशेषण लगाते हैं. (देखो द्वासुपर्णादि श्रुति) अतः उभयका स्वरूप भिन्न सिध्द होनेसे उभय भिन्न २ हुये.

जो यह कहोके, यद्यपि तुम्हारा कथन ठीक हे, तथापि इस वचनमें गुह्य रहस्य हे—जिसको अनुभव भाषाकी परिपाटिसे ब्रह्मनिष्ठ–श्रोत्रिय गुरु महात्मा लोक करके जानने योग्य हे—वोह यह हेः—व्यवहार मात्रमें पदका •लक्ष्यार्थ रहा हुवा हे.—जेसे "जलला" इस पदको श्रवणकरके 'ज' कार 'ल'कार नहीं लाता वा नहीं लासक्ता, ओर लाना जानताभी नहीं; अतः भावार्थ बलसे जलपदका शक्य वा लक्ष्य (वाक्यार्थ वा लक्ष्य) जो तृषा निवारक पीनेका पदार्थ है उसको× लावेगा. क्योंके वक्ताका अभिप्राय उस पदार्थमें है—'ज'कार 'ल'कार—शक्यमें नहीं. किंवा "नलिये चूते हें" इस वाक्यका प्रचार हे ओर भावार्थसे जलका चूना जान लिया जाता हे. किंवा "सैंधवला" इस पदको सुनके श्रोता, प्रसंगानुसार लवण वा अश्व (भोजन समय हो तो, लवण ओर हवा खाने वा लडाईका प्रसंग होतो, अश्व) लाता हे. निदान् व्यवहार मात्रमें शब्दका भावार्थभी होता हे. इसी प्रकार "जीव—ब्रह्म एक हे" "तत्त्वमसि" "अहं ब्रह्म" वाक्योंमें वाच्यार्थ ओर भावार्थ हे उसको संक्षेपसे जनाते हैं:—

— अंतःकरण–बुद्धि वा अविद्या विशिष्ट चेतन, अथवा आभास (ब्रह्मके आभास सहित) अंतःकरण–बुद्धि वा अविद्या विशिष्ट चेतन, अथवा अंतःकरणादि अवच्छिन्न वा–अनवच्छिन्न चेतन, अथवा अज्ञान विशिष्ट वा अज्ञान अवच्छिन्न वा अनवच्छिन्न चेतन,—जीव पदका वाच्यार्थ हे. सो-

× जल पद सुनतेही पूर्व परीक्षित संकेतभानसे, जल द्रव्यके शीतत्वादिका स्वभावतः स्मरण–ग्रहण होता हे. लक्षणासे नहीं.

ही कर्त्ता-भोक्ता-सक्रिय कहाता है; और उपाधि रहित-व्यापक शुद्ध-अद्वैत चेतन, ब्रह्म पदका वाच्यार्थ है अथवा माया —अज्ञान विशिष्ट वा अवच्छिन्न वा अनवच्छिन्न किंवा साभास माया-अज्ञान विशिष्ट चेतन ईश्वर—ब्रह्म पदका वाच्यार्थ है. उक्त वाच्यार्थमें लक्षणा करें (वक्ताका भावार्थ लेवें) तो, चेतन पदार्थसे इतर अंतःकरणादि और उपाधि माया अज्ञानादिका त्याग करके, चेतन शुद्ध स्वरूप ब्रह्ममें तात्पर्य है. अर्थात् व्यापक चेतन एक ब्रह्म है. वही अंतःकरणादि और मायादिका अधिष्ठान और उनमें व्यापक है. वे इसके व्याप्य हैं. व्यवहार और उपाधि प्रसंगसे नाना नाम कल्पते हैं. इस प्रकार जीव—ब्रह्मकी एकता, (दोएक, एकदो) का कथन है—उपाधि सहितसे प्रयोजन नहीं है. और यहि तत्त्वमसि, अहंब्रह्मादि वाक्योंका रहस्य है और वेदका सार (वेदांत) है. (इति पूर्वपक्ष). मेरे प्यारे वेदांती भाइका उक्त कथन (भी), वाक्योंको प्रमाण माननेसेभी नहीं बनता. क्योंकि "ब्रह्मचेतन एक है और सजातीय—विजातीय—स्वगत भेद रहित अचल है, तदेतर अनिर्वचनीय पदार्थ अनादि सांत मिथ्या हैं;" यह आपका सिद्धांत है: जब एसा कहा वा माना तो, "जीव ब्रह्मकी एकता" एसा कथन वा उपदेश झूठ होजायगा. क्यों के चेतन सत्य है, अंतःकरणादि मिथ्या हैं, अतः विलक्षण (मिथ्या-प्रातिभासिक) उपाधि वाले जीवकी पारमार्थिक ब्रह्मके साथ एकता कथनकी शैली, रत्न देखाके काच देने जैसा है. ब्रह्मको विजातीय भेद रहित कहना और फेर विजातीय मायादि मानना, आश्चर्य जनक बात है. यह मानाके सत्य परमार्थ रूप विजातीय नहीं; तथापि सजातीयसे अन्य सत्, असत्, सदासद् (वि-

लक्षण वा केसेभी हों, सर्व विजातीय कहाते हैं. अतः विजातीय पद कथन अनुचित हे. जो कहो के तदेतर कुछभी नहीं, तो जो कुछ उपदेश वा कथन वा खंडन मंडन करोगे वा मनमें अनुभवोगे सो तमाम; व्याघात वा छल कपटका आरोप करेगा. ओर आपकी संप्रदायका अवच्छेद होगा. सो अभीतक नहीं देखते; इसीसें हमारा उक्त कथन अयथार्थ नहीं, किंतु प्रत्यक्ष प्रमाण बलसे सिद्ध हे.

जो कहोके स्वप्नवत् हे, तो आपका सिद्धांत वा मंतव्य वा उपदेश वा अंनुभवभी स्वप्नवत् वा बाल कथन समान होगा. जेसे परिच्छिन्न-सक्रिय-परिणामी-दृष्ट पदार्थोंको "सर्वखल्विदं ब्रह्म"† कहते हो, वा "अनादिको सांत, सादिको अनंत" मानते हो, यह स्वप्न वा अज्ञान बल नहीं तो क्या हे? अतः स्वप्नवत् त्याज्य हे. ओर सत्यरूप जाग्रतमें (सत्यासत्यके निर्णयरूप अवस्थामें) आनेकी आवश्यकता हे. उक्त वाक्यका जो अर्थ आप मानते हो वा वेसाही होतो, अयुक्त हे. तत्वमस्यादि वाक्योंको प्रमाण कहके वक्ताके अभिप्राय उपर लक्षणा मानके जो, अर्थ किया हे वोहभी, आपका मनोरथ सिद्ध नहीं करता; क्योंके जेसे-किसीसे पूछेंकि कहां रहते हो? तब उसने कहाकि "नारायण सरोवरमें." यहां नारायण नामा मनुष्यका खुदायाहुवा जलपूरित जो खड्डा हे, उसका नाम नारायण सरोवर हे. ओर नारायण सरोवर वाक्यका सो शक्यार्थ-(वाच्य) हे; परंतु जलपूरित खड्डेमें मनुष्यका सर्वदा (जीवन पर्यंत) निवास असंभव हे;

† यह सर्व जगत् ब्रह्ममें स्थित हे, एसा द्वैतवादी अर्थ करते हें. यह सर्व जगत् ब्रह्म हे वा यह सर्व जगत् नामरूप त्यागके सर्व ब्रह्म हे, एसा वेदांती लोक [अद्वैतवादी] अर्थ करते हें.

अतः वक्ताके कहनेका तात्पर्य यह है कि नारायण सरोवर के तीर (किनारे) में रहता हूं. [1]इस उदाहरणमें नारायण सरोवर ओर तीरका जो संबंध (शक्य संबंध) उसे लक्षणा कहते हैं. ओर नारायण सरोवर पदका (शक्य संबंधी) तीर लक्ष्य (लक्ष्यार्थ) है. इसी प्रकार तत्त्वमस्यादिमें जो लक्षणा करें तो, दोष आता है.–ओर आपके सिद्धांतकी हानी होती है. संशय रहित सिद्धांत नहीं होता. उसका दिग्‌दर्शन मात्र यह है:-

"शक्य संबंधो लक्षणा" यह आपकी रीतिसेभी लक्षणाका लक्षण है. लक्षणा करके जिसका ग्रहण होसके सो लक्ष्य (उभयके दृष्टांत ऊपर जिताये हैं). लक्षणा करनेके तीन प्रकार हैं अर्थात् लक्षणा तीन प्रकारकी है.[2]

शक्यको छोडके शक्यसंबंधी लेना, जहत कहाती है;.जेसेके उक्त उदाहरणमें सरोवर छोडके तीरत्व धर्मवान् स्व स्वरूप संबंधी विशिष्ट जोतीर व्यक्ति, तिस (केवल तीर) में लक्षणा है..१.

शक्यको न त्याग करके शक्य संबंधीकाभी ग्रहण करना, सो अजहत् लक्षणा है; जेसेके "दूधको कागसे रक्षाकर". यहां दूध नाशक सर्पत्वादि धर्मवान् स्व स्वरूप संबंध विशिष्ट सर्पादिव्यक्ति (सर्प बिल्ली इत्यादि..शक्य संबंधी) काभी ग्रहण है. ओर काक (शक्य)काभी है. २.

शक्यके एक भागको छोडके एकका ग्रहण करना, यह जहताजहत–भाग त्याग–लक्षणा कहाती है; जेसेके पूर्व दृष्ट राज्य सामग्री विशिष्ट भरत राजाको किसीने जंगलमें विभूति लगाये हुये देखके किसीसे कहाके "यह वही है" वा

---

१ वाचकको लक्षणा प्रकारका बोध होजाय, इस लिये उदाहरण लिखाहै. २ ग्रंथकार वा पक्षकारोंने जो जो भेद लिखे हैं, उन सर्वका, वेदांतियोंके इन तीन प्रकारोंके अंतरगत समावेश होजाते हे.

भरतसे कहा "सो तू हे." यहां पूर्व देशकाल राज्य सामग्री युक्त जो शरीरत्व धर्मवान स्व स्वरूप संबंध विशिष्ट शरीर व्यक्ति, सो वहो वा सो पदका वाच्य–शक्य–हे. (शक्यक संबंधी नहीं). ओर वर्त्तमान देशकाल वनस्थ विभूति लगाये हुये जो शरीरत्व धर्मवान् स्व स्वरूप संबंध विशिष्ट शरीर व्यक्ति सो, यह वा तू पदका वाच्य–शक्य हे. (शक्य संबंधी नहि) पूर्वोक्त वहो–सो पदके शक्यका संबंधी बन विभूति आदि हैं, परंतु शरीर नहीं. ओर यह वा तू पदके शक्यके संबंधी राज्य सामग्री आदि हैं. परंतु शरीर नहीं. निदान शरीरत्व धर्मवान स्वस्वरूप संबंध विशिष्ट शरीर व्यक्ति तो, शक्यहोहे.

अब यहां जो भागत्याग करें तो, सो (वही)के वाच्यका एक भाग स्वस्वरूप संबंध विशिष्ट व्यक्ति मात्रका ग्रहण हे. ओर तूके वाच्यमेंभी उसीका ग्रहण हे. अर्थात् स्वस्वरूप संबंध विशिष्ट शरीर मात्र लक्ष्य हे. किंवा उपर जो जीव ब्रह्मकी एकताके प्रकारमें जनाया गया हे सो, भाग त्यागका उदारणहे.[१]

उक्त तीनों[२] प्रकार प्रचलित प्रसिद्ध ग्रंथ ओर वेदांतियोंके मतानुसार हैं.

---

१ विदित रहेके ऊपर जो जाति व्यक्ति विशिष्ट पद लिखे हें वे, न्यायादि शास्त्रोंके मत वा व्यवहार दृष्टिसे विशेषतः लिखे गये हें. ओर स्व स्वरूप संबंध विशिष्ट जो वाक्य लिखा हे वोह, वाचकको यथार्थ बोध ओर व्यवहार मात्रमें उपयोगी होनेकी दृष्टिसे लिखा हे. कुछ तकरारकी दृष्टिसे नहीं लिखा हे. क्योंके शब्दकी शक्ति ओर लक्षणा वृत्ति तथा जाति व्यक्तिमें अनेक प्रकारके मंतव्य- वादविवाद हें. यहां तो, उपयोगी प्रसंगमात्र लिखा हे.

२ वाचक महाशय? आगे, दार्ष्टांत प्रसंगमेंभी कहे हुये प्रकारसे विवेक करनेका हे. ध्यानमें रहे.

अबमें (समीक्षक) आप (वेदांतियो)से यह पूछता हूं के उक्त तत्त्वमस्यादि वाक्योंमें कोनसी लक्षणा मानते हो ?

यदि पहिला प्रकार मानते हो तो, 'जीवेश्वर एक' वा 'जीव ब्रह्म एक' इस वाक्यमें स्वस्वरूप संबंध विशिष्ट चेतन ब्रह्म व्यक्ति ओर माया अविद्या तथा उसके कार्य तो, शक्यतासे अवछेदक हैं; अब इनको त्यागके कोनसे शक्य संबंधीका ग्रहण करें. आपकी रीतिसे तो, शून्य वा अभावसे इतर, अन्य कुछ ग्रहण करने योग्य नहीं ठेरता. अतः शक्य संबंधी अत्यंताभाव–शून्यके ग्रहण होनेसे स्व सिद्धांत, वक्ता का अभिप्राय त्याग ओर एकताका अभाव है; एसा सिद्ध होगा. किंवा, आभासवाद मानने पर, चिदाभास[1] जडका ग्रहण होगा. अथवा तो, जड चेतनके संबंध वा भेदका ग्रहण होगा; परंतु जीव ब्रह्मकी एकता--(चेतन भाग) ग्रहण नहीं होगी.

तथाही उक्त प्रकारके ग्रहणसे जहां तत्त्वमस्यादि वाक्य हें उसके पूर्व प्रसंगसे विरुद्ध अर्थ वा प्रसंग संगति त्याग दोष होगा. परस्पर महा वाक्योंका समान अर्थ नहीं होसकेगा. ओर संबंध वा भेद वा उभयके मानने वा ग्रहणसे अनवस्था दोष आवेगा. ओर संबंध भेदको अनंत मानना पडनेसे तथा उनके संबंधोकोभी अनंत मानना होनेसे अद्वैत मतका त्याग होजायगा. इत्यादि स्पष्ट दोष हैं.[2]

---

१ वेदांत पक्षमे चेतन, माया, जीव, ईश्वर, जड चेतनका भेद, जड चेतनका संबंध यह षड वस्तु अनादि ओर इनमेंसे चेतन इतर, पांचों सांत मानी हें. कोइ पक्षकार चिदाभासकोभी मानता हे. एतद्दृष्टि माया चेतनसे, इतर-आभास, संबंध ओर भेद को शक्य संबंधी मानके ग्रहण करनेमें विकल्प किये हें.

२ वेदांतीभाइ महा वाक्योंमें जहत ओर अजहत लक्षणाका

जो दूसरा प्रकार लेवें, तोभी, स्वस्वरूप विशिष्ट चेतन व्यक्ति तथा माया और उसके कार्य अविद्या अंतःकरणादि से इतर अन्य वस्तुका आपके मतमें अभाव है और वेतो यहां शक्य हैं; तब शक्य संबंधी कौन वस्तु लोगे? जो कुछ लोगे तो, शक्य चेतन सकार्य माया–अविद्या–यहदो–शक्य और तीसरा शक्य संबंधी अभाव–शून्य–इन तीनोंके ग्रहण होनेसे जीव ब्रह्मको एकताका अभाव है (सोतू अभावरूप वा सोतूका अभाव है), एसा परिणाम निकलेगा.

किंवा "सोतू है और नहीं" (जीव ब्रह्म है और नहीं) एसा, पुनः तकरारो और स्व विरुद्ध पक्ष स्वीकार होनेसे स्वपक्ष त्याग होगा. और अनवस्था आवेगी. कुछ निर्णय फल नहीं निकलेगा. किंवा स्वपक्ष विरुद्ध असंभव चिदाभास जडका ग्रहण होनेसे, यह परिणाम निकलेगा के,सो [चेतन व्यापक, शुद्ध, सर्वज्ञ, माया विशिष्ट चिदाभास व्यक्ति है] और तू [चेतन अल्पज्ञ कर्त्ता भोक्ता परिच्छिन्नादि विशेषणवान् अविद्या–अंतःकरण–विशिष्ट चिदाभास व्यक्ति है], उभय एक हैं; एसे विरोधी सिद्धांतका ग्रहण होजायगा. किंवा आभासके संबंधको वा जड चेतनके संबंधको शक्य संबंधी मानके ग्रहण करें तो, सो (पूर्वोक्त शक्य) तूं (पूर्वोक्त शक्य) आभासवाला है वा उभय संबंधी है.--और जो जड चेतनके अनादि भेदको शक्य संबंधी मानके लेवें तो, सो (पूर्वोक्त शक्य) तू (पूर्वोक्त शक्य) भेदवाला है. अर्थात् जी-

---

उपयोग नहीं स्वीकारते हैं. किंतु दोष सिद्ध करते हैं और तदंतर किसी पक्षकारने मानी है तो, उसका वेही भाइ खंडन कर डालते हैं; इसलिये यहांभी उक्त दोष उद्देश मात्र जनाये हैं. अन्य दोषोंका विस्तार नहीं लिखा.

व ईश्वर भिन्न हे–सो तू भेदवाला हे. एसा सिद्ध हो जायगा. परंतु जीव ब्रह्मको एकता, सिद्ध नहीं होगी. तथा उक्त प्रकारके ग्रहणसे जहां यह वाक्य हें उसके पूर्व प्रसंगसे विरुद्ध अर्थ वा प्रसंग संगति त्याग दोष होगा. छहा वाक्योंका परस्पर समान अर्थ न होसकेगा, संबंध, भेद इन उभय पद करके अनवस्था दोष आवेगा. अद्वैतका त्याग होगा-इत्यादि दोष हें[१]

जो तीसरा प्रकार लेवें तहां, स्वस्वरूप संबंध विशिष्ट शुद्ध चेतन ब्रह्मनामा व्यक्ति–स्वकार्य ओर अंतःकरण अल्पज्ञता सर्वज्ञतादि सहित माया–अविद्या–जीव ईश्वर यह सर्व तो "जीव ईश्वर एक" इस वाक्यके वाच्यार्थ–शक्यार्थ हें. ओर जो "जीव ब्रह्म एक हे" एसा मानके सो (शुद्ध चेतन) तू (अंतःकरणादि विशिष्ट पूर्वोक्त जीव) मानके 'सो'का वाच्यमात्र ओर 'तू'का लक्ष्य चेतनमात्र लेवें तो, भागत्याग लक्षणा उभय पदमें नही होगी; किंतु एक पदमें शक्यार्थ ओर दूसरेमें भागत्यागसे लक्ष्यार्थ लेना पडेगा. सो, प्रसंगमें अनुचित हे. क्योंके प्रसंगवशात् सो पदका वाच्य ऐश्वर्यवान सगुण परमेश्वर हे. ओर अद्वैत शुद्ध चेतन तो गुण रहित निर्गुण हे; अतः "जीवेश्वर एक हे" एसाही वाक्य ठीक हे. तथा जहां जीव ब्रह्म एक हे वहांभी "ब्रह्म ईश्वर वाची पर्याय शब्द हें" एसा समझनेसे निर्वाह होता हे; एसा प्रसंगवशात् मानना पडता हे. अतः पूर्वोक्त ब्रह्म व्यक्त्यादि तत्त्वं के शक्य हें. अब विचारना चाहिये के लक्षणाका "शक्य संबंध" लक्षण मानें तो, पूर्वोक्त शक्यके संबंधी अन्य तो ज्ञात नहीं होते, किंतु वेदांती लोक ब्रह्म, माया-(अज्ञान), इनका संबंध, जड चेतनका भेद, ईश्वर ओर जीव यह ६ वस्तु अनादि

---

१ प्रथम प्रकारगत प्रसंगकी दोनों टिप्पण वांचो.

मानके ब्रह्मेतर पांच, सांत मानते हैं ओर एक पक्ष लेके चिदाभास ओर, मान लिया जावे तथा इनसे अन्य शून्य वा अभावभी कहदें तो, पूर्वोक्त शक्यके संबंधी आभासादिका ग्रहण करसकें; परंतु पूर्वोक्त जहत ओर अजहत लक्षणा वाले दोष प्राप्त होंगे. तथाही शक्यके एकभाग त्याग ग्रहण विना, जहत वा अजहत लक्षणामें व्याप्ति होगी,. भागत्यागके स्वरूपका निर्वाह नहीं होगा; अतः उक्त लक्षण मानके भागत्याग लक्षणाका अभाव होजानेसे, तत्त्वमस्यादि वाक्योंमें भागत्याग करना सदोष लक्षणा हे. ओर लक्ष्यमें प्रवृत्ति नहीं होगी, ओर जो भागत्याग लक्षणा मान लोगे तो, लक्षणकी अव्याप्तिसे पूर्वोक्त उभय लक्षणाका बाध होजायगा. क्योंकि शक्य संबंधीका ग्रहण नहीं वा शक्य मात्रका त्याग नहीं; किंतु शक्यकेही एक भागका त्याग एक भागका ग्रहण, भागत्याग लक्षणा हे; सो पूर्वोक्त उभय लक्षणामें लक्षण नहीं जाते; अतः परस्पर विरोध आजाने कर, लक्षणाका अवच्छेद होनेसे, तत्त्वमस्यादिका वोह अर्थ के जो वेदांती लोक करते हें सो, नहीं होगा.

जो यह कहो के "चेतन, माया, ओर इनका संबंध तीनों मिलके ईश्वर, 'तत्' पदका शक्य ओर अविद्या, चेतन ओर इनका संबंध मिलके त्वं पदका शक्य हो, परंतु चेतनका स्व स्वरूपमें तादात्म्य संबंध हे, तिस विशिष्टको शक्य संबंधी लक्ष्य समझो, मायादि विशिष्टको शक्य समझ लेना; इस रीतिसे लक्षणाके लक्षण ओर भागत्याग लक्षणाका बाध नहीं होता." यह कथनभी अयुक्त हे; क्योंके जो, पदका शक्य होता हे सो, स्व स्वरूप संबंध विशिष्टही होता हे, स्व स्वरूपको त्यागके होवे नहीं. जेसेके तीरादि स्व स्वरूप सं-

बंध छोडके निवासके हेतु नहीं होते, काकादि स्व स्वरूप संबंध छोडके दुग्ध घातक नहीं होते, ओर शरीर स्व स्वरूप संबंधको छोडके विषय नहीं होता. वसही चेतन पदार्थभी स्व स्वरूप संबंध विशिष्ट विना, वाच्य वा लक्ष्य नहीं होसक्ता. यहां अभिप्राय यह हे के स्वस्वरूपका स्वस्वरूप साथ तादात्म्यादि संबंध, समझाने वास्ते कल्पे जाते हें. स्व, स्वरूप, ओर स्व स्वरूप तादात्म्य संबंध-यह तीनों कुछ भिन्न भिन्न वस्तु नहीं हें. जो मान लोगे तो, स्वपक्षका त्याग होगा; क्योंके ब्रह्म स्व स्वरूपसे कभी तादात्म्य विनाका नहीं होनेसे, ब्रह्म, उसका स्वरूप, ओर तादात्म्य संबंध—यह तीन पदार्थ अनादि अनंत माननेसे द्वैतापत्ति होजायगी. पुनः स्वरूप संबंधका संबंध मान्ना पडेगा. उससे अनवस्था ओर अव्यवस्था होगी.

जो कदाचित् चेतन व्यक्ति ओर तिसेकी जाति, दोनों मानके पूर्वोक्त शक्य गत शक्य संबंधी (चेतन, माया, चेतनत्व, मायात्व) व्यक्ति वा जातिमेंसे, एकका ग्रहण अन्यका त्याग करके भागत्यागका निर्वाह करोगे तो, स्व सिद्धांतका त्याग होगा, क्योंके वेदांत पक्षमें ब्रह्म चेतनको जाति(धर्म)रहित व्यक्ति मात्र माना हे, जो जाति मानें तो, द्वैतापत्ति होगी; क्योंके जाति, व्यक्ति विना, नहीं रहती; अतः जाति व्यक्ति—यह दो पदार्थ नित्य माननेसे द्वैत सिद्ध होगा; शुद्ध ब्रह्म धर्मवान् ठेरेगा; गा; तथा एक धर्मवाली अनेक व्यक्ति हों, तब जातिकी सिद्धि होती हें; इसलिये अनेक चेतन, ब्रह्म वा ईश्वर माननें पडेंगे. ओर व्यवहार बुद्धिसे इतर, जाति अलीक पदार्थ हे उसकोभी मानना पडेगा.

जो यह कहो के जेसे "सैंधवला" इस प्रसंगमें सैंधव प-

दके दो शक्योंमेंसे, एकको शक्य और दूसरेको उसका संबं- धी मानके लक्षणा करसकते हैं, वेसेही 'तत्'के वाच्य–श- क्य–चेतन–माया-इन दोनोंमेंसे माया शक्य और तत्संबंधी चेतन लक्ष्य लेनेसे लक्षणाके लक्षणमें दोष नहीं आया. और भागत्याग लक्षणाभी बन गई." आपका यह कथनभी समी- चीन नहीं; क्योंके सैंधव पदके दो वाच्य–शक्य–हैं. जिस कालमें सैंधव पदका कथन हुवा उस समय, किसको शक्य और किसको शक्य संबंधी मानें? तब यही उत्तर बन आता हे के तात्पर्यानुपपत्तिही हेतु नहीं किंतु, प्रसंग वश ओर वक्ताके अभिप्रायको लेके अनेक अर्थोंमेंसे किसी एक शक्य-लक्ष्यका ग्रहण हे. वहां केवल एक हेतु नहीं, किंतु तीन वा दोनों होंगे; क्योंके जेसे विवाह कालमें "राम सत्य हे" एसा कोइ कहे तो, यह वाक्य मुरदेके लेजाने समय बोलनेकी रूढी होने- से शोक–अमंगलकालमें प्रयोग होता हे. ओर वहां तो, मंग- लकार्य हे; अतः प्रसंगवशात् ईश्वर स्तुतिमें लिया जाता हे. ओर वही वक्ताका अभिप्राय होने योग्य हे. कदाचित् व- क्ताका अभिप्राय अमंगल रूप होवे तो, मनमुखी वा ऐच्छ कहोनेसे अमान्य हे. जेसेके भोजन कालमें सैंधव पदका अ- श्व लानेका अर्थ कहे सो, अमान्य हे. उभय प्रसंगमें तात्पर्या नुपपत्तिही लक्षणाका बीज नहीं हे. अतः जहां, एक पदके अनेक शक्य–वाच्य–हों वहां, प्रसंगवशात् ओर वक्ताके अ- भिप्रायको लेके जो अर्थ लिया जाता हे सो शक्य हे, वहां लक्षणा नहीं हे. श्रवण कालमें श्रोता किसको शक्य माने, यह निर्णय नहीं होता; अतः तत्संबंधीका निश्चय नहीं होता. ओर जब वक्ताके अभिप्राय ओर प्रसंग ऊपर बदलताहे तब, जो ग्रहण होने योग्य हे सोही, उपस्थित होता हे.—

अर्थोंके त्याग ग्रहणका प्रयोजन नहीं रहता. ओर तत्त्वमस्यादि वाक्य प्रसंगमें तो, यह दृष्टांत ही लागु नहीं पडता, क्योंके तत्–त्वं-अहं, यह्व सर्व नाम हैं-प्रसंगवशात पूर्वोक्त परमेश्वरका वाचकही 'तत्' हे. आपके मंतव्यवत् केवल चेतन वा केवल मायाका वाचक नहीं हे, किंतु 'तत्' का शक्य माया--वशिष्ट ईश्वर हे. वेसेही त्वं पदका शक्य अंतःकरणादि विशिष्ट चेतन हे. अतः मायाको शक्यमानके तत्संबंधी एक शक्य चेतनका ग्रहण ओर एकका त्याग उक्त प्रकारसे नहीं हो सक्ता.

जो यह कहो के तत्के शक्यका संबंधी जीव (त्वंका शक्य वा लक्ष्य) ओर त्वंके शक्यका संबंधी ईश्वर–ब्रह्म (तत्का शक्य वा लक्ष्य) हे; अतः उसका ग्रहण करनेसे तत्त्वमसि वाक्यमें लक्षणा हो जातीहे. सोभी सयुक्त नहीं; क्योंके तत्के शक्यका संबंधी, चेतन रहित जीवांश (अंतःकरण, अविद्या ओर तत्कार्य अल्पज्ञतादि) हे. कारणके जो, चेतन त्वं पदका शक्य हे सोही, तत्का शक्य मानते हो.- वेसेही त्वंके शक्यका संबंधी चेतन भाग रहित ईश्वरांश (माया अज्ञानादि, तत्कार्य सर्वज्ञतादि) हे; क्योंके जो चेतन तत् पदका शक्य हे, सोही त्वंका शक्य मानते हो; अतः वाक्यका लक्ष्यार्थ यह हुवा के माया अंतःकरण एक हे. इस रीतिसे चेतनका ग्रहण नहीं हो सकता, कारण के एकहे ओर उभय पदका शक्य हे. शक्य संबंधी नहीं. यदि तत् पदका चेतन ओर त्वं पदका चेतन स्वरूपसे भिन्नभी हों तो, 'उभय चेतन एक हैं' एसा कहेना व्याघात हे. निदान उभय चेतन (सो चेतन तुं चेतन) में, चेतनता मात्र समान हे (व्यापक ओर परिच्छिन्नताका यहां प्रसंग नहीं), एसा भावार्थ लेसकते हैं, सोतो, आपके सिद्धांत वा मनोरथके विरुद्ध होगा.

इसी प्रकार लक्षणा प्रसंगमें अनेक रीति वा कल्पना[†] हें. व्यर्थ ओर अयुक्त जानके नहीं लिखते.

जो कहो के* "बोध्य संबंधो लक्षणा" यह लक्षणाका लक्षण हे; तो रामानुजादिने जो द्वैतार्थ किये हें ओर अन्य श्रुतियोंके अनुकूल होसकतेभी हें, उन श्रुतियोंके अनुकूल बोध्य कहोने योग्य हें, वेभी ठीक मानने पडेंगे, क्योंके बोधक उद्दालक ऋषि किंवा छांदोग्य ओर बृहदारण्यक कर्त्ता तो, विद्यमान नहीं हें, यदि होते तो, उनसे पूछ लेते. ओर प्रसंग संगति ओर शब्दका आधार लेके अर्थ करते हें तो. अनेकार्थको अवकाश मिलता हे. ओर विवादित तथा संशयात्मक विषय रहता हे. अतः एसे विवादित वाक्यके आधारको सा-

---

[†] तत् (पूर्वोक्त सर्वज्ञ विभु चेतन ईश्वर) संबंधी (ईश्वरका व्याप्य, दास–आज्ञा उठाने योग्य होनेसे जीव, उसका संबंधी हे) तूं (अल्पज्ञ, परिच्छिन्न चेतन वा जड जीव) हे, हे श्वेत केतु ? इत्यादि प्रकार हें. ओर अनेक शंका समाधान हें.

"उद्दालक श्वेतकेत्वादि, कोइ जीव विशेष नहीं हुये, किंतु लोकोंके समझाने वास्ते कल्पित कथा हे, अतएव अर्थमें लक्षणा वगेरेका उपयोग नहीं, एकता मान लो." एसा कोइ कहे तो, उसको इतना उत्तर देना बस हे कि, उपनिषद् कर्त्ता (ईश्वर वा महऋषि) असत्यवादी ठेरे, उनका लेख प्रमाण नहीं हो सकता, इसलिये ऊनके वाक्यके शक्य वा लक्ष्यार्थ, ऊभय त्याज्य. किंवा कोन जाने उक्त उपदेशमें उनकी क्या कल्पना-अर्थ अभिप्राय होगा ? अतएव उनके लेखाधार मात्रपर निर्णय नहीं होसकता;

* क्योंकि 'शक्य संबंध,' लक्षणाका लक्षण कहें तो, शक्यका शक्तिके साथ जो संबंधहे उसका ओर तत संबंधी शक्ति–पदका ग्रहण होजाताहे, इत्यादि (शब्दोंकी) तकरारहें.

क्षीसे जीव ब्रह्मका एकता नहीं मानी जासकती. इससे इतर जो, युक्ति प्रमाण सृष्टि नियमको सहन करसके एसा प्रबल पुरावा होना चाहिये.

जो एसा कहोकि "लक्षणाके लक्षण माननेकी आवश्यक्ता नहीं; किंतु पदके भावार्थ लेनेके पूर्वोक्त तीन प्रकार हैं; इतना माननाही बस है.–एसा मानके जो भाग त्याग होके लक्ष्य (चेतन मात्र) हो सो, मान लो." आपका यह कथन घडी वास्ते मान लेवें तोभी, अन्य अनेक दोष आवेंगे. जेसेकि प्रत्येक के मनमुखी अर्थको अवसर मिलेगा (पःसद्दी मायादिके ग्रहणकी रीति कह आये हैं) १. रामानुजादिकोंके अर्थ खंडन करनेको असमर्थ रहोगे. २. नाना चेतन मानने पडेंगे ३. प्रसंगवशात् दो तीन अर्थ वा लक्ष्यार्थ होजानेसे संशय उत्पन्न होके महावाक्य त्याज्य, वा आधार योग्य नहीं होगा ४. अथवा उसके निर्णयार्थ युक्ति, अन्य प्रमाण तथा सृष्टि नियमादिकी आवश्यकता होगी, तो आपके मनोरथका बाध हो जायगा. ओर आपकी मानी हुई लक्षणा वा लक्ष्यार्थसे निर्वाह नहीं होगा ५. उपदेशक मिथ्या बोधक ओर श्रोता मिथ्या ग्राहक ठेरेंगे; क्योंके "हे श्वेतकेतु सो तूं है" इसका यही परिणाम, निकलताहैकि श्वेतकेतु नामा व्यक्ति व्यापक चेतन है; सो यह कथन मिथ्या है कारणके व्यापक चेतनका नाम शक्ति वा लक्षणासे श्वेतकेतु सिद्ध नहीं होता, किंतु शरीर विशिष्ट जीव (वा जीव चेतन) का नाम है, वा जो श्रोता है वा शिष्य है, उस व्यक्तिका नाम है. अतः हे श्वेतकेतु, 'तु व्यापक चेतन है वा ईश्वर है,' यह उभय लक्ष्य, मिथ्या ग्रहण कराना वा करना है. क्योंके ब्रह्मको तो, उपदेश नहीं बनता, तब उक्त भाग त्यागसेभी किसको बोध

"शक्य संबंध लक्षणा," इस पूर्वोक्त लक्षणमें "शक्य संबंध" तो वाच्य हे ओर "**लक्ष्य** (पदके शक्यका संबंधी–पदका परंपरा संबंधी–वक्ताके तात्पर्यका विषय-इष्ट-श्रोता ओर प्रसंगको इष्ट) शक्यका परंपरा संबंध मात्र हे," यह लक्षण, भाग-त्याग-प्रकारसे लिया गया हे. अर्थात् उक्त संबंध-मात्र लक्षित हे. शक्य ओर पदका जो संबंध वा अन्य संबंधका यहां ग्रहण नहीं हे. प्रसंगके अनुकुल, वक्ता के तात्पर्यका विषय,–एसा जो शक्य संबंधी–उसे **लक्षित** कहते हैं. अतः विरोध नहीं.

तदुपरांत जो अन्य लक्षण मानें ओर तकरार लें तोभी प्रसंगका बाधक नहीं होता. यथाः—

शक्यके संबंधके साक्षात् ओर परंपरा, यह दो भेद हैं. **केवल लक्षणा**–शक्यका जहां साक्षात् संबंध होवे सो, केवल लक्षणा. यथा–गंगा पदके शक्य प्रवाह ओर तीरका साक्षात् संबंध हे. वा उक्त महावाक्योंमें हे. एसे प्रसंगमें केवल लक्षणा. **लक्षित लक्षणा**–शक्यका लक्ष्यके साथ परंपरा संबंध होवे सो लक्षित लक्षणा. यथा नोकरकी तरफ देखके ध्वजापद कहनेसे ध्वजा चढाना, स्टीमर आइ, दरवाजा खोलना," इत्यादि ध्वजाद्वारा बोधता हे. ओर जहां द्विरफका प्रयोग हे वहां 'भ्रमर' पदद्वारा 'भंवरे' पक्षी व्यक्तिका ग्रहण केवल लक्षणासे होता हे, क्योंकि लक्षणावृत्तिसे प्रतीत, एसा जो कोई तिसकी लक्षणा सो लक्षित लक्षणा हे. अतः प्रसंगमें लक्ष्य ओर लक्षितका अर्थ देखनेसे यह केवल लक्षणा हो जाती हे. किंवा "शक्य संबंधी द्वारा लक्षणा" अर्थात् शक्य (का संबंधी जो उस) का संबंध सो **लक्षित लक्षणा**. यथा द्विरफ शक्य संबंधी भ्रमरपद तिससे "भंवरे" पक्षीका ग्रहण. अथवा शक्यका जो संबंधी हे-अर्थात् लक्ष्य, उसका संबंध सो लक्षित लक्षणा-जेसे महा वाक्योंमें कल्पनासे संभवे हे.

किंवा "लक्षणवाली लक्षणा" अर्थात् लक्षणाका असाधारण धर्म जो शक्य संबंधत्व, तिसवाली अर्थात् शक्य संबंध, सो लक्षणा.

इसी प्रकार भावार्थ-तात्पर्य ग्रहणमें व्यंजना, गौणी-इत्यादि कितनेक प्रकार माने जाते हैं.-ओर उनमें पक्षकारोंकी बारीक तकरारें हैं. प्रसंगमें व्यर्थ जानके नहीं लिखी.

निदान किसी प्रकारसेभी अपने अनुकूल लक्षण वा अर्थ करो, परंतु प्रासंगिक शक्यार्थमें लक्षणा प्रकार (जहत्, अजहति, भागत्याग वा अन्य) का ग्रहण ओर वक्ताका रहस्य, उद्दालक, वामदेवादि वक्ता किंवा छांदोग्य, बृहदारण्यकादिके कर्त्तासे पूछे विना, संशय-विवादका पर्यवसान नहीं आसकता. ओर जो कदाचित् वे वेदांतियोंकी कल्पना समान एकताको लक्ष्य बतावें तो, पूर्वोत्तरोक्त युक्ति-निर्णय ओर सृष्टिनियम तथा परीक्षापर ध्यान देकर त्याग ग्रहण करना योग्य हे. केवल उनके वा अर्थकारोंके कथन मानके किंवा शक्ति वृत्ति वा लक्षणावृत्तिमें पडके व्यर्थ समय गुमाना अनुचित-हेय हे.

विचारोः-वक्ता अपने कहे हुये वाक्य भावार्थको सयुक्त परीक्षा सिद्ध करानेके लिये जोखमी-जवाबदार हे. वक्ता विद्यमान नहीं होय तो, उसके वाक्य वा भावार्थको यथार्थ माननेवाला सयुक्त सिद्ध करनेका जवाबदार हे. निदान जवाबदार विना, शब्द-वाक्यमात्र प्रमाणका काम नहीं देता. तद्वत् कहा वा लिखाहुवा मात्र प्रमाणही माना जाय, एसा नियम नहीं होसकता. अतः शब्द प्रमाण स्वतः प्रमाण नहीं.

होगा? जिसको बोध होता हे सो, व्यापक चेतन नहीं हे; अतः मिथ्या प्रलाप हुवा. कदाचित् श्वेतकेतुका अर्थ ब्रह्म-व्यक्तिमें लगावें तो, क्या तो पूर्वोक्त द्वैतवादीके अर्थ (हे ई-श्वर, सो अद्वितीय तूंही हे; तेरे समान अन्य नहीं. इ.) स्वीकारने होंगे. अथवा तो, ब्रह्म उपदेश योग्य न होनेसे मिथ्याव्यर्थ विलाप मानना पडेगा. हां "सो (पूर्वोक्त ईश्वर वा ब्रह्म-चेतन) तेरा-(श्वेत केतुका) आत्मा हे, हे श्वेत केतु." एसा उपदेश करता वा एसा उसका अभिप्राय होतो, ईश्वर जीव वादीको संमत होता ओर संशय नहोता. कुछ युक्ति प्रमा-णको सहारता. सो तो आप नहीं मानते; अतएव पूर्व दोष-काभी बाध नहीं होता. ६. पूर्वोक्त ओर वक्ष्यमाण युक्तिसे विरुद्ध हे. ७. तदुपरांत जो आग्रहही हो तो, जीव ब्रह्मकी एक-ताके विरुद्ध, जो जो इस ग्रंथ विषे लिखा हे, उसपर दृष्टिडा-लके उद्दालक वामदेवादि वा छांदोग्य, बृहदारण्यकके कर्ता पास जाके उनकेवाक्यार्थ ओर लक्ष्यार्थका निर्णय, अनुभव भाषाकी परिपाटी द्वारा उनसेकरो; जबतक, एसा न होगा (उन पास नहीं जाओगे) वहांतक "हम कहते हें सोही उन (उद्दालकादि) का अभिप्राय हे "इस हठको रहने दीजिये*

[शब्दवृत्ति]पक्षरहितहोके विचारियेः?—शब्द-वर्ण—अक्षर-पद—प्रकृति—प्रत्यय-अव्यय.) में स्वाभावतः, स्वतः कोई एसी योग्य ता—सामर्थ वा शक्ति नहीं हे कि, वोह स्वयं अर्थको जनावे; जो एसा होता तो, 'हुररे' पदसे आर्य लोकको अपनी निंदा

* लक्षणा संबंधी विशेष खंडन मंडन देखना होतो, "वृति-प्रभाकर केतु" नाम ग्रंथमे लिखा हे, वहां देख लेना चाहिये. यहां तो, साधारण जिज्ञासुओंकी दृष्टि लेके, सामान्यतः संक्षेपमें दिग्-दर्शन मात्र जनाया हे.

ओर यूरोपियनको अपने 'धन्यवाद'का बोध नहाहोता. किंवा, राम पदसे मुसलमानोंको "अनुचर" ओर आर्योंको 'ईश्वर'का बोध नहोता. इसी प्रकार अग्नि, घट, वेद, देवादि तमाम शब्दोंमें कल्पना करलेना उचित हे. ओर शब्दमें किसी अन्यकी शक्ति हे, एसा मानें; तहां तो जो एक ईश्वरकी स्वीकारें वा उस अद्वितीयका संकल्प मानें तब तो, अमुक एक (अग्निआदि) पदसे सर्वको समान-वेसाही बोध होना चाहिये-विपरीत वा तद्‌तर अर्थका ज्ञान नहीं होना चाहिये. परंतु एसा नहीं होता. अतःईश्वरकी शक्तिभी पदमें नहिं हे.तथाहि शक्ति, स्वशक्तिवान्‌से भिन्न-अतरिक्त देशमें नहीं होती,-दूसरेमें नहीं जाती, यह नियम हे; इस लिये ईश्वर वा मनुष्यकी शक्तिभी शब्दमें नहीं हे. ओर जो, शब्द सुन्नेसे मन, श्रोत्रद्वारा खिंचता हे, उसका कारण यह हे कि शब्द विषय हे, उसके सुन्नेकी योग्यता, मन श्रोत्रमें हे. अर्थात् उसको विषय करे. ओर शब्द ध्वनिरूप विषय हो, इतना दोनोंमें नैसर्गिक योग्यता संबंध हे, एसा (अन्य स्पर्शादि विषयवत्) सर्व मनुष्योंमें देखते हें. परंतु अमुक शब्द (पद) सुनके अमुक अर्थका स्वाभावतः बोध हो, एसी नैसर्गिक पद्धति नहीं हे.-अर्थात् शब्द ओर अर्थका, स्वाभाविक कोई संबंध विशेष (वाचक वाच्य, भेदाभेद, स्मार्य स्मार्क, अनिर्वचनीय, तादात्म्यादि), नहीं हे. जो एसा होता तो, पूर्व प्रकारवत् सर्वको समान बोध होता, वा अन्यथा नहोता; परंतु एसा नहीं देखते. जब यूं हे तो, घटादि पदसे कलशादि अर्थका स्मरण-भान, क्यों होता हे ? उसमें क्या कारण हे ? तहां, जेसे आगबोट बंदरकी लाल, पीली ध्वजा ओर रेल्वे (अगनगाडी) के स्टेशनकी झंडी, घंटी वगेरेसे, मनुष्यों

ने संकेत बना रखे हैं, वे मंडली विशेषमें चलने—अभ्यासित होनेसे अर्थके सूचक मानें जाते हैं. किंवा, गायन—संगीत विद्यामें जैसे कंठ, तार, तालादि पर शब्दकी कल्पित रचना करके कल्पित गत, बजन, ताल, स्वर, रंगत मानके स्व कल्पित रागरागनीसे मनमें आनंदित होते हैं—मंडली विशेषमें वे कल्पित संकेत फलके अभ्यास होगया है, वैसेही ध्व-निरूप शब्द, कुदरती पदार्थ है, उसके कंठताल्वादिसे भिन्न प्रकारकी ध्वनि (मंद, उच्च, मधुरु, तीक्ष्ण, पोली, चोडी, लंबी, -ह्रस्व, दीर्घ, हलकी, भारी वगेरे भेदवाली स्वाभाविक, नियमसे निकलती है, उनको स्वाभावतः अनुभवके शब्द ओर अपनी स्वाभाविक योग्यतासे, उपयोगार्थ अकारादि वर्ण उनके नाम कल्पे. उनको मिलाके अर्थ सूचक पद वगेरे संकेत बनालिये* (जेसेकि बंदर, हजारदास्तानादि पशु पक्षीमेंभी उनउनके संकेत हैं) वे, संकेत मंडली विशेषमें एकत्र हूये प्रवर्त्त होजानेसे बहोतों को, अभ्यासरूप होगये. जिस जिस मंडलीमें, जैसा जैसा शब्द—पद संकेत प्रवृत्त है, उसउस मंडलीमें उस नियतपदसे उसउस अर्थका ज्ञान होताहै—दूसरे पदसे नहीं. इस प्रकार शब्दमें अर्थ जनानेकी शक्ति नहीं है; किंतु संकेतभान--जिस अर्थ—द्रव्य गुणादि—सूचक जो शब्द संकेत (ध्वनि वर्णाकृति) बनाया, सो अमुक अर्थका सूचक है, एसा जो मनुष्य—कल्पक, श्रोताको बुद्धिमें संकेत भान सो) शब्द वृत्ति†—शब्द शक्ति कहीजाती है. ओर उसभान तथा

---

* शब्दकी शक्ति वृत्ति, लक्षणा वृत्ति ओर स्वरूपका, तत्व दर्शन' नाम ग्रंथमें विस्तार है, वहां देख लेना. † पहिले २ केसे बने वा बनाये गये, इत्यादि रीति तत्वदर्शनमें लिखी है. यहां विशेष उपयोगी न जानके संक्षेपसे नाम मात्र वर्णन किया है.

अभ्यासके कारण, उस पद उस अर्थका (कल्पित) वाच्य वाचक भाव (इत्यादि) संबंध मान लिया—व्यवहार अर्थ कल्प लिया. वस्तुतः वेसा नहीं. द्रव्य वाचक पदसे उसके गुण कर्म जातिका ग्रहण वा गुणादिके वाचक पदोंका जो बोध होता हे, सो संकेत भान होने काल समान, यथा अभ्यास बलसे स्वाभावतः होता हे. लक्षणासे नहीं. इसी प्रकार शब्दकी लक्षणा वृत्ति—भावार्थमें जान लेना चाहिये. आद्य संकेतभान होने कालमें वा उसके उत्तर नाना व्यवहार विषय होने करके यथा अभ्यास, त्याग—ग्रहण वा बोध होता हे. (व्यवहारमेंभी उन संकेतोंका, अर्थकी यथार्थ अयथार्थता पर आधार हे, नकि शब्द मात्र पर). (शं.) जो शब्दमें अपनी शक्ति नहोती तो, तिस करके ‘ रस’’ उत्पन्न नहीं होता. वा रस नहीं आता. (उ.) जहां शद्ब (राग, कविता वगेरे) श्रवण मननसे शृंगार, वीर, शांत,अद्भुतादि रस उत्पन्न होते हैं —वहां, पूर्वाभ्यासित संस्कार वाले स्थूल सूक्ष्म शरीरका उसको देशकाल स्थितिविशिष्ट योग्यता *(रसपात्र) अनुसार, प्रकार *विशेष *उद्भव प्रकार पाता हे—जिसे ‘रस’ कहते हैं. उस उद्भव प्रकारमें संकेत भान (भी) *निमित्त हे. जो शद्ब मात्रमें रसोत्पादक शक्ति होती तो, युरोपियन वा जंगली वा अनपढ मनुष्यमेंभी, हिंदी कविता वा गायनसे रस उत्पन्न होना. परंतु एसा नहीं होता हे. किंवा अनपढ पुरुषको, लडाई देखके वीररस उत्पन्न नहीं होता; परंतु होता हे. किंवा वनस्थ बाल ब्रह्मचारी युवा पुरुषको शृंगार छंद सुनके शृंगार रस उत्पन्न होना; परंतु एसा नहीं होता. इत्यादि बहोत कुछ भेद हैं. अप्रासंगिक विषय जानके विस्तार नहीं करते--[†]उपराम होते हैं.

[†]रस, रसपात्र, उद्दीपनादिका स्वरूप, लक्षण भावप्रकाशादि

इस प्रसंगके लिखनेका प्रयोजन यह है कि जो, शब्दमें अर्थ जनानेकी स्वाभावतः शक्ति होती और उसका उपयोग मनुष्य स्वेच्छानुसार वा अन्यथा न करसकता—किंतु उस सामर्थ्यके नियमसे भिन्न नहीं लेसकता—सत्यका असत्यमें असत्यका सत्यमें वा अन्यथा उपयोग न लेसकता; तब तो, शब्दमें स्वतः प्रमाणता मानलीजाती; परंतु ऐसा नहीं होता है; इसलिये शब्द स्वतः प्रमाण नहीं होसकता. और जो शब्दमें ईश्वरका सामर्थ्य वा संकल्प होता तबभी, पूर्व प्रकारवत् होना चाहिये था—अन्यथा नहीं होता, परंतु ऐसा नहीं है, यह प्रसिद्ध बात है—एकही शब्दके—एक मत, एक घर, एक राज, एक देश, एक जाति और नाना देश, नाना मंडली, नाना कालमें भिन्न २ अर्थ और भाव हुये, हें—देखते हैं; इस लिये उसकी प्रमाणता, अप्रमाणता, मनुष्य (वा कल्पक जीव) के ज्ञान और उपयोग पर है. निदान शब्द स्वतः प्रमाण नहीं.

शब्द, अणु है, विभू है वा मध्यम ? इसके निर्णय करने समय, शब्द एक व्यापक वस्तु हो, ऐसा सिद्ध नहीं होता. किंतु न्यूनाधिक ध्वनि होने, विशेष मनुष्य बोलनेमें पद समझमें न आने और शब्दके फोटो—उपाकृति होने—इत्यादि कारणोंसे अणु समूहात्मक—विलक्षण पदार्थ सिद्ध होजाता है—सार यह है कि शब्द गतिवान है और वर्णात्मक कोई वस्तु नहीं है.

निदान जबकि शब्दका उपयोग मनुष्यके संकेतमात्र ज्ञानाश्रित है, शब्दमें स्वयं अर्थ जनानेकी सामर्थ्य नहीं, तो किसीके कहे

ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है, ग्रंथ विस्तार भयसे लक्षण, हेतु, उदाहरण सहित वर्णन नहीं किये.

हुये-लिखे हुये शब्द-पद-वाक्यका वही अर्थ है, जो कि सृष्टिसे नियत है, एसा नहीं मान सकते. वा, मनुष्यने जेसा कहा वेसाही है, एसा सर्वांश सिद्ध नहीं होता. अतः शब्द प्रमाण, स्वतः प्रमाण नहीं तब उसके अर्थ पर तकरार करके व्यर्थ काल गुमाना बुद्धिमानोंका काम नहीं.

अपने अपने पक्ष प्रकारसे अपने २ अनुभवको भिन्न २ भाषा, मतों प्रति हैं; अतएव आपहीकी भाषासें, आपका मंतव्य स्वीकार नहीं होसकता. किंतु सत्यका विषय सर्वदा एकही होनेसे, सर्वके अनुभवकी दृष्टि लेके, तोलना योग्य है. (छंद) "केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्योहि निर्णयः ॥ युक्ति हीने विचारेषु धर्म हानिः प्रजायते." ॥ १ ॥ बृहस्पति (मनु १२-२१३ टीकोधृतवचनं). "यस्तर्केणाऽनु संधत्ते स धर्म वेदनेतरः" (मनु). ओर व्यासजीने "तर्काप्रतिष्ठात्" कहा है वहां, अर्थ शून्य-शुष्क तर्कके निषेधमें अभिप्राय है; जो एसा नहींहोता तो, उन्होंनेही ब्रह्मसूत्रोंमे तर्क युक्ति ले के दूसरे मतोंका खंडन किया है, सो प्रकार उनको व्याघातमें डालता है.

विशिष्टजीभी (योग वासिष्टमें) 'युक्ति युक्तमुपादेये' इत्यादि वचन करके कहते हैं कि सयुक्त वाक्य बालककाभी मान्य करना चाहिये ओर युक्तिहीन कथन, परमेष्टिकाभी स्वीकार नहीं करना चाहिये. जो एसा नहीं करता ओर सन्मुख प्राप्त निर्मल, शांतिप्रद, स्वच्छ, प्रशंसित गंगाजलको छोडके बापदादाके खुदाये हुये क्षार जलवाले कुवे पर जावे तो, उसे कोन ना करे.--(व्यभिचारी पिताके अनुसार,-देखादेखी, रूपवंत सुशील स्व पत्निको छोडके व्यभिचारणी स्त्री संग करने समान है. परिणाममें उससे १० हानी होती हैं.

किंवा अपने अंध पिताको देखके 'कुलानुसार चलना' इस कल्पित नियम पर ध्यान रखके अपनी स्वछ, कुशल नेत्रोंके फोडने समान हे.)

एतद्दृष्टि आपकोभी चाहिये कि सर्वके अनुभव भाषाके मूल पर ध्यान देके अनुभवको तोलें. क्योंकि अनुभव, स्वतः कोई प्रमाण नहीं हे.

(एक जीव वाद).

जो एसा कहो किः–"सच्चिदानंद नामा व्यक्तिको अनादिसे अज्ञान हे, जिस करके अपनेको कर्त्ता भोक्ता बंधीवान, जीवरूपसे मानता हे. उपदेशद्वारा भ्रांति जन्य जीव भाव मिटके स्वरूपमें स्थित होने योग्य हे. करण राधा पुत्र दृष्टांत*वत्. (शं) जब कि ब्रह्मनामा जीव एक हे तो, किसी (श्वेतकेतु इत्यादि) को ज्ञान होनेसे स्वकार्य सहित अज्ञानका अभाव होना चाहिये. ओर हुवा तो नहीं–अर्थात जगत देखते हें. (स.) अद्यापि किसीको ज्ञान हुवा नहीं. न कोई बंधन मोक्ष. कर्मोपासना, तत्वमस्यादि महावाक्य, मोक्ष ओर मुक्त सूचक वाक्य अर्थवादरूप वचन हें. (शं.) वोह कोनसा जीव है कि,जिसको स्वरूप ज्ञानसे अनादि अज्ञानका अभाव प्रतीत होगा–ज्ञान होगा. जीवभाव मिटेगा. (उ.) सो तूंही हे.

---

* करणको, 'मैं राधा पुत्र हूं, एसी भ्रांति होनेसे नाना दुःख क्लेश भुगतने पडेथे. अपनेको तुच्छा अनुभव करता था. जब प्रसंग उपर सूर्य (ऋषि)ने कहा कि तू मेरे वीर्य द्वारा कुंतिके उदरसे जन्मा है–क्षत्रिय हे; तब करणकी भ्रांति ओर दुःखका अभाव हुवा. अपनेको क्षत्रिय जानके कर्तव्यको प्राप्त हुवा. यहां, जैसेकि, भ्रांति पूर्वभी, करण, क्षत्रिय था वेसाही, पीछेभी वही रहा. इसी समान ब्रह्मनामा जीवमें जानने योग्य हे.

(शं.) अपने से विलक्षण-अन्यथा? अपनेको केसे मान सकते हैं और अभेद क्योंकर सिद्ध होता हे. (सः) जेसे काचमें वृत्ति जाके-टकराके उलटती हे तब, ग्रीवास्थ मुखकोही विषय करती हे; परंतु वेग बलसे काचकी पृष्ठ पर मुखभिन्न, प्रतिबिंब प्रतीत होता हे. यहां मुखसे भिन्न, बिंब प्रतिबिंब, कोई वस्तु विशेष नहीं हे; किंतु काचकी उपाधि विद्यमान हुये वृत्तिको प्रतिबिंब, भिन्न ज्ञात होता हे; उस अपेक्षासे मुखमें बिंबत्व और काचस्थ पदार्थमें प्रतिबिंत्व तथा संसर्गसे प्रतिबिंब विषे काचके लघु श्यामतादि धर्म, प्रतीतिके विषय होते हैं. निदान प्रसंगमें बिंब प्रतिबिंब-दोनों स्वरूपसे नहीं और बिंबत्व तथा लघुतादि धर्म विशिष्ट प्रतिबिंबत्व मिथ्या प्रतीत होते हैं. तद्वत् अज्ञानको काच ओर ब्रह्म चेतनको मुख मानके ईश्वर जीव ओर उनके धर्मकी प्रतीति घटा लेनी चाहिये. अर्थात् वस्तुतः जीव वा ईश्वर तो नहीं हैं, परंतु ईश्वरत्व जीवत्व धर्म, मिथ्या होते हैं. जेसे प्रतिबिंबके लघुतादि धर्म, अपने मुखमें आरोप होते हैं, वेसे ब्रह्ममें जीवत्वका आरोप होता हे. जेसे मुखमें बिंबत्वका आरोप हे, वेसे ईश्वरका ब्रह्ममें आरोप हे. जेसे काच उपाधि रहे वा न हुयेभी मुख-बिंब प्रतिबिंब एकही वस्तु हैं तोभी, काचके अभाव हुये प्रतिबिंबका मुख विषे मुख्य वा बाधसमानाधिकरण भावसे एकत्व आरोप होता हे, वेसे ब्रह्म ईश्वर ओर जीव संबंधमें जान लेना चाहिये. (शं.) जबकि ईश्वर शून्य वस्तु हे-बिंबवत् कोई वस्तु नहीं-अक्रिय ब्रह्म (मुखवत्) मात्र हे, तो, ईश्वरत्व धर्म किसके आधीन होगा. कर्म, रचना, कर्म फल-दुःख सुखकी व्यवस्था होगी. [स.] स्वप्न समान सब आभासरूप हैं-मिथ्या प्रती

१ परिछिन्न, सक्रिय, दुःखी. ब्रह्म, अचल, चिदानंद.

त होते हैं-अज्ञानके परिणाम ओर अधिष्ठान चेतन-ब्रह्म [नी-माजीव]के विवर्त्त हैं. जेसे स्वप्न विषे स्वप्न द्रष्टा अपनेको अपराधी, अनुचर विषय करता हे ओर स्वप्नवाळे राजा द्वारा दुःख सुख इनाम पाना अनुभवता हे परंतु, वहां न कोई अपराधी, अनुचर हे,ओर न दंड ईनाम दाता हे. न धर्मधर्मी हैं. तथापि अविद्याकी महिमासे सर्व व्यवस्था अनुभवती हे. स्वप्नका अधिष्ठान—स्वप्न द्रष्टामात्र-सर्वका साक्षी व्यापक सर्व आभासोंका आत्मा प्रकाशक हे; तद्वत् ईश्वर, जीव ओर फलादिककी व्यवस्था तथा धर्म-धर्मी, आभास रूप ज्ञातव्य हैं. स्मृति प्रत्यभिज्ञाज्ञान, अज्ञान आदि त्रिपुटी मात्रकोभी, इसी प्रकार जान लेना चाहिये.

[शं.] स्वप्न कोनसे जीवका हे? [स] स्वप्नवत् यह तुझ (श्रोता) कोही भासता हे. अन्य कोइ नहीं-सर्व आभासरूप हे. (शं) यह श्रोता वक्ता कोन? आभासरूप वा ब्रह्म? ब्रह्म अवाच हे.-इंद्रिय विनाका हे. अतएव आभासोंही श्रोतृत्व वक्तृत्व कहना होगा. (स) सर्व स्वप्नवत् आभासरूप-प्रतीति मात्र." (पू. प.) ब्रह्म—ज्ञेयभी मिथ्या हुवा; आभासोंकर प्रतिपादित-ज्ञेय, मानेमें आनेसे. तथाही आपका सिद्धांत ओर मंतव्यभी.. सर्वथा अव्यवस्थाकी अनवस्था चलेगी. वाहरे एक जीव वादि तेरा सिद्धांत?! जरा आंखें खोलिये! वौद्ध न नये! जाग्रतमें आईये!

उक्त पक्षमें अन्य दोष[१] (संक्षेपसे) यह हैं:—सद् ब्रह्म ज्ञान स्वरूपको अज्ञान कहना हास्य जनक वात हे. अपना आप उपदेशक न हो सकने, अन्य उपदेष्टाके अभावसे, अ-

१ पूर्वोक्त प्रसंग प्रति, क्रमशः दोषका कथन हे. अतएव पूर्व प्रसंग पर ध्यान रखनेसे अभिप्राय खुलेगा.

नादि अज्ञानकी निवृत्ति अनुपपन्न मानी जासकनेसे अज्ञान, अनादि अनंत सिद्ध होगा है. अज्ञान विषेभी जड होनेसे उपदेशकत्व असंभव. अतएव अज्ञान ओर उसका कार्य अध्यासरूप मिथ्या नहीं. स्वयंप्रकाशको अज्ञान मानना उसकी स्वयंप्रकाशताका नाश करना वा उसे धब्बा लगाना है. करणका दृष्टांत विषम है; क्योंकि करण संस्काराधीन था. ब्रह्म वेसा नहीं. जबकि वेद उपनिषदादिके ज्ञानसूचक वाक्य ओर मुक्तोंके इतिहास, अर्थवाद रूप हें तो, आपका कथनभी वेसा क्यों न मान लिया जाय? जबकि ब्रह्मनामा जीव, में [जिज्ञासु मुमुक्षू] हो हूं तो, आपके उपदेशका त्याग करना चाहिये; क्योंकि आप अध्यास-आभासरूप हो. प्रतिबिंबका दृष्टांतभी योग्य-यथार्थ नहीं है; क्योंकि वृत्ति, शरीरसे बाहिर नहीं जाती. जो वेसा होता तो, दिवसको ओंडे कुवेमें उतरनेसे तारे नहीं देख सकते.[१] किंवा, कुवेमें उतरे विना, सूर्य समान दृष्ट होते. किंवा, लाल काचमेंसे श्वेत वस्तु, श्वेतही दृष्ट पडती[१] वा, श्वेत काचद्वारा पीतादि वस्तु, श्वेतही प्रतीत होती. क्योंकि काच, रंगकीदृष्टा-वृतिको वा विषयको, नहीं रंगता हे. २ किंवा, एक कटोरेमें चांदीका छल्ला डालके उसे इतनी दूर रखें कि छल्ला चक्षु गोचर न हो, फेर कटोरेमें पानी डाला जावे तो, छल्ला गोचर[१] होजाता है; यदि वृत्तिका बाह्य गमन होता तो, प्रथमभी दृष्ट पडता. किंवा, जबकि विशेष प्रकाश वा शब्द, वृत्तिको रोकता हे तो, किसी एक बिं-

---

१ पदार्थोंकी किरणें चक्षूमें पडनेसे, विषयाकार विषय समान रंग होनेसे तथा प्रसिद्ध-ज्ञात किरणोंके नियमसे, एसा होता है. मेस्मेरिज्म ओर योग अवस्थामेंभी दूरस्थ शब्दादि विषयका ज्ञान सूक्ष्म किरणादि सामर्थ्यसे होता है.

ई पर सेंकडों मनुष्य एक कालमें देखें तो, परस्परकी वृत्ति क्यों नहीं विरोधी-प्रतिबंधक होती१ ? वा, आकाश व्याप्त वृत्ति होने पर, न्यूनता क्यों न जनाती ? वा, दूरस्थ सूर्य चंद्रको देखनेवाली वृत्ति, मध्यदेशवार्ति गगनस्थ पक्षीको क्यों नहीं देखती ?२ किंवा अन्येंद्रियोंका शरीरस्थ रहे उपयोग ओर चक्षु वृत्तिका तद्विरुद्ध क्यों ? इत्यादि अनेक* पुरावे हैं जिनमें वृत्तिका बहिर गमन असिद्ध हे. अब जो हठसे यहभी मान लेंकि वृत्ति बाहिर जाती हे, तोभी, काचसे उपराम होके स्व मुखको विषय करती हे, एसा नहीं हे. जो एसा होता तो, काचस्थ हमारा मुख दूसरेको गोचर न होता. १ वा, परका प्रतिबिंब हमको न देख पडता. [ओर गोचरतो होते हैं]; वा काचद्वारा दूसरेका मुख, घटादि वत, विषय होता. वा जलस्थ सूर्य प्रतिबिंब देखने पर वृत्तिको, सूर्य दृष्ट समान चकाचौंदमें आना पडता [परंतु वेसा नहीं होता]. वा काचकी रचना विशेषसे अपनी पृष्टका प्रतिबिंब नहीं देख सकते. वा, एकही काच विषे सन्मुखमें आगे पीछे चार चार फोटो-स्व शरीरके प्रतिबिंब नहीं देखने पाते [परंतु देखते हैं]. विशेष क्या कहें, प्रसिद्ध प्रत्याकृति यंत्र (फोटोग्राफी यंत्र) देखिये ? अंतरमें छवी पडती हे; वहां वृत्ति, यंत्रमें जाके नहीं कोतरती. किंवा, वहांसे उठके मुखको नहीं देखती; ओर छबी तो होती हे. प्रत्यक्ष पुरावा हे. निंदान प्रतिबिंबका उपादान, मुख. काच वा वृत्ति नहीं; किंतु तद्भिन्न किरणें हैं.—जो कि काचका स्पर्श करके

---

१ वृत्ति सावयव.—मध्यम होनेसे शब्द प्रकाश विशेष करके रुकनेसे यह प्रश्न हैं. * विशेष विस्तार, प्रकाश विद्या, मानसिक योग उत्तरार्ध ओर तत्वदर्शन नाम ग्रंथमें खंडन मंडन सहित वांच सकते हो.

चक्षुमें गोचर होती हैं और बडे बडे पहाडोंको वैसेही रूपमें देखाती हैं. प्रतिबिंबमें लघुता श्यामतादि, किरण काचके संबंध से हैं. प्रतिबिंबको किरणोंकालय काच, मुख, और वृत्तिसे भिन्न, सूर्य वा अंतरिक्षमें होता है; परंतु अज्ञ–पदार्थ विद्याको न जान्ने वाले अन्यथा मानते हैं–कल्पते हैं. इसी रीतिसे दार्ष्टांतमें जान लेना चाहिये. अर्थात् ब्रह्मका प्रतिबिंब मानें तो, किरण, जीव, ईश्वर और उनके धर्म तद्भिन्न हैं; उनका ब्रह्मके साथ मुख्य वा बाध समानाधि करण नहीं होता. उलटा आपका दृष्टांत जीव ब्रह्मको एकताका बाधक है. तथाहि निरूपा+ ब्रह्म चेतनका मिथ्या अज्ञान–माध्यमें अभास–प्रतिबिंब मान्ने–कल्पनेमें कोइ युक्ति, प्रमाण, अनुभवभी नहीं मिलता. अतएव आपकी कल्पना मान्य नहीं होसकती. स्वप्नवाला दृष्टांत भी ठीक नहीं–आपके उक्त मंतव्यवत् "जीव ईश्वर है" यह ज्ञान किसने जानी? 'ब्रह्म अज्ञानी है' यह किसने जाना? ब्रह्म और अज्ञानसे भिन्न तीसरा कहा चाहिये? सो तो, आपके सिद्धांतमें कोई है नहीं; अतः आपका सिद्धांत कल्पना मात्र ठेरता है.

किसका स्वप्न, किसने स्वप्न देखा वा किसको स्वप्नवत् देख पडता है–अज्ञान परिणाम है-आभासरूप है? इत्यादिके निर्णयमें वक्ष्यमाण [अज्ञान, अध्यास, अनिर्वचनीय] प्रसंगवाले, असामग्री इत्यादि तथातत् संबंधी दोष आवेंगे ब्रह्मके प्रतिबिंबकी उपादान, किरण वगैरे, भिन्न सामग्री मान्नी पडेंगी. जड अज्ञानको दृष्टा मान्ना असिद्ध होगा. स्वप्नवाले अपराधी, अनुचर, राजा–दृष्टा-मिथ्याकी जाग्रतवाले दृष्टा साथ, जैसे ए-

+ नभको निरूप मानके जलगत् गंभीरता नाम चक्षु गोचर प्रतिबिंब कहना वा मान्ना व्याघात है.

कता नहीं होती वेसे, दृष्टा-ब्रह्मके साथ मिथ्या जीवेश्वर आभास रूपकी एकता न होसकेगी.

इत्यादि दोष करके आपका सिद्धांत अलीक होगा. अत एव बंध मोक्षका अभाव प्रतिपादक, व्यवहार व्यवस्थाका अव्यवस्था करनेवाला आपका मंतव्य त्याज्य हे. युक्ति, प्रमाण, अपरोक्ष-अनुभवका विषय नहीं.*

(अपरोक्षत्व)

हरकोइ उक्त प्रकारका सिद्धांत, केवल

मानना तो, सफल नहीं होता. उसका अनुभव गम्य अपरोक्ष-साक्षात्कार-प्रत्यक्ष-होना चाहिये, एसी सर्वको जिज्ञासा होती हे. ओर आपकी श्रुति "तस्मिन् दृष्टे परावरे" "तमेव विदित्वा" [आदि वाक्य], ब्रह्मको दृश्य ओर ज्ञेय बताती हे; एतद्दृष्टि जीव ब्रह्मको एकता अनुभवगम्य-अपरोक्ष होन योग्य हे. तदंतर जो, अनुभव मात्रकी चर्चा उपरकी गइ हे; उस रीतिसे अनुभव मात्र, विश्वास योग्य नहीं हे ओर परीक्षा योग्यभी नहीं जान पडता. अवशेष रहा अपरोक्षत्व, उसकी परीक्षाका विचार करते हें:-प्रासंगिक विषय विषे बाह्येंद्रिय [चक्ष्वादि ओर उनकरके प्रत्यक्ष-अपरोक्ष-]का तो, आपके सिद्धांतमें उपयोग नहीं. तव दुःख, सुख, धर्म, संस्कारादिवत् आंतर अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) उपर दृष्टि डालनी पडती हे. वहां अपरोक्षत्व क्या हे? जिस करके ब्रह्म, जीव, वा जीव ब्रह्मकी एकताके साक्षात् होनेकी सिद्धि मानली जावे.?

संस्कारादिक वा, मन [अंतःकरण-चित्त-बुद्धि वृत्ति, ऋतंभरा वृत्ति इत्यादि] वा, चिदाभास योग्य चेतन [योग्य

---

* विशेष दोष आगे वांचोगे.

विषयका स्वानुकूल ओर स्व व्यवहारानुकूल जो चेतन], वा योग्य विषय[1] [जिस विषयका प्रमाता--चेतनसे अभेद होते प्रत्यक्ष व्यवहार होवे सो विषय[1]], किंवा, योग्य विषय ओर योग्य चेतनका अभेद संबंध, अथवा योग्य वृत्ति-मन-का योग्य विषय साथ अभेद संबंध, किंवा, विशिष्ट चेतन वा उपहित चेतन, वा, इनका विषय साथ अभेद वा अन्य कुछ हे. अर्थात् अपरोक्षत्व क्या हे? इसका निर्णय नहीं कर सकोगे; क्योंके चेतन तो, प्रकाश स्वरूप (आपही प्रकाशमान) हे. किसी करके वा किसीका अपरोक्ष (ज्ञेय) नहीं हे. अतः उस निर्धर्मप्रति अपरोक्षत्वका कथन नहीं होसकता. ओर मनादि जड हें ओर विषय प्रत्यक्ष होने योग्य हें; अतः इनमें विषय होनेकी योग्यता हो. घटादि विषय अपरोक्ष-प्रत्यक्ष हें परंतु, उनको अपरोक्षत्व नाम देना नहीं बनता. ओर चेतनादिका तादात्म्य-अभेद वा संयोग संबंध तो, संबंध हो. उनकोभी अपरोक्षत्व नाम देना नहीं होसक्ता. अर्थात् संबंध, अवस्था विशेष हे; उसका अपरोक्ष कथन संभव होनेसे सो, अपरोक्षत्वका वाचक नहीं. जेसे घटपटका वा

---

१ धर्म संस्कारका, चेतन साथ अभेद परंतु, स्व व्यवहारानुकूल-स्वानुकूल नहीं-योग्य विषय नहीं; अतःपरोक्ष हे. अतएव उसमें प्रत्यक्ष व्यवहार नहीं. तद्वत् घटादिक पृष्टभाग साथ संबंध न होनेसे परोक्ष हे. दुःख सुखादि योग्य विषय (प्रत्यक्ष योग्य) हें; अतः अभेद संबंध हुये अपरोक्ष होते हें; इसलिये प्रमाता-चेतन-जीव-ओर विषयका अभेद वही अपरोक्षत्व, एसा वेदांती लोक मानते हें; परंतु समवायरूप संबंधका यहां प्रसंग नहीं किंतु, संयोग संबंध (विषय चेतनका संयोग) वा तादात्म्य-अभेद-संबंध मानना पडेगा. तहां स्वरूप मात्रके तादात्म्यका अभाव हे ओर संयोग कल्पनासे दोषहे.

घटेंद्रियका सन्निकर्षरूप विषय, अपरोक्ष होने योग्य हे; वेसे संबंध वा अभेदको समझ लेना चाहिये. इस रीतिसे अपरोक्षत्व क्या[1] हे, उसका निर्णय नहीं हो सक्ता.

"यदि आपके मंतव्यानुसारही उद्दालकादिका कथन-अभिप्राय-हो, एसा पांच पळ वास्ते मानभी लेवें, तोभी, आपका मनोरथ सिद्ध नहीं होगा; क्योंके पूर्वोक्त रीतिसे वे वाक्य स्वतः वा परतः प्रमाणरूप तो नहीं हें, तब इसकी यथार्थतामें कोन प्रमाण हे ? इस निर्णय पर जावें तो, कितनेक पूर्वोक्त दोष आजावेंगे. जो प्रमाण निर्णय पर नहीं आवोगे तो, अन्य कुरानी, किरानी, जैनी, पौराणी, बौद्ध, चार्वाकादि ओर उनके आचार्य तथा ग्रंथोंका सिद्धांतभी क्यों नहीं माना जाय ? इसका निर्णय असंभव होपडेगा. कारण के वे उनको सर्वज्ञ, निर्भ्रांत, यथार्थवेत्ता मानते ओर सिद्ध करते हें. अतएव इस निर्णय वास्ते युक्ति प्रमाण, सृष्टि नियमादिका आश्रय लेना पडेगा. तब आपका सिद्धांत पूर्वोक्त ओर वक्ष्यमाण अपरोक्षत्वाभाव तथा युक्ति वगेरेसे असमीचीन माना जा सकताहे."

प्रसंगमें जो चेतन वा अंतःकरण-वृत्ति चेतनका विषय साथ अभेद संबंध मानके उसीको (अभेद संबंधको) अपरोक्षत्व मानें तो, जीव ब्रह्मकी एकता नामा विषयमें उपयोगी नहीं. क्योंके जीव ब्रह्मका अपरोक्षत्व विधायक तद्भिन्न (जीव, ब्रह्म ओर उनकी एकतासे भिन्न), होना चाहिये. जेसेकि नीलघ

---

१ इस अद्भुत प्रसिद्ध विषयमें अनेक शंका समाधान हें. तथापि निर्दोष नहीं होता. इस वास्ते विशेष विस्तार नहीं लिखा. प्रसंग विषे, जीव ब्रह्मकी अपरोक्षता पक्षमें, वाचक महाशयके ध्यान खेंचने वास्ते, उद्देश मात्र जनाया हे. ओर वेदांत संप्रदायकी रीतिसे लिया हे.

आदि विषयोंका अपरोक्षत्व विधायक, घटादिसे भिन्न कोइ अन्य हे—घटादि नहीं. वेसेही वहांभी कोइ भिन्न मानना पडेगा, सो तो, आपके पक्षमें स्वीकार नहीं हे. अतः जीव ब्रह्मकी एकताको, अविषय—असाक्षात्—अनपरोक्ष कहना पडेगा.

जो यह कहोकि वृत्तिं, ब्रह्मको विषय नहीं करती, किंतु निराकार, असीम, अक्रिय, अपरिणामी ओर व्यापक ब्रह्मके कल्पिताकार हुइ वृत्तिमें, दीपक चक्षुवत्, ब्रह्म प्रकाशता हे (इस प्रकारको वृत्ति व्याप्ति ओर फल व्याप्ति कहते हैं). तो वहां यह शंका होती हे कि यह बात किसनें अपरोक्षकी? इसका उत्तर नहीं देसकोगे. क्योंके ब्रह्ममें ज्ञातृत्व—द्रष्टापनका अभाव हे. ओर वृत्ति सहित चेतन वा चेतन सहित वृत्तिमें ज्ञातृत्वादि मानें तो. ब्रह्ममें उसका बाध होनेसे परिशेष प्रकारसे केवल वृत्तिमेंही मानना पडेगा ओर वृत्ति तो जड हे; अतः "ब्रह्म, वृत्तिमें प्रकाशता हे" वा "स्वप्रकाश हे" इस कथनका पुरावा नहीं मिलेगा. जो चक्षु प्रकाशवत पुरावा मिलता होगा तो, जीव बुद्धिवत् वहांभी, वृत्ति, ब्रह्मसे भिन्न, कोइ अन्य मानना पडेगा. ओर स्वपक्ष त्यागना पडेगा.

तथाहि जिस कालमें ब्रह्म, अंतःकरण—वृत्ति—को प्रकाशता हे, उसकाल विषे वृत्ति (चेतन)में उसके प्रकाशनेके साक्षात् होनेकी योग्यताभी नहीं हे; क्योंकि उसकालमें वृत्ति स्वयं विषय हे. विषय, विषयीको केसे जान सकेगा? इस रीतिसेभी उक्त वार्ता सिद्ध नहीं होती. तब अंतःकरण विशिष्ट वा उपहित चेतन जीव ओर माया विशिष्ट ईश्वर वा शुद्ध ब्रह्मकी एकता हे; इसका विषय कर्त्ता, सिद्ध होना तो, सर्वथा असंभव हे. जब यूं हे तो, उद्दालकादिके वा आपके सिद्धांतमें कोइभी संतोषकारक पुरावा नहीं होनेसे केसे मा-

न्य होगा? ओर साक्षात् विना केसे मोक्ष होगो? (नहीं).

बाह्य पदार्थ विषय करनेमें, इंद्रिय प्रमाण—साधन—हैं. इंद्रियोंके विषय करनेमें, कोन साधन होगा? यदि मनको मानें तो, मनके विषय करनेमें कोन करण—साधन-होगा? जो ब्रह्मको मानें तो, ब्रह्म मनादिको जानता हे वा विषय करता हे वा प्रकाशता हे, इसके प्रकाश करनेमें कोन साधन होगा? जो ब्रह्मको स्वतः प्रमाणभी ओर प्रकाशरूपभी मानो तो, इसका कोन कथन करता हे? ब्रह्मके कोइ इंद्रिय वा वाणी नहीं; अतः एसा मंतव्य विश्वास वा कथन मात्र होगा. ओर जो संस्कारी वृत्तिको स्वतः प्रमाण मानें तो, उस वृत्ति ओर ब्रह्मके प्रकाशमें कोन प्रमाण होगा?—इत्यादि निर्पक्ष गुह्य विचारसे, जीव ब्रह्मकी एकताका अपरोक्षत्व—साक्षात्—वा अस्तित्व सिद्ध नहीं होसकता. जब यूं हे तो, मंतव्य मात्रसे वा विश्वास मात्र कथनसे कोइ (मोक्षादि) फल नहीं होता. किंतु संशयही रहेंगे; जोके विनाशके हेतु हें. इस रीतिसे उद्दालकादिके वाक्य माननेसेभी कोइ प्रयोजन सिद्ध नहीं हुवा.

जो कहोके, जेसे दुःखादि अनुभव अपरोक्ष हें, वेसे ब्रह्म चेतन वा जीव ब्रह्मका एकत्व, अपरोक्ष होता हे. सोभी नहीं वनता; क्योंके दुःखादिके अपरोक्ष कालमें अपरोक्ष विधायक, दुःखादिसे भिन्न हे. तद्वत् ब्रह्म वा एकत्वका साक्षात्कर्त्ता, वा अनुभव कर्त्ता, वा लक्ष्यज्ञाता, उनसे भिन्न कहा चाहिये जब एसा कहोगे तो, द्वैतापत्ति होगी. ओर वक्ष्यमाण दोष(देखो विशिष्ट चेतन ज्ञाता हे. इस प्रसंगको) प्राप्त होंगे.

ओर एक जीव वादकी रीतिसे तो, अपरोक्षत्व, अक्रिय जीव ब्रह्मकी एकताका ज्ञान—इन सबका उच्छेद हे, अत एव अपने पक्षको आपही असिद्धि करता हे; इस लिये निसके संबंधी कथनसे उपराम होते हें.

अनेकता-दर्शन. ३.

अन्यप्रकारसे एकता.

नवीन वेदांतियोंकी रीतिसे, जीवका स्वरूप बनाके दोप कहे गये. अब अद्वैत पक्षके कितनेक रूपांतर भागवालोंके जीवका स्वरूप कथन करके दोष देखाते हैं. यद्यपि इसके लिखनेका प्रसंग नहीं; तथापि शुद्ध, विशिष्ट और केवलादि अद्वैतमतकी संप्रदाय हैं. तथा कोइ पक्षकार जीवका सादि सांतादि भेदभी, कथन करते हैं. अतः वाचक महाशयको कल्पनाओंमें संशय उत्पन्न नहो; इसलिये संक्षेपमें जनाते हैं. ताकि वाचकगण अपनी बुद्धिसे अन्यकल्पना करकेभी, आपही निवारण करसकें.

जो जीवको ईश्वरकी संकल्पशक्ति वा संकल्प (जेसेके कुरानी किरानीलोक अमररब्बी-खुदाका हुकम-मानते हैं.) वा ईश्वरका अंश (जेसेकि वल्लभादि वा सूफीलोक मानते हैं.) किंवा ईश्वरका गुण मानके जीवेश्वरकी एकता कहोगे, सो भी नहीं बनता-किंतु सदोष होगा. क्योंकः—

(१) व्यापक-अकंप-अक्रिय-अखंडमें, संकल्प-क्रिया-कहना अयुक्त है.

---

१ संक्षेप शारीरिक कर्त्ता सर्वज्ञ मुनीका मत हैः—"पूर्व सिद्धत मसोहि पश्चिमोनाश्रयो भवतिनापि गोचरः" (जीव, ईश्वर, और उनका भेद अज्ञानोत्तर भाति होनेसे अनादि नहीं है.) तथाही जो अनादि मानें तो, अज्ञान--माया, उसका उपादान न होसकेगा. —वे मायीक न होंगे; क्योंके उपादान और निमित्त, कार्यसे पूर्वही होते हैं. आभासकोभी अनादि माना तो, ब्रह्म और अज्ञानसे भिन्न, तीसरी वस्तु माननी पडेगी.

(२) ओर जिसकी जो शक्ति हो सो उसीमें रहती हे–उसको छोडके अन्यमें नहीं जाती–यह नियम हे. इसीप्रकार ईश्वरकी शक्ति उसीमें रहती हे. अन्य शरीर वा परमाणु वा मायामें रहना संभवे नहीं. जो कहोके उसका उपयोग मनुष्य शरीरमें भासना वनता हे, तब यह पूछना पडता हे के सो शक्ति अणु हे वा मध्यम हे, वा विभु हे ? जो अणु मानोगे तो, ईश्वरके किसी भागमें होगी, किसीमें नहीं; अतः जिस भागमें नहीं होगी वहां ईश्वर अशक्त होगा. जेसेके यज्ञदत्तका शरीर काशीदेशमें जब गया तब, पूर्व देश जो मथुरा वहां वोह शक्ति नहीं रहनेसे वहांके ईश्वरमें सो शक्ति नहीं, एमा कहना पडेगा. जो ईश्वरी शक्तिको मध्यम मानोगे तो नाशवान ओरजन्य होगी–परंतु अनादि नित्य वस्तु जो ब्रह्म वा ईश्वर (यदि शक्तिमान हे तो.) उसकी शक्ति उसमें अनादि अनंतही माननी पडती हे; एसे माने विना छुटकारा नहीं होता. जो कदाचित् सादि मानोगे तो, ब्रह्मसे भिन्न होगी. उससे जीवेश्वरको एकता कहना भी नहीं वनेगा. ओर जो शक्तिको विभु मानोगे तो, अन्यमें प्रवेश वा क्रियादि नहीं होंगे, किंवा उसको ईश्वरका स्वरूप रूपही मानना पडेगा, उससे प्रसिद्ध जीव समान मलिन कर्म होना न संभव.

(३) जेसाकि शक्ति वास्ते कहा गया हे, वेसेही अक्रिय गुण माननेमेंभी जान लेना चाहिये.

(४) जो जीवको, ईश्वर वा ब्रह्मका अंश मानके एकता कहते हो तो, व्यापक वस्तुके खंड–भाग–नहीं हो सकते–ब्रह्म–ईश्वर–अखंड हे. जो खंड मानोगे तो चार्वाक मत स्वीकार हो जायगा; क्योंके वे भी समूहात्मक परमाणु शक्ति-

करके परस्पर संयोग वियोगसे ज्ञान, क्रिया, स्थिति मानते हैं.

(५) जो घटाकाश महाकाशवत् सोपाधिक अंश मानोगे तो, यह कहना पडेगा के चेतन एक है—जोके नित्य कूटस्थ, शुद्ध, अक्रिय, अकर्त्ता, अभोक्ता है. और उपाधि (अंतःकरणादि) सादि सांत, मध्यम, कर्त्ताभोक्ता और सक्रिय है—इनकी एकता नहीं होसकती. और विशिष्ट (उभयका युक्त) मानके एकता करनेमें (पूर्वोक्त और वक्ष्यमाण) दोष प्राप्त होते हैं.

(६) जो, ईश्वरका श्वास रूप जीव है, एसा मानके एकता करोगे तो, श्वास मध्यम होनेसे जीव नाशवान ठरेगा. और ब्रह्म-ईश्वर—व्यापकके मध्यम श्वास कहना विस्मयकारक—हास्यजनक—अयुक्त—बात है.

(७) जो यह कहोके "जेसे दीपकसे दीपक होता है तहां, पूर्व दीपकमें न्यूनाधिकता नहीं होती, फेर दोनों मिलके एक स्वरूप हो जाते हैं. इसी प्रकार ईश्वर-ब्रह्म-रूपी दीपकसे मायांश वा अन्य कोइ परमाणु-पदार्थ विशेष-ईश्वरकी संधि—सन्निधि—से चेतन हो जाता है, स्व परिमाणमें सारुप्य और सायुज्य होता है, सालोक्य (ब्रह्म लोकमें), सामीप्य रहता है. वेसे जीव है; सो दीपक, दीपक समान एक है. ईश्वरका अंशभा है, व्यापकका व्याप्य है, दासभी है, और सखाभी है. और अभेद स्वरूप होनेसे एकभी है." यह कहना वा माननाभी समीचीन नहीं; क्योंके ब्रह्म—ईश्वर—व्यापक है, जो दीपक समान परिच्छिन्न होता तो, अन्यदीपकका कथनभी बनता. जो परिच्छिन्न मानके वा अन्य प्रकारसेभी निर्वाह करोगे, तोभी नहीं बनेगा; क्योंके जेसे जलके परमाणु अन्य जलमें मिलते हैं और एक स्वरूप भासते हैं तोभी, वे स्व स्वरूप-

से, अन्य, जल परमाणुमे भिन्नही हें, इतनाही नहीं किंतु उनका शीतत्वादि गुण स्वभावभी भिन्न२ही हे, उसका पृथक्करण पदार्थ विद्याके ज्ञाता जानते हें. और अनुभव गम्य हे; अर्थात् वे परस्पर संयोग संबंधसे एक रूपमे रहे हुये हें, तादात्म्य संबंधसे नहीं; किंतु जलके परमाणुके शीतत्वादिकोभी कल्पित तादात्म्य संबंधरूप मान सकते हें. अन्यथा वस्तु मात्रका तादात्म्य संबंध कहना तम–रातको दिन–प्रकाश–बताने समान हे. इसी प्रकार जब अन्य दीपकसे अन्य दीपक किया जाता हे वहां, आद्य दीपकमेंसे तेजके सूक्ष्म परमाणु उत्तर दीपकके साथ संयोग पाते हें ओर उनसे उत्तर दीपकके तेजके परमाणु जोके तेल, वत्ती, ओर अंतरिक्षमें विद्यमान हें सो, आकर्षण, विद्युत वा स्वभाव बलसे एकत्र होके प्रादुर्भावको प्राप्त हुये प्रकाशमान होते हें जेसेके नित्यप्रति दीपक प्रकाशमें प्रवाह देखते हो. अर्थात् जेसे गुप्त धूम, दीपकसे निकलता रहता हे ओर कालांतरमें मकान पर श्याम रूपसे देख पडता हे वेसे, दीपकमेंसे तेजोमय परमाणु निकलके अन्य अंतरिक्षस्थ तेजके परमाणुको प्रकाशमान होनेके हेतु होते हें ओर आपभी प्रकाशमान होते हें. परंतु इतना अंतर हे के जेसी जेसी योग्यता–आकर्षण–देशकालादि होते हें वेसे वेसे, उनके सृष्टि नियमसे प्रकाश पाते हें. अर्थात् दीपकके समीपही यदि कोइ आवरण विशेष प्रकारसे होतो, वहां प्रकाश नहीं पाते; किंतु जेसेके दीपकसे दूर गये हुये परमाणु तम बल करके तेज सहायक नहीं होनेसे तिरोधान हो जाता हें; वेसेही कारण विशेषसे–आवरणादि निमित्तसे समीपमेंभी, उनका तेज तिरोधानको प्राप्त हो जाता हे. ओर जहां अति दूरसे दीपककी लो–शिखा–का प्रकाश तो देख पडता हे परंतु, दृष्टि ओर दीपक

(सूर्यचंद्रादि) के मध्यभागमें तेजके परमाणु वसे नहीं प्रका-
शित होते, जेसेके दीपक समीप देवार वा पदार्थ पर प्रकाश
मान होते हैं. वहांका यह प्रकार है के जहां दीपकके समीप
देवारादि पर देखते हो वहां, दीपकी किरणें (परमाणु समूह)
देवार पर पडके उनकी प्रभा चक्षुमें टकर खानेसे प्रतीत हो
पडती हे. (विशेष विस्तार प्रकाश विद्यामें देखो. यहां अप्र-
योजन समझके दृष्टांतमात्र अनुग्रहणकी अपेक्षासे ग्रहण हे).
परंतु जहां अंतरिक्ष भाग हे वहां, वे किरण नहीं टकरानेसें,
प्रकाशमान नहीं जनाती. वेसेही दीपक ओर चक्षूके मध्यमें
नहीं टकरानेसे ज्ञात नहीं होती. यदि मध्य देशमें पदार्थ र-
खोगे तो, उस पर टकराके ज्ञात होपडेंगी. निदान चक्षुमें
टकरानेसे दूरका दीपक प्रकाश सहित प्रतीत होता हे. ओर
जहां अत्यंत दूरस्थ दीपकभी चक्षुमें प्रतीत नहीं होता वहां,
मध्यभागमें दीपककी किरणे वायु वा अन्य परमाणुसे छिन्न भि-
न्न ओर आवृत्त हो जानेसे प्रतीत नहीं होती. सूर्य तारागण
अत्यंत दूर होतेभी जो सप्रकाश प्रतीत होते हैं सो, उनके
आकर्षण नियमसे उनके स्थूल पृथ्वीको किरण पानेसे
ज्ञात होते हैं. दिनको तारागणकी किरणे तिरोधान
रहती हैं तोभी, सीधे ओंडे अंधकूपमें उतरके देखो तो, सूर्य
के प्रकाशके अभावसे, वहां दिनकोभी तारा देख सकोगे.
खग्रास-सूर्य ग्रहण समयभी दिनको तारा देख
पडता हे. वेसे अन्य सूक्ष्म यंत्र दूर दर्शक पदार्थोंके प्रकार
हैं (प्रकाशविद्या—अर्थवेद—के पढनेसे ज्ञात ओर परीक्षा होस-
कती है). जब अनेक दीपक वा मशालके समीप बांचते हैं तो,
अक्षर नहीं देख पडते. अर्थात् तेजके परमाणु जोके दीपक

से निकले वे, चक्षु ओर अक्षरों पर आवृत्त हो जाते हैं, यदि केवल प्रकाशमात्र केवल दीपककी सत्ता होती, अणुरूप वा समूहात्मक मध्यम नहीं होता तो, एसा नहीं होता.

निदान पूर्वोक्त तमाम रीति वा दृष्टांतोंमें दीपकसे दीपक होना परमाणुका संयोग हे ओर प्रकाश मध्यम वस्तु—परमाणु जन्य—है, यह सिद्ध हो जाता है.

अब दार्ष्टांत पर दृष्टि डालिये—ईश्वर वा ब्रह्म यदि चेतन परमाणुका पुंज—समूहात्मक पदार्थ—होवे तो, आपका दृष्टांत बनेगा. आप व्यापक मानो तब तो, व्यापक अग्निमें नाना दीपक अभाव समान, दृष्टांतका अभाव प्रसिद्ध हे. ओर जो परिच्छिन्न (वैकुंठ, कैलास, कुरसी, चोथा आसमान, मोक्षशिला, गोलोक, अक्षरधाम इत्यादि देश परिच्छेदवान वासी) मानो तो, सावयव मध्यम होनेसे नाशवान होगा. ओर एक अणु रूप मानो तो, उससे अन्यमें चेतनत्व नहीं आवेगा: क्योंके उसकी सत्ता—शक्ति-गुणादि उससे भिन्न तो अन्यमें नहीं गये. तब अन्यमें चेतनत्व प्रकाश केसे होगा? इत्यादि दीर्घ विचारसे दीपक दीपक समानके जीव ब्रह्मकी समानता वा एकता नहीं बनती सामीप्य—सायुज्य—सालोक्यता तो, ईश्वर वादी करके गर्धब, विष्टादि मेंभी सिद्ध हो सकती है; उसके निर्णयका यहां प्रसंग नहीं.

(८) जो यह कहो के "जेसे जलमें सूर्यका प्रतिबिंब पडके देवार उपर चांदना प्रतीत होता हे. अर्थात् देवारको प्रकाशता हे वेसे, ब्रह्म—ईश्वर—व्यापक वा परिच्छिन्न, जीवनामा पदार्थको स्व प्रकाश करके वा स्व प्रतिबिंब करके प्रकाशित करता है; किंवा सो देवारस्थ प्रकाश जीव हे वा प्रतिबिंब जीव हे. निदान सूर्यवत् जीवसे भिन्नाभिन्न रूप है; अ-

र्थात् एकताभी हे ओर उपाधी रहते हुये भेदभी है; इस प्रकार अज्ञ वा ज्ञानवान् जीवको, जीवन कालमें ईश्वरसे भेद है ओर ज्ञान वा विदेह मुक्त कालमें अभेद है." इस दृष्टांतसेभी जीव ब्रह्मकी एकताका कथन नहीं संभवता; क्योंके जो सूर्य व्यक्ति हे सो, जलस्थ प्रतिबिंब व्यक्तिसे भिन्न हे ओर जलके अभाव हुये उसका लय अंतरिक्षमें होता हे-सूर्य में नहीं. ओर जो देवार पर प्रकाश हे सोभी, सूर्यसे भिन्न है; किंतु सूर्यकी तेजोमय किरणें (परमाणु विशेष जो सूर्यमेंसे ओर उसके समीपसे आते हैं) जल उपर गिरके देवार पर टकराके द्रष्टाकी चक्षूमें टकराती हैं तब, देवार सहितकी किरणे, देवार, प्रकाशमान-ज्ञात होती हैं. एसेही सूर्यकी किरणे जलमें पडके चक्षूमें आके टकराती हैं तब प्रतिबिंब ज्ञात होता हैं (विशेप विस्तार प्रकाश विद्यामें). जेसेके सूर्य काच-मणी-में जब सूर्य की तेजरूप किरणें काचमें समूहरूप होके एक स्थानमें एकत्र होके गिरती हैं तब, समूह होनेसे रुइ, तृणादिको जला देती हैं, यदि मध्यम-परमाणु रुप नहीं होती तो, केसे एकत्र होती किंतु उस बिनाभी जला देती*

इत्यादि प्रकारसे सूर्यसे भिन्न किरणोंका समूह सो-प्रतिबिंब ओर प्रकाश हे. तद्वत् जो ब्रह्म चेतन वा ईश्वरमेंसे कोइ किरण वा पदार्थका अंतःकरण साथ संयोग मानके

* सूर्यकी किरणोंद्वारा पृथ्वी उपर, नित्य जितनी उष्णता आती हे सो, सूर्यकी तमाम आकाशमें फेलती उष्णताका, मात्र दो अबजवां भाग है. अर्थात् सारी पृथ्वी पर २४ घंटेमे जितनी उष्णता आती हे उससे दोअबज गुनी अधिक उष्णता इतने कालमें सूर्यसे निकलती ओर अंतरिक्षमें जाती हे, यह वर्त्तमानके परीक्षक फिलोसोफरोंका अनुमान है.

उस समूहको जीव कल्पके, जो समानाधि करण वा बाध समानाधि करणकी प्रक्रियासे एकता करोगे तो, (पूर्व प्रकाशवत्) सर्वथा अयुक्त है; किंतु ब्रह्म, उसका आभास–प्रतिबिंब और अंतःकरणादि सर्वथा भिन्न २ होनेसे, जीव ब्रह्म भिन्नही सिद्ध होगा.

जो यह कहोके जबके सूर्यमेंसे परमाणुरूप प्रकाश, विश्व –ब्रह्मांडमें निकलता होतो, सूर्य न्यून क्यों नहीं देख पडता? अतः (दार्ष्टांतगतभी) तुम्हारा कथन अयुक्त है. इसका समाधान यह हैके सूर्यका सर्व ब्रह्मांडोंमें प्रकाश नहीं जाता किंतु, अन्य दीपकोंसे यह बडा दीपक है; अतः विशेष स्थान (अंतरिक्ष, तारामंडलादि) में स्व सीमा पर्यंत जाता है, आगे अन्य सूर्य वा प्रकाशदायी पदार्थ हैं, उनके प्रकाशका उपयोग होता है. तोभी, अपने सूर्यकी ओर अन्य प्रकाशमान सूर्यकी किरण (प्रकाश-गरमी) इधर उधर आती जाती रहती हैं, यह वात थोडेक विचारसे जान सकते हो. तदुपरांत अन्यभी कारण हैं, अतः थोडे कालमें न्यूनाधिकता नहीं ज्ञात हो सकती. [१]

उपरांत कुच्छभी हो, परंतु यह वात बहुत काल वा-

---

१ खगोल विद्या पढके परीक्षा करोगे तो, जान लोगे कि जो रात्रिको तारामंडळ दृष्टिगोचर होता है उसमें दरेक डवडवते तारे स्व प्रकाशित पदार्थ–सूर्य–हैं. उन सबमेंसे स्व सीमामें प्रकाश फैलता रहता है. अपने सूर्यसे तो, वे बडे सूर्य हैं (बहोत दूर होनेसे छोटेसे प्रतीत होते हैं). आकाश मंडलके सब सूर्योंकी किरणें अरसपरस आती जाती रहती हैं, और सूर्यकी आसपास अति उष्ण तेजावरण है, उसमें सूर्य पर जो काले दाग सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे प्रतीत होते हैं वे ज्वालामुखी जेसे हैं. उनसे ज्वलित पदार्थकी धारा उठके मिलती है. स्पेक्ट्रोस्कोप नामक यंत्रसे निरीक्षा द्वारा, नि-

स्ते तो, निःसंशय सिद्ध हो जाती हे के, सूर्यनामा पदार्थ संयोग जन्य हे. धीरे धीरे बना हे, एक साथ नहीं. तथा वेसे ही क्रमसे न्यूनभी होता हे. अर्थात् नैसर्गिक नियमानुसार, कालांतरमें बनता बिगडता रहता हे. इसका पुरावा इस सृष्टि नियमसे प्रत्यक्ष हे के, सूर्य परिच्छिन्न अणु परिमाण नहीं किंतु परिच्छिन्न मध्यम हे (क्योंके काले दागभी उसमें प्रत्यक्ष प्रतीत होते हें). ओर "मध्यम सादि शांत होता हे, यह नियम हे" अतः न्यूनाधिकता युक्त होनेसे उक्त कथन अयुक्त नहीं हे.[1]

शंका सिद्ध हुवा हे के सूर्यके तेजावरणमें हैड्रोजन, लोहा, मेग्निसियम, सोडियम स्पष्ट प्रतीत होते हें, ओर सब पदार्थके मूळ तत्व उसमें हें.—ओर तारोंमेंसे खिरता हुवा भाग सूर्यमेंभी जा पडता हे इन भागोंकी गति अकस्मात अटकनेसे इतनी गरमी पेदा होती हे के सूर्यमें निकलती रहती गरमीसे जो न्यूनता होती हे, सो पूर्ण कर देता हे. तोभी, यह बात सिद्ध हो चुकी हे के 'सूर्यसे इतनी बहोत उष्णता बाहीर निकलती रहती हे कि उसमें गरमी कम होती चली जाती हे.' परंतु वोह बडा (अपनी पृथ्वीसे बार लाख गुना) होनेसे ओर ऊपर लिखी ऊष्णताकी सहायता मिलती रहेनेसे, थोडे कालमें न्यूनाधिकता ज्ञात नहीं हो सकती.

ऊस विद्याके ज्ञाताओंने यहभी निश्चय किया हे के, कालांतर पश्चात् सूर्यकी सब ऊष्णता निकल जायगी ओर अपनी पृथ्वी जेसा हो जायगा. तिस कालमें ऊसको प्रकाश वास्ते अन्य सूर्यकी अपेक्षा रहेगी. (देखो खगोल). (हमने हमारा कथन, अन्य प्रकारसे स्वतंत्र सिद्ध किया हे. अतएव अन्यकी साक्षी वा अनुमान कहां तक ठीक हे, इस पर चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं रहती.)

[1] ओर आर्यावर्त्तके फिलोसोफरतो, प्रलयको क्रमशः मानते हें, यह आपभी जानते हो.

(९) जो "सत् चित् और आनंद यह तीन अंश ब्रह्मके व्यापक मानके उनमेंसे सत्–माया, चित्–जीव और आनंद-ब्रह्मको कहके संसार दशामें जीव आनंदको प्राप्त नहीं होता और ज्ञान वा विदेह दशामें प्राप्त होकर चेतनानंद एक स्वरूप होता है," ऐसा मानके जो, जीव ब्रह्मकी एकता मानोगे तो, अनेक दोष आवेंगे. तीनो समान एक देशमें नहीं रह सक्ते. वा परिभाषा मात्रके अंतरको त्यागके प्रकृति, जीव और ब्रह्म अनादि अनंत हैं, ऐसा मानना पडेगा जो के सदोष मत है. क्योंके तीनों अंश सर्वथा, सर्वदा स्वरूपसे भिन्न २ ही हैं, किंवा चेतनांशवत् सदांश–माया–भी ब्रह्म स्वरूप मानना पडेगा. तो, मल, पाषाणादिभी ब्रह्म स्वरुप होनेसे लक्षणा विना "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" माननेसे अव्यवस्था होगी. कर्त्ता, भोक्ता, चोर, दुष्ट, मलादि-तमाम ब्रह्म स्वरूप होनेसे पाप पुण्य, स्वर्ग नरकादिकी नास्ति होगी. जीव एकही व्यापक माननेसे सर्वके दुःख सुख, एक दूसरेको ज्ञात होंगे. और सर्वका सर्वमें अहंत्व होगा. (जोकि गोचर नहीं है). जो माया वश वा उपाधि भेदसे चेतनांशमें नानात्व कहोगे तो, पूर्वोक्त, अंतःकरण विशिष्ट चेतन मत गत जो जो दोष हैं वे सर्व दोष आवेंगे. इत्यादि अनेक दोष हैं और युक्ति हीन मत है. अतः इस रीतिसे जीव ब्रह्मकी एकता नहीं बनती.

(१०) जो यह मानोगे के "सत् चित् आनंद, यह तीन अंश ब्रह्मके और असद्–मिथ्या–जड और दुःख, यह तीन अंश मायाके परस्पर सर्वदा साथही उद्भव, तिरोभान होते हैं. जैसेके सुषुप्तिमेंसे उठते हैं तब, तीनों क्रमशः साथ प्रादुर्भूत होते हैं. तथा असत्की अपेक्षासत, सत्की अपेक्षा–मिथ्या–असत्–का प्रयोग वा कल्पना वा प्रतीति होती है. इसी

प्रकार चिद् जडादिमें समझ लेना, अतः उभय अनादि अनंत हैं उनमेंसे चेतन, दुःखनामा अंश साथ रहनेसे जीवका वाच्य होता है–सो ब्रह्म चेतन भागके साथ एक है. इस प्रकार व्यवहारमें भेद और वास्तविकमें सर्वदा एक है.” यह प्रक्रियाभी एकतांशमें अविवेकसे मानते हैं; क्योंके उभय अंश परस्पर विरोधी हैं, उनका साथ रहना तो ठीक हो, परंतु एकता कहना असंभव है. जेसे खद्योतमें तम प्रकाश भिन्न २ देशमें हैं–भिन्न स्वरूप हैं–वेसे जड, चेतन स्वरूपसे भिन्न हैं. ओर व्यवहार तथा ज्ञान वा विदेह कालमेंभी भिन्न २ रहेंगे; क्योंके अनादि स्वरूप मात्र, संसर्ग पाते हुयेभी भिन्न २ ही हैं, यह सृष्टि नियम है. अतः कल्पना मात्र सिवाय एकता नहीं कही जाती. सुषुप्ति कालमें जडत्व चेतनत्व यद्यपि प्रतीत हों, तथापि जाग्रत कालके सहचार विवेकसे सुषुप्ति कालमेंभी, भिन्नताही सिद्ध होती हे ओर तीनोंको अनादि अनंत मानोगे तो, अद्वैत–वेदांत–पक्षकी हानी होगी.

(११)जो कीट भृंगवत् जीवको ब्रह्मके सारूप्य होना मानते हो तो, सोभी असंगत है; क्योंकि लटमें वेसे स्वरूप होनेकी सामग्री, वीर्य मनुष्य, बीज वृक्ष समान प्रथम विद्यमान है, भृंग उसके उद्भव होने वा उपयोगमें आनेका निमित्त हे परंतु जीव परिच्छिन्न, अल्पज्ञ परतंत्रमें तो ब्रह्मसे विरुद्धभी धर्म हैं. अर्थात् व्यापक, सर्वज्ञ, स्वतंत्र, सर्व शक्तिमान होनेकी सामग्री नहीं है; अतः जीवको ईश्वर, अपने समान नहीं बना सकता ओर न जीव, स्वयं वेसा हो सकता है. तथा चार भुजादि शरीर होना यह तो, एक प्रकारकी योनी मान सकते हैं. ईश्वरत्व नहीं है. अपरंच यहां जीव ब्रह्मकी एकताका प्रसंग है, अतएव ‘भृंगसे भिन्न, कीट भृंग होता है” सो विषय, इस

..गका विषय नहीं हे.

[१२] अब विशेषतः कहां तक लिखें.–जो जो एकता वा जीव ब्रह्म माया के स्वरूपमें कल्पना करोगे वा मानोगे, ऊस ऊसका पूर्वोक्त युक्तियों ओर सृष्टि नियममे खंडन हो जायगा. ओर "एकताका सिद्धांत कल्पित–अयथार्थ हे" एसा जाननेमें आजायगा.

ईश्वर जीव-दर्शन-.४

वेदांत संप्रदायकी रीतिसे किंवा अन्य *संप्रदाय वा प्रकारसे उद्दालकादिके वाक्य ओर जीव ब्रह्मकी एकताका साक्षात्–अपरोक्षत्व–थोडी देर विश्वाससे मानभी लेवें, परंतु ब्रह्म–ईश्वर– ओर जीव कुछ वस्तु होंतो, इस विश्वासमें काल व्यय करें, जो वेही वस्तुतः सिद्ध नहीं होवें तो, विश्वास भी व्यर्थ हे. सो प्रसंग संक्षेपसे जनाते हें:—

(ईश्वर विषे.)

ब्रह्म, वा जगत्कर्त्ता ईश्वर हे, इसमें क्या प्रमाण हे : इसकी सिद्धि विना, वेदांतपक्ष (एकता) सिद्ध नहीं होता. प्रत्यक्षादि प्रमाणके दोष उपर कहे गये, वेसेही यहां जान लेना. जो यह कहोगे के "वेदांतियोंके आग्रहको लेके इस प्रसंग विषे प्रत्यक्षादिको उपर नहीं माना हें परंतु, वस्तुतः इसमें प्रत्यक्षानुभव प्रमाण हे. अर्थात् संस्कारी बुद्धिकर गम्य होता हे." इसका यह प्रत्युत्तर हे के (बाह्य प्रत्यक्षका यहां प्रसंग नहीं, आंतर प्रत्यक्ष

---

* रामानुज, वल्लभ, कबीर, सूफी, पुराण मत.

वास्ते पूछा जाता है, प्रत्यक्ष है, इसीमें क्या प्रमाण है? प्रत्यक्ष
ओर प्रत्यक्षके विषयमेंही अंतर देख पडता है. इस संबंधमें
राजा. अग्निके दृष्टांत उपर लिख आये हैं. तथा जब दूरसे
कोइ वृक्ष देखने हैं उसमे. समीपमें (उंचाइ, लंबाइ, रंग रूपादि
विषे) अन्य स्थिति वा अंतर प्रतीत होता है. एसेही अं
तरको ज्योतिष्मति[†] (योग क्रियाकी विषय)में, काल प्रति वि
षयमें अंतर पडता है.-वर्त्तमानमें गर्जना होती है, मोर उस
को सुनके बोलता है; मनुष्य कहता है के कोइ शब्द नहीं
होता. मिष्टान्नकी गंध आरही है, कीडी उधर दोडती हैं; म
लकी दुर्गंध हो रही है, मख्खी जाती है या शरीर उपर बे
ठती है वा विष्टा युक्त मक्षिका खानेके भोजन वा सूंघने
फूल पर बेठती है; परंतु मनुष्य कहता है के, यहां गंध नहीं
है तमस्थ मनुष्य कहता है के यहां सर्प नहीं है; परंतु बि
ल्ली दोडके मारती है. अन्य मनुष्य वा पक्षी रातको नहीं दे
खते; परंतु मगेर, उलुक सूक्ष्म वस्तुकोभी देखते हैं. मनुष्य क
हता है के यहां (किसीने कूवेके उपर कुछ आच्छादन करके
अज्ञात पृथ्वीवत् कर दिया हो) खड्डा वा कूवा नहीं है, वा
हाथी धोका खाके गिर जावेगा. ओर मनुष्य पड जावेगा
परंतु अजा (बकरी) जानती है के यहां खड्डा है, कभी नहीं
जावेगी. सूर्य प्रकाशस्थ रंगदार वस्तुके रंगका, जेसाके अ
रोक्ष वा प्रत्यक्ष ज्ञान यज्ञदत्तको होता है, वेसा न्यून प्रका
स्थ उसी वस्तुके रंगका साक्षात् नहीं होता, किंतु विल
प होता है. सूक्ष्म यंत्रद्वारा जलबूंदमें सेंकडों जीव मैथुन
गेरे क्रिया करते हुये प्रतीत होते हैं.-जूं पहाड जेसो मं
प्रतीत होती है. वगेरे. तहां यह नहीं कहा जाता कि क

† शरीरांतर चक्रोंवाली विद्युत-प्रकाश दर्शन.

–चश्मे–दूर दर्शक–यंत्र विना जो वा जेसा लंबा चोडा रू-प–रंग–डोल–रचना देख पडता हे वोह १ किंवा काच वगेरे द्वारा जो–जेसा गोचर ह्वोता हे वोह २ किंवा अभी भविष्यमें अन्य यंत्र वा योगवृत्ति होनेवाले हें उनद्वारा जो प्रतीत होनेवाला हे–बुद्धिका विषय होनेवाला हे वोह ३ यथार्थ हे ? अर्थात अनिश्चित हे. जो कदाचित सूक्ष्म यंत्र समान योग्यतावाली मनुष्य चक्षु होती तो, वर्त्तमानसे अन्यथा निश्चय–प्रतीति–होता. इत्यादि अन्य इंद्रियादि विषे ज्ञातव्य हे. निदान मनुष्य प्रमाण [ज्ञान होनेके साधन] सब–सीमासूचक नहीं जान पडते हें.

इतने लिखनेका प्रयोजन यह हे के देश कालादि उपर अपरोक्ष ज्ञानका अंतर ह्वो, इतनाही नहीं किंतु, जीवोंके प्रमाणमेंभी न्यूनाधिकता हे वा योग्यतामें अंतर हे. ओर मनुष्योंके प्रमाणसे अन्य उत्कृष्टभी हें; अतः संभव हे कि जिसे जितना (देखा–साक्षात किया) मानते हो उससे, भिन्न वा कुछ अन्य–न्यूनाधिकता रुप सो वस्तु ह्वो, यथा आपके माने हुये जीव स्वरूपसे जीवका स्वरुप, विलक्षण–अन्य हो. जो उसको अज्ञात मानोगे तो, स्व पक्ष त्याग ह्वोगा. मोक्षाभाव होगा. ओर आपकी श्रुति ["तस्मिन् दृष्टे परावरे०" "तमेव विदित्वा०"] के विरुद्ध होगा. तथा उन्हीं श्रुतियोंसे यहभी सिद्ध होता हे के, ज्ञेय ब्रह्म उस दृष्टा–ज्ञाता–से भिन्न हे के जो, उसको देखके मोक्षको प्राप्त ह्वोता हे. अर्थात् जीवसे भिन्न हे. तो ब्रह्मकी अस्तिवा उसके ज्ञानको मानकेभी पूर्वोक्त प्रत्यक्षत्वकी तकरार समान, यथार्थ स्वरूप नहीं जान सकनेका संभव हे. अतः यथार्थ अपरोक्षके अभावसे आपके मंतव्यानुसार ब्रह्मको अस्तित्वमें कोइ योग्य [प्रत्यक्षादि] प्रमाण नहीं.

तद्वत् आपके माने हुये मिथ्या मिश्रित (समिष्टि) ईश्वरके अस्तित्वमें समझ लेना. ब्रह्म वा ईश्वर यदि है तो, वोह अपनेको आप जानता है वा नहीं? जो कहोगे के जानता है. तो, ज्ञाताज्ञेय, दृष्टादृश्य भिन्न२होनेके नियमसे ब्रह्म ज्ञाता ओर स्वरूप ज्ञेय, यह दो वस्तु सिद्ध होंगी ओर दोनों अनादि अनंत होनेसे द्वैतापत्ति होगी. तथाहीं 'मैं इतना वा एसा हूं' एसी सीमा होनेसे परिच्छिन्न होगा. अनंतत्वका बाध हो जायगा. जो यह कहो के 'अनंत स्वरूप होनेसे अपनेको अनंत जानता है.' इस कथनका परिणाम, स्वं स्वरूपसे अज्ञात है, एस निकलेगा. विचार कर देखिये. ओर जो कहो के 'अपनेको नहीं जानता' तो, एसा अज्ञ अन्यको क्या जानेगा? किंव जगत्कर्त्ता केसे होगा? तथा चेतन एर प्रकाशक वा स्वयं प्रकाश केसे मान सकोगे.? अतः चेतन ब्रह्म नहीं. यदि ईश्वर है तो, जीव पद वाच्य वस्तु समान अज्ञ. असर्वज्ञ-है-एसे ब्रह्मेश्वर मानना निष्फल है. किंवा अनुपयोगी है.

ब्रह्मको प्रकाशक मानते हो तो, सांश सिद्ध होने मध्यम परिणामी सिद्ध होके नाशवान् मानना पडेगा, क्यों के काशी देशस्थ, मथुरा देशस्थका प्रकाशक भाग भिन्न २ है. यह इसका वोह उसका नहीं, अर्थात् सर्व स्वरूप सर्वका प्रकाशक रूप नहीं है. जेसेके सूर्यका प्रकाश जिस गृहमें है वहांका वहीं प्रकाश प्रकाशक है. सो, अन्य गृहके पदार्थों वा प्रकाशका प्रकाशक नहीं. किंवा, जेसे एक गृहगत आकाश, जिन घटादिकोंको अवकाश देता है सोही; अन्य गृहगत घटादिकोंका अवकाशदा नहीं. जेसेके सूर्य प्रकाश, तेज परमाणुका समूहात्मक है. वेसे आकाश यदि वस्तु मानो तोभी, आपके सिद्धांतनुसार ब्रह्मके एक देशमें होनेसे व्यापक नहीं

किंतु मध्यम हुवा. ओर मध्यम सावयव होता है; इस रीतिसे अवयव विशेषका समूह पदार्थ है. वेसेही ब्रह्मभी स्वयं प्रकाश अवयवोंसे समूहात्मक है; एसा सिद्ध हुवा. जो एक स्वरूप होता तो, परस्परका प्रकाशक वा वही सर्वका प्रकाशक होता; जो एसा मानोगे तो; परिच्छिन्न–अणु–सिद्ध हो जायगा.

यद्यपि साक्षीपना तो, वृत्ति वा अंतःकरणको उपाधिसे उसमें कल्पते हैं, क्योंके ज्ञातृत्व उसमें नहीं, वृत्ति वा अंतःकरणमें हे. अतः साक्षी नाना हैं. तथापि 'स्वयं प्रकाश स्वरूप चेतन एक हे,' एसा मान्ने पर पूर्वोक्त प्रकारसे उक्त दोष आते हैं.

यदि आकाशवत् एक स्वरूपही मानोगे तो, काशीस्थ वाले भाग करके मथुरास्थ वालाभी प्रकाश्य होना चाहिये. ओर जो उपाधि बलसे भेद मानोगे तो, मिथ्या, उपाधि करके भी जो भेद्य वा छेद्य हे उसको, अमध्यम अपरिणामी केसे मान लेवें? जेसेके आकाशके मठाकाश भागरूप उपाधि नाश होनेसेभी, अन्य मठ–गृहगत घटादिकों को, सो उपाधि रहितवाला आकाश, अवकाश नहीं देसक्ता; क्योंकि भिन्न भाग हे. वेसेही ब्रह्ममें समझ लेना चाहिये. ओर हठसे मानोगे तो, पुनरुक्ति, गौरव, असंभव तथा चल दोष आवेगा.

जो यह कहोगे कि "उक्त रीतिसे प्रकाशक चेतन में जो सावयवत्व कल्पते हो सो, तुम्हारी वृत्ति बुद्धिकी दृष्टिसे हे—लडकोंकी फेरीमें मकान वृक्ष फिरते हुये दृष्ट आने समान भ्रम वा कल्पना मात्र हे. वस्तुगत्या उसमें इन शंकाका अवसर नहीं; किंतु बुद्धिपर-अगम्य हे; अतएव उक्त लेख–दोष मान्य नहीं." इसका समाधान यह हे कि वोह, अगम्य विचक्षण

अन्य प्रकारका हे, एसी सिद्धि किसनेकी ? तहां, जो प्रत्यक्षा नुमानको स्वीकारोगे तो, उक्त दोषोंका परिहार नहीं होसकता; क्योंकि उनको साधक नैसर्गीक नियमवाळी बुद्धिको आप अवसर नहीं देते. शब्द प्रमाण मानोगे तो, उक्त दोष आवेंगे. निदान ब्रह्मको उपाधीवान् वा सधर्म मानोगे तो, बुद्धि आदिके विना, उसकी सिद्धिही नहीं होगी. इत्यादि रीतिसे आपकी शंका ओर मंतव्य भ्रमरूप वा कल्पना मात्र हे. उक्त रीतिसे "ब्रह्म सावयव हे, वा ब्रह्म नहीं हे" एसा मान्ना पडेगा.

तद्वत् ईश्वरमें सर्वज्ञता नहीं घटती; क्योंके आपकी रीतिसे. ब्रह्मकी व्याप्य–माया तद् विशिष्ट चेतन वा अंतःकरण अवच्छिन्न वा अनवच्छिन्न चेतन, ईश्वरका स्वरूप हे.- अर्थात् मायाका अंश सावयव मध्यम वा समष्टि रुप हे. सावयवमें एककाली एक अभिमान होनेसे सर्वज्ञत्वका अभाव हे. जो कदाचित एसाही मानोगे तो, जडवाद सिद्ध होजायगा. ओर जो एक व्यापक मानके वा समूहात्मक–समष्टिरुप–मानके एक अहंकारवाला (में एक ईश्वरही सर्वज्ञ हुं, वा एक ईश्वरही सर्वज्ञ हे) मानोगे तोभी, प्रबळ दोष आवेगा; क्योंके एकही कालमें काशी अंतःकरण गतकर्म ओर इच्छा तथा परमाणुका संयोग वियोग ओर उनका ज्ञान तथा 'प्रयाग' अंतःकरण गतकर्म ओर इच्छा तथा परमाणुओंका संयोग वियोग ओर उनका ज्ञान जब होता हे तब, एकही ईश्वर उनका ज्ञाता हे,- अभिमानी हे ? वा भिन्न २ देश वाळा ईश्वरांश ज्ञाता हे ? जो उत्तर पक्ष लोगे तो, ईश्वर नाना ओर परिच्छिन्न होंगे, उस उस देशकालका अभिमानी भिन्न होगा; एसा माननेसे अव्यवस्था ओर असर्वज्ञता होगी. ओर जो प्रथम पक्ष लोगे

तो, एक कालमें अनेक ज्ञान एक अभिमानीको होना असंभव. जो कहोगे के 'वोह अनंत ज्ञान शक्तिवाला है' तोभी उसका अभिमानी एकही होनेसे उक्त दोषका परिहार नहीं होगा. जो कहोगे के 'मनुष्य बुद्धिसे ईश्वरके ऐश्वर्यका निर्णय नहीं होसक्ता' तो, ईश्वर है, एसा माननाभी तद्वत् है. अर्थात् है ओर नहीं माननेमें दोष प्राप्ति होनेसे संशयात्मकता होगी.

तथाहि जो हठसे एक देशकाली सर्वज्ञ मान लेवें सोभी, सिद्ध नहीं होता.—जेसें कि, १ इतनीवार सृष्टि उत्पन्नकी ओर करुंगा, २ अमुक परमाणुका अमुकके साथ इतने वार संयोग वियोग हुवा ओर होगा, ३ अमुक जीव अमुक कालमें अमुक कर्म करेगा, ४ अमुक जीवकी अमुक कालमें मुक्ति होगी, ५ आकाश—देश—कालका आद अंत कितना है इस बातकी वा उनके अनादि अनंतत्वकी उसको खबर है? ६ परमाणु कितने हें? ७ (में ईश्वर—ब्रह्म) कितना हूं—इत्यादि बातोंको ईश्वर जानता हे वा नहीं? जो कहोगे के नहीं जानता. तबतो सर्वज्ञ नहीं. जो कहोगे के जानता हे, तो सृष्टि ओर उपादान अनादि नहीं.- तथा जीवकी मोक्ष, पुरुषार्थ पर नहीं होगी; किंतु ईश्वरका सत्य ज्ञान होनेसे अमुक कालमें नियमसे होगी; एसा सिद्ध होनेसे जीव परतंत्र हुवा. ओर जब यूं हे तो, जीव मात्रके भविष्य कर्म उसके ज्ञानानुसार होने चाहियें. जो एसा नहीं मानो ओर जीवकी स्वतंत्रतासे मानो तो, उसकी सर्वज्ञताका अभाव होगा. ओर जो सर्वज्ञता मानो तो, जीवके स्वतंत्र कर्म करनेका अभाव होके उनके फल भोक्ताका अभाव होजायगा. वा बुराइ भलाइ ईश्वरके सिर होगी.—वही भोक्ता होगा. (यह वार्ताकि

चिन्हीं विचारसे ज्ञात होसकी है; अतः विस्तार नहीं कि-
या).-देशकाल और ईश्वरके शरीर तथा ज्ञानकी सीमा हो
पडनेमें वे (देशकालादि), मध्यम परिमाणवाले–नाशवान–प-
रिच्छिन्न ठरंगे.-सृष्टिकी व्यवस्था न होगी.–इत्यादि दोष आ-
वेंगे. इस प्रकार ईश्वर सर्वज्ञ नहीं. असर्वज्ञ, जगत्का कर्त्ता,
भर्त्ता, हर्त्ता और व्यवस्थापक नहीं होसक्ता. जो योगियों-
के नाना व्यूह और सर्वज्ञताका, ग्रंथोंमें कथन है सो, विश्वा-
स, कल्पना और अश्र बुद्धिसे किया है. विचार सहित नहीं
है. जो वोह लेख सत्य मानते हो तो, शंकराचार्य, पतं-
जलि, गौतम, कनाद, व्यास, ऋषभदेव, महावीर, ब्रह्मा,
विष्णु, इत्यादिके मतका भेदभाव नहीं होता.–राजाके मृत
शरीरमें जाके छल प्रकारसे शंकराचार्यजीको कामका अनुभ-
व नहीं लेना पडता. [पूज्यपाद शंकराचार्यके नामपर किसी-
ने यह कलंक कथा बनाई हो, एसा जान पडता है]. तथाहि
ब्रह्मा सर्वज्ञ होता तो, वत्सहरण लीलामें नहीं भूलता. राम-
चंद्रजीको सीताकी खबर होती –बालीको छलसे नहीं मारते.-
सीताजीको धोबीके कहनेसे बाहिर नहीं निकालते. विष्णुको
छल नहीं करने पडते. शंकर महाराज कर्तबी भीलनी (पार-
वती)को पहिछान लेते.–इत्यादि वातें विपरीत नहीं होती. तथा
जैनियोंके सर्वज्ञ तिर्थंकर ऋषभ देव वा महावीरने अपने सू-
त्रोंमें लिखनेके योग्य नवीन यह वात कि, "श्रावकोंकी पू-
ज्य जो हमारी मूर्तियें, सिद्धाचल (पालीताणा शहेरके शत्रु-
जय) परबत पर होंगी, उन मूर्तियोंके शिखर–मस्तक पर,
हिंसक मुसलमानोंकी मसजिद बनेगी," नहीं जनाई है. वा
हरे! उनको सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान माने वालो! पारवती
पति–महादेवजीने वा उनके अनुयायी–भक्तोंने, यह कहीं

नहीं लिखाकि "काशी विश्वेश्वरनाथके मंदिरके जोडे हिंसक, वेद विरोधी मुसलमानोंकी मसजिद बनेगी.-प्रभास-पाटनका सोमनाथ ज्योतिलिंग, मुसलमान लोक तोडेंगे." वाहरे सर्व शक्तिमान सर्वज्ञ कहने वालो! नबी मुहिम्मद और यसू ख्रस्ति वगेरे पेगंबरोंको कोईभी सर्वज्ञ वा सर्व शक्तिमान नहीं मानता.-उनकी योग्यताका आधार उनके खुदा पर मानते हैं-खुदाकी सर्वज्ञता वास्ते उपर कहा गया है और सर्व शक्तिमानत्व आगे वांचोगे. कदाचित जो कोई पेगंबरोंको सर्व शक्तिमान वा सर्वज्ञ मानता हो तो, उसको उनकी मोत (यसू मसीहका सूली पर चढाया जाना, नबी मुहम्मदकी बारे वफात) याद हो, यही उत्तर बस होगा. उपरांत जीवका पुनर्जन्म होना और उसका पुरावा मिलना योग तथा प्रचलित मेस्मेरिझम क्रियासे प्रत्यक्षभी होता है परंतु, ईरानी (पारसी), किरानी, कुरानी, ब्रह्मसमाजी वगेरे नहीं मानते; और प्रसिद्ध जीव स्वरूपको मेटर विना, नवीनो त्पन्न मानते हैं.-किंतु खुदाका श्वास मानके गुन्हगारभी बताते हैं; यह क्या उनके सिक्षक खुदाकी थोडो सर्वज्ञता है! तद्वत् व्यापक पर ब्रह्ममें क्रिया बताने वाले-व्यापक ब्रह्मका रूपांतर जगत है. एसा कहने वाले-असंभव दोष ग्रसित थियोसोफिस्टोंके महात्माओं वास्ते विचारणीय है. इसी प्रकार अन्य-बुद्ध, जरतोश्त, रामानुज, वल्लभ, सहजानंद स्वामी-वगेरेकी सर्वज्ञता वास्ते यथा प्रसंग घटा लेना चाहिये.

तथाहि पूर्वोक्त पतंजलि, ऋषभदेव, महावीर जैनी तिर्थंकर वगेरे और थियोसोफीकल सोसाइटीके गुरु-महात्मा-ध्यान चोहा मनस पुत्र-आदि देवों वगेरे सर्वज्ञ जीवोंको "अद्यापि हमारे इतने जन्म हुये हैं" एसा तमाम भूत ज्ञान हो-

ना मानें तो, जीव सादि ठरेंगे -अनादि नहीं होंगे.-इसमंत-व्यसे सर्वज्ञ वादियोंको स्वपक्ष (मृष्टि प्रवाह वा स्वरुपसे अ-नादि हे-जीव अनादि हैं इस पक्ष)को त्याग देना पड़ेगा. जो उनको "अपने तमाम जन्मोंका ज्ञान नहीं था" एसा मानें तो, वे असर्वज्ञ ठरेंगे, किंवा 'अनंत जन्मरुप' ज्ञान मानें तोभी, असर्वज्ञ ठरे. तथा अमुक जीव वा सर्व जीवोंकी कब मोक्ष होगी?-उनको कितने जन्म लेने पड़ेंगे; यह ज्ञान उनको नहीं हे तब तो, वे असर्वज्ञ हुये; और जो उक्त ज्ञान उनको हे, एसा मानें तो, मृष्टिका अंत आजाना मानना पडेगा-पुनः मृष्टि होनेका हेतु नहीं रहेनेसे मृष्टि नहीं होगी; परंतु एसा होना असंभव हे. तथा पूर्वोक्त प्रसंगानुसार मोक्ष वास्ते पुरु-षार्थ करना असिद्ध रहेगा. अर्थात जबकि मोक्ष होनेका काळ, नियत हे तो, उस कालके आने पर जीव, स्वाभावतः मोक्ष हो जायंगे. तथाहि जो ग्रंथकार सर्वज्ञ होते तो, सूत्र वा गीता वगेरे ग्रंथोंमें अन्य ग्रंथोंकी साक्षी नहीं लेते -इतनाही नहीं किंतु सर्व पक्षकार-ग्रंथकारोंके लेखका एकही अभिप्राय होता.-भिन्न २ नहीं होता.-कोई ईश्वरको जगत् कर्त्ता मानता हे, कोई नहीं मानता हे (यथा थियोसोफिस्ट, जैन, पूर्वमीमांसा वाला, सांख्यकर्त्ता कपिल देव, बुद्धदेव वगेरे ईश्वरको वा जगत् कर्त्ता ईश्वर हे एसा, नहीं मानते). इत्यादि मत भेद नहीं होता. परंतु मतभेद स्पष्ट हे. अतः वे सर्वज्ञ नहीं. तथा जिनको सर्वज्ञ वा ईश्वर मानते हो उन्होने, अपनेको कहीं-भी सर्वज्ञ नहीं कहा हे तथा अपनेको सर्वज्ञ कहनेवाले वा सर्वज्ञत्व माननेवालोंको छोडके सर्वज्ञत्व सिद्धि में क्या प्रमाण हे? इसकी सिद्धि विश्वास वा कल्पना मात्रसे इतर, योग्य प्रकार (युक्ति, मृष्टि नियम, प्रत्यक्षादि प्रकार) में नहीं हो

सकती. (अन्यथा अस्मदादिको भी सर्वज्ञ मान्ना पडेगा).
अतः अमान्य हे.

उक्त प्रकारसे किरानी, कुरानी, ईरानी, जैनी, पौराणी, नवीन पौराणी [थियोसोफिस्ट], ब्रह्मसमाजी वगेरोंके मान्य सिद्ध जीव वा ईश्वरकी सर्वज्ञताही, सिद्ध नहीं होतीहे तो, अन्यकी सर्वज्ञतामें संशयही बना रहेगा. हां, कालांतरके अनुभव क्रमसे, भूत कालका कुछ विशेष ज्ञान और शतां विधानी, प्रकाश-विद्युत के अवाच्य शीघ्र गति-संयोग वियोग-समान वा उससे विशेष प्रकारसे शरीर ज्ञान क्रम समान. वर्त्तमान ज्ञान तथा प्रकृतिके गुण कर्म स्वभावको जान्नेसे विषयकी रंचनाका कुछ ज्ञान ओर पडे हुये संस्कार ज्ञानसे जीवोंके किंचित् भविष्यका-अनुमानिक ज्ञान, ईश्वरकोभी होना संभव हे. तथापि निर्मूलका नहीं; अतः जो इश्वर मानो तो भी, वोह सर्वज्ञ, नहीं होसकता.

जो कहोगे के 'भूत भविष्यता तो जीवोंकी दृष्टिसे हे, ईश्वरको सर्व वर्त्तमान हे' यह कथनभी अविचारसे हे. क्योंकी, जीवको जब सिक्षा देता होगा तब, वर्त्तमानके सर्व कर्म हें, एसा समझके देता हे वा प्रारब्ध [भूत] अनुसार देता हे ? पूर्व पक्ष मानें तो, उसका ज्ञान मिथ्या होगा. उत्तर पक्ष मानें तो, भूत ज्ञान मानना पडेगा. 'पूर्ववत् सृष्टि रचता हे,' इस मंतव्यसे कदापिभी वर्त्तमानरूप सिद्ध नहीं होता.

जो ईश्वरको अनादि सांत (यह वेदांत पक्ष हे) वा सादि अनंत मानोगे, तो वोह, अपने उत्तर ओर पूर्व वृत्तांत न जान सकनेसे उसमें सर्वज्ञताका अभाव स्पष्ट हे. ओर जो अनादि अनंत मानोगे तो, द्वैतापत्ति होगी. क्योंके वोह ओर उसके सर्वज्ञत्वादि गुण कर्म-ऐश्वर्य-भी नित्य होने चाहि-

यें. जो यह कहोके 'सर्वज्ञत्वादि मायाकी सन्निधिसे मायाके हैं' तो, मायाको अनादि अनंत मान्ना पडेगा. उससेभी द्वैतापत्ति होगी. जो 'मायाको अनादि सांत मानोगे' तो, ईश्वरमें अनादि अनंत सर्वज्ञताका अभाव होगा..ओर जो मायाकाल पर्यंत सर्वज्ञताका अर्थ लोगे तो, मायाके अभावकी असिद्धि होगी. अर्थात् उसके अभावका ज्ञान किसको होगा ? अतः वेदांतियोंका माया विशिष्ट ईश्वर, सर्वज्ञ नहीं मान सक्के. सर्वज्ञताके अभावसे जगत्के कर्तृत्वादिका उसमें अभाव होनेसे ईश्वर कल्पना मात्र सिद्ध होगा.

जो ईश्वरको विभु मानोगे तो–"अंतराय रहित दो परमाणु मिलते हैं तब, कार्य होता है. अर्थात् उन दोके संयोग में अंतर न रहे तब कार्य होता है" यह नियम है; परंतु ब्रह्म–ईश्वर,–अखंड विभु पदार्थ माना है तो, उसके अखंड होनेसे दो परमाणुके संयोगमें वोह होना चाहिये अर्थात् अंतराय सहित संयोग है. जब यूं है तो, दो परमाणु भिन्न २ रहेभी कार्य होना चाहिये, परंतु एसा नहीं देखते. ओर अनुभवविरुद्ध है; अतः नभ, ब्रह्मादि कोइभी विभु वस्तु नहीं किन्तु उसके स्वरूपसे, इतर देशका अभाव होने ओर अभेद्य अच्छेद्य ब्रह्मके स्वरूपमें प्रवेश न होनेसे जगत् ओर मायाके स्वरूपकी स्थिति संभव न होगी. ओर जगत्का स्वरूप सर्वको प्रत्यक्ष है; अतः जहां जहां जगत्, वहां वहां ईश्वर–ब्रह्म–नहीं; किंतु परिच्छिन्न होगा, वा नहीं होगा. जो परिच्छिन्न मानोगे तो, जगत् कर्त्ता धर्त्ता ओर नियामक–व्यवस्थाकर–नहीं होगा. परिच्छिन्नतन् मध्यम मानोगे तो, नाशवान् होगा. ओर जो अणु मानोगे तो, सर्व अंतर्यामी, सर्वका साक्षी, सर्वका प्रेरक इत्यादि विशेषणवान् न होनेसे जगत् कर्त्ता धर्त्ता

हरत्ता नहीं होसकेगा. और जो नहीं है, एसा मानोगे तो, जीवकी किसके साथ एकता कहोगे? अर्थात् एकताका सिद्धांत समीचीन न हुवा. तथाही ब्रह्म जिज्ञासाकाही बाध होगा. ब्रह्मको व्यापक मानके, जिज्ञासु वा जिज्ञासा माननाही असंगत है.

यदि ईश्वर है एसा स्विकार लें तो, सर्व शक्तिमान न होगा. सर्व शक्तिमानके अभावसे जगत् कर्त्ता न होगा. जैसेके उसमें किसी अपराधी जीवको स्वदेशसे भिन्न निकालने की शक्ति नहीं. स्वार्थी न होनेसे करुणा और दया (किसी के अपराध क्षमा करने) की शक्ति नहीं. जो उभय शक्ति मानोगे तो, परिच्छिन्न और अन्यायी ठेरेगा, औरभी अनेक दोष आवेंगे. जो एसा नहीं मानोगे तो, सर्व शक्तिमान नहीं होगा.

जबके अनुग्रह (अपराध क्षमा) नहीं कर सकता तो, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना और ध्यान व्यर्थ होगा. जो केवल कर्मानुसार व्यवस्थापक मानोगे तो, प्रपंची होगा. उसको हानी लाभ न होनेसे जीवोंके कर्म प्रपंचमें पडनेका कोइ हेतु सिद्ध नहीं होगा. जो पशुपक्षी समान स्वभावतः मानोगे तो, शक्तिकी सीमा होनेसे सर्व शक्तिमान न होगा. असर्वशक्तिमान, ब्रह्म वा जगत् कर्त्ता धर्ता हर्त्ता नहीं होसकता; अतः ईश्वरमानना व्यर्थ है.

तथाही माया (वा मूल प्रकृति परमाणु-तत्व) के स्वरूप गुण कर्म स्वभाव और स्वगुण कर्म स्वभाव बदलने वा न्यूनाधिक करनेकी उसमें शक्ति नहीं है. जेसेके अग्निके स्वरूपादिको नहीं बदल सक्ता (गुरुत्व शीत वा वायुको रूपवत् चक्षु गोचर नहीं कर सक्ता), अपने जेसा ईश्वर नहीं बना सक्ता वा अपना आप नाश नहीं कर सक्ता, वा भावसे अभाव वा अभावसे भाव पदार्थ नहीं कर सक्ता. इत्यादि—

एसे अनेक कार्य हैं कि जिनके करनेमें असमर्थ हे. जो तद्वि-रुद्ध (मूल स्वरूपादि बदलना, अभावसे भावरूप करना इ-त्यादि) मानोगे तो, मायादि सादी होंगे.-अनादि नहीं होंगे. इस रीतिसे आपके सिद्धांतका अभाव होगा. ओर भी सादि मायाके अभाव हुये पुनः अभावसे भावरूप करेगा; क्योंके नित्य ईश्वरके, 'अभावसे भावरूपोत्पत्त्यादि करना रूप,' गुण कर्म नित्य हैं. इस रीतिसे मोक्षाभाव होगा. तथा अनेक अ-न्य दोष आवेंगे.-जीवोंको बुराइसे बचावे, सत्पात्रोंको दुःख दे. विना ज्ञानादि साधनके मोक्ष करे. इत्यादि आरोप हो सकेगा. जो कहोगे कि 'शक्ति होतेभी, अन्यथा नहीं करसक्ता' इसका यह उत्तर हे के उसने कभीभी अन्यथा किया वा करेगा? अथवा अभी तक नहीं किया ओर आगे नहीं करेगा? प्रथम पक्ष मानें तो, अब वैसा क्यों नहीं करता? ओर अन्यायी क्यों न हो? परंतु आपके कथनानुसार उत्तर पक्ष मानें तो, उसमें अन्यथा करनेकी शक्ति हे, एसा सिद्धही नहीं होसकता. ओर जो एसा (अन्यथा करने, गुणादि बदलनेमें समर्थ) नहीं मानोगे तो, सर्व शक्तिमान नहीं कहा जायगा. इतनाही नहीं किंतु, जबकि, माया-अज्ञान-का जो गुण स्वभाव (अविद्या-अंतःकरणादि नाना पदार्थ रूप-प्रपंचरूप परिणामपाना), तिसको, ईश्वर नहीं बदल सकता, तो जीव, ज्ञानादि बलसे उसका कैसे अभाव* कर सकता हे? अर्थात् नहीं कर सक्ता, एसा सिद्ध हो जायगा.

तिससे आपके सिद्धांतका अभाव होगा. यदि अनादि ईश्वरमें उक्त असंभव सामर्थ्य (अपने गुणादिको बदलना) मानें तो, मायामेंभी एसी (असंभव) शक्ति नहीं मा-

* माया, अविद्या-ज्ञान निवर्त्तनीय हे, यह वेदांत पक्ष हे.

ननेमें कोइ हेतु नहीं. अर्थात् जो वेदांती भाइ उस अनादि- को सांत कर देते हें तो, वोह ईश्वरवत् अपने अभाव प्रवृत्तिमें अशक्य ईश्वरकोही सांत करके, स्वसांताभाव करनेमें शक्तिमान क्यों न ह्वो? परंतु जेसेके उक्त कल्पना, कल्पना हे, वेसे ईश्वरका अस्तित्व ओर उसके सर्व शक्तिमानत्वको कल्पना समझ लेना चाहिये.

तथाही आपका मंतव्य हे कि "एकोहंबहुस्याम" एसी ईश्वरने इच्छा (ईक्षणा) की. इससे ज्ञात होता हे के, आपका ईश्वर सर्वज्ञ हे, इच्छावाला हे. ओर आपके मतमें ईश्वरका स्वरूप, माया विशिष्ट [अज्ञान विशिष्ट वा साभास शुद्ध सत्व माया विशिष्ट*] चेतन सर्वज्ञ, अंतर्यामी, जगत्कर्त्ता, धर्त्ता,

* ज्ञान निवर्त्तनीय, अस्वतंत्र, जड, भावरुप अज्ञानके विषे वेदांत पक्षमें पांच मत हें, उन मतों अनुसार जीव ईश्वरका स्वरुप भिन्न २ प्रकारसे कल्पते हें.–१ शुद्ध सत्व गुण प्रधान माया विशिष्ट चेतन ईश्वर एक; मलिन प्रधान अविद्या (मायांश विशेष) विशिष्ट चेतन जीव नाना. २ अज्ञानकी ज्ञानशक्ति प्रधान अज्ञान (माया) प्रतिबिंबित चेतन ईश्वर एक. अज्ञानकी क्रिया शक्ति गत–रज सत्वसे नहीं दबा हुवा तमोगुण—आवरण शक्ति प्रधान–अविद्या प्रतिबिंबित चेतन जीव, नाना. ३ एकही अज्ञान विक्षेप [माया] आवरण (अविद्या) क्रिया शक्ति भेदवाला हे.–विक्षेप क्रिया प्रधान [माया] अज्ञान उपहित बिंब चेतन ईश्वर. आवरण क्रिया विशिष्ट [अविद्या] अज्ञान प्रतिबिंबित चेतन जीव. [इस पक्षमें जीव –प्रमाता जीव १, तिस जीव विषे अनेक–कल्पित हें. ४ वनवत् अज्ञानोंका समुदाय–समष्टि अज्ञान उपहित चेतन ईश्वर. वृक्षवत् प्रत्येक व्यष्टि अज्ञान उपहित चेतन जीव–नाना. ५ कारणरूप अज्ञान उपहित चेतन ईश्वर. कार्यरूप अज्ञान अंतःकरणादि विषे उ-

र्त्ता, जीवोंकी कर्मानुसार व्यवस्था करनेवाला, इत्यादि वि-
शेषणवान् हे, यह मंतव्य सर्वथा असिद्ध ओर व्याघात दो-
षवाला हे; क्योंके चेतनमें इच्छा, ज्ञातृत्व हे नहीं ओर माया-
मेंभी नहीं. जो मायामें मानोगे तो, जेसे एक स्वरुप भूतमा-

पहित चेतन जीव-नाना. इन पांच पक्षोंमें, वेदांती भाई परस्पर दू-
षण भूषण गाते हें ओर कहते हें कि, कोईभी रीतिसे तत्वमसि-
जीवेश्वर–ब्रह्मकी एकताका बोध हो, सोही उस जिज्ञासुको उपादे-
य हे. उक्त पक्षोंके अंतर ओर इतर अवच्छिन्न, अनवच्छिन्न, नाना
ईश्वर-एक जीव एक ईश्वर-इत्यादि भेद हें. इन सर्वका संक्षेपसे इस
ग्रंथकी रीतिसे खंडन होजाता हे. अतः भिन्न २ रूपसे खंडन नहीं
लिखा. ईश्वर, जीवका विषय, वांचके पुनः यह टिपण ध्यानमें
लेना चाहिये.

ओर जीव (परमाणु, समूह-मगज) ब्रह्म (समष्टि परमाणु-व्या-
पक ईश्वर)की एकता, जडवादीकी रीतिसेभी होती हे; अतएव इन
पंच प्रकारकाही माननेका नियम नहीं.

इन पक्ष होनेका यह, कारण जान पडता हेः—वे लोक ब्र
ह्मको, मन वाणीसे पर मानते हें.-माया तकका विषय नहीं. त
यह शंका होती हे कि, 'ब्रह्म हे' यह वात किसने सिद्ध की ? ज
ब्रह्मको ज्ञेय मानें तो, स्थाणु, पुरुषका विषय (प्रमेय), उसका दृष्टा
होना चाहिये,-किंवा जड मूर्तिका विषय-प्रमेय, पुजारीभी होना चा
हिये.-परंतु एसा नहीं होता. इतने लिखनेका सार यह हे कि–म
बुद्धिके अनुमानका विषय ब्रह्म–ईश्वर हे. 'ब्रह्म हे वा नहीं' इसक
निर्णय–साक्षात्, मन बुद्धि नहीं कर सकते, इसलिये स्व कल्पन
अनुसार पक्ष रच डाले. उन विषयको परोक्ष भ्रमका विषय क्यों
कहा जाय. ! परोक्ष भ्रम प्रसंगवत् मन माने लक्ष ईश्वर क्यों
मान लिये जावें. ?

याके कार्य ईश्वरमें ज्ञातृत्व हे वेसे उसके कार्य पाषाणादिमें भी होने योग्य हे; परंतु हे नहीं; जो यह कहो के "मायाके सत्व रज तम तीन गुण हैं, तदंतर शुद्ध सत्व [ज्ञान प्रकारी] चेतनयुक्त ईश्वर, मलिन सत्व युक्त चेतन जीव, ओर शेष सृष्टि. शुद्ध मलिन, रज तमादिसे बनी हे." इस मंतव्यमें यह आक्षेप होता के, माया एक वस्तु नहीं; किंतु सांश, सावयव हे.–सावयव, निरवयवसे विलक्षण नहीं. जब यूं हे तो, विभु परिमाणभी नहीं; किंतु, अणुपरिमाण रुप हुइ. इसके विना मध्यम परिमाणवाले (अंतःकरणादि) नहीं बन सकते. जेसेके स्वप्नादिमें अति सूक्ष्म स्वरुप, सृष्टि हे उससे अधिक स्थूल यह सृष्टि हे; सो अणु परिमाण जन्य हे. इसका परिणाम यह निकलाके ईश्वर विभु परिमाण नहीं किंतु मायाके शुद्ध सत्वांश मिलके समष्टि रूप ईश्वरका स्वरूप हे, अर्थात् मध्यम परिमाण हे. चेतनभाग विभु परिमाणवाळा हे; ओर माया भाग मध्यम हे; माया विभु परिमाण नहीं. यह आपकी श्रुति "त्यतिष्टत् दशांगुलम्" सेभी सिद्ध हे. जब यूं हे तो, उस मध्यम परिमाणवाले पदार्थके बीच बीचमें जीवादि अणु आवेंगे; इससे ईश्वर चालनी समान वस्तु परिच्छेदवान होगा. ओर इसलिये अंतर्यामित्वका बाध होनेसे जीवोंकी व्यवस्था नहीं कर सकेगा–सृष्टिके रचनेमें असमर्थ होगा. तथाही उन शुद्ध सत्वांशके एक एक अवयवमें इच्छा वा ज्ञातृत्वादि गुण धर्म हैं वा समूहात्मकमें? जो अवयव प्रति मानोगे तो, ईक्षण प्रति अनेक इच्छा ओर अनेक ज्ञातृत्व होनेसे जीववत् अनेक परिच्छिन्न ईश्वर मानने पडेंगे, ओर जो उत्तर पक्ष मानो तो, इच्छा ज्ञातृत्वादि सर्व अंशोमें विभाग पाये हुये मानने पडेंगे.–जेसे जलकी शीतता अणु २ प्रतिथी.–समूहात्म-

रूपसे उद्भव होके एक रूपसे प्रतीत होती है; तथापि भि-
-भिन्न है. ईश्वरमें वैसेही माननेसे, पूर्व दोषका परिहार
नहीं होगा.

एतद्दृष्टि आपका ईश्वर मानना, लोकेषणा अथवा क-
ल्पना मात्र है. वस्तुतः नहीं. इस प्रकार ईश्वर अभावसे जी
वेश्वरकी एकता कथन मात्र है. न शब्दार्थसे और न भावा
र्थसे सिद्ध होती है. अथवा ईश्वरवादीकी दृष्टिसे आप प
नास्तिकताका आरोप होसकता है. जो कदापि शुद्ध सत्व
को समष्टिरूप नहीं मानके न्याय. व आर्यसमाजके मंत
व्यवत्, इच्छावाला—सक्रिय, कोई एक व्यापक ईश्वर मानों
तो, जगत्कर्त्ता नहीं होगा; क्योंके व्यापकमें क्रियाका अभा
है, क्रिया विना कर्तृत्व नहीं होसक्ता. तथा संकल्पादि क्रि
याविशेष हैं. संकल्पके विना सनियम सृष्टि होनेका संभ
नहीं. अतः अक्रिय होनेसे कर्त्ता हर्त्ता नहीं होगा. इस री
तिसे तीनों प्रकारके परिमाण मानके ईश्वरकी असिद्धि होती है
तब जीवेश्वरकी एकताकेसे मानें? और जो पुराणी, किरानी
कुरानी, ब्रह्म समाजी, प्रार्थनासमाजियोंके मायावो [कुदर
वाला], परिच्छिन्न, सक्रिय, अभावसे उत्पन्न करनेवाले-ई
श्वरके समान नहीं; किंतु आर्यसमाजियोंके समान ईश्वरव
अमिश्रित, सगुण, एक, व्यापक, चेतन तत्व मानोगे तो, ज
गत् अकर्त्ता, निरीह, निर्गुण शुद्ध ब्रह्मसे भिन्न, सर्वज्ञत्वा
गुण, नित्य सत्य चेतनवान् मान्नेसे, द्वैतापत्ति होगी. स्वप
त्याग होगा. और तद्विरुद्ध विशेषणवाले जीवकी, उसके स
थ एकता न होगी. यद्यपि इस प्रसंगमें-ईश्वर ब्रह्म असिद्धि
में—जो हेतु (दोष) पूर्वमें जनाये हैं, उनसे आर्यसमाजव
ईश्वरभी सिद्ध नहीं होता, उसका आक्षेप-परिहार उन

साथ हे.—यहां उसका प्रसंग नहीं, तथापि आपके कथ-
नकी रीति माननेसेभी, जीव ब्रह्मका भेद सिद्ध ओर आपके
पक्षकी हानी तो हे. इस लिये लिखा हे.

निदान जबकि पूर्वोक्त लेखसे व्यापकत्व, सर्वज्ञत्व, सर्व
शक्तिमानत्वादिका अभाव ओर परिच्छिन्नत्व, [1]सावयवत्व,
असर्वज्ञत्व ओर असर्वशक्तिमानत्वादिका भाव सिद्ध हे. किंवा
ईश्वरत्व[2]की असिद्धि हे.[3] तो जीवेश्वरकी एकताका कथन केसे
होसकता हे वा माना जासकता हे? नहीं मान सकते. ४

---

१ पुराणोंमें ईश्वरके कच्छ, मच्छ, रामादि अवतार होना प्र-
सिद्ध हे. बाइबलमें एक [इसराईल] पेगंबरके साथ खुदाका कुस्ती
लडना, मूसाको तूर पहाड उपर अग्नि समान दृष्ट पडना लिखा हे.
कुरानमेंभी पूर्वोक्त प्रकारसे मूसाको दर्शन देना लिखा हे. तथा
नबीमोहम्मदका सातवें आसमान पर खुदाके मिलने वास्ते, घोडे पर
चढ कर जाना ओर खुदाका सातवीं कुरसी पर बेठके, परदे डालके
मोहम्मद साहेबके साथ बातें करना, मुसलमानोंमें प्रसिद्ध हे. (देखो
म्याराज). ब्रह्मसमाजी आदि 'ब्रह्मको संकल्प कर्त्ता ओर ईश्वरसे
भिन्न सर्वको अभावसे ईश्वरने बनाया, एसा मानते हें. एसेही इसाई,
मुसलमान मानते हें. इसलिये उक्त विशेषण बनते हें.

२-३ ईश्वर मंतव्य प्रसंगमें "इस जगत्का कोइ कर्त्ता होने
योग्य हे. कार्यरूप (संयोग वियोग जन्य) प्रतीत होनेसे. घट कुंभ
कारवत्" इत्यादि अनुमान प्रकारका खंडन इस लिये नहीं लिखा
कि, उसके माने हुये मूल स्वरूपकीही सिद्धि नहीं होती हे. तो, उस
के अस्तित्व संबंधी विचार करनेमें, क्यों श्रम लिया जाय? -व्यर्थ
हे. अनुमान प्रकरणकी तमाम प्रक्रिया जनाये विना, खंडन मंडन
हरएकके समझमें नहीं आसकता, जोकि बहुत विस्तारवाला हे;
उस पर यह कठनी कि, पक्षकारोंमें व्याप्ति, उपाधी, हेतु, हेतु आ

जो दुराग्रह करके किरानी, कुरानी, ब्रह्मसमाजी, यहू-
दी ओर पारसियों वाला ईश्वर (स्वेच्छा मात्रसे अनुपादान
जीव प्रकृति बनाने वाला, अपरिच्छिन्न) मानोगे तोभी (इ-
स पक्षमें), अनेक दोष आवेंगे, आपका इष्ट सिद्ध न होगा;
अर्थात् अभावसे भावरूप वा उपादान विना, उपादेयकी उ-

भासकी तकरार पडने [सदोष साधन सिद्ध करने] पर, शब्द–कथ-
नमात्र वा नाकाम–व्यर्थ तकरारके सिवाय, अन्य कोइ विशेष परि-
णाम नहीं निकलता. (जेसे कर्त्ता विना भूकंप, पहाड वृक्षकी उ-
त्पत्ति नाश, विच्छुकी मैथुनी अमैथुनी–स्वाभाविक,-मनुष्य रचित
सृष्टि, एक बीजसे स्वेच्छानुसार रंगदार फूल उत्पन्न करलेना, जल
बना लेना, यथेच्छा रंगवाला अश्व उपजा लेना इत्यादि व्यभिचारी
-दोषदायी हेतु हैं. साध्य साधनके व्याप्ति दर्शन, उपाधि रहित हेतुकी
असिद्धि हे. वा, "ईश्वर नहीं" इतने कथनसेही उसकी सिद्धि. नि-
षेधका निषेध संभव–बंध्या पुत्रवत्. इत्यादि विकल्प हैं). २ उसपर
भी यह होगाकि, वेदांती भाई अनुमानको स्वतंत्र प्रमाण नहीं मान-
ते. ३ इसलिये अनुमान प्रमाणका खंडन मंडन नहीं लिखा. [य-
हां दर्शन २१–२२ गत निवृत्ति प्रसंगकी अनुमान प्रसंगवाली टि-
प्पणभी वांचना चाहिये]. ४ शब्देतर अन्य प्रमाणों संबंधमेंभी पूर्ववत्
समझलेना.

५ इसी प्रकार, क्रियावान, अवतारधारी, गर्भवासी, परिच्छि-
न्न, मूर्तिमान-जड पाषाणवाले ईश्वर, ओर वेसे मान्नेवालोंके मतमें
अनंत दोष आते हैं. [जोकि यह सिद्धांत–मत सहज प्रकार–किं-
चित् विचारसे दोषका विषय होजाता हे ओर यहां प्रसंगमें उस-
की चर्चाकी आवश्यकताभी नहीं, इसलिये विस्तार नहीं किया].
ओर जो, वेसा ईश्वर मान लेवें तोभी, वेसे जीवेश्वरकी एकता सिद्ध
नहीं होसकती. बुद्धिमान सहज विचार कल्पनासे जान सकता हे.

त्पत्ति मान्नो पडेगो; जोकि हास्यजनक बात हे ! जीवोंके कर्म माने विना (अनादि जीव. पूर्व जन्म माने विना), जोवोंकी अहेतुक उत्पत्ति स्वीकारनो होगो. तब, इस पक्षमें यह प्रष्णा उठेंगेः—ईश्वरेन जीव क्यों किये.? किसीको अंधा, किसीको काना, किसीको राजा, किसीको कंगाल, किसीको स्वभक्त, किसीको अभक्त, किसीको ईश्वर न मान्नेवाला क्यों बनाया? नीरपराधी बालक, गर्भमें क्यों रहा ? ६ मासका बालक, रोगमें दुःख पाके क्यों मरा ? हमारी इच्छा विना, जंगली, अबें [गंवार] गरम देशमें हमको क्यों उत्पन्न किया ? कश्मीर वा हिंदुस्थान 'जिन्नतनिशान'में हमको क्यों न पेदा किया ? हमारी तकदीरमें जैसा उसने नियत किया वेसा, हम करते हें फेर हम अपराधी क्यों ? क्या खुदासे हम जबरदस्त—शक्तिमान हें कि जो, स्वेच्छासे कुछ करें ? वा उसके यथार्थ सर्वज्ञत्व धर्मवाले ज्ञानके विरुद्ध कुछ हो सकता हे वा हम कर सकते हें ? जेसी हमको बुद्धि इंद्रिय दिये वेसा हम करते हें, हम अपराधी नहीं. तो फिर हम स्वर्ग नरकमें क्यों डाले जांयगे ? हमने बुरे कृत्य कहांसे सीखे ? हम बुरे कृत्य सीख सकें वा करसकें, एसी बुद्धि हमारे यंत्रमें क्यों रखी वा हमको क्यों दी ? किंवा हम स्वतंत्र सीखनेमें असमर्थ हें, उसने हमको बुरे कृत्य करने क्यों सिखाये ? हमको बुरे कर्म करनेसे क्यों नहीं रोकता ? ख्रिस्ति मुसलमानोंके खुदाने, हमारे वास्ते बहकानेवाले शेतानको क्यों पेदा किया ? खुदाका हुकम जब शेताननें नहीं माना तब, उसको क्यों नहीं केद किया ? अपने दिये हुकमको क्यों बदलता हे ? एसा बेवकूफ, अन्यायी, असर्वशक्तिमान खुदा, क्या कर सकता होगा ? हमको दुःख क्यों प्राप्त होने—आने देता

है? सादि कर्मोंका अनंत फल (नरक, स्वर्ग) क्योंकर दे सकता है? इत्यादि शंकाओंके उत्तर वा, निर्णयमें वोह स्वच्छंद अन्यायी ईश्वर, अपराधी ठहरेगा जीव नहीं १. किंवा उभय अनपराधी हैं—बंध, मोक्ष, कर्म फलकी अभाव मान्ना पडेगा २. सृष्टिके पूर्वोत्तर कालमें ईश्वरके गुण नाकाम रहेंगे क्योंकि असंभव वात है ३. अद्वितीय केवल स्वरुप मानके अनंत शक्ति गुणवाला मान्ना व्यावात दोषवाला पक्ष है ४. इत्यादि अनंत दोष आवेंगे. तदुपरांत जो, कदाचित् पारसियोंके खोटे विश्वास (वे अग्निको रक्षक मानते हैं तोभी, जब उसके उंगली लगावें तबही जला देती है) समान उक्त जंगली कल्पित सिद्धांतको मानभी लोगे, तोभी, जीव, ईश्वरकृत (सादि) होनेसे अपने कर्त्ता ईश्वरके समान वा तिसके साथ वा सोहो—एक स्वरूप नहीं होसकता. इसलिये जीवेश्वरकी एकता नामा इष्टका अभाव सहज सिद्ध है. ५

ईश्वरका परिच्छिन्न होना पूर्वोक्त प्रकारसे असिद्ध है. विभु—देश परिच्छेद रहित—अर्थात् अनंतभी सिद्ध नहीं होता; क्योंकि व्यापकता, दृष्ट परिच्छिन्न जगत् और बुद्धिकी अपेक्षासे कही जाती है. कोन जाने, जहां तक देशादि ब्रह्मांडकी कल्पना होती है उसमे आगे अन्य प्रकार रचना हो. इसलिये जो ईश्वर—ब्रह्म होवे तोभी, व्यापक वा अव्यापक नहीं कहा जासकता. जैसेकि परमाणु जितने हैं उतनेही हैं;—न्यूनाधिक नहीं होते; तोभी, बुद्धि उनको अनंत कहती है. नभ—देश जितना है उतनाही है; तोभी, बुद्धि उसको अनंत मानती है. अर्थात् केवल कल्पना मात्र है. विभुत्व—व्यापकत्व—अनंतत्वका कथन मंतव्य, संशय रहित यथार्थ सिद्ध नहीं होता. जब यूं है तो, ईश्वरत्वकी सिद्धिभी न-

हीं कही वा नहीं की जासकती. विश्वास वा शब्दमात्र मान्ना जुदी वात हे.

जो प्रसिद्ध–दृष्ट परिछिन्न जगत्का अधिष्ठान–आधार, कूटस्थ नहीं मानें तो, परमाणुओंका संयोग वियोग–क्रिया–गति–विकार किस पर होगा–उसका आश्रय कोन ? आधार विना, गति–परिणाम केसें हो सकते हें, इत्यादि प्रसिद्ध कल्पना हें; (परस्परके आश्रय–अन्योऽन्याश्रय–से उक्त कार्य नहीं होसकते. आकर्षणमें आधारत्व, एक स्वरुपसे व्यापकत्व, चेतनत्व ओर नियामकत्व सिद्ध नहीं होता,* प्रत्युत उसमें जडत्व मध्यमत्व ओर पराश्रयत्व सिद्ध* होता हे. तद्वत् प्रसिद्ध पदार्थ विद्युत्, कर्मादिमें ज्ञातव्य हे) इत्यादि प्रवळ कारणोंसे, कोई परिपूर्ण–पररहित, स्वयंभू आधार* तो, वलात् मान्ना पडता हे. जब कि आधार माना वा हे, तो ईश्वर (जगत्का कर्त्ता–क्रियावान–जगत् धर्त्ता हर्त्ता–व्यवस्थापक) की सिद्धि हो वा न हो परंतु, ब्रह्मकी सिद्धि अवश्य होगी; परंतु जब ब्रह्म माना तो, व्याप्य माया (जगत्–प्रपंच) का सर्वथा अभाव मान्ना पडेगा; जो कि असंभव हे. एतद्दृष्टि या तो ब्रह्म (विवर्त्तवाद–अद्वैतवाद) नहीं. अथवा तो ब्रह्म हे, द्वैतवाद नहीं–ब्रह्मेतर कोई भी नहीं– इन दो परिणामोंमेंसे एक मान्ना पडेगा; परंतु जोनसा पक्ष मानोगे उसीमें दृष्ट अदृष्ट सृष्टि वगेरे विषयकी योग्य व्यवस्था नहीं होसकेगी.– अव्यवस्था रहेगी. ओर अजात वाद मानें तो, वक्ष्यमाण (दर्शन २३ में जो दोष लिखे हें वे) दोष प्राप्त होंगे.

इतने लिखनेसे क्या आया ? ईश्वर–ब्रह्म जीवकी एकताका कथन मंतव्य यथार्थ नहीं.–उसका अवसर नहीं– उस

* आगे–दर्शन २४ में वांचोगे.

की जिज्ञासा नहीं बनती. क्यों? ईश्वरकी असिद्धिसे, अर्थात् जो उसे निर्विकल्प मानें, तो 'ब्रह्म-ईश्वर है' एसा कहनाही नहीं बनता. ओर जो सविकल्प मानें, तो आत्माश्रय, अन्योऽन्याश्रय, चक्रिका ओर अनवस्था [अव्यवस्था] दोषकी प्राप्ति होती है; क्योंकि धर्म [विशेषण-गुण-कर्म जाति शक्ति इत्यादि] बिना धर्मीकी सिद्धि नहीं होती-असंभव है. जब यूं है तो, माने हुये-कहे हुये-धर्मविशिष्ट धर्मी तत् धर्मविशिष्ट है तब तो, उसकी सिद्धिमें वोह (धर्म-विकल्प) आत्माश्रय दोष वाला ठरेगा. जो माने हुयेसे भिन्न मानें, तो अन्योऽन्याश्रय दोष आवेगा. इस दोष निवारणार्थ तीसरेके मानेसे चक्रिका ओर आगे जाने (४-५ वगेरे कल्पने-मान्ने) से अनवस्था दोष आवेगा.-धर्मी (धर्म विशिष्ट) सधर्म धर्मी है वा धर्म रहित धर्मी है, इत्यादि [तथा धर्म, सधर्म वा विधर्म; धर्म धर्मीका भेद; भेद, धर्म सहित वा रहित; पुनः वोह दुसरा धर्म वा भेद सधर्म वा विधर्म-? इत्यादि] कल्पनासे उभय-धर्म-धर्मी, इनके भेद ओर संबंध तथा आधार-आधेयत्व-स्वरूप प्रदेशकी व्यवस्था करनेमें उक्त अनेक दोष आते हैं; कुछभी व्यवस्था नहीं होती-कुछभी निश्चय नहीं होता-शंकाका परिअवसान नहीं आता-(निरर्थक जानके, शब्द मात्र तकरार समझके विस्तार नहीं लिखते). निदान जबकि ब्रह्म-ईश्वर [वा तमाम द्रव्य गुणादि]की सिद्धिमें, सत्ख्यातिद्वैतवादियोंकी बुद्धि-जीव चेतन, अशक्य-*असमर्थ है, तो वेदांतियोंकी मिथ्या श्रुति-मिथ्या जड बुद्धि-अंतःकरण माया, कैसे शक्य होसकती है ? नहीं. "ब्रह्म-ईश्वर है, वा नहीं, ओर है तो कैसा है इत्यादि" नहीं कह सकते. जब यूं है तो, 'जीव ब्रह्मकी एकता है' एसा प्रतिपादन करना-मान्ना तो

कहां,--केसे बन सकता हे--मिथ्या प्रलाप हे-एकता कथनका भी अवसर नहीं, एकता तो कहां.* निदान उक्त तमाम* प्रसंगसे मिथ्यावादियों करके एकता अप्रतिपाद्य हे. ओर न हे.*

---

*प्रसंगारंभसे यहां तक वेदांत प्रसंगी किंवा लोकमान्य प्रसिद्ध ईश्वरका निषेध हुवा. सत्य [खरे] ईश्वरके प्रतिपादनका यहां प्रसंग नहीं-वेदांत संप्रदायका उपयोगी नहीं-एसी दृष्टिसे ग्रंथकारने ईश्वर सिद्धिका प्रसंग नहीं लिया हो, एसा ज्ञात होता हे; क्योंकि **ग्रंथकर्त्ताका, एक अद्वितीय, व्यापक, सत्ताधारी, चेतन परमात्माकोही 'ईश्वर' पदसे व्यवहारनेका आशय हो** एसा **"आधार प्रसंग"** लेने ओर इस ग्रंथके आदि मंगलाचरण तथा उसके बनाये हुये 'जडोजड', 'जिनज्ञान' ग्रंथोंसे प्रतीत होता हे. जिस अनुपम प्रकारसे यहां संक्षेपमें लोकमान्य ईश्वरका खंडन दिखाया हे, वेसेही अनुपम रीतिसे ईश्वरकी सिद्धि, उक्त ग्रंथोंमें की हे; जोकि अनीश्वरवादीको मान्नीही पडे. **प्रसिद्ध कर्त्ता.**

. जब तककि (आप वा हम) वेदके मान्य षडांग, उपांग नहीं पढें ओर वेदकाल प्रकारसे अर्थोंका निश्चय न करें, वहां तक दूसरों (महीधर, सायन, उव्वट, मेक्षमूलर, बूलर भट्टादि)के किये हुये अर्थ वांचके "वेद जंगलियोंका बनाया हुवा हे, यथार्थ वक्ता नहीं, सदोष हे," इत्यादि दोष आरोप नहीं कर सकते-उसे अच्छा वा बुरा नहीं कहसकते. जो कोई उल्लड भाई नवीन रोशनीमें अंजाके, उसे बुरा भला कहता हे, वोह मानो, अपने बापदादाके मंतव्य ओर आदर किये हुये के विरोधी हुये कृतघ्नी होय नहीं, एसा कह सकते हें [मुकाबलेमें देखो स्वामी श्री दयानंद कृत वेद भाष्य]. हां, जब तक अपने मान्य ग्रंथका अर्थ, सृष्टि नियम युक्ति प्रत्यक्षादि अनुकुल न हो-न जानें वहां तक, प्रसंग प्राप्त विषयोंके निर्णयार्थ उसकी साक्षी न देके, सृष्टि नियमादि अनुकुल निर्णय

जो, विवेकहीन मुसलमान, ख्रिस्तियोंके समान यह कहेंगे कि, तुम्हारी शंका-प्रश्न-सवालोंका उत्तर ओर हमारे खुदाकी सिद्धि, ज्ञान उन्नति पीछे भविष्य कालमें होगी; अतः अबही मान लो." इस छल-कपट*वा पोलीसोवाले कथनका उत्तर यह कहो कि, 'वर्त्तमानमें अज्ञ लोकोंने वा पदार्थ-तत्त्व विद्याके न जान्ने वालोंने जैसा खुदा मान रखा हे, उस मंतव्यका उच्छेद, ज्ञानान्नोति कालमें अर्थात् वक्ष्यमाण कालमें हो जायगा.-"ईश्वर है वा नहीं" यह सवालभी नहीं रहेगा.-इस मंतव्यके संस्कारभी नहीं रहेंगे.-कभी ईश्वर, माना जाताथा, एसा खयालभी नहीं रहेगा; एसा क्यों न माना जाय.'? इसीप्रकार जीव ब्रह्मकी एकता नामा पक्षभी शश शृंगवत् हो जायगा. किंवा जेसे वर्त्तमानमें मिथ्या माया, ब्रह्मका अन्यथा (सच्चिदानंद) स्वरूप देखाती हे ओर वोह रज्जु सर्प समान मिथ्या हे. वेसे, भविष्यमें दूसरे प्रकारसे अन्यथा दरसावेगी, सोभी रज्जु सर्प समान मिथ्या होगा; एसा क्यों न माना जाय?

संक्षेपमें हम अपनी कल्पना*वा ओरकी रीतिसे ईश्वर

करके त्याग ग्रहण करनेमें स्वतंत्र हो. परंतु अर्थ निर्णय तक, किसी ग्रंथ वास्ते अच्छा बुरेका हुकम चढाना भूल हे.

वेसेंही जब तक "ईश्वर असिद्धि वा अमुक प्रकारका ईश्वर सिद्ध, अमुक प्रकारका असिद्ध हे" एसा-संशय विपरीतभावना-असंभावनादि दोष रहित यथार्थ निश्चय न हो जावे, वहां तक, ईश्वरको न मान्ना, अपने पूज्य बापदादोंका अनादर करने-मूर्ख कहने जैसा हे-अनीतिके सहायक होने समान हे.-भूल हे. इत्यादि जेसी दृष्टि, ग्रंथकारकी हे. (देखो उक्त दोनों ग्रंथ ओर मंगलाचरण.) प्र. क.

सिद्ध होना मानभी लेवें तोभी, उससे "जीव ईश्वर-ब्रह्म-भिन्न है" एसा परिणाम निकलेगा. परंतु अच्छी वा बुरी वा उभयथा अनंत शक्तिवाला ओर अनंत ज्ञानवाला सर्वज्ञ ईश्वर-ब्रह्म किंवा नवीन वेदांतीयोंवाला ईश्वर किंवा किरानी, कुरानी, पुराणी, ईरानी, जैनी, यहूदी वगेरे लोक प्रसिद्ध मतवाला ईश्वर-खुदा-ब्रह्म, न सिद्ध होता है. ओर न है. अतः जीव ब्रह्मकी एकता कल्पना मात्र है.*

जीव विषे.)

इसी प्रकार जो जीवको मलिन सत्व (अविद्या-अज्ञान -अंतःकरण) विशिष्ट मानोगे तो, यद्यपि चेतन भाग उसमें व्यापक-विभु परिमाणवाला है; तथापि मायांश मध्यम परिमाणी होनेसे जीव सादि सांत होगा;[1] अतः जडपाषाणादिसे अन्य प्रकारके माया अवयवजन्य नाशवान् जीवकी एकता करनेसे कुच्छ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता. उलटी हानी है. क्योंके शुद्ध सत्वभाग मायाके, शुद्ध सत्वमें, मलिन सत्व, मलिनमें तम, तममें रज, रजमें मिलेगा. जो यह सब एक स्वरूपही होते तो, पाषाण-जड़-जीव-ईश्वरमें विलक्षणताही नहीं होती. अतः जीवका व्यापक वा मध्यम वा परिच्छिन्न ईश्वरसे, ईश्वरका जीवसे अनादि अनंत भेदही रहेगा. इस रीतिसे शक्य वा लक्ष्य प्रकार कहकेभी जीवेश्वरकी एकता कहना मिथ्या ओर असदाचरणकी प्रवृत्ति कराना है.

जो आर्यसमाजी किंवा यवनाचार्य वा जैनियों समान जीवको अणु-वा मध्यम परिमाण मानोगे तोभी, आपके म-

---

* २९ पृष्टवाली नोट वांचो. १ आगे वांचोगे.

तको दूषित करेगा. अर्थात् वोह, मायाके मलिन सत्त्वका परमाणु है, अतः उसमें जो ज्ञातृत्वादि धर्म–गुण–हैं वे, चेतनकी सन्निधिसे उद्भव होते हैं, एसा मानना पडेगा जो यूं हो तो, जीव अनादि अनंत होगा. और चेतन मानना पडेगा. क्योंके इच्छा ज्ञातृत्वादि, जड मायामें नहीं होसकते. अथवा जीवको आप कल्पित नाम–मायांश रखते हो वेसे, ब्रह्मांडगत वा ब्रह्मांड अंश, एक जीवनामा चेतन अणु है एसे भाषा फेरके सिवाय अन्य अंतर नहीं होगा. अणु अनादि है, अतः अनंत होगा. परंतु अणु परिमाण शरीरके एक भागस्थ रहनेसे सर्व शरीरका ज्ञान होना न संभव. अतएव आर्यसमाज वा जडवादियोंके समान, दीपक प्रकाशवत् उसकी सत्ता, सर्व शरीरमें व्यापक मानके निर्वाह करना चाहोगे तो, सोभी नहीं बनेगा; क्योंके सत्ता, सत्तावानके सदा साथ रहती है: तिससे भिन्न नहीं रहती–नहीं जाती–नहीं होती. एतद्दृष्टि जो सत्तावान अनादि अनंत 'तो, उसकी सत्ताभी अनादि अनंत होगी. और जितने देशमें सत्तावान है, 'उससे विनाके देशमें अनाश्रय नहीं रह सक्ति;' अतएव पूर्व मान्यताका अभाव है. जो हठसे मानोगे तो, वही जीव यदि हाथी वा मनुष्य शरीरमें जावे किंवा ज्यूं ज्यूं बाल शरीर युवा होवे त्यूं त्यूं उसकी सत्ता पसरेगी, वा ओछी होगी, एसा मानना पडेगा; एसी लचकवान् सत्ता, मध्यम परिमाणवाली होनेसे सावयव और संयोगजन्य मानोगे तो, ज्ञान तंतुवत् नाशवान् होगी. अतः तमाम शरीरमें अणुरूप जीवकी सत्ता नहीं. इस प्रकार अणु परिमाण माननेमेंभी अनेक दोष आनेसे जीव अणुरूप नहीं. जो विभू परिमाण मानोगे तो, क्रिया, जन्म, मरण, गमनागमनका अभाव होगा. तथा शरीरसे भिन्न

भाग निरर्थक रहेगा. और मन इंद्रियादि वा उपाधि वा विषयों वा अनादि पदार्थोंका सर्व जीवोंके साथ संबंध होनेसे, अहमत्व ममत्वकी अव्यवस्था होगी; प्रत्यक्ष व्यवहारके विरुद्ध सर्व इंद्रियादि वा उपाधि वा विषयोंको सर्वका सर्वमें वा किसीका न किसीमेंभी अहमत्व ममत्व वा संबंध मान्ना पडेगा (इस सूक्ष्म-संक्षेपमें लिखे हुये विषयको विचार कर देखिये).-जीवोंको परस्परका व्यापक व्याप्य मान्नेसे व्याघात दोष होगा-अर्थात् एककोही एकका व्यापक और व्याप्य कहना पडेगा. एक दूसरेके स्वरूपमें एक दूसरेका प्रवेश न होने और स्वरूप-मात्र भिन्न २ होनेसे उन व्याप्य वा व्यापक-किसी एककीभी सिद्धि न होनेसे यह सिद्धांत असंगत वा कल्पित मान्ना पडेगा. तथाही स्वपक्ष त्याग होगा. इत्यादि दोष आवेंगे.

जो जडवाद (चार्वाक, यूरोप) का मत स्वीकारने जाओगे तो, ब्रह्मका त्याग होगा. और योगविद्या वा वर्त्तमान प्रचलित मेस्मेरिझम विद्या द्वारा जो काशीस्थ पुरुष, द्वारका निवासी पुरुषके वर्त्तमान समाचार बतलाता है-इत्यादि प्रसिद्ध और प्रत्यक्ष पुरावोंसे जडवाद मतका उच्छेद होगा. इत्यादि दोष अन्य मतमेंभी जान लेना चाहिये *

---

*जीवके स्वरूप मान्नेमें "अणु, चेतन वा जड, मध्यम जड वा चेतन,-पुनः इस शरीरमें एक देशस्थ वा फिरनेवाला और विभु चेतन है ? इत्यादि [तथा एक, नाना, सगुण-निर्गुण, सक्रिय, अक्रिय, अनादि अनंत, अनादि सांत, सादि अनंत, सादि सांत, कर्त्ता भोक्ता, अकर्त्ता अभोक्ता, अकर्त्ता भोक्ता, सोपाधि कर्त्ता भोक्ता;-तथाहि जड, चेतन, जड चेतन. पुनः सद्, असद्, सदासद्, सदासद्विलक्षण, अपरिणा-

मी, परिणामी, क्षणिक अक्षणिक, बंध, मोक्ष, मवाहित बंधमोक्ष, न बंध मोक्ष वाला वगेरे) विकल्प हैं." इनमेंसे जितने कि, जीव ब्रह्मकी एकतामें उपयोगी विकल्प हैं, सो वेदांत रीतिसे जनाये. तद्भिन्न अन्य-विकल्पोंका दोष संक्षेपमें यह हैः-

१-जो, 'जीव अणु है और शरीर विषे हृदय वा मगजमें स्थित रहता है,' ऐसा मानें तो, उसको पादादिगत दुःखका ज्ञान न होसकेगा.-उसके स्थानसे इतर भाग, जडवत् होना चाहिये-जलस्थ पादके शीत और मस्तक पर जो धूप, तिसकी गरमीका इकट्ठा ज्ञान न होगा.-पाद काटनेसे पीडा न होनी चाहिये.-शरीरमें दरद-रोग होनेसे रुदन व्याकुलता वा दुःख नहीं होना चाहिये. जो जीवकी सत्ताको व्याप्त मानें तो, उपर कहे हुये दोष आवेंगे.

२-जो उसको फिरता हुवा मानें तो, मानोंकि, अति शीघ्र गतिवान है तोभी, उसके स्थानसे इतर भाग जडवत् होना चाहिये. पीडा करके रोना, व्याकुलता नहीं होनी चाहिये; क्योंके दुःख तो, जड शरीरमें होता है; जीवमें नहीं. जो दुःख करके जीवका दुःखादि रूप परिणाम होना मानें तो मध्यम हो जायगा. जब अपने पैरको दो उंगली मिलावें तो, वहां एक दूसरेका स्पर्श ज्ञान नहीं होना चाहिये अर्थात जीव एक उंगलीमेंसे दूसरीमें जावे तब पहिली उंगलीके स्पर्शका ज्ञान होसकता है. अन्यथा हाथकी शीतताके स्पर्शका ज्ञानभी होजाना चाहिये; इस रीतिमें जो उंगलीमेंसे निकलके दूसरी उंगलीमें गया, ऐसा मानें तब तो, शरीरमेंसे भिन्न होने काल (क्षण)में शरीर, मृत्यवत् होजाना चाहिये. और जो हृदय वा मगज नामक केंद्रमें होके जाना मानें, तो, उंगलियोंके संयोगका अभाव होना चाहिये; परंतु संयोगके ज्ञानका अभा-

व होता है, संयोगका नहीं. जो एमा मानें कि "जब शरीर चलता है तो, अवयव हलते हैं, मनमें संकल्प होता है– इत्यादि अनेक कार्य एक क्षणमें होते हैं, तोभी ज्ञान, एक कालमें नाना नहीं होते, किंतु जीव, अवयवोंकी कल हिलाके शरीरस्थ विद्युत्को जोड देता है; इसलिये क्रिया होती रहती हैं. तद्वत् उंगलियोंका संयोग रहता है." तोभी, अन्यभाग जडवत् होने चाहिये. स्वप्नमें नाना आकार नहीं हैं, परंतु तद्रूप होता है. इसलिये मध्यम ठेरता है. अणुमें नाना इच्छा ज्ञानादि और अनंत संस्कार होना न संभव. तथाहि इतना बडा शरीर वा भार अणुमात्र करके नहीं उठाया जा सकता. बिच्छुका डंक–जहर थोडा होता है, परंतु उसकी उष्णता रक्तमें मिलनेसे अनेक जगे पीडा होती है, वैसे सूक्ष्म अणु जीव विषे कल्पना करें तोभी, शरीर चेष्टावाले अद्भुत कार्य अणु मात्रसे नहीं संभवते. भार उठाना तो कहां.

३–जो परिच्छिन्न क्षणिक मानें, तो परणामी होनेसे मध्यम हुवा,–जन्य और नाशवान ठेरेगा. उसके परिणामका ज्ञानकर्त्ता साक्षी, भिन्न मानना पडेगा. क्योंकि ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता–इन तीनोंका आकार, एक कालमें नहीं रख सकता.

४–जो यूरोपके फिलोसफरों समान (मगज रूप) वा जडवाद मतवत् (तमाम शरीर) जीवको मध्यम मानें और स्थिर रहता है–फिरता नहीं किंतु, ज्ञान तंतुद्वारा उसको ज्ञान होता है. एमा मान लेवें, तोभी दोष आते हैं:–दरद कौन स्थान पर और कैसा है, यह ज्ञान नहीं होना चाहिये. जो ज्ञानतंतु द्वारा दरद, मगजमें जाता हो तो, दरद स्थानसे मगज तक तार समान प्रतीत होना चाहिये; परंतु एमा नहीं होता. बालक, जिस अवयव [पेट वा पाद] में पीडा होती है उसको हाथ

स्पर्श किये विना, पञ्चादि समान उचकाता हे, एसा, नहीं होना चाहिये; क्योंके तंतु, अवयवको नहीं बताते. जो एसा मानें के 'दरदके फोटो जाते हें १, दरदके मारे जीवको हरकत पहोंचती हे २, सोभी नहीं बनता; क्योंकि:-जो एसा होतो, फोटो मिलनेसे जीवमें रुदनादि व्यवस्था नहीं होनाचाहिये.-पीडा का यथावृत् अनुभव नहीं होसकेगा. ओरभी परमाणुकी अवस्था विशेष (अवयवमें दरद होने पर) होनेसे मगजको हरकत [गति] विशेष तो होती हे, परंतु पीडाका यथावत् भान-अनुभव नहीं होसकता; क्योंकि पीडास्थान ओर मगजकी अवस्थामें अंतर होता हे.-फोडेवाला रोगी सो जाता हे तो पीडा ज्ञात नहीं होती; परंतु पीडा-परमाणुओंकी प्रतिकूल अवस्था हे तो सही. जो एसा नहीं होवे तो जागनेके साथही पीडाका ज्ञान नहीं होना चाहिये. तथाः-१-हाथ पेर काटनेसेभी मनुष्य जीता हे, वेसाही ज्ञान उसमें रहता हे जेसाकि पूर्वमें था. २-जो जान्नापना-ज्ञातृत्व नामशक्ति बालपनमेंथी, सोही युवा, वृद्धावस्थामें हे; उसमें फेरफार नहीं होता. ओर शरीरमें तो क्षण क्षण विषे न्यूनाधिकता होती रहती हे. ३-द्रष्टा दृश्य परस्पर भिन्न २ होते हें; अतः हस्तादिका ज्ञाता हस्तादिसे काम लेनेवाला उनसे भिन्न हे. ४-इंद्रियों [ज्ञानतंतु] एक जेसी नहीं, उनके विषयभी भिन्न २ हें, एसा भेद जान्नेवाला उनसे भिन्नहे. ५ स्वप्न जाग्रतका अंतर ओर तद्गत पदार्थोंका भेद जान्नेवाला, अवस्था त्रयकी विलक्षणताको निश्चय करनेवाला, उनसे भिन्न होने योग्य हे. स्वप्नकालमें स्थूल शरीरको न हलानेवाला ओर स्वप्नके पदार्थ, इंद्रिय, त्याग ग्रहणादिका उपयोग लेनेवाला, स्थूलसे भिन्न होने योग्य हे ६ शरीर गत इच्छा, संकल्प, अहंकार, स्मृति-इत्यादि कर्म

गति-परिणाम—अवस्था और उनकी उत्पत्ति, नाश, संधीको जान्नेवाला, इनसे भिन्न होने योग्य है. ७ सुषुप्तिके पूर्व उ ज्ञरसे विलक्षण 'मैं' अपनेको नहीं जानता' 'मैं सुखसे सोया' एसा मनमें अनुभव करनेवाला पडे हुये स्थूलसे भिन्न था. ८ पाठ करने समयभी अंतरमें संकल्प करनेवाला वाणी आदिसे भिन्न है. ९ इत्यादि प्रबल, प्रसिद्ध हेतुसे यह सिद्ध होता है कि स्थूल सूक्ष्म शरीर वा मगजसे उनका जान्नेवाला भिन्न है. —जीव, शरीर वा मगज रूप नहीं.

५-जो जीवको शरीर वा मगजके समुदायका गुण—शक्ति विशेष मानें, तो सो ज्ञान शक्ति, अणु है वा विभु वा मध्यम, यह सिद्ध न करसकोगे और इन तीनसे इतर प्रकारकी तो मान्ना असंभव है. शरीरसे इतर स्थानमें न होनेसे विभु नहीं, स्वयं पदार्थ न मान्नेसे अणु नहीं. जब अणु रूप नहीं तो मध्यम कैसे कह सकोगे? नहीं. जो वोह ताकत, स्वरूपसे पदार्थ नहीं तो, मगज वा शरीर जन्य कहना हास्य जनक बात है.—

६-मगज वा शरीर अपनेको जानता है वा नहीं? जो जानता है तो, मगज शरीर ज्ञेय और उनका ज्ञाता भिन्न मान्ना पडेगा. जो नहीं जानता तो मगज वा शरीर समूहही ज्ञाता है, यह कैसे और किसने जाना? जो कहो कि 'शरीर वा मगजके दो विभाग हैं, एक ज्ञाता परिणाम दूसरा ज्ञेय परिणाम' तो परमाणु जन्य—मध्यम ज्ञेय समान ज्ञाताभी अणु जन्य जान्ने, जनाने वा सिद्ध करने योग्य है; परंतु वेसा नहीं होता. जो कहो कि, 'अनुमानसे जाना जाता है,' तो व्याप्ति नहीं मिलती.—अर्थात् शरीर वा मगज—अपनेसे भिन्न व्याप्ति, कहना चाहिये. परंतु अनुमान करनेकी साधनरूप जो व्याप्ति (परिछिन्न ज्ञान—मगज समुदाय) उसमें आपको ज्ञा-

भिन्न मानते हो. अतः व्याप्तिका अभाव है. तथाहि व्याप्ति-की सिद्धि होनी चाहिये.-अर्थात् अविनाभाव संबंधके अ-भावको सिद्धि करना चाहिये; जो कि असंभव है. क्योंकि अपनी वा अपनी परकी चेतन ज्ञानशक्तिका उत्पत्ति नाश अदर्शनसे तथा परमाणुमें चेतनत्व-ज्ञानत्व गुणकी सिद्धि अ-प्रत्यक्ष न हो सकनेसे वा तिनसे इतर चेतनत्व-ज्ञानत्वका अ-भाव न सिद्ध कर सकनेसे जड पक्ष—जडानुमान असिद्ध है.

७-जो शरीरही आत्मा-ज्ञाता-भोक्ता-होतो, अमुक स्था-न पर पीडा है, एसा भेद नहीं होना चाहिये; किंतु तमाम शरीरमें वैसीही दुर्गति-दुःख-व्यवस्था होनी चाहिये.

८--अन्य मकान गत बंद पेटीमें कटु मिष्ट दो बादाम हों, (उसे) अन्य मकानस्थ मैस्मेरजर-(विधायक)का सबजेक्ट-विधेय, उनकी आकृति और स्वाद वगेरे बताता है जोकि जडवाद-की रीतिसे नहीं होना चाहिये. तद्वत् सोंही विधेय (वा योगी), दूरस्थ परोक्ष शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंधादिको बताता है, सो नहीं होना चाहिये. परंतु एसी परीक्षा वर्त्तमानमें प्रसिद्ध है.

९-जडवादकी रीतिसे स्वप्नगत आकृति (शब्दादि), श-रीर वा मगजका परिणाम है, उनका द्रष्टाभी शरीर वा मग-जका परिणाम है. तहां आकृति-पदार्थ, मध्यम-अणु अणु जन्य जानी जाती है; परंतु द्रष्टा-ज्ञातामें मध्यम-अणु जन्य त्व प्रतीत सिद्ध-गोचर नहीं होता. जो ज्ञाता-द्रष्टा अणु मा-नें, तो ज्ञेय पदार्थका एक साथ ज्ञान नहीं होगा. परंतु घट दे-खतेही एक साथ ज्ञान हो जाता है.

१०--'मगजमें रुपकी जो छाप (प्रत्याकृति) पडती है और शब्दका धक्का लगता है, तथा स्पर्श, रस, गंध अवस्था-अ-सर रुप होता है; किंवा सर्वकी छाप पडती है, तिससे ज्ञान

ओर स्मृति होती हे.' जडवादका यह पक्षभी जडवादसे अ-सिद्ध हे; क्योंकि शरीर, मगजके परमाणु क्षण क्षणमें बदलते रहते हें; अतः पूर्वकालकी स्मृति होना असंभव हे. जो एसा कहो के पूर्वके परमाणु उत्तरके परमाणुमें छाप देते जाते हें, तो "मगजमें छाप क्रमशः हें-उपर नीचे हें-जिन मगज अंशों में छाप हें उन अंशोंके दरमियान छाप विनाका मगज हे,"-एसा मान्ना पडेगा. जब यूं हे तो स्मृति क्रमशः होने योग्य हे. परंतु स्मृति तो क्रम विनाभी होती हे. जो यह कहो कि वे फोटो उपर नीचे होके प्रतीत हो जाते हें; तो मगजको कितनी जगे लेनी पडती हे. ओर अनंत फोटो केसे रख स-केगा. इसकी व्यवस्था नहीं कर सकोगे.

११-जब पहाड वगेरे देखते हें, तब उनका फोटो चक्षुमें होता हे,-चक्षुके अंतर भागमें किरणें पसरती हें, उनका फो-टो होता हे, यह युरोपके जडवादकी रीति हे. तहां छोटे स्था-नमें बडे रूपसे फोटो केसे प्रतीत होते हें, इसकी व्यवस्था न-हीं कर सकोगे. (उनके मतमें इस पक्षका समाधान नहीं हे)

१२-जो यह कहो कि मगज अद्भुत यंत्र हे, बुद्धिमें न आवें एसे कार्य उस यंत्रसे होते हें. तो हमको यह कहना चाहिये कि, मगज वा शरीरमें जो मगज वा शरीरसे भिन्न वस्तुतः स्वरुपसे जो ज्ञान कला हे, वोह स्थूल बुद्धिकी समझमें नहीं आती. किसी आर्य योगी विद्वान् द्वारा उसका अनुभव लो. ओर अद्भुतताका दर्शन करो. वोह वस्तु प-रोक्ष वा अनुमानकाही विषय हो, एसा नहीं हे; किंतु अप-ना स्वरुप तुम्हारी बुद्धि वा अहंकारमें प्रकाशमान करने यो-ग्य हे. आचरण-परलोक-पुनर्जन्मके भयसे वा दुराग्रह-मन मुखिताके दबावसे उस लाभ लेनेमें पीछे मत पडो.

१३-जो "ज्ञान-चेतनी कला शरीर वा मगजके परमाणु, में विभाग पाई हुईहे और उनके अमुक प्रकारके संयोग तथा रक्षणसे प्रादुर्भूत होतीहे" ए समाने, तो सो (ज्ञान-चेतन कला) परमाण, के स्वरुपसें भिन्न हुइ, एसा मान्ना पडेगा.- परमाणुका जो स्वरूपहे सो उसका नहीं, उसका हे सो परमाणुका नहीं, एसा सिद्ध हो जायगा, जब यूंहे तो (जड) परमाणु के स्वरुपसे, विलक्षण मान्नी पडेगी. अब यह बात रही कि वे (परमाणु और चेतनकला) परस्पर नित्य जुदे हुये वा तादात्म्य रूपमें रहते हैं-इसमें हमको दुराग्रह नहीं. तो भी जब कि स्वरूपसे भिन्न रहे, तो जेसे कि शरीर परमाणुका अन्य स्थलमें गमन होके संयोग वियोग होता रहताहे, वेसेही उसका भी (पुनर्जन्म) मान्ना पडेगा. जब यूंहे तो, उसके निमित्त तथा उपयोगपर दृष्टि डालनी पडेगी. परंतु यह बात जब तककि उस कलाके गुण कर्म स्वभाव निश्चय नहीं हों वहां तक, (उक्त विषयका निर्णय) नहीं मानीजा सकती. और जब कि उसके गुणादिपर दृष्टि डाली (अप्रसंग समझके नहीं लिखते) कि जडवाद जड होजायगा. जो परमाणुओं में विभक्त नहीं मानो, तो यह पूछते हैं कि, वोह चमत्कृति कला कहांसे आई? 'अन्य स्थलसे आके संयोगीकरणमें शामिल हुइ' एसा कहो; तब तो जडवाद गया. जो नवीनोत्पन्न हुइ मानो, तो असंभव दोष. जो यह कहो कि "जेसे आग पानीकी शक्ति-बरालसे यंत्र चलता हे वेसे, वोहभी परमाणुओंकी अवस्था विशेषहे, कोई भिन्न पदार्थ नहीं" तो वोह क्या? जहां आग पानी एकत्र होतेहैं वहां अग्निको निकलने वा उपर जानेका स्वभावहे, अतः उसके साथ जल भी उडताहे. इन दोनोंके धकेसे यंत्र चलताहे. यह धका-गति

परमाणुसे विलक्षण नहीं. परंतु ज्ञानकलातो परमाणुओंकी द्रष्टा-ज्ञाता हो पडती है, अतः उनकी अवस्था नहीं कह सकते. किंतु परमाणुओंकी अवस्था (संयोग-तत्जन्य असर वगेरे) का ज्ञाता-द्रष्टा-भोक्ता-है. अतः जड परमाणु और तत्जन्य शरीर, मगजसे भिन्नहै.

१४-और भी, उपरें जो अणुवादमें दोष जनाये सो दोष भी उक्त पक्षमें आतेहैं. निदान, जो जीवको मगज-वा जड समूहात्मक पदार्थ मानके उसीके परिणामसे सब व्यवस्था करते हैं, उन मतमें यह बडा भारी दोष आ जाताहै कि जिस कालमें उसको प्रत्याकृति (फोटो) वा अंतरमें कोइ आकृति विशेष वा स्वप्नमें विषय रूप-विषयाकार परिणाम होताहै, उस कालमें उसीका ज्ञान रूप परिणाम नहीं हो सकनेसे विषय-आकृति-उक्त परिणाम समकाल प्रतीतिका विषय नहीं होना चाहिये और होता तो है (यह दोष बुद्ध, जिन, चार्वाक, यूरोप, दहरिया, मीमांसा, औ जो जो पक्ष जीवको मध्यम परिमाणवाला ज्ञाता मानतेहैं उन सर्वको लागु हो जाता है).

उक्त तमाम कथनका रहस्य यहहै कि जीव ब्रह्मकी एकतावादी जो, जीवका स्वरूप अणुमाने वा विभू माने तो, अनादि अनंत होनेसे सर्वदा भिन्न होगा और जो मध्यम मानें तो, सादि सांत होनेसे, ब्रह्मके साथ एकता कथन न संभव; क्योंकि जड मध्यमका चेतन साथ एकत्व नहीं होसकता. और चेतन-मध्यम सावयव होनेसे निरवयव ब्रह्मके साथ एकता नहीं होसकता. और विभू विभूकी एकता मानना हास्य जनक बात है. सोपाधि एक विभूकी अपने में एकता कहना नहीं बनता. किंतु उपाधि हुये वा न हुयेभी, विभु स्वरूपसे नित्य एकही होता है.

इत्यादि सूक्ष्म विचार और रीतिसे मोक्षवादी और जड वा क्षणिकवादीके माने हुये जीव स्वरूप तथा परिमाणमें, अनेक दोष* प्राप्त होतेहैं. और पूर्वोक्त रीतिसे+ आपके माने हुये प्रकारसे भी जीवकी सिद्धिही नहीं होती, तब उसकी एकताकी कल्पना तो कहां.-मिथ्या कल्पना है. (पू. प्र.:-)

.. पूर्वोक्त ब्रह्म-ईश्वर जीव स्वरूप मानने में, उनके स्वरूप गत दोष दर्शक प्रकार-रीतिसे वेदांतियोंका जीव न ब्रह्म× जीव ब्रह्म नहीं एसा सिद्ध हुवा; इतनाही नहीं, किंतु जब कि वेदांतियोंके ब्रह्म-ईश्वर और जीवकी× ही सिद्धि नहीं होती तब, उनकी एकता-मानना तो कैसे बने. एतद् दृष्टि "जीवब्रह्मएक," इस सिद्धांतमें विश्वास नहीं ठरता.

जो, मुसलमान. ईसाई वा पारसिओंके समान एसा कहेंगे कि "यह ब्रह्मांड विचित्र कार्य रूपहे-मनुष्यसे यह नहीं बना-नहीं बन सकता. कार्य, कर्त्ता विना नहीं होता. इस हेतुसे 'जगत् कर्त्ता कोई ईश्वर है" एसा मान लेना चाहिये. इतनेमें ही विश्वास रखो. इससे आगे तर्क, बुद्धि

---

* यह वेदांत पक्षका प्रसंग है, इस लिये अन्य पक्षोंके विशेष दोष नहीं लिखे.

\+ पूर्व [दर्शन २-३] में जो शैली-निर्णय प्रकार-रीति जताई है. उसका उपयोगभी यहां जीव स्वरुप निर्णय प्रसंगमें यथोचित ले लेना चाहिये.

× वाचक महाशयको विदित हो कि, इस प्रसंग विषे जीवेश्वरके खंडनमें आग्रह नहीं है; किंतु वेदांतियोंके जीव ब्रह्मकी एकता संबंध विषयकी असमीचीनता देखने अर्थ उनके माने हुये जीवेश्वरकी असिद्धिमें यथार्थ प्रयास है-उनका, माना हुवा जीव ईश्वर सिद्ध नहीं होता, यह आशय है. (पृ. १२९ की नोट देखो)

मत चलाओ; क्योंकि तमाम धर्म पंथकी नींव (मूल) विश्वास मात्रपरहे, अन्यथा नहीं. इसी प्रकार जीवेश्वरको विश्वाससे मानके तर्क, युक्ति प्रमाणविना, उनकी एकताभी विश्वाससे मान लो." इसका यह समाधान हे कि, उक्त हेतु निर्दोष नहीं; क्योंकि ईश्वर मानें; परंतु पूर्व रीतिसे सर्वज्ञत्वादिकी सिद्धि नहीं होती तब, कर्त्ता कैसे सिद्ध होगा? योक्तिक वा अनुमानिक विश्वाससे, विना कर्त्ताके भी, जगतका स्वरुप ओर क्रमसे जगतकी अनादिता सिद्ध होजाती हे. अतः वोह हेतु सदोष हे. ओर, जबकि, ईश्वरके मान्ने, अनुमानिक अस्तित्व ठेरानमें मूल साधन बुद्धि, युक्ति, कुदरतको मान्ना-इनका उपयोग लिया, तो फेर सर्व स्थल प्रसंग-विषे उनको लेनाही पडेगा. अन्यथा 'ईश्वर हे' इतना कथनही असंभव होगा. वा एक अणुमेंभी वा, मुझ अपनी सामर्थ्य न जितानेवालेमेंभी अगम्य शक्ति मानके अणुको वा मुझको ईश्वर क्यों न माना जाय? वा ईश्वर नहीं हे वा न मालूम क्या हे? इत्यादि क्यों न माना जाय? इत्यादि कारणसे संशय, असंभावना, विपरीत भावना रहित, मनको विश्वास नहीं होनेका.-किंतु भ्रमरूप वा कल्पना मात्र हे. जेसेकिः-जो मुसलमानोंका उक्त विश्वास सच्चा वा निर्दोष था तो उन्होंने स्व विश्वासमें रहे हुयेदूसरे धर्मवालों (पारसी, हिंदु वगेरे) के तन, धन, मन, आबरु, पुत्र पुत्री, स्त्रियोंको क्यों खराब-भ्रष्ट किया? क्यों दुःख दिया? किरोडों अनपराधि मनुष्योंको जान क्यों ली—रोमन केथलिक. प्रोटस्टंट ईसाईयोंने धर्म युद्धार्थ लाखों मनुष्योंका रक्त क्यों बहाया? वर्त्तमानमेंभी वे उभय, पर धर्मियों*को स्वधर्ममें लानेकी क्यों कोशिश करते हे? पीढियां-

---

* मूर्ति, वा गुरु वा सूर्य वा एक जड अणु उपर ईश्वर रुप-

से पूजते आये हुये विश्वासु पारसियोंकी पूज्य अग्नि उनके [अपने आश्रितोंका] ही हाथ वा पेरको क्यों जलाती हे ? सोमनाथ पट्टनवाले महादेव [जडमूर्ति] ने अपने विश्वासु पूजारियोंको, महमूद गजनवीसे क्यों न बचाया ? निदान एसे विश्वास, कथन मात्र वा कुविश्वास हैं; अज्ञ लोकोंको बहकाना ओर उनकी हाना करनी हे. अन्यथा १ कंकरमें रूपैयेका विश्वास करनेसे उस द्वारा बाजारमें पदार्थ प्राप्त, २ संखिया अमृतरूप फलप्रद, ३ उपासकका चतुर्भुजादि स्वरूपसे दर्शन, ४ ओर ब्रह्मज्ञानी वेदांतीभाई, अभिक्षुक, सर्वज्ञ-अंतरजामी हो जाना चाहिये. परंतु उक्त विकल्पों समान होता तो नहीं हे; अतः विश्वास मात्रसे ईश्वर वा जीव मानके उनकी एकता मान्ना एक प्रकारका छल, कपट, अज्ञान वा कुविश्वास होगा. व्यर्थ हे, हानीकारक हे. क्योंकि प्रमाण, युक्ति, कुदरतके अनुकूल नहीं हे. इसी प्रकार असिद्ध-असमीचीन एकतापरभी विश्वास अकर्तव्य हे. हेय हे.

ओर जो यह कहो कि "जेसे जीव वा ईश्वर वस्तुतः तत्व वस्तु हों वा न हों, [इस विवादसे अपना कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, अतः इसको त्याग देना चाहिये]; परंतु सदाचार-सद्धर्म-मनुष्य ज्ञातव्य-कर्तव्य-प्राप्तव्यमें लगे रहना चाहिये. दुराचार, अधर्म-अकर्तव्यसे, बचना चाहिये. अब मानो किः-१ 'यदि दंडदाता-फलप्रद कोई ईश्वर नहीं हे तब तो, सदाचारी, दुराचारी-उभयकी उनके मरने पीछे समान अवस्था हे (कुछ नहीं. शून्य.)-उभयमें कोई विलक्ष-

---

से विसवास रखनेवाले इत्यादि.

क-१४३ पृष्टसे पीछे १४४ पृष्टके उत्तर-इस दरमियानमें पृष्ट १४३ क, १४३ ख, १४३ ग, १४३ घ, १४३ ङ,

णता-विशेषता नहीं हे. परंतु जीवनकालमें सद्गुण कर्मवाले को तन मन ओर लोकका सुख-आनंद, फल मिलता हे-विशेष दुःख नहीं. ओर दुष्ट गुण कर्मवालेको तन, मन ओर लोकका दुःख, फल मिलता हे-विशेष सुख नहीं. इतनी उभयमें विलक्षणता-विशेषता हे; जोकि जडवादी-अनीश्वरवादी-नास्तिक, परलोक नेवादीकोभी संमत हे. २ यदि ईश्वर.. जीव वस्तुतः हों तो, मरने पीछेभी सदाचारीको वर्त्तमान जन्मसे विशेष सुख-स्वर्ग ओर दुराचारीको विद्यमान जन्म गत् दुःखसे अधिक-दुःख विशेष-नरक फल मिलेगा; इतनी उभयमें विलक्षणता-विशेषता हे. अर्थात् सदाचारी-सद्कर्म गुणवान उत्तम रहा. परंतु भय वा किसी लोभ विशेष विना, अदीर्घदर्शी-अज्ञानी जन-लोक समाजकी, परिणाममें स्वहानी कारक-निषिद्ध से निवृत्ति ओर परिणाममें स्व सुखकारक-शुभमें प्रवृत्ति होना-रहना कठिन हे-संभव नहीं. क्यों? उनका विषयाधीन होना स्वभाव रहताहे. एतद्दृष्टि दंडदाता-फलप्रद-व्यवस्थापक ईश्वरका मान्ना-मनाना ही उत्तम हे-लोकको सुखकारी हे. वेसेही, 'जीव ब्रह्मकी एकता हो वा न हो' इस विवादको छोड देना चाहिये. सदाचारादिमें लगे रहना योग्य हे. अब जो १-एकता नहीं हे-नहीं होती होगी' एसा मानें तो, उपदेशभी नहीं होसकता-अनहुईका ज्ञान नहीं होसकता. २-ओर 'जो हे वा हो' तो, जब तब होने योग्य हे-उसका ज्ञान हो जायगा. परंतु 'जीव, ब्रह्मरूप हो जावे'-नामा लोभ (-जब तब* जीव ब्रह्मकी

---

१४३ च १४३ छ, १४३ ज-८ पेजहें-प्रेसने अपनी प्रतिज्ञा न पाली ओर दूसरे प्रेसमें भी छपा, इस कारणसे एसा क्रम रखना पडा.

* 'वोह जन्म-समय यही हो-किसीको इसी जन्ममें उपदेश

एकताके ज्ञानसे मोक्ष होती है-) के विना, जिज्ञासुओंको एकताके ज्ञान होनेके विरोधी-प्रतिबंधकोंसे निवृत्ति-त्याज्य-निषिद्ध-निषेधसे अरुची ओर तिसके साधनोंमें प्रवृत्ति नहीं होसकती; इसलिये जीव ब्रह्मकी एकता (जीवका ईश्वर-ब्रह्म होना-है) के माने मनानेमें प्रयास करना चाहिये."

इसका उत्तर-समाधान यह है:-जीव, ईश्वर (वा जीव ब्रह्मकी एकता) के विवादको छोडके 'सद्गुण कर्म स्वभाव-का संपादन-ग्रहण-प्रचार-वर्तन-अभ्यास-उपदेश-श्रवण-मनन-उपयोग ओर दुर्गुण कर्म स्वभाव-प्रकृतिका-असंग्रह' इतना पक्ष तो ठीक है; यद्यपि सद्गुण कर्म ओर असद्गुण कर्मके स्वरूप-मंतव्य निर्णय संबंध विषे रूढी-जाति-देशका-मत-धर्म-पंथ-शास्त्रकारोंका विवाद-मत भेद है.-यथा:-'बौद्ध, मुसलमान हिंसाको, शाक्त, ख्रिस्ति-हिंसा—पशूवध, मांस खान-मदिरापानको, वेद-नियोगको, जैन-मनुष्य पीडा ओर मलिनताको, दोष-पाप-अधर्म-त्याज्य-असद् गुण कर्म नहीं मानते; अन्य मानते हैं. इत्यादि'—लोक विषे कितनीक मूल मूल वार्तोंमें अंतर है; तथापि जिसको मनुष्य मात्र मंडली-सर्व सद्गुण कर्म मानते वा मान सकते हों, वेसी वार्तों-यावंतोंके संबंधमें उक्त-पक्ष-आपका कथन लागु पड जाता है-सद्गुणादिका निर्णय हो जाता है. यथा,[1]-'सत्य, अक्रोध, धैर्य, क्षमा, अस्तेय, तन मन वाणीकी पवित्रता, इंद्रिय मन-को स्वाधीन रखना, बुद्धि-वीर्य-बल ओर विद्याकी वृद्धि करना—तदर्थ तद्योग्य-वेसे उपाय लेना;' यह धर्म—इन

द्वारा होने वालाहो. अतएव उसका प्रचार-उपदेश सर्वदा उचित है' एसा इस वाक्यका अध्याहार-अदृष्ट प्रयोजन है.

[1] तकरारी-विवादित विषय है.

का मूल मनुष्यमें स्वभावतः+ अदृष्ट जेसा विराजमान हे. वा मनुष्यके कर्तव्य हें. तिसके विपरीत अकर्तव्य हें.-यह †वात सर्वको संमत हे. इस लिये सर्व मान्य गुण कर्म--आचरण विषे आपका कथन मान्ने योग्य हे. तथापि जीवेश्वर—जीव ब्रह्म-की एकताके विवादको छोडकेभी, वेसा सिद्धांत नहीं मान सकते. अर्थात् जो 'एकता नहीं हे,' तब तो, आपका पक्ष गया. ओर उक्त धर्मका उत्तम फल, जीव भोगेगा. ओर जो 'एकता हे' तो, जीवको कुछ कर्तव्यही न होगा.-कर्मोपासना ज्ञानकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी. ओरभी, जीवेश्वरकी एकता मान्ने मात्रका फल, जेसे विद्यमान-जीवनकालमें भिक्षा मांगना, द्वंद्व सहन करना, बुरी भली दृष्टि उठाके-पाप पुण्य-उनका फल न मानके अनाचरण-यथेच्छा वर्तनमें प्रवृत्त होना—आलसी बन्ना,–इत्यादि, दुःखोत्पादक कृत्य ओर उनके मान्नेवालोंको विशेषतः दुःखी देखते हें. वेसे 'मरने पीछेभी, दुःख फल होगा' एसा क्यों न माना जाय ? ब्रह्म-ईश्वरकी बराबरी करनेसे सुख फल मिलना मुशकिल –असंभव. ओर शब्देतर, न–उसकी साक्षी. जो आप, उन सत्कर्म उपासनादिका जीवन सुखार्थ, कर्तव्यता मानोगे, तो

+ मिथ्यावादीभी, अपने संबंधमें अपने सामने झूट बोलनेवाले वा झूटको अपने दिलमें बुरा समझता हे. चोरकोभी अपनी वस्तु चुरानेवाला वा चोरी, मनमें बुरे मालूम होते हें. इत्यादि.

† सत्यादि दसवातें मनुस्मृतिमें मनुमहाराजनेभी बताई हें. इनका कुछ विस्तार ओर कर्मोपासना ज्ञान–इन तीनोंके विना, मनुष्यका किंचित्भी जीवन व्यवहार नहीं हो सकता. इत्यादि कितनेक सर्व मान्य विषयोंका 'व्यवहार दर्शन' नाम प्रसिद्ध ग्रंथमें वर्णन हे.

'एकता वा भेद है',-'है सो है'-इसका उपदेश अकर्तव्य है. किंतु 'उन सर्व मान्य विषयका ही-उपचार-उन्नति-उपदेश योग्य है'; एसा मान लेना पडेगा. अनिश्चित्-असत्यका लोभ देना छोड देना होगा. ओर जो एसा कहोगे कि. "एकता तो है ही'-केवल-उसके जनाने वासते प्रयास है" तो, मैं यह कहूंगा कि जनाना व्यर्थ है; क्योंकि उसके मान्नेसे मनुष्यका जीवन सुख नष्ट पर्याय होजाता है.-कर्तव्य दृष्टि उठनेसे नाना दोष प्राप्त होते हैं वा उनका अवसर रहता है. तथाहि एकता अदृष्ट फल नहीं, इस लिये आपका दृष्टांत, दार्ष्टांतसे विषम है; अतः मान्य नहीं. पुनः एसी (आपने जो कही वैसी) कल्पना मानभी लेवें तो, एकताके बदले "उसका निषेध क्यों न मान लिया जाय ? वा असद् बोलना-सत्य नहीं बोलना. एसा क्यों न स्वीकारा जाय ?-क्यों न कहा वा माना जावे. ?" अर्थात् कल्पना तो कल्पना. तथाहि इस एकता-फल-कल्पना प्रसंगमें वादको अवसर मिलनेसे आपकी पूर्वोक्त (विवाद त्याग) प्रतिज्ञाका भंग हो जायगा. एतद्दृष्टि सर्व मान्य उन्नति-सुखकारक उक्त बाबतोंका ही उपदेश-मान्ना-मनाना उचित्-योग्य है. असिद्ध, कल्पित-जीव ब्रह्मकी एकता नाम सिद्धांतका उपदेश योग्य नहीं-हानी कारक है.

शैली-दर्शन-५.

जो यह कहो कि, "आर्यावर्त्तमें जब बौद्ध ओर जैन मतने बल पाया, ओर वेद ईश्वरकी मान्यताका अभाव हुवा; तब शंकराचार्य महाराजने, जीवेश्वरकी एकताकी शैली निकाली, अर्थात प्रत्येक जीवोंको ईश्वर सिद्ध कर बताया. उ-

पनिषदोंके अर्थ वैसेही किये. और उसके सिद्ध करनेके लिये अनेक प्रकारकी प्रक्रिया घडी गई. (जिनका खंडन मंडन वर्त्तमान विषे हो रहा है). अन्यथा वस्तुतः जीवेश्वर कोई पदार्थ नहीं; किंतु मायिक-कल्पित-मन घडत हैं. केवल "चेतन ब्रह्म सत्य, तदंतर मिथ्या." यह सिद्धांत है." जो एसा हो तो, उनके महत्वका निषेध हो पडनेसे यूं क्यों न कहा जावे कि 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या' यह सिद्धांतभी पूर्व प्रकारवत् कोई गुह्य कारणसे कल्पा हो? और इस शैली (जीवको अकर्त्ता अभोक्ता ईश्वर वा ब्रह्म कहना) से आर्यावर्त्तमें कितनी हानी हुई और हो रही है, उसका दोष किस पर होगा? कर्म उपासना गई; वेद ईश्वर मिथ्या ठेरे; नास्तिकता आई; मिथ्या सिद्धांत होनेसे मोक्षभी नहीं मिला; निरुद्यमता, आलस्यने दबा लिया; दुराचार (व्यभिचार-गुणे गुणान वर्त्तंते) फेल गये; "युवति सदा भोगे संन्यासी" "त्याग आश ईशकी" "न बंध न मोक्ष" "न निरोधो न चोत्पत्ति". इत्यादि वाक्य बोधक ग्रंथ फेलने लगगये; अतएव आपका मंतव्य वा शैली ठीक नहीं-त्याज्य है. इससे अच्छा तो यह सिद्धांत था कि, **"जगत् सत्यम् ब्रह्म मिथ्या जीव ब्रह्मैव ही परः"**-जीवको भय बना रहता. असद् कर्म न करता. सद्कर्ममें लगा रहता. सनीति व्यवहार चलता.

"जो यह कहो कि, "ब्रह्मसे जीव वा प्रकृति कभीभी भिन्न देशमें नहीं होते-ओत प्रोत हैं-अनादि कालसे साथ (समवायसे) रहते आये और हैं तथा रहेंगे; अतः एकता है." उक्त मंतव्य माननेसे, यद्यपि ग्रंथ लिखित दोषोंसे इतर प्रकारके दोष आवें वा न आवें-[उसका यहां प्रसंग नहीं],

तथापि प्रचलित वेदांत संबंधमें, जो इस ग्रंथ विषे दोष लिखे, वे नहीं आते. जब यूं हे तो, इस शैलीका प्रकार मानके कर्म, उपासना, सदाचार आदि करो. कराओ. अहं ब्रह्मपना छोडो छुडाओ.

जो यह कहोकि "जो वस्तुतः सिद्धांत (असल रहस्य-बात हे सो), शब्द पद्धति वा कोईभी प्रकारकी शैली रचे विना, नहीं समझा सकते-समझाने विना जीव, तत्व रहस्य पर नहीं पहोंच सकता; इसलिये अन्य शैलियोंसे उत्तम "जीव ब्रह्मकी एकता" नामक शैली ओर नाना प्रकारकी प्रक्रिया ओर परिभाषा (पद-शब्द) रचेहें. नहीं तो-वस्तुतः (चिद् ब्रह्म) जड (माया) उभय के स्वरूप अकथ-कल्पनासे पर-सविकल्प निर्विकल्प रहित होनेसे जो कुछ सुनते, कहते, विचारते-कल्पते-सुनाते-उपदेश करते-लिखते हें, वोह तमाम, सदोषहे. अतएव तुम्हारा (समीक्षकका) कथन-खंडन (जो कहा ओर कहोगे) मान्य वा स्वीकार करने योग्य नहीं." इस मोहक कथनका यह उत्तरहे कि, जेसे आप कहते हो वेसे, अन्य मत पंथवाले (यथा अनेकांत वादी जैन, विज्ञान वादी बौद्ध, चारवाक, जडवादी वगेरे) भी स्वसिद्धांत मनाने वास्ते कहतेहें. तहां, 'किसका कथन, शैली, प्रक्रिया, सिद्धांत यथार्थ माने' यह बात जिज्ञासु (जिसने यथार्थ सिद्धांत-असल तत्व, साक्षात् नहीं कियाहे ओर उसके जान्ने के लिये पूर्ण इच्छा रखताहे सो.) निश्चय नहीं कर सकता-उसे ज्ञात नहीं हो सकती-सर्व मतोंमें डांवा डोल होनेवालाहे. सर्व पक्षकारोंके वास्ते, समान खयाल-विचार-कल्पना (सर्व पक्षकार-मतवादियोंकी भिन्न २ शैली-शब्दार्थ-शक्यार्थ-शब्द रचना-लक्ष्य लक्षण सिद्धांत-मंतव्य-निश्चय सत्य नहीं

होसकते, उनमें कोइ एकके सत्य वा सर्वके असत्य-अर्थ शून्य होंगे-वा तद्भिन्न अन्य सत्य-यथार्थ होंगे) करने योग्य होगा. उसकी अव्यवस्था होगी. तदुपरांत इसका उत्तर अनुभवादि प्रसंगोंमें भीहे. तथाहि आपका उक्त कथन यदि 'यथार्थ हे' एसा मानभी लेवें, तो आप (मिथ्या-जड अंतःकरण वा वेदादि) कुछ (ब्रह्मनित्य, माया अनादि सांत, जीव ब्रह्म एक, बंध मोक्ष, वा जीव ब्रह्महे वा नहीं, इत्यादि) भी कहने योग्य नहीं रहोगे. आपके संप्रदायी ग्रंथ वा उपदेश बंद करने पडेंगे.

किंवा, जेसे देशकालानुसार उक्त [एकाकी] शैली निकालीथी, वेसे अबभी आप विद्वान, बुद्धिमान, सज्जन, परोपकारी, निष्कामी, महाशय संप करके संप सदाचार-प्रवर्त्तक, सद्धर्म सूचक, वेदेश्वर सिद्धक, किंवा अन्य प्रकारकी, अन्य धर्म पंथोंसे शिरोमणि उत्तम ओर पाखंड धर्म नाशक योक्तिक नवीन शैली, निकालके प्रचार करिये तो ब्रह्म[1] स्वरूप बननेसे जो हानी हुई सो तो हुई (अनहोनो नहीं होती), परंतु जो हो रही[2] हे, सो बंध पड जाय. ओर होने वालीका मूल-बीज उखडे अस्तु.

---

१ वल्लभ संप्रदाय लीला सूचक, गुजराती भाषाका 'पुष्टि मार्ग' नामक ग्रंथ वांचो,

२ पांचों उंगली समान तो नहीं होती. तथापि कच्छ, काठियावाड, पंजाब, मुंबाई, सिंध, नाथद्वारा, शाहपुरा, व्रजादि देशों विषे जाके अखाडे, द्वारे, मंदिर, सत्संग-मंडलीको योग्य रीतिसे तपासिये, उनके सामान्य संगियोंमें ब्रह्मज्ञानाभिमानियोंके संस्कार, खयाल, आचार, पुरुषार्थ सामान्यतः शोधिये. शुद्ध-सच्चा-सदाचारी महात्मा पदका वाच्य कोई विरला पुरुष पाओगे. शेषतोदोष,

सूचना.

वक्ष्यमाण दर्शनोंमें योग्य युक्ति (सृष्टिनियमानुकुल बुद्धिका उपयोग) विशेषका प्रसंग आनेवालाहे; अतः वाचक महाशयको पूर्वोक्त (दर्शन २) तर्क प्रतिष्ठा प्रसंगपर ध्यान होना चाहिये. गंभीरता पूर्वक तर्क (अनिष्टापादान) की महिमा ध्यानमें रहने वाले यह रुपालंकार बसहे.

[1] अज्ञान. विपरीत भावना, असंभावना, संशय. तर्क. निर्णय—ज्ञान.

[2] शूद्र. दुष्ट. वैश्य. क्षत्री. ब्राह्मण.

विश्वास } प्रमाण शून्य. अनुमान. प्रत्यक्ष. { यथार्थ (सयुक्त) अनुभव
शद्ब. }

अतः जो व्यर्थ वा सदोष वा हारजीत मात्रकी अपेक्षासे शुष्क तर्ककी जातीहे, उसको छोडके तर्क-युक्ति प्रसंगको ध्यान बाह्य वा उसकी उपेक्षा करना, कायरता ओर हानीकारक भीहे. क्योंकि जेसे क्षत्रीका काम प्रजाको दुष्टोंसे बचाके रक्षा ओर पालन करनाहे; सूत्र वाडका कामहे, पशु वा अनिष्ट वायुसे फूलोंको बचाना. वेसेही तर्क युक्ति द्वारा असत्के नाशपूर्वक सत्की रक्षा होतीहे; असतसे सत् बच जाताहे; अज्ञानादिके निवृत्त ओर यथार्थ ज्ञान होनेका वोह सहकारी साधनहे. अतः कितनेक भाई जो एसा कहते वा मानतेहें कि "तर्क बढाना अच्छा नहीं—हेयहे." यह वात सर्व स्थलमें मान्य नहीं होसकती. किंवा उनकी कायरताहे; यह मान्यता, उनको यथावत-यथार्थ हाथ न लगने ओर दृढता न होनेका वा वेसे अवसरका चिन्हहे. उपमा, उपमेय उभय भिन्न २ हुवा करतेहें; परंतु वेदांती भाई रज्जु सर्पादिके दृष्टांतोंसे उनके उपादान कारण मायाको मिथ्या सिद्ध करतेहें, यह अमान्य युक्तिहे; क्योंकि उभय एकरुप-साध्यहें. इत्यादि. *निदान एसे व्यर्थ युक्ति, तर्क त्याज्यहें. निर्णय के साधन योग्य तर्क-युक्तिका अनादर करना योग्य विषय ओर अपने मान्य मान तथा विद्वान फिलोसोफरोंका अपमान करने समानहे.

---

१ उपमेय. २ उपमा. * एसेही अन्य वाडे पंथके पक्षकारोंमें दोष आतेहें.

ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या–दर्शन–६.

हमारे प्रयोजनका विषय प्राचीन वृत्तिकार ओर नवीन वेदांतियोंका असंभव अंश नाम सिद्धांत हे; किसी पूज्य योग्य आप्त व्यक्ति[1] वा मान्य ग्रंथ किंवा सद्वेदांत[2] खंडनमें प्रयोजन–आशय नहीं हे; किंतु सदासद्विचार वास्ते उद्यत होके सत्प्रचार हो, इतना आशय हे. किसीके मत–धर्म–पंथ वा योग्य ग्रंथ किंवा किसी महात्माकी निंदा स्तुतिमें हमारा प्रयोजन नहिं हे.[3] एतद्दृष्टि पूर्वोक्त

---

१ उपनिषद् कर्त्ता, ब्रह्मसूत्र कर्त्ता, गीता रचने वाले, उनपर वृत्ति ओर भाष्य करनेवाले इत्यादि पूज्य महात्मा वा आचार्य व्यक्तिओंपर कटाक्ष नहीं हे; क्योंकि मेरी समझ अनुसार में एसा समझ रहा हूं के सर्व फिलोसोफरों (गौतम, कणाद, कपिल, जैमिनी, अरस्तु (आरिस्टोटल), फीसांगोरस [पीथागोरस], बुद्ध, जिन तीर्थंकर महावीर. वा वर्त्तमानके यूरोप अमेरिका वाले–तमाम फिलोसोफर–इत्यादि) से वेदांत कर्त्ताकी फिलोसोफी प्रबल ओर उत्तम हे. तथापि सुव्यवहार विरोधि, भ्रष्टकारक ओर असंभव, " अनादि सांत, मिथ्या ओर जीव ब्रह्मकी एकता संज्ञक अंश (वा सिद्धांत) रूप वर्त्तमान प्रचलित शैली " पर तमाम ग्रंथका कटाक्ष हे.

२ जो नैसर्गिक सृष्टि नियमानुकूल युक्ति अनुभव सिद्ध सद्–यथार्थ–हो, उस वेदके सार–[वेदांत पदके वाच्य]–वेदांतपर कटाक्ष नहीं.

३ वेदके सार जानेवाले, ऐसा नहीं किंतु रुढीमें [अतीत गोसांईवत्] वेदांत संप्रदायी नाम धरानेवाले.

वेदांत सिद्धांतके एक अंश-जीव ब्रह्मकी एकताका खंडन (दोष) ऊपर लिखनेमें आया हे. ओर अब आगे उस सिद्धांतके दूसरे अंश (ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या; असंत निवृत्ति) विषे तथा उक्त सिद्धांत संबद्ध अन्य प्रचूरण विषय संबंधमें संक्षेपसे (शंका-खंडन-दोष) लिखतेहैं:-

आप (वेदांती महाशय) के माने हुये पूर्वोक्त (ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या) सिद्धांत स्विकार करनेपर अन्य भी अनेक शंका-प्रश्न-संशय उत्पन्न होते हैं, यथा-ब्रह्मसे इतर कोई सत्य भी हे वा नहीं? जो कहोगे कि हे; तो स्वपक्ष त्याग होगा-द्वैतापत्ति होगी. जो कहोगे कि "नहीं हे; ब्रह्मेतर सर्व मिथ्या हैं;" तो ब्रह्मेतरका मिथ्यात्व, सत्य-नित्य हे वा मिथ्या-असत्-अनित्य हे? प्रथम पक्ष मानोगे तो, मिथ्यात्व नामा धर्म सत्य होनेसे उसका आश्रय धर्मी (ब्रह्मेतर अन्य भी) सत्य ठेरेगा; ओर दूसरा-उत्तर पक्ष मानोगे तो, मिथ्यात्वको मिथ्या वा असत् मान्नेसे व्याघात हे ओर स्व पक्ष त्याग होगा; तथा ब्रह्मेतरकोभी सत्य माना, एसा परिणाम निकल आवेगा. जो ५ मिनीट वास्ते हठसे आपका पक्ष मानभी लेवें तोभी, दोषसे रहित नहीं होता, अर्थात् वेद-शब्द, वाणी, मन, बुद्धि, वामदेव, उद्दालक ओर आपका कथन, मंतव्य बंध मोक्ष, कर्मोपासना, ओर श्रवण मननादि उपदेशभी मिथ्या होंगे. जब यूं हे तो, आपको व्याघात दोष प्राप्त होगा, अर्थात् पूर्वमें आपने उपनिषद्, जीव ब्रह्मकी एकता इत्यादि मिथ्याको प्रमाण ओर सत्य माना हे; अतः आपका मंतव्य कथन ओर विश्वास त्याज्य हे.

जो ऐसा कहोगेके " व्यवहारमें तो सर्व सत्यही हे परंतु परमार्थमें ब्रह्मेतर सर्व मिथ्या हे " तो सहजमें यह प्रश्न उठता हे के ब्रह्म स्वयंभू हे. उससे इतर व्यावहारिक [वेदादि] सर्व मिथ्या हें. सो, उसकी प्राप्ति करनेमें साधनभूत नहीं होसकते ओर ब्रह्म, प्राप्तभी किसको होवे ? स्व स्वरूप तो सदा प्राप्तरूप हे. ओर मिथ्या–जड उसको प्राप्त नहीं होसकते. वा वोह इनको प्राप्त नहीं होसकता, जेसे स्वप्नका स्वयं स्वप्नद्रष्टा–राजा–जाग्रतकी भूमि ओर राज्य सत्ताको नहीं लेसक्ता; स्वप्नगत दुःखको जाग्रतके वैद्यसे निवारण नहीं करासक्ता; वेसेही व्यावहारिक वस्तु, पारमार्थिक ब्रह्मको नहीं प्राप्त होसक्ती, वा नहीं करासकती, वा ब्रह्मरूप नहीं होसक्ती. इसलिये जीव ब्रह्मकी एकताका उपदेश वा मंतव्य व्यर्थ हे. कारणके आपके सिद्धांतानुसार उसके मानने वा विश्वाससे व्यावहारिक मिथ्या मोक्षकी प्राप्ति, फल होगा. अन्य कुछ फल नहीं. अर्थात् पूर्वोक्त रीतिसे परमार्थरूप ब्रह्मकी प्राप्तिका अभाव हे. एतदृष्टि यह सर्व मंतव्य वा उसकी सिद्धि मानो थूकके पकोडे वा राखमें द्रव्याहुती (द्रव्य, काल, व्यय करना) जैसा हे.

जो कहो के " हमको इष्ट हे अर्थात् बंध, मोक्ष, जिज्ञासु, अधिकारी, उपदेश, साधन, वेद, अहंब्रह्मज्ञान, जीव ब्रह्मकी एकताका मंतव्य–इत्यादि मिथ्या हें. ब्रह्म चेतन मात्र सत्य हे. " तो मिथ्या स्थाणु पुरुष समान, द्रष्टा पुरुष ब्रह्मको सिद्ध न कर सकोगे–न जान सकोगे. मिथ्याका विषय ब्रह्मभी मिथ्या माना पडेगा.

आपको निष्फल-निष्प्रयोजन, मिथ्यावादित्व स्वीकारना होगा. ‘स्व हानी करनेमें जीव स्वतंत्र हे, फल भोगनेमें परतंत्र हे.’ जीववादीके एसे सिद्धांतसे आप देवनके प्यारेको जो गति प्रिय हो सो मानो. अस्तु.

अहो आश्चर्य !! श्रोतादिकोंको, मिथ्या स्वमंतव्य (अहंब्रह्म जगत्मिथ्या), मिथ्या मानके फेर उपदेशादि व्यापारमें प्रवृत्त होना क्या न्यून दोष हे?

परंतु वास्तविक रीत-प्रकार-भाव-से आपका सर्व कथन, मंतव्य, उपदेश दोषग्रस्त रहने, असमीचीन होने, युक्ति प्रमाण ओर सृष्टि नियमानुकूल न होने, ओर परिणामशून्य वा भ्रष्टकारी होनेसे अमान्य-त्याज्य हे.

श्रेय-दर्शन-७.

जो के आपका सिद्धांत यथार्थ नहींहे, अतः उसका फल-श्रेयभी यथार्थ नहीं होना चाहिये, कारणके “ब्रह्मेतर जीव-मायादि अनादि सांत” यह आपका सिद्धांत हे. इस असंग मंतव्यसे श्रेयभी नहीं; क्यों के जीवका स्वरूप आपकी रीतिसे, अंतःकरण विशिष्ट (अंतःकरण पदसे वेदांतमतगत पक्षमें अविद्यादि सर्वका ग्रहण हे. जेसेके पूर्वमें जीवके स्वरूप कहेहें.] चेतन हे. “सोअंतःकरण सावयव मध्यम परिमाणवालाहे. अन्यथा शरीरकी वृद्धि क्षय ओर न्यूनाधिक [हस्ति, कीडी] शरीरमें जीव जन्मकी व्यवस्था नहीं बनती” ओर चेतन विभू परिमाणवाला हे. अब जो जीवगत अंतःकरण भागको कर्त्ता भोक्ता मुख्य जीव मानें, तो जीव मध्यम स्वरूप हुवा. मध्यम परि-

णामी, सादि सांत होता है, यह सिद्ध नियम है, अतः जीव सादि सांत हूवा. ओर जो अकर्त्ता अभोक्ता चेतन भागको मुख्य जीव मानें, तो अनादि अनंत होगा. ओर जो विशिष्ट [उभय] को मुख्य मानो तो उभय प्रकारके दोष आनेसे अव्यवस्था होगी. अनादि सांत वा सादि अनंत नहीं कहसकोगे. निदान उभय प्रकारसे कर्तृत्व, भोक्तृत्व, कर्मोपासना, ज्ञान ओर उसका फल मोक्ष मानना व्यर्थ वा असंभवहै, यह स्वयं सिद्ध होजाता है. [सादि सांतका पुरुषार्थ ओर मोक्ष कुछ नहीं. नाशवान् होनेसे. अकर्त्ता अभोक्ताका बंध वा मोक्ष कुछभी नहीं बन सकता अतः उसके साधनभी नहीं. ओर विशिष्टमें यही उभय दोष हैं.] इसलिये उभय प्रकार श्रेय ओर साधनके अभावसे तत्वमस्यादिका उपदेश वा उनके मनमाने अभिप्रायका मंतव्य, व्यर्थ है.

जो यह कहो कि "माया–अज्ञान ओर उसका कार्य अविद्या अंतःकरणादि (सावयव–मध्यम) सांत हैं." तो, सर्व जीव, कर्मोपासनादिभी सांत मालूम पडनेसे उसका फल मोक्षकोभी सांत स्वीकारना पडेगा. क्यों कि जो बंध होवे उसकी प्रति वा उसकी मोक्षका व्यवहार कहा जासकता है; ब्रह्म बंध मोक्षसे रहित है. अतएव यह शंका उठती है कि मोक्ष किसकी ? तहां जिसमें बंध मोक्षका व्यवहार है वा तदर्थ जिसको उपदेश है ओर जो उपदेशकर्त्ता है; यह सर्व मायाके कार्य होनेसे सांत हैं, अतएव मोक्षावस्थाका आश्रय वा अभिमानी–जीव सांत होनेसे मोक्षभी सांत ठेरी. इसी वास्ते श्रेय अभा-

वका कथन यथार्थ है.

कोई ओर किसी प्रकारकीभी वस्तु (जो कि वस्तुगत्या वस्तु हो) " जो अनादि है सो, सांत नहीं होती ओर जो सादि है सो, अनंत नहीं होसकती " यह सृष्टि नियम है.-सर्व विद्वान ओर बुद्धिमानोंको किंचित् बिचारसे सो नियम गम्य होने योग्य है. " ओर जो नैयायिकादि (किरानी, कुरानी, पौराणी, जैनी, वेदांती आदि[1]) प्रागभावादिको अनादि सांत ओर प्रध्वंसाभावादि (वा कोइ पक्षकार संयोगके वियोग) को सादि अनंत मानलेते हें सो वात, सर्वथा युक्ति प्रमाण ओर अनुभवके विरुद्ध है. तथाहि वेदांत पक्षमें अभावजन्य भावरुप पदार्थका होना ओर प्रागभावादिको पदार्थ मान्ना अंगीकृतभी नहीं है, अतःएव विस्तार *नहीं लिखते. तथापि

---

१ किरानी कुरानी, ईश्वर सिवाय अन्य तमामको अभावजन्य भावरुप पदार्थ मानके सादि अनंत ओर कर्मफल तथा मोक्षकोभी सादि अनंत मानते हें. पौराणी, जैनीभाइ मोक्षको सादि अनंत कहते हें. वेदांतीभाई ब्रह्मेतर माया, जीव, ईश्वरको अनादि सांत ओर मोक्षको सादि अनंत मानते हें, इत्यादि. यद्यपि वेदांत पक्षमें माया, जीव, बंध ओर मोक्षको सर्व प्रकार अनिर्वचनीय कहते हें. तथापि वे निर्णय प्रसंगमें (गडबड करके) उक्त दोषवाला पक्षभी मानलेते हे जेसेकि ब्रह्मज्ञान हुये जीव अमृत-मोक्ष होता हे. बंधसे छूट जाता हे. इत्यादि.

* प्रथम तो, अभाव वा वियोगका कोई परिमाण सावयव निरवयवता-स्वरूप वा पदार्थत्व सिद्ध नहीं होता (खाद्यखंडन, तत्वदर्शन बांचो),-सर्व पक्षकारों में अभाव वि-

जो कदाचित् स्वपक्ष निवार्ह करने वास्ते स्वीकारेंगे तो, मुझको यह कहना पडेगाः–अज्ञानके नाश पीछे उसका अभाव अनंत रहेनेसे द्वैतापत्ति होगी. जड चेतनका भेद (अन्योऽन्याश्रयाभाव) भी अनादि अनंत मानना पडेगा.

वादका विषय हे. जों उसको कल्पना मात्र कुछ मानभी लेवें तो, व्यवस्था नहीं बनती; क्यों के जो " अभावका अभाव भाव रुप होताहें" इस नियमानुसार प्रागभावका अभाव [सांतपना] उसके प्रतियोगी (घटादि) स्वरुप मानें तब तो, प्रतियोगी घटादिके ध्वंसकालमें सोही प्रध्वंस अभाव होनेकी;–एकही प्रागभावका परस्पर विरोधि स्वरुप [पूर्वमें अभाव, पुनः भावरुप–घट, पुनः अभाव–प्रध्वंसाभाव] मान्ना हास्यजनक वात हे. ओर फेरभी उसके स्वरुपका अनादि अनंतत्वका अभाव सिद्ध नहीं हुवा. जो उसके प्रतियोगीसे भिन्न उसका ध्वंस [वा स्वरुप] मानो तो,उसके प्रतियोगी के उपादानसे अन्य कोइ अनुयोगी–आधारही सिद्ध नहीं होगा. ओर अभावका अभाव ही क्या ? तथाहीं प्रतियोगी [घटादि] के प्रागभावके प्रध्वंसाभावका प्रागभाव उसकी उत्पत्ति कालमें नहीं रहा, इसलिये इस प्रध्वंसका पुनः प्रागभाव मान्ना पडेगा. इस रीतिसे अनवस्था, अव्यवस्था रहती हे. तद्वत् घटके प्रध्वंसाभावके प्रागभावकी अव्यवस्था होती हे. इत्यादि प्रकारसे प्रध्वंसाभाव ओर वियोगके सांत मान्नेमेंभी दोष कल्प लेना चाहिये. ओर सादि कर्मजन्य मोक्ष फलको अनंत कहना–मान्ना सो तो अविचारवान, विश्वासिके सिवाय कोन मानता हे. तद्वत् अभावजन्य भावरुप सादि अनंत मान्ना हास्यजनक वात हे. इत्यादि संक्षेपमें जनाया हे (बुद्धिमान स्वयमेव विस्तार करलेने योग्य हे].

जिसकी मोक्ष अवस्था है उसको (जीवको) अनादि अनंत कहना पडेगा. यदि मोक्ष कोई वस्तु हे तो, ब्रह्म तथा मोक्ष दोनों अनादि अनंत मानने होंगे. ब्रह्म ही मोक्ष स्वरुप हे तो, तिस (ब्रह्म) की जिसको प्राप्ति हुई उसको अनादि अनंत कहना पडेगा.—इत्यादि स्वीकारनेसे द्वैतापत्ति होगी. स्वपक्ष त्याग होगा. जीव तो अभाव जैसा अभावरुप नहीं हे; किंतु भावरुप पदार्थ हे ओर मोक्षभी भावरूप [अवस्था वा पदार्थ] मानते हैं; इसलिये पूर्वोक्त नियमके विषय हैं. इस रीतिसे जीवको अनादि मानें सांत नहीं ठेरता, ओर मोक्ष सादि मानें अनंत नहीं होसकती. अर्थात् मुक्त जीवकी पुनरावृत्ति माने विना छुटकारा नहीं होगा[1] जोके वेदांत पक्षके विरुद्ध हे. इत्यादि रीति—पूर्वोक्त नियमसे वेदांतियोका मंतव्य अलीक हे—श्रेयरुप नहीं. जो कदाचित् एसा कहोगेकि "जीव, माया, ओर मोक्ष—श्रेयको अनिर्वचनीय स्वरुप अनादि अनंत ओर मोक्ष अनिर्वचनीयरुप सादि सांत मानके पुनरावृत्तिभी वेसीही (मिथ्या) मानलो." तो आपके सिद्धांतानुसार कुछ श्रेय हि नहीं हुवा. मिथ्या तो मिथ्या. मृगजलसे प्यास नहीं जाती.

जो यह कहो कि " अनिर्वचनीय " का पारिभाषिक अर्थ अनिर्णिय हे. तब तो जैनियोंके मत समान, आपका सर्व सिद्धांत अनिश्चित—अनेकांतिक होनेसे त्याज्य होपडेगा. ओर जो सदासद्विलक्षण—मिथ्या अर्थ

१. जो एसा नहीं मानोगे तो प्रकृत्ति व्यर्थ रहेगी. सृष्टिका अवच्छेद होगा. जोकि —असिद्ध—अमान्य पक्ष हे.

करोगे, तो पूर्ववत् मिथ्या अनादि अनंत वा सादि सांत मान्नेसे पूर्वोक्त दोषका परिहार नहीं होगा. ओर "अत्यं-त दुःखकी निवृत्ति, परमानंदकी सदा प्राप्ति" जो आपकी मोक्षका स्वरुप है उसका, अधिकारी सिद्ध नहोने ओर पुनरावृत्ति मान्नेसे [सो] अलीक हो जायगा. [एवं पक्ष पुनः विचारिये ?]

जो यह कहो कि 'ज्ञान कर बाध्य-बंध मोक्ष जीवेश्वर सर्व अज्ञान करके भासमान हैं वा कल्पित-मिथ्या हैं. अतः पूर्वोक्त शंका समाधानकी अनुत्पत्ति है;' तो यह कथन भी ठीक नहीं है. क्यों के अनादि सांतादि कथन वा मंतव्य तथा मोक्षके लक्षण माननेसे उक्त प्रश्न बनते हैं ओर मिथ्या स्वरूप अनादि अनंत माननेसे उक्त प्रकारसे उसकी व्यवस्थाभी होजाती है.

परंतु आपकी रीत [ज्ञान कर बाध्य अज्ञान कर प्रदर्शित, कल्पित-मिथ्या] में प्रत्युत विशेषतः यह प्रश्न उठता है के, मायादि किसके अज्ञानसे किसको प्रदर्शित हैं-[अवभासमान होवें हैं]? तहां, ज्ञान-प्रकाशस्वरूप ब्रह्मको अज्ञानहै, यह कहना तो बने नहीं ओर ब्रह्मका अज्ञान, जड माया वा तत् कार्य जीवादि को कहनाभी नहीं बनता. इन दोनों पक्षसे तीसरी यह बात स्वयंसिद्ध होजाती है के, जड चेतन उभय मिलके विशिष्टकोभी उनका-[अपना]वा ब्रह्मका, अज्ञान कहना नहीं बनता. क्योंकि उभयके भिन्न २ स्वरूपमें उसका (अज्ञान होसकनेका) बाध

है. तथा जीवेश्वर बंध मोक्षको वेदांती मायिक वा अ-
ज्ञान कल्पित मानतेहैः अतः उनको ब्रह्मका; ज्ञान वा अ-
ज्ञान कहना नहीं बनसकता. क्योंकि कार्य स्वोपादानको
विषय नहीं करसक्ता. ओर अज्ञानकोही [१]ब्रह्मका वा आपका
अज्ञान है, अतः अज्ञानको प्रदर्शित है; यह कथन बालकोंकी
कहानी समान हास्यकारक है. इसी प्रकार अपना आपको
ज्ञान न होसकने ओर ब्रह्ममें ज्ञान गुण वा ज्ञान धर्म न होने
किंतु ब्रह्मको ज्ञानस्वरुप माने–ज्ञाता न होसकनेसे–अज्ञा-
नके तथा उभय विशिष्टमें उभय वाले दोष आने करके
उसमेंभी योग्यता न होनेसे, अज्ञानकू ज्ञान होनेमेंभी दोष
जान लेना चाहिये. अतएव पूर्ति न होने ओर अव्यवस्था
तथा दोष प्राप्त होनेसे उक्त विकल्प वा आपका मत त्याज्यहै.

ओर जो कहो कि ‘माया [अज्ञान, अविद्या] क-
ल्पित है.’ तो, यह प्रश्न उठता है के किसकी कल्पी हुइ
है? अंतःकरण, जीव, अविद्या ईश्वरादि तो मायिक हैं
ओर चिदाभास, मायाकी उत्पत्तिके उत्तर है. माया नहीं
थी उसके पूर्व उसका अभाव था; इस रीतिसे अनादि न
होनेसे कल्पक नहीं हुये. आप अज्ञान–माया–ने अपने-
को कल्पी एसा मानो तो, असंभव दोष; क्योंके उपा-
दान विना नसंभव; तथाही आत्माश्रय दोष आता है.
अतः अपने अभावकालमें अपनेको कल्पना नहीं बनता.
जो यह कहो के ‘अभाव–शून्य–ने कल्पी’ तो, स्व उ-
पादानवत् कार्य होनेके नियमसे माया अभाव–शून्य–रूप

---

१ यहां ज्ञानाभाव, अज्ञान वा, भावरुप अज्ञान नामा पदार्थ
वा आपका आवरक, यह उभय अर्थ मानके कथन है.

होनी चाहिये, ओर उसके (मायाके) कार्यसे मायाकी भावरूपता सर्वको प्रसिद्ध हे. अतः अभावकी कल्पित नहीं. जो कहो के 'ब्रह्मकी कल्पित हे' तो कल्पना गुण होनेसे ब्रह्म निर्गुण नहीं कहसकोगे, ओर स्व पक्ष त्याग करना पडेगा. तथा सत्य-नित्य पदार्थका गुण नित्य ओर सत्य होताहे; अतः मायाका स्वरूप नित्य सत्य होगा. इस प्रकार नवीन वेदांत सिद्धांतका बाध होजायगा. द्वैतापत्ति होगी.

तथाही जेसेके, किरानी, कुरानी, पौराणी, ब्रह्मसमाजी, प्रार्थना समाजी, उपादान विना अभावसे भावरूप उत्पत्ति मानते हें ओर उसमें दोषहे. वेसेही, आपका सिद्धांत दूषित होगा. ईश्वर कहांसे लाया, यह सिद्ध नहीं होगा. तथाही कल्पित मानें यह प्रश्न उठता हे के, मायाकी उत्पत्ति पूर्व ब्रह्म विषे किससे ओर किस प्रकारकी [सावयव, निरवयव, अणु वा व्यापक परिमाणवाली इत्यादि] कल्पी जाय? जब यूं हेतो, पूर्व संस्कार वा ज्ञेय दर्शन-त्रिपुटि विना अनायास अननुकूलकी उत्पत्ति न होसकने ओर ब्रह्म कल्पित न कही जानेसे मायाका अनादित्वही सिद्ध होगा.

जो कल्पितका पारिभाषिक मिथ्या अर्थ करतेहो तथा माया भावरुप वस्तु हे, तो उक्त प्रसंगवत्, बलात्कारसे अनादि अनंत कहना पडेगा. उससे द्वैतापत्ति होगी. तदंतर जो जीवेश्वर कार्यरूप सादि मानोगे तो, वे सांत होनेसे मोक्ष सिद्धांतका बाध होगा. क्योंके नाशवान् सांत होनेवालेके साधन ओर मुक्तिही व्यर्थ हें. ओर जो मायावत्, अनादि मानोगे तो, जीव अनंत होने ओर

नवीनोत्पन्न नहोनेसे मोक्षसे पुनरावृत्ति माननी होगी. जो पुनरावृत्ति नहीं मानोगे तो, जब तक जीवोंका मोक्षमें जाने ओर पीछा नहीं आनेसे जीवोंका [1]अवच्छेद होगा. ओर प्रकृति–माया व्यर्थ[1] रहेगी. सो असंभव है. क्योंके निष्फल तत्व–पदार्थ कोइभी सिद्ध नहीं होसक्ता. यद्यपि मायावत् जीव, मोक्ष मिथ्या–ब्रह्मसे इतरसत्तावाले मानो, परंतु जीव अनादि अनंत ओर मोक्ष सादि सांतही माननेसे जीव ब्रह्मकी एकतारुप सिद्धांतका त्याग करना पडेगा. क्योंकि जब अनादि अनंत जीव ठेरा तो, अणु वा व्यापक मानना पडेगा. मध्यम–जन्य–सावयव–नहीं माननेसे अंतःकरण, बुद्धि, आभास कार्यरुप अविद्या विशिष्ट चेतन–जीव है, एसा नहीं मानसकोगे. किंतु कोई भिन्न तत्व मानना पडेगा. उससे आपके पक्षका त्याग होगा.

ज्ञातृत्व–दर्शन–९.

इतनाही नहीं किंतु, स्वसिद्धांत विरुद्ध, उस अणु वा विभु परिमाण जीवको, कर्त्ता भोक्तावत्–ज्ञातृत्व धर्मविशिष्ट ज्ञाता* तथा दृष्टत्व धर्मविशिष्ट दृष्टा–(चेतन) ओर इच्छावान् मानना पडेगा. तहां [१]–चार्वाक वा जडवादी मत समान किंवा पृथ्व्यादिवत्–(जिनके सूक्ष्म सत्वांशसे वेदांतिलोक, अंतःकरणकी उत्पत्ति मानतेहैं. वा जिनका उपादान माया–जडहै–उसका कार्य अंतःकरण जड है–एसा वेदांतीभाई कहते हैं), उसे जड नहीं मानसकोगे.

---

१ यह दोष, सर्व अनंत मुक्ति मानने वालोंमें आताहै.

* जानता–ज्ञाताहूं–जाननेवाला.

क्योंकि, "उन पक्षोंको माने तो, जड पदार्थ-परमाणु-पृथ्व्यादि और जड माया-तथा उस जडके कार्यमें ज्ञातृत्वादि असंभव हैं.-जड स्वतंत्र न होनेसे इच्छा-ज्ञातृत्वादिके योग्य नहीं होसकती. और न उसमें सिद्ध होताहै." (२)-तथा अपरिणामी-अक्रिय-व्यापक-अचल-कूटस्थ-निरीह-निर्धर्म-ज्ञान-प्रकाशस्वरूप-(वेदांतीभाई ब्रह्मको ज्ञान-प्रकाशस्वरुप मानतेहें-अर्थात् ज्ञाता नहीं-किंतु ज्ञानस्वरुप,)-चेतनब्रह्म विषेभी ज्ञातृत्वादि नहीं-वेदांतिभी नहीं मानते और नसिद्ध होताहै.(यद्यपि ज्ञातृत्वादि जडके धर्म नहीं, किंतु चेतनमेंही संभवेंहें और ब्रह्म, चेतन हे, अतएव उसमें होनेयोग्य हें. तथापि व्यापक, निष्क्रिय, निर्धर्म मान्नेसे उसमें ज्ञातृत्वादिका अवकाश नहीं होसक्ता. एसा वेदांत पक्ष हे; तथा अवकाश होनाभी नहीं चाहिये.-किंतु परिच्छिन्न चेतनमें उसकी संभवता हे). (३)-उक्त रीतिसे जड-माया और ब्रह्म विषे तो, ज्ञातृत्वादिका अभाव हें. (४)-परंतु, जो प्रसिद्ध व्यवहार देखते हें सो सर्व (व्यवहार), इच्छा, ज्ञान, और दर्शन पूर्वक होताहे-यथाः-'में घटादिको जानता वा देखताहूं-लेताहूं-देताहूं-में इच्छावालाहूं-मुझे इच्छा हे-इत्यादि.' निदान इस-सर्व अनुभवात्मक प्रसिद्ध व्यवहारका निषेद्ध नहीं होसकता. (५)-एतदृष्टि, परिशेष और अर्थापत्ति प्रकार तथा दृष्ट व्यवहारको लेके "जड-माया-और ईश्वर ब्रह्मसे भिन्न, जीवनामा कोई चेतन पदार्थ हे" एसा कहना-मान्ना पडेगा.* जो एसा नहीं मानोगे तो, आपके माने

* परिच्छिन्न चेतन मान्नेमें, वा उस विषे ज्ञातृत्वादि मान्नेमें

हुये अज्ञानका,ज्ञान केसे होसकेगा? किस अभिमानीको होगा? यह सिद्ध नहीं होसकेगा–नहीं करसकोगे–उस अज्ञानका ज्ञान नहीं होगा. जब यूं होतो, ज्ञानके विना, आपके अज्ञान ओर ब्रह्मकी सिद्धिही नहीं होगी. उससे स्वपक्ष त्याग करदेना पडेगा–[ज्ञान निवर्त्तनीय अज्ञानका कार्य यह, प्रपंच नहीं ठेरेगा.] ओर आपकी "तस्मिन् दृष्टा०" "तमेव विदित्वा"इत्यादि श्रुतिसे ब्रह्मभिन्न, किसीमें–जीवमें दृष्टापना–ज्ञातृत्व स्पष्ट होताहे, उसका बाध होजायगा–श्रुति अप्रमाण होगी–उसे त्यागना पडेगा.

तदुपरांत, जो आपके मंतव्य समान वा हठसे, जीव (अंतःकरणादि अणु वा विभु–अमिश्रित तत्व पदार्थ) को पाषाणवत् जड [जड मायाका अंश] मानलेवें, तो ज्ञातृत्वादि (जीवमें) कहांसे ओर केसे आये? इस वातका विचार–विवेक–पृथक्करण–निर्णय विचारना उचित होजायगा.–तहां, जो यह मानें कि 'पूर्वोक्त [अणु वा विभु अमिश्रित कोई तत्व] जीव ओर चेतन ब्रह्म–दोनोंके मिश्रित–(युक्त–विशिष्ट) होनेसे उत्पन्न होताहे,' तो, यह शंका होती हे कि " वेदांत सिद्धांतमें वा उसकी रीतिसे ब्रह्म विषे (ज्ञातृत्वादि) नहीं हें. ओर जीव (मायांश–जड मायाका कार्य वा जड तत्व) पाषाणवत् जड हे. तब ज्ञातृत्वादि [वस्तु–गुण–अवस्था–असर–क्रिया–वा परिणामविशेष] का उपादान कोन [वस्तु–तत्व] हे? " तहां–जो तिन [जड–माया–ब्रह्म] से भिन्न, कोई तीसरी वस्तु मानोगे तो, हम उसीका जीव नाम कहके–जड-

---

यदि कोइ दोष हो वा न हो; इस निर्णयका यहां प्रसंग नहीं हे.

पाषाण [माया] से विलक्षण विजातीय कहदेंगे.* आपका पक्ष-सिद्धांत गया.

ओर जो युरोपके भुले हुये फिलोसोफरके सिद्धांत समान यह कहोगे के "दो वस्तु मिलके तिनसे अभिन्न वा तिनसे भिन्न,-पूर्वमें कहीं भी नहींथी एसी-नवीन, तीसरी वस्तु उत्पन्न होती है.-[जेसे कि शीत स्वाद विनाके ओक्षीजन,-हाइड्रोजनसे शीत स्वादवाला जल नवीन उत्पन्न होताहे; अर्थात् शीत स्वाद, उपादान विना उत्पन्न हुये हैं]. वेसेही मायाके कार्य वा पाषाणवत् जड अनादि जीव ओर चेतनब्रह्म उभय मिलके इच्छा ज्ञातृत्वादि गुण वा स्वरूप नवीन उत्पन्न होतेहें. जेसे जलके स्वरूपकी स्थिति ओक्षिजनादि विना नहीं होती वेसे, जीवत्व संज्ञाकी स्थिति उभय विना नहीं होती-नहीं रहती. इस रीतिसे जीव ब्रह्मकी एकता ओर अद्वितीय चेतन सिद्धांतका बाध नहीं होसकता." यह कथन वा मंतव्यभी समीचीन नहीं. क्योंके जीवत्वके उपादान-उभयमें तो, ज्ञातृत्वादि नहीं मानते, तब अकेले अभावसे भावरूपकी उत्पत्ति कहनी पडेगी. अतःब्रह्म माया-उभय अभावसे उत्पन्नहोके अभावमें लय होनाभी मानना पडनेसे आपका सिद्धांत शून्य होजायगा. यह कितना बडा अविचार हे ? जो दो वस्तु मिलके अभावसे उत्पत्ति मानोगे, तो उभयसे [ओक्षिजन ८ ओर हाइड्रोजन १ भाग मिलेहुये वा अंतःकरण चेतनसे]कारबोन वा अग्निभी उत्पन्न होजानी चाहिये. ओर जो उभयकी योग्यता मानोगे, तो उभय उपादानमें ज्ञातृत्वादि बिभाग पायेहुये

अतः शंका नहीं उठाना चाहिये.*

वा एकमेंही मानने पडेंगे. प्रथम विकल्पमें इच्छा-ज्ञातृत्वादिवाला ब्रह्म (चेतन) भी है, एसा ठेरनेसे वेदांत पक्षका उच्छेद होगा. ओर दूसरा पक्ष मानके जो उपहित वा ब्रह्ममेंही ज्ञातृत्वादि कहोंगे तोभी, उसमें जीवत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व प्राप्त होकर वेदांत सिद्धांत त्याग होगा. ओर जो जीवमेंही मानोगे तो, पूर्ववत् [चेतन-जड मायासे विलक्षण] सिद्ध होनेसे, जीव ब्रह्मकी एकताका बाध होजायगा. तथाही ब्रह्म सत्य ओर माया-अविद्या-जीव मिथ्या, इन उभय-परस्पर विलक्षणके मेलनसे, नवीन ज्ञातृत्वादि मानना नहीं होसक्ता. अन्यथा मृग तृष्णाके जल ओर शरीरके संयोगादि संबंधसेभी, तृषा निवारणरूप फलकी उत्पत्ति होजानी चाहिये. रज्जु सर्पके स्पर्शसे शरीरमें विकार होना चाहिये. स्थाणुवाले पुरुषके अस्मदादि दृश्य होने चाहियें ओर होतेतो नहीं. अतः इच्छा ज्ञातृत्वादि जड पाषाणवत् मानेहुये अंतःकरणादिमें वा ब्रह्ममें वा विशिष्टमें नहीं होनेसे इच्छा ज्ञातृत्वादिवाला भिन्न पदार्थही-जीव मानना पडेगा. तथाही जो विशिष्टमें उत्पत्ति मानोगेतो, जेसे 'भूलेहुये बौद्ध, विज्ञानको, निरवयव, अमिश्रित, तत्त्वपदार्थ मानके क्षणिकपरिणामी (मध्यम) मानतेहैं,-जोके सृष्टिनियम वा अनुभवसे तद्दन विरुद्ध ओर सदोष है.' वेसेही व्यापक, निष्क्रिय, निष्कंप, निरवयव, घन ओर अपरिणामी ब्रह्म चेतनमें विकार-परिणाम मानना पडेगा. सो अयुक्तहै. परिणामत्व सावयव [जन्यत्व, लचकवाले] विना, नहीं होसका. जेसे, "लोहचुंबककी मध्यम परिमाणवाली आकर्षण वा दीपक वा सूर्यका सावयव

समूहात्मक प्रकाश-पदार्थ, अन्यकी स्थिति बदलतेहें-जो वे आकाशवत् निरवयव, निष्कंप, होतेतो, कभीभी किसी दूरस्थ पदार्थकी स्थिति नहीं बदल सके. नवीन स्वरूप वा गुण उत्पन्न करना करासकनातो कहां ?" वेसे, ब्रह्म-व्यापकमें तो, घटित होही नहींसका, क्योंकि सर्व पदार्थमें व्यापक चेतन करकेभी-जबतक उस उपादानमें कुछ नहीं होगा, तबतक-जिसको नवीन मानतेहो उसका-भाव-प्रकार कहांसे होगा? कुछ अस्तित्व माने विना, निर्वाह नहीं होगा. सो तो आप मानते नहीं हो, तब यही कहना पडेगा के 'चेतनमेंसे आया;' और चेतनमें-से जब आवे, वा चेतनगत अंश जब उद्भव हो कि, उस (चेतन) में क्रिया-परिणाम हो; सो तो वेदांत सिद्धांतमें अमान्य हे. अतः विशिष्ट (वा उपहित) में नवीन उत्पन्न नहीं; किंतु जीवनामा भिन्न पदार्थ अनादि अनंत वा सादि सांत मानना पडेगा. वा अन्य कुछ. क्योंकि ज्ञातृत्वादिका व्यवहार सर्वको सिद्ध हे, उसका निषेध नहीं होसक्ता. परंतु पूर्वोक्त रीतिसे आपका सिद्धांत तो नहीं रहेगा. तथा आपकी रीतिसें जब ज्ञातृत्वादिका अभाव मानें तो 'ब्रह्मका ज्ञान वा जीव ब्रह्मकी एकता-कथन ओर उसका ज्ञान वा फलव्याप्ति तथा वृत्तिव्याप्तिकी प्रक्रिया ओर उसका ज्ञान, वा ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्याका ज्ञान ओर आपके सिद्धांत मात्र' का भंग होजायगा; यह सहजही स्पष्ट हे. अतः सत्य वा मिथ्या जीवचेतन ओर मायादि भिन्न २ पदार्थ हें, एसा बलात्कारसे मानना होगा. तबहीकुछ व्यवस्था होसकती हे. नहींतो जेसे स्याणु

पुरुष, दृष्टाको विषय नहीं करसकता—नहीं मान सकता —उसका निर्णय नहीं करसकता, वेसेही वेदांतियोंकी मिथ्या माया ओर उसके कार्य—मन, बुद्धि आदि, ब्रह्म-जीवके स्वरूप वा उनकी एकता, भेद, अभेदादि कथन वर्णन, निर्णय करने ओर जानेमें असमर्थ हैं—नहीं जान सकते; इस लिये उनका सिद्धांत समीचीन नहीं.

ओरभी मोक्ष वा जीव ब्रह्मके ज्ञानके साधनका निर्णय ओर साधनका अनुष्ठान किसने किया—कोन करताहे, इस विषयमेंभी उक्त दोष आसकतेहें.

जब पूर्वोक्त रीतिसे ब्रह्म सत्, तदेतर जीव, माया मिथ्या—अनिर्वचनीय अनादि, अनंत ओर (पूर्वोक्त रीतिसे) बंध, मोक्ष, सादि—सांत मानी गइ तो, जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे मोक्ष कहना नहीं बनेगा. प्रत्युत "तीनों परस्परमें विलक्षणहें," इस प्रकारका ज्ञानमात्र फल होगा.

ज्ञानाभाव—दर्शन—१०

ज्ञाननिवर्त्तनीय जो वस्तु हो सो, सत्य नहीं होती. कर्मनिवर्त्तनीयही* सत्य होसकतीहे—कहसकते—मान सकते

* यद्यपि स्वप्नगत कर्मादि, स्वप्नगत ज्ञानसे निवृत्त नहीं होते. तथापि स्वप्नगत रज्जु सर्पादिकी स्वप्नवाले ज्ञानसे निवृत्ति होती हे. यद्यपि स्वप्नगत ज्ञानसे जागृत, जागृतगतज्ञानसे स्वप्नादिके पदार्थ निवृत्त नहीं होते, तथापि एक दुसरी अवस्था, अवस्थावाले पदार्थोंकी बाधक हे—तिसके ज्ञानसे तिनकी निवृत्ति वेदांती भाइ मानतेहें. अतएव जो सृष्टि दृष्टिवादरुप मिथ्या प्रपंच—मिथ्या अविद्यारचित, सिद्ध होजावे तो, वेदांत पक्षानुसार उसकी निवृत्ति अमुक ज्ञान विशेषसे होसकती हे. एसी दृष्टि लेके प्रसंगका कथन हे.

. वेदांत पक्षमें कर्मसे, बंध निवृत्ति नहीं मानी है. किंतु ज्ञानसे मानते हैं; अतएव बंधादि सर्व मिथ्या मानना पडेगा. हवे यह शंका होती हे कि, "किसके ज्ञानसे किसकी निवृत्ति होगी? ब्रह्म, ज्ञानस्वरूप हे, उसका ज्ञान, वेदांतियोंके जीव-मिथ्या-जड अंतःकरणादिकको नहीं होसकता-नहीं बन सकता. जो एसा हो तो स्थाणु पुरुषको केंवा स्वप्नाभासवाले शरीरोंको द्रष्टा-प्रमाता पुरुषका ज्ञानव्यवहार होने योग्य हे; परंतु एसा नहीं होता. और ब्रह्मको अपना ज्ञान होके सकार्य अज्ञानकी निवृत्ति मानें, सो भी नहीं बनता; क्योंकि ज्ञान स्वरूप ब्रह्मको [अपना-वा परका] ज्ञान हुवा, एसा कहना पूर्वोक्त रीतिसे बाधितहे.

किसीकोभी अपना ज्ञान, अपनेको नहीं होसकता; क्योंकि प्रकाशक तथा प्रकाशसे-प्रकाश्य ओर द्रष्टासे दृश्य, जेसे भिन्न होता हे वेसेही, ज्ञाताभी, ज्ञेयसे भिन्न होता हे. अतः अपनें (स्वयं) को अपने अज्ञानकी निवृत्ति असंभव. जो यह कहोकि "जेसे काच द्वारा प्रतिबिंब देखनेसे अपने मुखका ज्ञान होता हे, वेसेही अन्य स्थल (ब्रह्म-ईश्वर-जीव-कोइ प्रकार-मायामें-वा बुद्धिमें प्रतिबिंब पडके वा अन्यथा होताहे-इत्यादि) में जान लेना चाहिये." सो वातभी अयुक्त हे.-प्रतिबिंब वा अन्यकृत स्वछबी देखके, जो मुखका ज्ञान हे सो, अनुमानिक हे; क्योंकि प्रतिबिंबका उपादान किरण हे,-बिंब ओर काच नहीं हे. तथा आधार योग्यभी नहीं; क्योंकि लाल लघु काचमें बिंबसे अन्यथाभी देख पडता हे. वेसेही ब्रह्मका प्रति-

बिंब- आभास, अज्ञान-माया-वृत्ति योग्य वृत्तिमें मान-भी लेवें तो भी बूह्मका ज्ञान, परोक्ष-अनुमानिक होगा. ओर उक्त प्रकारवत् सदोष होसकनेसे विश्वास या आधारयोग्य नहोगा. इतना हुयेभी मुख्य स्वरूपका साक्षात् होना सिद्ध नहीं होता. निराकार चेतनका प्रतिबिंबही* असिद्ध. प्रतिबिंबका उपादान, अज्ञान-बूह्म इन उभयसे भिन्न, मान्ना पडनेसे स्वपक्ष त्याग होगा. उस आभासका दृष्टा-ज्ञाता ओर उसद्वारा अपने स्वरूपका अनुमान कर्त्ता कोनहे? तहां, बूह्ममें ज्ञातृत्व मान्नेसे बूह्म विकारी-परिणामी ठेरेगा. इत्यादि पूर्वोक्त दोष प्राप्त होंगे. जो यह कहो कि "में हुं एसी प्रतीति सबको हे; 'में नहीं हूं' एसी प्रतीति किसीकोभी नहींहे; इस प्रकार अपना अस्तित्व आप जानता हे-अपनेको प्रतीत-अनुभव होता हे. वेसेही, अपना विशेष स्वरुपभी जान्ने योग्यहे," सो वार्ताभी ठीक नहीं. क्योंके 'में हूं' यह प्रयोग, समूहात्मक व्यक्ति विशेषमें स्वाभावतः (काष्ट पूतळी वाक्यवत्) हे-संस्कारद्वारा अभ्याससे होताहे. 'मेरी आंख' 'में

---

* रंग, आकारका वा तद्वानका प्रतिबिंब संभव हे; परंतु आकार ओर रंग रहित चेतन पदार्थका असंभव हे. जो वेदांती एसा कहेकि माया, जीवेशको आभास करके करती हे अर्थात् चेतनका प्रतिबिंब श्रुतिमें माना हे. उसका उत्तर इतनाही बस हे कि बहोतसे वेदांतके ग्रंथोमें 'इति श्रुते.' पद लिखमारा हे. वेद ग्रंथमें वे वाक्य नहीं हें. कोनजाने किसने बना बनाके ग्रंथोमें लिखदिये हें. कोईभी नहीं तपासता कि, वेदमें हें वा नहीं. तथाही वेदोपनिषद्की प्रमाणताका पूर्वोक्त प्रसंग याद कीजिये.

होना' इस विपरीत-प्रयोग समान अभ्यास-अध्यास है. अब रही उसकी-अपनी अस्तित्वकी प्रतीति-विषय होगा,-सो तद्भिन्न किसी [उस] अन्यका विषयहो; जोकि (वोह दूसरा) अपनेको आप नहींजानता. अहंवृत्ति और उसके मिश्रणसे एकके धर्म दूसरेमें प्रतीतिके विषय होते हैं-जिसको अपना सामान्य ज्ञान कह रहेहो; वस्तुतः वेसा नहीं हे 'में हूं' यह जिसमें प्रतीत-प्रकाश्य-प्रकाशमान होताहे सो, स्वयंप्रकाश ज्ञान स्वरूपहो, परंतु सो, ज्ञाता नहीं. अतः अपनेको आप नहीं जानता.

एतदृष्टि 'जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञान' के अभावसे मोक्ष वा श्रेय नहीं बनता. और पूर्व रीतिसे जीवको ब्रह्मज्ञानका कर्त्ता-ज्ञातृत्वादि विशिष्ट अनादिसांत मानोगे तो, "ब्रह्मेतर ज्ञानबाध्य" सिद्धांतका त्याग होनेसे, 'माया, जीवेश्वर सत्य हैं' एसा, कहना मानना पडेगा; क्योंकि ज्ञानसे ज्ञाताका बाध नहींहोता. किंतु ज्ञेय [रज्जु सर्प] -भ्रमका अभाव होताहे-होसक्ता हे; इसलिये जीवेश्वर अनादि अनंत, कहना योग्य होगा.

"ज्ञान [नामक] साधनसे अज्ञान और उसके कार्यका बाध होताहे" इस मंतव्य विषे दो प्रश्न उठते हैं. विषयका ज्ञान होने पीछे, विषयका अज्ञान न पानेसें अभावस्वरूप ज्ञानअभाव [नामक] अज्ञान हे. १. किंवा ज्ञान तथा ज्ञानअभावसे भिन्न, कोई भावरूप (नामक) अज्ञान पदार्थ हे. २. आद्य पक्षमें ज्ञान, उसका प्रतियोगी होनेसे,अपने अभावका सिद्धकर्त्ता-प्रकाशक विषयकर्त्ता-नहीं होसकेगा. [घट अभाव समान, यहां प्रसंग नहीं हे ज्ञान

ज्ञेयका प्रसंग है). जो मानोगे तो, व्याघात दोष आ-
वेगा-अपने अभावको कोईभी नहीं देखसकता-' स्व अभा-
वको विषय करता है ' इस कथनसेही विषय कर्त्ताका
भाव सिद्ध होजाता है. अतः ज्ञान भिन्न, कोई तीसरा
सिद्ध कर्त्ता मान्ना चाहिये. परंतु ज्ञानके विना, ज्ञेयकी
सिद्धि अलीक है. इस रीतिसे अज्ञान निवृत्तिमें उसका
उपयोग नहीं. और जो दूसरा पक्ष मानें तो ज्ञानका
विषय होताहुवा ' में अपनेको नहीं जानता ' इस प्रकार
ज्ञान स्वरूपको आच्छादित करता हुवा, जबकि अना-
दिसे है तो, ज्ञान उसका कभीभी बाधक नहीं होसकता
क्योंकि; ' अपना ज्ञान आपको नहीं होसकता', ज्ञाता
ज्ञेयसे भिन्न होताहै, उभय अनादि हैं, उभय समानाधि
करण वर्त्ति हैं, नित्य व्यवधान-अंतराय-रहित समा
वर्त्ति चलेआते हैं, इस रीतिसे ज्ञातृत्वादि विशिष्ट जीवसे व
ज्ञान मात्रसे आपके मानेहुये अज्ञानका बाध नहोनेसे मोक्षादि
प्राप्तिका अभाव है. और जो वृत्तिज्ञान (विशेष ज्ञान-
नामक ज्ञान) उस [जीव ब्रह्म वा विषयके अज्ञानका] विरो
धी मानोगे तो, वृत्तिज्ञान, मूल अज्ञानका कार्य होनेसे अ
पने मूल कारणके नाश करनेमें अशक्त रहेगा.-असंभव बा
है. किंवा अज्ञान नाश पीछेभी शेष रहेगा. अपना आ
नाश न करसकने-न होसकने-स्व नाश नपासकनेसे औ
वृत्तिके अभावका साधन[१] न मिलने तथा अन्य नाश
मान्नेपर अनवस्था आनेसे-सर्व प्रकार द्वैतापत्ति मान्नी पडेगी

१ प्रचलित ग्रंथोंमें भोले भाई, इस विषयका, निर्मली-
तकरेणु जलादिके दृष्टांत किंवा अन्योऽन्य ध्वंस [यथा दो श

तथाहि अज्ञान, आप अपनी उत्पत्ति वा नाश करनेमें असमर्थ और न एसाहोना संभव है यह बात स्पष्टहै). तद्वत् ब्रह्मभी अपनी उत्पत्ति नाश करनेमें अशक्य और ब्रह्म ज्ञान प्रकाशस्वरूप), अज्ञानका बाधक नहीं, प्रत्युत साधक है; अन्यथा अज्ञान-मायाका आधार और मायाकी सिद्धिही नसंभव. वेसेही माया-अज्ञान, ब्रह्मका बाधक-नाशक नसंभव. तथा अज्ञानका कार्य (अंतःकरण-अविद्या-वृत्ति -अध्यासमात्र) अपने उपादान-अज्ञान और उसके आधार-ब्रह्मको नाश-निवृत्त नहीं करसकते; यह बात स्पष्ट है. जब यूं है तो, वृत्ति चेतन वा माया विशिष्ट चेतन (ब्रह्म, अज्ञान-माया) दोनों मिलके वा एक दूसरेके आश्रयसेभी एक (ब्रह्म वा अज्ञान)को नाश-निवृत्त नहीं करसकते; यह बात, उक्त लेखके विवेक करनेसे स्पष्ट होजाती है; इसलिये ब्रह्मज्ञान-जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे अज्ञान-मायाकी निवृत्ति नहीं होसकती. जब यूं है तो, वेदांत संप्रदाय मान्य, साधन (ज्ञान साधन). श्रेयके हेतु नहीं; प्रत्युत ब्रह्म और माया, (ज्ञान अबाध्य)-अनादि अनंत-नित्य सिद्ध होंगे और जो अज्ञान निवृत्तिका हेतु, ब्रह्म, अज्ञान वा अज्ञानके कार्यसे भिन्न, अन्य कोई मा-

परस्परके शस्त्र परिहारसे मरन वा दो दुखियाओंका बीचमें बरछी रखके, पेटमें लगाके, मिलनेपर उभयका मरण-नाश] के उदाहरणसे समाधान करतेहैं परंतु वे दृष्टांत विषम हैं.-मूल कारण वा स्वरूपमें नहीं लगते-निर्मली और शरीरके मूल तत्व रहते हैं-इत्यादि स्पष्ट सूक्ष्म दोष हैं. इसलिये इन दृष्टांतोंके खंडनसे उपराम होतेहैं.

नोगे. तो द्वैतापत्ति होगी. तथा उस तीसरेका अभाव न होसकनेसे वेदांत पक्षका उच्छेद होजायगा. वा अनवस्था, अव्यवस्था रहेगी. इस रीतिसे वेदांत मान्य श्रेय और श्रेय साधन, असिद्ध-अलीक-असमीचीन-कल्पना मात्रहै.

जो यह कहोकि "जेसे अपना ज्ञान किसीको नहीं होसकता वेसे, अपना अज्ञान भी किसीको नहीं होता. अर्थात् अपना अस्तित्व जीव मात्रको भान होताहे." आपका यह कथन पांच पल वास्ते मान लेवें तोभी, आपका पक्ष सिद्ध नहीं होता; क्योंकि पूर्व रीतिसे अज्ञानका अभाव हे [उसकी निवृत्तिही क्या]. जबकि अस्तित्व मानतेहो तो, अपने विशेष स्वरूप [चेतन-जड-अणु -मध्यम-विभु-इत्यादि] का अज्ञान, उसके ज्ञानका अज्ञानभी नहीं मानसकोगे. क्योंकि स्वरूपके अस्तित्वादि-सामान्य विशेष आदि अंश नहीं मानते हो; किंतु निरवयव एक रस स्वरुप मानते हो. निदान जो अपने निरवयव ए स्वरूपके अस्तित्वको जानता हे. वोह अपने विशेष स्वर पको भी जाननेयोग्य हे [क्योंकि तद्रूप-एकही हे]. ज यूं हे तो, विशेष स्वरूपका ज्ञाता, ज्ञेय स्वरूपसे भिन्न सि हो जायगा. किंवा वर्त्तमानमें जो अस्तित्वको जानताहे स उत्तर-विशेष ज्ञान कालमें अपने और विशेष स्वरूप त अस्तित्वको भेदसे ग्रहण करेगा. और जो विशेष भ नहीं मानो वा विशेषको नहीं जानता, एसा मानो, अस्तित्व मात्र अनुभवानेका कथनभी अभ्यास-प्रवाह म कुंभ वायुवत् ठेरेगा.-जेसाकि सर्वको प्रतीतरूप हे.-वा न तेहैं; क्योंकि आपकी रीतिसे अंतःकरण [आविद्या-ज

तो स्वपर प्रतीति करनेकी योग्यता नहीं. और ब्रह्मविषे स्व अस्तित्व वा विशेषकी प्रतीति होना माने, तो उक्त दोष [प्रतीति कर्त्ता प्रतीतिके विषय स्व अस्तित्वसे भिन्न होना चाहिये] आवेगा. तथा विकारी ठेरेगा. जब यूं है तो, स्वप्रतीति किसको है, यह बात आपकी रीतिसे सिद्ध नहीं होती. और जो प्रतीति कर्त्ताको अणुचेतन मानोग तो, स्वसिद्धांतका बाध होगा. निदान अपना ज्ञान और अज्ञान असिद्धिसे आपका यह पक्षकि, "अपना (सामान्य, विशेष) ज्ञान होनेसे स्वस्वरूपका अज्ञान नाश होके मोक्ष होतीहे" अलीक ठेरता है.

श्रवण-दर्शन-११.

जो नवीन वेदांतका श्रवण मननहे वोहभी व्यर्थहे. क्योंके तद्रन सिद्धांत जीवब्रह्म एक) पूर्व रीतिसे समीचीन नहीं है.

तथाही अंतःकरण-अविद्या तो जडहे उनमें ज्ञातृत्वादिके अभावसे श्रवण ज्ञान बने नहीं. और अक्रिय ब्रह्म स्वयंप्रकाशमें श्रवणादिकी योग्यता वा आवश्यकता नहीं-उभयमें अभाव होनेसे विशिष्ट[अंतःकरण-अविद्या विशिष्ट चेतन]में भी उसका अभाव है. क्योंके श्रवण और श्रवण ज्ञानकी उनके मूल विषे योग्यता नहीं है. अतः श्रवणादि व्यर्थ हैं. परंतु श्रवणादिका फल तो, हरकोइ, जगतमें प्रसिद्ध देखता है; अतः श्रोता, कोई जीव परिच्छिन्न चेतन तत्व, माया-अविद्याका कार्य नहीं-किंतु उससे और व्यापक ब्रह्मसे भिन्न, अनादि अनंत पदार्थ होगा. इसके विना कर्मोपासना, विवेक-वैराग्य-मुमुक्षुता और श्रवण-मनन-

नेदिध्यासनादिका उपयोग नहीं, जो एसा नहीं मानोगे,
तो, आपकी रीतिसेही आपकी सप्त भूमिकाका उच्छेद
होजायगा.

श्रवणादि साधन कालमें वृत्तिका परिणाम ज्ञेय श-
ब्दादि आकार होताहे, उसी क्षणमें तत्ज्ञान परिणाम
या ब्रह्म ज्ञेयके दृष्ट संस्कार नहोनेसे तदाकार परिणाम
होना असंभव. दुसरी क्षणमें माने—ज्ञेयाभावसे ज्ञेयका ज्ञा-
न होना असंभव हे. अतः बौद्ध मत समान अनेक दोष
प्राप्त होंगे. इसलिये श्रवणादि ओर उनका फल आपकी
रीतिसे व्यर्थ हें. ज्ञानके साधन नहीं वा असंभव हे.

जो केवल अंतःकरण—अविद्या—वृत्तिमें श्रवणादि वा
उसका ज्ञान मानोगे, तो उनका ज्ञान उपयोगी नहीं;
क्योंके मिथ्या होगा. अतः उसका फलभी मिथ्या होगा.
इस रीतिसे जीव ब्रह्मकी एकता, ब्रह्मका ज्ञान, मोक्ष तथा
कर्मोपासनादि मिथ्या होनेसे आपका सर्व सिद्धांत [ज-
गन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैवनापरः] मिथ्या होगा. जिसको
स्वप्नवत् सामना वा उसपर विश्वास नहीं रखना उचित हे.

माया—दर्शन—१२

वेदांत पक्षमें माया, एकही जड वस्तु मानते हें—स-
मूहात्मक नहीं, ओर उसी परिणामीका विकार—नाना ज-
गत् जीवादि हें, एसा कहतेहें.—एसे असंभव पक्षको मान-
के, स्वसिद्धांतका निर्वाह करते हें; सो (भी) समीचीन
नहीं हे. क्योंके, माया [अज्ञान] निरवयव विभूह ? वा
सावयव—अणु स्वरूप हे ? इन दो विकल्पोंमेंसे जो निरव-

यव विभु मानें तो, अपरिणामी होनेसे उपादान नहीं होसकेगी. ओर जो अणु सावयव स्वरूप मानें तो, उसके अवयवोंके परस्परके संयोग वियोगसे कार्य तो, बनसकते हैं; परंतु एक स्वरूप नहीं होगी; अतः नाना रूपवान् होनेसे "माया एक मिथ्या स्वरूप हे." यही मंतव्य अयुक्त हो जायगा. ओर "सावयव, निरवयव ओर निरवयव, सावयव नहीं हो सकता" यह सृष्टि नियम सर्वको अनुभवगम्य हैं. तथा "हरकोइ स्वरूप सावयव होगा वा निरवयव होगा" यहभी स्पष्ट हे; अतः तद्विलक्षण मानना असंगत युक्तिहीन, अनुभव विरुद्ध हे. अतः यदि मायाको मानके जगत् उसका कार्य मानें तो, मायाको सावयव-समूहात्मकही मानना पडेगा. इतना सिद्ध होनेसे वेदांतके तमाम सिद्धांतोंपर पानी फिरता हे, यह स्पष्ट हे.

जो यह कहो के माया, कल्पित अकल्पित, सावयव निरवयव, सादि सांत, सादिअनंत, अनादिसांत अनादि अनंत, "अणु, मध्यम, विभू परिमाण," नित्यानित्य ओर सत् असत् इत्यादि कल्पनासे भिन्न-विलक्षण-अनिर्वचनीय हे; अतः उसके कार्य बंध मोक्ष जीवादिभी वेसेही हैं-इसलिये उसमें कोई शंका नहीं होसक्ती." यह कथनभी अयुक्त-अव्यवस्था सूचक हे. क्योंकि जो, "जिसका निर्णय नहोसके" एसा, अनिर्वचनीय पदका अर्थ होगा तव तो, पूर्वोक्त प्रकारवत्* आपके सिद्धांतकी हानी ओर अनिश्चित-अनेकांतिक-नाना कल्पनावाला-विरोध धर्मवाला वा संशयात्मक सिद्धांत होगा. ओर जो विलक्षण

* जैनमत समान अनेकांत-अनिश्चित सिद्धांत मानना पडेगा.

अर्थ करोगे तो, अव्यवस्था होगी. क्योंके कोइभी वस्तु अनिर्वचनीय सिद्ध नहीं होती है. और दृष्टांतके विना, अन्यको उसका स्वीकार नहींहोता. माया (और उसके कार्य) को अनिर्वचनीय कहना मानते होतो, उसकी सिद्धि वास्ते तद्भिन्न कोइ उपचार चाहिये. सोतो है नहीं.- आप नहीं मानते हो. (बुद्धि आदिभी उसके कार्य हैं) और ब्रह्म अनिर्वचनीय नहीं, अतएव अनिर्वचनीयत्वकी सिद्धि नहीं होसकी. रज्जु सर्प, मृगजल, स्वप्न, शुक्ति रजत, प्रतिबिंब, नभनीलतादि प्रसिद्ध दृष्टांतभी अनिर्वचनीय सिद्ध नहीं होते. तथा मतवादियोंमें विवादित हैं. अतः संशयात्मक रहनेसे और साध्य मायाके कार्य होनेसे आधार योग्य वा उपयोगी नहीं होते.

कदाचित् आपकी रीतिसे विश्वास मानके मायाको अनिर्वचनीय मानभी लेवें, तो कर्मोपासना बंध मोक्ष ज्ञानादि *अज्ञतर सर्व अनिर्वचनीय मानने पडेंगे. अर्थात् श्रेयभी अनिर्वचनीय*-मिथ्या स्वप्नवत् निकामा हुवा. अतः आपकी रीतिसे श्रेयनहीं; क्योंके ज्ञानीकी ज्ञानदृष्टि ओर अज्ञानीकी अज्ञान दृष्टि -दुःख सुखादि सर्व मिथ्या

*"अत्यंत दुःखकी निवृत्ति परमानंदकी प्राप्ति, यह मोक्षका स्वरूपहै;-एसा वेदांती मानते हैं. इसका यह अर्थ होगाकि 'वर्त्तमान बंध-शरीर-अज्ञान-दुःखसे विलक्षण कोई दुःख है,' उसकी, विलक्षण निवृत्ति (अभाव नहीं किंतु तद्भिन्न अन्यरुप)होगी. 'सत नित्य स्वरुप आनंदसे विलक्षण [ब्रह्मसे विलक्षण] कोई अन्य आनंद है' उसकी, विलक्षण प्राप्ति (जाग्रतसे भिन्न प्रकारकी प्राप्ति) होगी. एसा अर्थ होजानेसे वेदांत सिद्धांतका उच्छेद होगा, जन्म म-

मानतेहो ओर ज्ञानी अज्ञानीको दुखः सुख फल समान प्रतीत होतेहें. इसीप्रकार आपकी रीतिमे उभयकी मोक्षमेंभी दृष्टिहे अर्थात् आपकी रीतिमे मोक्ष, कल्पना मात्र वा विश्वासमात्र हे ओर व्यर्थ हैं.

सद् जो ब्रह्म उससे इतर किसी विलक्षणकी प्राप्ति* ओर माया–अज्ञान–बंधकी निवृत्तिसे विलक्षण निवृत्ति मानीजानेसे द्वैतापत्तिहोगी. इस रीतिमे आपके मानेहुये माया ओर उसके कार्यके स्वरुप (अनिर्वचनीय विकल्प) से अव्यवस्था, अनवस्था होतीहे. ओर सयुक्त सिद्धांत नहीं ठरता.

उपाधि–दर्शन–१३.

जीव ब्रह्मकी एकता वा ब्रह्मका साक्षात्कार होनेका मंतव्य नहीं बनता; इतनाही नहीं किंतु आपके ब्रह्मका निरुपाधी होनाभी सिद्ध नहीं होता. क्योंके जिस देशमें मुक्त अंतःकरण हे उसके गमन वा विदेह पीछे उसी पूर्व देशमें अन्य अंतःकरण आवेगा. तब ब्रह्म फेर सोपाधि होगा. इस प्रकार अनादि अनंतकालसे अनादि अंतःकरण आते जाते रहनेसे ब्रह्म सोपाधिकही रहा, अर्थात् उसको स्व स्वरूपका अवसर कभीभी नहीं आवेगा. निदान कभी मुक्त न हुवा. किंवा अनादि अनंत कालतक प्रवाहरूपसे नित्य बंध मुक्त होता रहेगा. इस रीतिसे सदा अशुद्धही रहेगा.

रणादि दुःखकी निवृत्ति, ओर ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती; एसा सिद्ध होजायगा. इसी प्रकार अन्य ज्ञानादिमेंभी अर्थकी कल्पना करलेना चाहिये. *

जिस अंतःकरण विशिष्ट चेतनमें जीव ब्रह्मकी एकताका विश्वास वा अभिमान हुवाहे—सो अंतःकरण, उस देशको (के जहां जिस देशमें एकता मानीहे) छोडके अन्य देशमें जायगा तब, उसको स्वाभावतः यह निर्णय होगा के 'व्यापक ब्रह्मके साथ यद्यपि व्याप्य हूं, तथापि में परिच्छिन्न हूं.—पूर्व देशको छोडके इस देशमें आया. ओर उस देशमें इसकाल विषे अन्य अंतःकरण हे. उस चेतन देशके साथ उसकी एकता हे—मेरी अब इस देश साथ एकता हे, इसलिये विशिष्ट भावको लिये व्याप्य व्यापकता भेदसे, आकाश परमाणुवत् व्याप्य व्यापकभाव संबंध हो, परंतु एकता नहीं.

तथा, काशी देशगत पदार्थको जिस अंतःकरणविशिष्टने साक्षात् कियाथा वोह, जब मथुरा देशमे आताहे तब, चेतनके अन्य देशविशिष्ट हे अर्थात् अंतःकरणविशिष्ट चेतन तो हे परंतु, चेतनके अन्य देशयुक्त हे अतः उस काशीविशिष्ट चेतन ओर मथुराविशिष्ट [वा उपहित] चेतनका उपाधी भेदसे भेद, साक्षात्कार करता हे, तब अपना भेदभी साक्षात्कार करेगा. एकता सर्वथा नहीं

तथा, अंतःकरणविशिष्टता, एक देशमें परिच्छन्न सो, आकाशके व्यापकत्व विशिष्ट वा नभ कितना व्यापक हे, एसा नहीं जान सक्ता. इसी प्रकार, ब्रह्म देश अनंत हे; अतः यह परिच्छिन्न जीव (अंतःकरणविशि चेतन) उस देश अनंतका साक्षात्कार केसे करसकेगा? उ कदापि नहीं करसकता. हां, अनुमान मानके विश्वास मान लेवे, यह जुदी बात हे. अतः चेतनका ब्रह्म रूप

साक्षात् अनुमानिक हुवा. तब यह सवाल उत्पन्न होता हेके "कोन जाने इससे इतर देशमें ब्रह्मका कुच्छ अन्यथा विशेषरूप होगा, वा अन्य होगा, एसा संभव हे" तहां संशयात्मक अनुमान रहनेसे यथार्थ साक्षात् हुवा, एसा सर्वथा नहीं मानसकता. तथाहि अंतःकरण मध्यम होनेसे काल परिच्छेद रहित नहीं ओर ब्रह्मकोतो काल परिच्छेद रहित मानते हो; अतः अंतःकरण विशिष्ट भागने स्वपूर्वोत्तर ब्रह्मस्वरूपका साक्षात नहींकिया ओर न करसकेगा. केवल अनुमानसेही कहनाहे के 'यह आत्मा ब्रह्म हे' 'काल परिच्छेद रहित हे'. संभव हे के वर्त्तमानमें जिसको चेतन मानतेहो, वोह अन्यहो–इसके पूर्व अन्यथा–भविष्यमें अन्यप्रकारका होगा. अर्थात् विचित्र मायाकी उपाधीसे कालप्रति अन्य प्रकारका भासमान होसकनेकोभी योग्य हे. अतः वर्त्तमानकालमें जो सच्चिदानंद रूपसे साक्षात् होताहे सो, मायाकी उपाधी बलसे होरहा हो; एसाक्यों न मानाजाय? क्योंके वेदांती लोक, वेदार्थ कर्त्ता रामानुजादि ओर अन्य बुद्धादिमुनी, ऋषि, आचार्य, ओर गुरुओंको भ्रांत बतलातेहें; तो जेसेके उनको अन्यका अन्य–विपरीत अर्थ बुद्धिमें आया तथा मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय, कोशमें स्थिति हुई, जोके भ्रांतीरूपहे–(जेसेके जडवादी मात्रको अन्नमय कोशमें, बुद्धको विज्ञानमय कोशमें, मूर्त्तिपूजकोंको ईश्वरके मायामय कोशमें, अणुरूप जीव मानने वालोंको मनोमय कोशमें, मैमांसिकादिकोंको आनंदमय कोशमें इत्यादि–वेदांत पक्षकार भिन्न सर्वको भ्रांत मिथ्या–अवास्तविक सिद्धांतमें प्रवेश

हुवाहे.)इसी प्रकार आप-वेदांत पक्षकारभी भ्रांतरूप हो ओर ब्रह्म अन्य प्रकारका हो! एसा क्यों न मानाजाय? सिद्ध होसकता हे. [वेदादिको मध्यमें लानेका यहां प्रयोजन-प्रसंग-नहीं. क्योंके उसकी प्रमाणता अप्रमाणताकी चर्चा उपर होचुकी].

जो कहोके "अंतःकरणादिका गमनागमन ओर ब्रह्मके अंशकल्पना तथा देशकालका अनंतत्व वा देश कालमें अन्य प्रकारकी संभवता-संभावना-इत्यादि भेदभाव जो उपर कहा हे सो, हमारे सिद्धांतमें नहीं बनता; क्योंके जेसे, स्वप्नगत् सत्र कल्पना होतीहे, सो, उस कालमें सत्य हे; परंतु वास्तविक रीतिसे मिथ्या हे." (इसी प्रकार तुम्हारा कथन हे). " यह कथनभी सयुक्त नहीं; क्योंके जेसे स्वप्नदृष्टा, स्वप्न कालमें स्वप्न सृष्टिको अनादि अनंत वा अनादि सांत मानलेताहे अथवा संस्कार बलसे जीव ब्रह्मकी एकता तथा स्वात्म स्वरूपको व्यापक, अकर्त्ता, अभोक्ता मानलेता हे,-इत्यादि आपका तमाम पूर्वोक्त पक्ष यथार्थ मानता हे; परंतु जब स्वप्नसे उठता हे तब, उन सबको झूट मानता हे. किंतु तिससे विलक्षण भेद ओर परिच्छिन्नता देखताहे; इसी प्रकार जब आगे पदार्थ निर्णयरूप-विवेक विद्यारूप जाग्रतमें आवे तो, कदाचित् अन्य प्रकारका सिद्धांत देख पड़े, एसा संभव हे. क्योंके पूर्वोक्त ओर वक्ष्यमाण अनेक युक्तियोंसे आपका सिद्धांत दूषित हे.

जो यह कहोगेके 'यह दोषतो सर्व पक्षकारोंको प्राप्त होगा. ओर जो जो नवीन पक्ष माना जायगा उसमेंभी आवेगा. अतः तिन समान तुम (समीक्षक) कोभी यह दोष

लगेगा." इसका उत्तर यह हे के सत्य ख्याति वाले (बौद्ध, न्याय, जैन, द्वैतवादी, सांख्य, यवनाचार्य इत्यादि) वेदांत पक्षके विरुद्ध हें, स्वप्न जाग्रत् समान नहीं मानते; किंतु सभेद ओर विलक्षण मानते हें; अतः उनको भी दोष नहीं लगेगा; कदाचित् उनके भ्रम स्वरूप-ख्यातिकी रीतिसे उनको दोष लगेतो, हमको उसमें क्या? सदोष त्याग-निर्दोष ग्रहण, यह हमारा पक्ष हे. ओर भविष्यमें जो जो पक्ष होंगे उन सर्वमें यही दोष आना कहा, सो ठीक नहीं हे; क्योंके संभवहे के 'आजतक जो पक्षकार हुये ओर हें उनको ठीकर यथार्थ ग्रहण न हुवाहोतोभी, भविष्यमें पूर्वोक्त दोष निवारण सहित यथार्थका प्रकाश हो.' इस रीतिसे आपके सिद्धांत [जीव ब्रह्मकी एकता वा ब्रह्म सर्व जगत् मिथ्या] पर विश्वासभी नहीं होसकता.

जो यह कहो कि " जब हमारे (वेदांत) सिद्धांतसे इतर, कोई निर्दोष यथार्थ सिद्धांत, समक्ष हो वा सिद्ध हो जाय तब, वोह मानलेना. अभी तो यही स्वीकारणीय हे ! " इसका यह उत्तर हे कि जो एसा माना, तो संशयात्मक सिद्धांत होजायगा. विश्वासपात्र न होगा. तथाहि आपका यह कथन तो, उस कालमें शोभित हो कि, आज तक जो शोध हुई उन शोधक नियमोंसे अविरुद्ध ओर निर्दोष होजाता. परंतु सोतो पूर्व ओर वक्ष्यमाण लेखसे वेसा निर्दोष सिद्ध नहीं होता. एतद्दृष्टि आपके प्रश्नके सविस्तर उत्तर देनेमें उपेक्षाहे.-व्यर्थ हे.

कारण-दर्शन-१४

(अभिन्न निमित्तोपादान कारण)

जो वेदांत पक्षमें ब्रह्मको अभिन्न निमित्तोपादान मा-

नके सर्व रचना करते हैं, सोभी अयुक्तहै. क्योंके ब्रह्मको
व्यापक, एक, चेतन, निरवयव, अक्रिय ओर अखंड बतला
हैं ओर जगत्तो परिच्छिन्न, नाना, जड, सावयव, सक्रि
ओर सखंड देखपडता है; अतः "उपादानवत् उपादेय हो
ताहै तिससे विलक्षण नहीं होता," इस सृष्टि नियमके विरुद्ध
होनेसे अयुक्तहै. तथा एकही, व्यापक, परिच्छिन्न; अखंड
सखंड; चेतन, नचेतन; अक्रिय, सक्रिय इत्यादि मान्ना पडने
विरोध ओर व्याघात दोष आजाताहै. तथाही दोषवाले ज
चार्वाक मतको स्वीकार होजाताहै; क्योंके "चार्वाक ज
वस्तुको व्यापक मानतेहैं, अर्थात् मूल जडत्व विशिष्ट ज
पदार्थ देशकाल वस्तु परिच्छेद रहित वर्त्तमानहैं.—कोइ ए
सा देश नही जहां, जड पदार्थ [परमाणु] नहों, कोइ का
एसा नहीं केवे नहीं रहतेहों, कोइ तद्भिन्नवस्तु नहीं के जि
समें जडत्व नहो." इस जडवादवत् ब्रह्म, अणुपरिमाण
परमाण्वोंका समूहात्मक सावयव स्वरूप मानाजावे तबही
उसके भाग मिलके कार्य बनसकते हैं, एकरस निरवयव मा
नेंतो, बने नहीं. जेसेके, चार्वाक मतमें जड वस्तुके नान
भेदहैं ओर वे अमुक अमुक प्रकारके परमाणु स्वाभावत
मिलके ज्ञातृत्वादि गुण उद्भव होके कार्य होतेहैं. वेसे, ब्रह्मभी
नाना प्रकारका अवयव वाला होगा, तबही, उसमेंसे अने
विचित्र कार्य बनतेहोंगे.—यहां केवल परिभाषा मात्रका अंत
रहा. अर्थात् वे जड पद व्यवहारतेहैं, वेदांती चेतन प
व्यहारतेहैं. इस रीतिसे "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" वाक्यका व्यव
हार उभय पक्षमें होसकताहै. जो यह कहोके "शुद्ध ब्रह्म
चेतन, निर्विकार, अपरिणामी, एकरस, घन, अखंड, अच्छे

द्य, अभेद्य–हे, सो किसीका उपादान नहीं हे, किंतु सर्वका अधिष्ठान हे; ओर माया विशिष्ट ईश्वर चेतन, जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान हे.–जेसे मकडी, तंतुको रचती हे उस तंतूरूप कार्य प्रति मकडीका शरीर उपादान हे –क्यों-के उसके शरीरको तोलके फेर निकले हुये तारोंको तोडके शरीरको तोलोगे तो, न्यून होगा. ओर चेतन भाग–जीव तंतुका निमित्त कारण हे. परंतु सो चेतनमकडीके शरीर विशिष्टही निमित्त कारण हे. तद्भिन्न दृष्टिसे अधिष्ठान हे. इसी प्रकार दार्ष्टांत–(माया विशिष्ट ईश्वर, चेतन अभिन्न निमित्तोपादान कारण प्रति) में समझलेना चाहिये. "–एसा मानेंतो, ईश्वरत्वका अभाव होजायगा; क्यों के माया पदार्थ ओर चेतन–उभय मिलके जगत्के उपादान ओर निमित्त माने हें. वहां निरीह चेतन मात्रमें तो अधिष्ठानताके सिवाय अन्य कल्पना नहीं हे. व्यापक में क्रियाके अभावसे कर्तृत्वादि (जगत्कर्त्ता) का कथन असंभव हे. तथा उसमें संकल्पादि क्रियाभी नहीं हे, तो जेसे, शरीर जड मात्र तंतुके रचनेमें असमर्थ हे वेसे. माया मात्र जगत् रचनेमें असमर्थ रहेगी. जो उसका स्वतंत्र मानके उसीमें कर्तृत्वादि मानलोगे तो, अनेक दोषग्रस्त सांख्य वाद स्वीकार होजायगा. ओर जो माया विशिष्ट चेतनमें ईक्षण इच्छा–संकल्प ज्ञातृत्वादि मानोगे, तो पूर्वोक्त ज्ञातृत्व प्रसंगानुसार,–अर्थापत्ति वा परिशेषानुमानकी रीतिसे शुद्ध ब्रह्ममेंही आरोप होगा.–जोके वेदांत पक्षके विरुद्ध हे. ओर उभय मिलके, उपादान रहित नवीन सर्वज्ञत्वादि धर्मविशिष्ट वस्तु उत्पत्तिका, पूर्वोक्त–

ज्ञातृत्व प्रसंगवत् अभाव हे. अतः ब्रह्ममेंही मानना पडेगा, सो वेदांत पक्षके विरूद्ध हे. ओर जो "चेतनकी सत्ता स्फुरणा वा साधिष्ठानतासे माया स्वाभावतः रचतीहे, अर्थात् उसमें कर्तृत्व—ईक्षणा—ज्ञातृत्वादि हें." एसा मानोगे तो, पुनः सांख्य वा योग मत मानना पडेगा. कारणके ब्रह्म विन माया ओर माया विन, ब्रह्म कभी नहीं होता; क्योंके जेसे उभय वा उनमेंसे एककी सिद्धि उन उभय विना नहीं होसकती ओर न आजतक किसीने कीहे [यह वात आपकोभी संमतहे], वेसेही सांख्य मत विषे प्रकृति विन पुरुष, पुरुष विन प्रकृति कभीभी नहीं हुये, नहें, और नहोंगे; तब केवल अध्यस्त वा साधिष्ठानता भाव, परिभाषा वा कल्पना मात्र हे. जो, 'ब्रह्म विना, माया नहीं रचसक्ती' एसा ब्रह्म भिन्न हुये सिद्ध होता; किंवा, माया विना, ब्रह्ममें स्फुरणादि सिद्ध होजाते' तबतो, एसा भेद मानलेते; परंतु सोतो हे नहीं किंतु शारीरिक भाष्यकी भूमिकामें अद्वैताचार्य श्रीमत् शंकराचार्यही मायाको अनादि अनंत कहतेहे.[1] अतः

---

१ "अयमनादिरनन्तो नैसर्गिकोऽध्यासः" (शंकर भाष्य). तब अध्यासका मूल माया—अज्ञानसो; अनादि अनंत स्वयंसिद्ध हे. उपनिषदोंके सार खेंचके कहनेवाले श्रीकृष्ण महाराजने भी मायाको अनादि अनंत कहा हे. "नरुपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो नचादिर्नच संप्रतिष्ठा." यहां वाचक महाशयको में सूचना करताहूं कि, शारीरिक भाष्य [शंकर कृत भाष्य] देखें. उसकी पहिली दूसरी अध्यायमें ईश्वरकी इच्छा, कर्तव्यादिका निषेध ओर श्रुतिका मान अभिन्न निमित्तोपादानका स्वीकारहे. उस प्रसंग वांचने पीछे ...

व्यापक ब्रह्म चेतनसे इतर देशमें उसका कहना वा अभाव बतानाही नहीं बनता. निदान सर्वदा रहनेसे-व्याप्य व्यापक होनेसे, सांख्य मतसमान स्वाभावतः स्वतंत्र मायामेंही निमित्तोपादानता सिद्ध होगी; परंतु यह वात वेदांत पक्षसे विरुद्ध है. इतनाही नहीं किंतु, सदोषहे.-" उपादान ओर निमित्त विना कोइभी कार्य-वस्तु नहीं होता." यह नियम है. किंतु प्रत्येक कार्यमें कर्त्ता कर्मादि सात विभक्तिकी अपेक्षाहे. कर्त्ता [प्रकृति], कर्म [इच्छादिसे जो संयोग वियोग], करण [इच्छादि वा स्वभाव], संप्रदान [जीवादिके भोगवास्ते वा पदार्थ मात्र फलही हैं तदर्थ], अपादान [प्रकृतिमेंसे], संबंध [जीव ओर शरीरादि संबंध इत्यादि] अधिकरण [ब्रह्म वा देश अथवा कार्योत्पत्ति ओर पूर्वमें जो काल], इस प्रकार सातही विभक्तिकी अपेक्षा है. ओर उपादान निमित्त उभय भिन्न २ होतेहैं. अतः जिस प्रकृति-वा माया भागमेंसे जगत् बना, सो उपादान, ओर जो भाग क्रिया-कर्म-कर्त्ता वा निमित्तहै सो भाग, यह उभय स्वरूपसे भिन्न २ हुये. इस रीतिसे दोनोंको मिलाकरके एक नाम [माया, जड, प्रकृति] कथन मात्र वा कथन प्रकारहे. वास्तविक रीतसे अभिन्न निमित्तोपादान नहीं है; जेसे वृक्षादिककी रचनामें पृथ्वी जल अग्नि तो उपादानहैं ओर इनके संयोग वियोगका निमित्त, आकर्षण किंवा स्वभाव, किंवा अन्य सूक्ष्म प्रकृति-माया-का अंश है. अतःभिन्न २ ही सिद्ध हुये. चेतन नहीं. ओर ईश्वरत्वका अभाव हुवा.

आपकी रीतिमें तो ओर भी दोषहैं-अर्थात् माया विशिष्ट चेतन-ईश्वर है. उस ईश्वरमें उपादानता प्राप्त होनेसे ईश्वरके एक भागके कटके कटके होंगे; क्योंके माया अंशसे

सर्व कार्य बनेहैं. एसे कूटके कटके होनेवाला ईश्वर है. उसी- के मल विष्टादि अंशहैं, यह कहना सर्वथा लज्जा उपजाता है. एसे ईश्वरके माननेसे लाभभी क्या होगा? जो सत्ता स्फुर्ण देने मात्रसे चेतनमें निमित्तता, ओर परिणाम पानेसे मायामें उपादानता मानीतो, अक्रिय चेतन, कर्त्ता न हुवा किंतु मायाही हुइ. परंतु सनियम कार्य, इच्छा ओर ज्ञान विना नहीं होसकते; सोतो मायामें है नहीं. केवल सत्ता देने मात्रसे कुछ नहीं होता. जेसेके, दीपक सत्ता देताहे परंतु, रोगिष्ट वा अंध चक्षू वा इच्छा ज्ञान विनाका श- रीर कुछ नही करसकता. इसी प्रकार सत्ता मात्रसे माया कुछ नहीं कर सकती; किंतु इच्छा, ज्ञान, क्रियाकी आवश्य- कता है, अतः वे, मायामें माननेसे—सोही कर्त्ता, धर्त्ता ह- र्त्ता ठेरेगी. ईश्वरत्वका अभाव होगा. जब ईश्वरकाही अ- भाव हुवा तो, जीवेश्वरकी एकताभी कहां? अथवा उक्त रीतिसे माया ओर जीव (अंतःकरण) की एकता होगी.

जो स्वभाववाद मानके निर्वाह करोगेः—अर्थात् " चे- तन ओर मायाका परस्पर मेल तथा उस करके मायाका परिणाम स्वाभावतः है." तो चेतन ब्रह्मके माननेकीभी आवश्यकता नहीं. भूमिपर दो चंद्र क्यों न हुये? मनुष्यके दो फुफस क्यों हुये? किसीके चार आंख क्यों न हुइ? इत्यादि शंका उत्पन्न होनेसे किसी नियम पूर्वक चेतन इ- च्छा ज्ञानवाले कर्त्ताको मानाना पडेगा. सो, माया (उ- पादान) से भिन्न इच्छा ज्ञानवाला चेतन होगा. आपका निरीह, अक्रिय ब्रह्म नहीं. जब यूं हो तो नैयायिक, किरानी, कुरानी वगेरेके मतकी व्याप्ति होगी. आपका उक्त पक्ष न रहा.

जो न्याय मत समान 'व्यापक ईश्वर ओर घटादिवं

संयोगरूप कार्यका निमित्तभी ईश्वर ओर उपादानभी ईश्वर हे.' ईश्वरको अभिन्न निमित्तोपादान मानोगे तोभी आपका इष्ट सिद्ध नहीं होगा. क्योंकि अन्य पदार्थ आपके मतमें हें नहीं, अतः संयोगका दृष्टांतही नहीं बनता. किंतु अपने परिणामांशमें [कनक कुंडल समान] आपका आपही संयोगी होगा. अर्थात् ब्रह्म सावयव ठेरेगा. किंवा संयोग कोई कार्यरूप-पदार्थ नहीं किंतु, दो पदार्थोंकी अवस्था विशेष हे. ओर दृश्यनो संयोगी पदार्थ हें; अतः विषम दृष्टांत हे. निदान सूक्ष्म विचारसे देखाजावे तो अभिन्न निमित्तोपादानका उदाहरणही अप्रसिद्ध हे. तब निरवयव अपरिणामी ब्रह्म विषे, तो अभिन्ननिमित्तोपादानताकी कल्पना स्वप्नमेंभी नहीं बनसकती. दृष्ट प्रमाण तथा युक्ति विरुद्ध, शब्द मात्रपर आधार नहीं होसकता.

अज्ञान-दर्शन-१५.

जगत्का उपादान अनादि भावरूप अज्ञान-मायानामा (वस्तु)-पदार्थ हे वा नहीं ? जो हे तो वोह एक हे वा अनेक ? इन प्रश्नों के निर्णयसे वेदांत सिद्धांतकी अयथार्थता प्रतीत होती हे.* अर्थात्:—

पूर्व प्रकारवत् ब्रह्म एक होनेसे स्व (ब्रह्म) स्वरूपका अज्ञानभी एकही होना चाहिये. क्योंकि ब्रह्मेतर अन्य पदार्थ होतो, ब्रह्मके नाना अज्ञान माने जावें. परंतु अन्य नहीं मानते हें; अतएव अज्ञान एक हे. जब मूल अज्ञान एक हे तो, उसका एक काल विषे एकही परिणाम होने योग्य

---

* इस दर्शनको संपूर्ण [illegible] ज्ञात होगी, [illegible] मात्र देखनेसे नहीं.

हे.—नाना नहीं. अर्थात् जिस कालमें अंतःकरणरूप परिणाम हुवा हो उसी काल विषे अन्य सूर्यादिरूप परिणाम नहीं होसकता. इसी प्रकार तमाम—द्रव्य गुण [ईश्वर—जीव—इत्यादि] के संबंधमें जानना योग्य हे.—एक परिणाम कालमें अन्य पदार्थोंका मानना वा कथन अर्थशून्य होगा. जेसे मृत्तिकाजन्य घटकालमें शरावकादि वा रज्जु सर्प परिणाम कालमें जलधारा इत्यादिका कथन, मंतव्य—अर्थशून्य हे. जो अज्ञानके कार्य अंतःकरणादिके उपाधि भेदसे जीवादि (जीव, ईश्वरादि) के नानात्व मानें तो, १ क्या तो ब्रह्मके स्वरूपमेंही नानात्व—[सावयवत्व] प्राप्त होगा. जेसेकि समुद्रके जलमें शीतत्व सावयव—नाना सजातीय स्वरूप हे.—ज्यूं ज्यूं जलके विभाग हों वा करें, त्यूं त्यूं भिन्न २ ज्ञात होता हे; एसेही ब्रह्मस्वरूपमें उपाधि बलसे नानात्व मानलेना पडेगा. अन्यथा नानारूप जगत्का दर्शन असंभव. २ क्या तो " एसा मानें कि, महाकाश घटाकाशवत् ब्रह्म, स्वरूपसे एकही हे—अखंड हे—अछेद्य हे, परंतु घटाकाशवत् घटादिकी उपाधिसे नानारूप—सावयव समान प्रतीत होताहे. " तो, ब्रह्मस्वरूपकी दृष्टिसे, अज्ञान एकही पदार्थ हे; एसा सिद्ध होगा. इसलिये अंतःकरण विशिष्ट की दृष्टिसे वा उसमें नाना अज्ञान—नाना अज्ञानजन्य नाना जीव—जीवभाव—नाना अंतःकरण—इत्यादि मानना अर्थशून्य होगा. जोकि वेदांत पक्षमें ब्रह्म छेद्य—भेद्य, परिणामी वा सावयव होनेका अस्वीकार हे; इसलिये उत्तर पक्षपर दृष्टि डालें तो, अज्ञानके कार्य—उपादेयही सिद्ध नहीं होते क्योंकि जबकि ' मूल अज्ञान एक हे ' एसा मानलिया तो, वोह स्वरूपसे निरवयव मानना पडेगा. निरवयव ए

पदार्थका, परिणाम नहीं होसक्ता.-नित्य जेसाका तेसा रहता हे. ओर अपरिणामीसे कोई उपादेय-परिणामी-नाना कार्य नहीं होसकते. परंतु (वेदांत रीतिसे अज्ञानका कार्य-) नाना नामरूप-विचित्र जगत् प्रसिद्ध हे. एतद्दृष्टि विचार करें तो, उक्त लेखसे निम्न लिखित परिणाम निकलता हे.-१, दृश्य जगत्का उपादान मान्ने-होनेसे, अज्ञान सावयव पदार्थ हे.-सजातीय विजातीय-अवयव समुदायका नाम अज्ञान हे.-'में नहीं जानता' इस प्रतीतिका विषय भावरूप (वस्तुशून्य) पदार्थ नहीं किंतु, अन्य कुछ हे. २, अथवातो, यह जगत् वेदांतपक्ष स्वीकृत अज्ञानका उपादेय नहीं.-जेसे रज्जु विषे जो सर्प सो, वेदांत रीतिसे अविद्या-अज्ञानका परिणाम हे. वेसे, यह जगत्, मूल अज्ञानका परिणाम नहीं ठेरेगा.-सिद्ध नहीं होता. ३, किंवा मूल एक अज्ञानसे भिन्न समग्र प्रपंच-जगत्का अन्य उपादानभी मान्ना पडेगा; (सो, स्वाभावतः वा अज्ञान करके वा ब्रह्म करके जगत्रूप परिणामको पाता हो). जब यूं हे तो यदि उत्तर-तीसरा परिणाम स्वीकारो तो, तीन वस्तु-पदार्थ माननेसे वेदांतका पक्ष त्यागना पडेगा. क्योंकि ब्रह्म, अज्ञान-इन दो वस्तु मान्नेसे उनका संबंध ओर भेद-यह चार पदार्थ-स्वयं सिद्ध होजाते हें. उनमेंसे ब्रह्म ओर अज्ञान, स्वरूपसे एक एक पदार्थ हें, अतः उपादानरूप नहीं होसकते. ओर संबंध भेदभी जगतके उपादान सिद्ध नहीं होते; क्योंकि द्रव्य, गुण, संबंधी, घट, आकाशादि उनसे विलक्षण देख पडतेहें.-संबंधरूप नहीं हें.-' उपादानवत् उपादेय ' इस प्रसिद्ध नियम समान, नहीं प्रतीत होते. यद्यपि प्रपंचके पदार्थोंमें परस्पर संबंध ओर भेद हे, उनका उपादान कारण मूल संबंध

ओर भेद हो; तथापि वे अंतःकरण, मन ओर पृथ्व्यादिके उपादान नहीं. अतः पूर्वोक्त प्रकारसे तीसरे सावयव पदार्थकी कल्पना अवश्य हे. उसके विना, नाना विचित्र सृष्टि उत्पत्ति स्थितिका निर्वाह नहीं होसकता. अब इस तीसरे पदार्थ—जगत्के उपादानको मिथ्या—अनिर्वचनीय मानो वा सत्य मानो तथा कुछभी नाम दो; परंतु एक निरवयव अनादि अनंत ब्रह्म तथा [उक्त एक] अज्ञान—माया ओर उभयके संबंध भेदसे भिन्न मान्ना पडेगा. सो आपके सिद्धांतके विरुद्ध हे. इसी प्रकार पूर्वोक्त दो शेष परिणामभी वेदांतके पक्षको सिद्ध नहीं करते (आगे वांचोगे).

तथा वेदांत संप्रदायमें अज्ञान पक्ष विषे वसिष्ठ, वाचस्पति आदियोंके अनेक [1] भिन्न [2] पक्ष हें. उसीसे सिद्ध होजाता हे कि अज्ञानके स्वरुपमें अव्यवस्था वा संशय हे; क्योंकि, सत्य वस्तु एक ओर हरेकप्रकार—रीति प्रक्रियासे जब तब वही वेसीही सिद्ध होनी हे—हेन योग्य हे. नाना प्रकाररूप नहीं; इसलिये नाना पक्ष होनेसे अज्ञान कल्पनामात्र ठेरता हे; यह बात सहजमेंही मान—जान सकते हें. जो वेदांतपक्षकार स्वसंप्रदायिओंके नाना मंतव्यकाभी निर्वाह करेगा तो, अन्य संप्रदायवालोंका मंतव्यभी, स्वीकारना पडेगा; क्योंकि जेसे वेदांतके मूल पक्षमें सर्व वेदांतियोंका यह सिद्धांत हेः—“ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः”—ओर निर्णय करनेमें नाना पक्ष हें. वेसेही, अन्य मतवालोंमें ‘कुछ हे’ एसा मंतव्य मानके निर्णय करनेमें नाना प्रकार नाना [2] पक्ष हें. इस

---

१ ईश्वर प्रसंग—दर्शन. ४ गत टिप्पण वांचो. २ बौद्धोंके ४ पक्ष देखो.

तमाम लेखका सार यहहे कि, वेदांत संप्रदायमें अज्ञानका यथावत्–संशय रहित निर्णय नहीं हे. (अन्यथा नाना पक्ष नहीं होते). पक्षकारोंने स्व स्व कल्पनासे लिखमारा हे. [३]

जो यह कहोकि "अज्ञान• भावरूप वस्तु, अनिर्वचनीय हे; अर्थात् (रज्जु सर्पवत्) सावयव निरवयव लक्षणसे विलक्षण हे." तो, एसे सदोष–असंभव पक्ष मान्नेसे, इस प्रकार क्यों नहीं मानाजाय कि, "(रज्जुवत्) ब्रह्म, एक अद्भुत पदार्थ हे, स्व स्वरूपको न सागके [रज्जु सर्पवत्] नाना–विरोधि सजातीय विजातीय* रुपवाला होके जगत्रूप होता हे ओर फेर स्व स्वरुपमें आजाता हे. शंका विवाद करना व्यर्थ हे–अर्थात् परमाणुवादीवत् समूहात्मक सावयव परिणामी ब्रह्म हे." इस रीतिसे अद्वैत पक्षकाभी बाध नहीं होगा. ओर ब्रह्म भिन्न, अज्ञान ओर पूर्व पूर्व संस्कार तथा इनका संबंध ओर भेद माननेका गौरवभी नहीं होगा. यद्यपि यहभी सदोष मत हे, तथापि जीवेश्वर मिथ्या कत्थक वेदांतियोंके मतसे कुछ अच्छा हे. जो एसा मानोगे तो, जेसेके इस पक्षको वर्त्तमानमें एक वेदांती मानता हे ओर उसको दोषोंके परिहारसे वार नहीं आना, एसाही आपको लांछन लगेगा. तथाहि अनिर्वचनीय मान्नेसे (वक्ष्यमाण) माया अनिर्वचनीय असिद्धि प्रसंगवाले दोष प्राप्त होंगे.

ओरभी; उक्त विलक्षण (निरवयव सावयवसे अ-

३ कोईभी पक्ष–प्रक्रिया–रीति–प्रकारसे मूल सिद्धांतमें जावें, अतएव नाना पक्ष इष्ट हें, एसा वेदांतियोंका कहना–मान्ना योग्य नहीं हे (आगे वांचोगे.)

* तम प्रकाश, अग्नि शीत, भाव अभाव, इत्यादि. शुद्धाद्वैतवालों समान.

न्य प्रकारका) अज्ञान, व्यापक-निरवय देशकालका उपा-
दान हो, एसा सिद्ध नहीं होता. क्योंकि उपादेय परिणाम
जन्य होता हे, व्यापक परिणामित नहीं होता-किसीसे
जन्य नहीं होता. विलक्षण उपादानका विलक्षण उपादेय
होने योग्य हे; यह बात प्रसिद्ध हे. अतः (इन तीनों का-
रणको लेके) व्यापक निरवयवं देशकाल किसीकेभी परि-
णाम-उपादेय -कार्य नहीं मान सकते-असिद्ध हे. जो एसा
कहोगेकि वे ब्रह्मकी दृष्टिसे परिच्छिन्न हें वेसे, मायाकी
दृष्टिसेभी परिच्छिन्न हें, तोभी अनादि अज्ञानसे देशकाल
उत्पन्न हुये, यह कथन असंगत हे; क्योंके जब देशकाल
उत्पन्न हुये एसा कहोगे, उसी कालमें तिस पूर्व देशकालथे,
एसा मानना पडेगा. तथा जब माया-अज्ञान सांत हुये मा-
नोगे, उस उत्तर, देशकालकी सिद्धि सहजसे ज्ञात होजा-
ती हे; क्योंके देशकाल विना, कोईभी कार्य-परिणाम नहीं
होसक्ता. माया-अज्ञानको अनादिकालके बतानेसे यही परिणाम
निकलता हे. इस रीतीसे माया-अज्ञानवत् देशकालभी, अपने
उपादान-न होनेसे अनादि हें ओर ब्रह्मवत् अनादि अनंत
होनेसे द्वैत सिद्ध हे.

जो एसा कहोगे कि " जेसे, स्वप्न विषे यो-
ग्य देशकाल (सामग्री) विना, स्वप्नसृष्टि [देशकाल, सूर्य,
चंद्र, हस्ति, पहाड, पुत्र, स्त्री, पौत्रोत्पत्ति-इत्यादि] होती
हे; तोभी, देशकालमें कारणता ओर अन्यमें कार्यता प्रतीत
होती हे. निदान स्वप्नवाले देशकाल, माया-अज्ञान-अ-
विद्या वा मन वृत्तिके कार्य हें; किसीके कारण नहीं, तद्वत्
ब्रह्म वा मायाकी कारणता, देशकालमें प्रतीत होती हे.
वे स्वयं किसीके कारण नहीं; किंतु मायाके कार्य हें. अ-

तः मायाके परिणाम पानेमें उपयोगी नहीं; उनमें संसर्ग करके अन्यथा कारणता प्रतीत होती है." यह कल्पना भी समीचीन नहीं; क्योंकि 'किसी (ब्रह्म वा माया) का धर्म [कारणता] किसी (अन्य देशकाल) में प्रतीत होना' यह न्यायमत है. अर्थात् आप जो अन्यथाख्याति स्वीकारोगे तो, उभय (रज्जु, सर्पत्व-संसर्ग-संसर्गी-धर्म-धर्मी) सत्य होनेसे द्वैतवाद स्वीकारना पडेगा. ओर जो वेदांतकी मानी हुई अनिर्वचनीयख्यातिसे निर्वाह करोगें, तो वक्ष्यमाण अनिर्वचनीय प्रसंगवाले दोष प्राप्त होके द्वैतापत्ति होगी. ओर उपर जो स्वप्नका दृष्टांत कहा सो, मूल प्रसंगमें मान्य नहीं होसकता. किंवा, इदमत्वादि विशिष्ट जाग्रतके संस्कारानुसार मनकी रचनासे स्वप्नसृष्टि है. अतएव दृष्टांत देने योग्य नहीं-वा साध्य है-वक्ष्यमाण अध्यास प्रसंगवत् दोष आते हैं. तथाहि जबकि सर्वथा असंभव बात-["माया वा ब्रह्म जबकि देशकालादि पदार्थरूप परिणाम धारे तब, अनहुये-अनुत्पन्न देशकालकी कारणता ब्रह्म वा मायाके परिणाममें किंवा कारण-माया वा ब्रह्मकी कारणता उसके कार्य-देशकालमें प्रतीत होना-एसा मानो "] का स्वीकार है तो, ब्रह्मभी एसाही-भ्रमज्ञान-अयथार्थ ज्ञानका विषय क्यों न मान लिया जाय? सदोष बौद्धमत समान "समकाल दृष्टा दृश्य न हुयेभी, एक निरवयव परिणामीके दृष्टा दृश्यरुप परिणामकी समकाल प्रतीति" क्यों न स्वीकारी जाय? वंध्यापुत्रकी प्रतीति क्यों न मानी जाय?. जो यह कहोकि "स्वप्नवत् दृष्टि मात्रही सृष्टि है. कोई किसीका कार्य कारण नहीं" तो आपका तमाम सिद्धांत-"ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या"

सिद्ध नहीं होगा. ब्रह्म नहीं है, एसा मान लेना पडेगा. अर्थात् त्रिपुटी मात्र-स्मृति, कल्पना, सद्, असद्, इत्यादि तनाम ओर तिनका अस्ति भाति प्रियरुप प्रकाशक साक्षी-यह सर्व समकाल उत्पन्न नष्ट होते हैं; एसा अनादि अनंत प्रवाह हे. बंध मोक्षादि कुछभी नहीं हे. उलटा, कालतो सत्य हे. अन्य ब्रह्मादि दृष्टि मात्र हैं; अनादि अनंत अध्यास स्वरुप हे किंवा यह जो कुछ कहा-माना-कह रहे हें सोभी तद्वत् हे-अर्थात् 'शून्य हे. वा अनिश्चित हे. वा कुछभी नहीं कहसकते' एसा, मानना पडेगा. उससे अव्यवस्था[1] रहेगी. आपको चुप रहना पडेगा. जो इस पक्ष विषे "अधिष्ठान, साक्षी, प्रकाशकको मनाने वास्ते तत्पर होंगे ओर उसके न स्वीकारनेपर नाना दोष लाओगे किंवा, अन्य दोष कल्पोगे" तो, पूर्वोक्त वा अन्य दोष आपके पक्षमें आजावेंगे-उपस्थित होंगे. ओर देशकालादि को अनादि अनंत माने विना छुटकारा नहीं होगा. इत्यादि रीतिसे देशकाल किसीके कार्य नहीं.

अज्ञान ओर ब्रह्मका अन्योऽन्य अभाव-भेद हे ओ घट पटादिकाभी भेद हे; तथा आपके पक्षानुसार माया सां होने पीछे उसका अभाव होना चाहिये; इससे यह सिद्ध हुवा कि भेद-(ब्रह्मका भेद)-अभाव, अज्ञान-माया कार्य नहीं; क्योंकि अज्ञान-माया-भावरुप पदार्थ हे. उससे अभावरुप कार्य सिद्ध नहीं होसकते-नहीं बनते. तथा

१ अध्यासकी सामग्री तद्भिन्न न कहसकोगे. अपना अप नेको अध्यास असिद्ध. इस मंतव्यके साक्षीकी आवश्यकता.-अन्य बालगाली समान अंध परंपरा, पुरुषार्थ ओर साधनका अभाव-इत्यादि अव्यवस्था.

माया-अज्ञान अनादि, ओर ब्रह्म अनादि तथा उनका भेद-अन्योऽन्याभाव अनादि हे; अतएव भेद-अभाव, ब्रह्म वा मायाका कार्य नहीं. किंतु उसके अनादि अनंत होनेसे द्वैतापत्ति हे.-माया सबका उपादान नहीं. जो यह कहोकि "जेसे घटके उपादान परमाणु, वा मृत्तिका पिंडमें घटत्व नहीं, जलाधार होनेकी सामर्थ्य नहीं, परमाणु, गोचर नहीं; परंतु उसके कार्य घट शरावादिमें यह सब कुछ हैं. तद्वत्, भावरूप माया-अज्ञान, अभावादिका उपादान÷ बनसकता हे." यह मंतव्यभी समीचीन नहीं; क्योंकि परमाणुकी रचनाविशेषसे घट, घटत्वादि नाम ओर कार्यविशेष हे. उनसे भिन्न नहीं. जलादिमें सूक्ष्म भाग मिलने-घट्ट होनेसे बरफ-हिम होके विशेष शीत होताहे. सो, मूळ उपादानसे नवीन वा भिन्न नहीं. उक्त कारण कार्य विरोधीभी नहीं हें (विचारवानको विवेक-पृथक्करण करके ध्यानमें लेलेना चाहिये. अयोग्य कल्पना समझके विस्तारसे उपराम होतेहें). तद्वत् भावरूप पदार्थसे, उपादेय अभावकी उत्पत्ति संभव नहीं-असंभव हे. क्योंकि घट, घटाभाववत् वे उभय तदन्न भिन्न २ हें. उनका उपादान उपादेयभाव नहीं बनता. हां, जो जड परिच्छिन्न मृत्तिका पिंडसे ब्रह्म चेतन* वा आकाश किंवा तमसे प्रकाश, प्रकाशसे तम नामा उपादेय* बनजाते तो, आपका मंतव्य-कल्पना मानलेते. परंतु वेसा* नहीं होता. अतएव आपकी कल्पना अमान्य-त्याज्य हे.

÷स्वप्नवत्.* स्वप्नमेंभी एकही वस्तु(अविद्यादि)एक कालमें भाव अभारूप नहीं होती. तथा उस स्वप्न अभाव, जाग्रत अभावरूप नहीं धारती किंजि[illegible]अभावका यहां प्रसंग हे. ओर जो भिन्न २ कालमेंआकाशादि-भाव अभाव आकार धारती हे सो नाना प्रकारी संस्कार-भावनारूप

जो यह कहो के " माया-अज्ञान-एक पदार्थ हे और अद्भुत् पदार्थ हे. जेसेके स्वप्नमें देशकाल विना, देशकालादि भाव-अभावरूप पदार्थ उत्पन्न होतेहें, उस कालमें सत्य ओर अनादि अनंत तथा एक उपादानजन्य परस्पर कारण कार्यभाव रहित, नाना परस्पर कारण कार्यभावसे प्रतीत होतेहें, और जाग्रतमें सर्व शून्यरूप हें; वहां अविद्यामात्र उपादान हे. वेसे ब्रह्ममें अज्ञान वा मायाजन्य समझलेना चाहिये." यह कहनाभी अयुक्त हे; क्योंके स्वप्नमें आपकी रीतिसेभी अविद्या ओर (अदृष्ट) संस्कार तथा अधिष्ठान यह तीन हें. वेसेही मूलमें अज्ञान, पूर्व पूर्व संस्कार ओर अधिष्ठान यह तीन मानने पडेंगे. इससे यह सिद्ध हुवा के दृष्टि मात्रही सृष्टि नहीं, किंतु सृष्टिका मूल पूर्व २ संस्कार अनादिसे हें, वे परस्पर संबंध पातेहें, तदाकार माया वा अज्ञान, कार्य स्वरूप होता रहता हे. अतः उपादान, अज्ञान-अविद्या ओर निमित्त, संस्कार हुये. परंतु एसा माननेसे अव्यवस्था होतीहे, कारणके प्रथम वोह वस्तु हे के, जिसके संस्कार पडे ओर उत्तरमें अज्ञान-माया-ने तदाकार रुप धरा किंवा जो, संस्काराकार अज्ञानने रुप धरा उस वस्तुके उत्तरमें संस्कार हुये सो हे? निदान किसीकाभी पूर्व उत्तररूप नहीं कहसकोगे. ओर जो कहोगे तो, नाना दोष प्राप्त होंगे [इस रीतिसे] अन्योऽन्याश्रय दोष प्राप्त होनेसे कोइभी व्यवस्था नहीं होगी. जेसे स्वप्न सृष्टि रचनामें उससे पूर्व अ

हे. वस्तुतः नहीं. इस उपरांत जो पक्षकार हठ करे तो, यह समाधान हे कि दृष्टारुपभी होतीहे-साक्षी स्वरूपभी भासती हे; अर्थात् जिसे आप ब्रह्म चेतन कहतेहें सोभी, वृत्ति-मायाका कार्य मानना पडेगा. और पूर्व टिप्पणमें सूचने समान अव्यवस्था होगी.

विद्या और संस्कार विद्यमान हैं. वैसे, जाग्रतके पदार्थ (जिनके संस्कार हैं) 'आपकी रीति वा दृष्टिसृष्टि वादसे' अज्ञानके उपादेय हैं,-जोके जाग्रत पूर्वके संस्कार आकार रचे गये हैं; इस पूर्व पूर्व संकलासे उक्त दोषकी सिद्धि होती है. निदान अज्ञानजन्य वस्तु वा उसके संस्कार वा संस्काराकार अज्ञानजन्य वस्तु है, इनका निर्णय न होनेसे मत असमीचीन रहेगा. और अज्ञानकी सावयवता निरवयवताका दोष पूर्ववत् प्राप्त होगा. इस रीतिसे अज्ञान और तज्जन्य जगत्को माननेसे वेदांत सिद्धांतकी अयथार्थता प्रसिद्ध है.

अज्ञान कोइ पदार्थही सिद्ध नहीं होता, किं जिसको अध्यासका निमित्त वा उसको मानके सृष्टिके उपादानको मिथ्या मानें; क्योंके आपके मतमें "त्रिगुणात्मक-सदसद्विलक्षण-मैं नहीं जानता हुं-इस अनुभव बलकर कथने योग्य भावरूप", अज्ञान नामक पदार्थका लक्षण है. तहां अज्ञान नाम अप्रतीतिका है. पूर्व यह सिद्ध किया है के स्व स्वरूपको कोइभी नहीं जानता, तब स्व स्वरूपकी अप्रतीति स्वाभावतः है. न कि अज्ञान नाम आवरण वा निमित्त करके. जो अज्ञान पदके वाच्य करके होतो, ज्ञानसे उसका बाध होके स्व स्वरूपकी प्रतीति होजावे; तब 'मैं नहीं जानता,' इस अनुभवकर कथन योग्य, अज्ञान नामा पदार्थ सिद्ध होवे; सो तो है नहीं. अतः मैं नहीं जानता, यह स्वभावमात्र वा अध्यासरुप कथन है.-किसी पदार्थका वाची नहीं. जैसे जब आकाशमें धूम वा वर्षा आवृत्त हो, तब कोई कहता है के, आकाश गोचर नहीं होता. इसकी अर्थापत्ति यह हुइ के निरूप व्यापक आकाशको पूर्वमें चक्षु गोचर करता होगा? नहीं, नहीं; किंतु व्यावहारिक अनेक कारणोंको लेके बुद्धि

गोचरको अन्य रूपसे कहता है. जेसेके धुम्रादि आवरण हैं, वेसेही स्व भिन्न अन्य पदार्थोंकी अप्रतीतिमें अज्ञान नामा पदार्थ नहीं; किंतु दूर, समीप, तिरोधान, सूक्ष्मत्व, कारण दोष, अयोग्यता, विषय विषयीके योग्य संबंधका अभाव-ज्ञान ज्ञेयका योग्य संबंध वा स्वाभाव्यादि कारण हैं. जहां कोइ गुप्त कारण नहीं जान पडता वहां, अज्ञान-अविद्या-नामा पदार्थकी कल्पना करलेते हैं, जेसेके शीतको चक्षु विषय नहीं करसकती, वहां अयोग्यताहे वा स्वभाव है, ऐसे स्व स्वरुप न जाननेमें स्वाभाविक अयोग्यताहे. जो एसा नहीं मानोगे ओर अपनको अपना ज्ञान-साक्षात्-अपरोक्षत्व मानोगे तो, उक्त ज्ञाता ज्ञेय भिन्न अपरोक्षत्व क्या ? इस प्रसंगवाले) दोष प्राप्त होंगे. इस रीतिसे ' में अपनेको नहीं जानता ' एसा, स्वाभाविक वा अयोग्यताको लेके कथन है, अज्ञान करके नहीं. किंवा किसी मिश्रणमेंसे संस्कार वा अभ्यासबलसे कुंभ वायुवत् निकलता है वा कहता है.

गुण गुणी स्वरुपसे भिन्न २ होतेहें. जब उस [अज्ञान] को त्रिगुणात्मक (सत्व रज तम-आवरण-विक्षेपादि अंशवाला) कहा तो, अज्ञान ओर गुण-इतने पदार्थ मानने पडेंगे-सावयव और द्वैत माने विना छुटकारा नहीं होनेका; कारणकि गुण गुणीका तादात्म्य वा समवाय वा भेदाभेद संबंध कहना नहीं होसकता* क्योंके स्वरुपसे भिन्न२ हैं.* जो संयोग संबंधसे मानोगे तो, अज्ञानवत् वे भी पदार्थ कल्पने पडेंगे. जो भेदाभेद संबंध मानोगे तो, विरोध दोष आवेगा. ओर जो अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध मानोगे तो, मिथ्याका मिथ्या साथ संबंध माने विना छूटकारा

* स्वरूप अप्रवेश वाला प्रसंग-दर्शन ४ का याद कीजिये

नहीं होगा. अर्थात् मायाका स्वरुप ओर गुण उभय अनिर्वचनीय हें, अतः उभयका संबंधभी वेसाही हे. इससे यह सिद्ध हुवा के ब्रह्मका माया साथ, मायाका ब्रह्मके साथ अनिर्वचनीय संबंध नहीं.—यदि ब्रह्मभी मिथ्या होतो, अनिर्वचनीय संबंध मानना ठीक हे. किंवा माया सत्य हो तो, उभयका तादात्म्य संयोग संबंध मानना पडे. परंतु आपकी रीतिसे एसा मानना अयुक्त हे. अतः ब्रह्म ओर माया उभय विलक्षण सत्ता होनेसे इनका संबंधभी सत्य ओर अनिर्वचनीयसे विलक्षण अज्ञानसे भिन्न कहना चाहिये. जो स्वप्न-द्रष्टा ओर स्वप्न पदार्थोंके संबंधवत् कहोगे तो, सोभी नहीं बनता, क्योंके " किसी पक्षकारके मंतव्य अनुसार यह कह-संकतेहेंके जेसे, जाग्रतमें उदासीन पुरुष अंतरमें कोइ आकृति रचके देखता हे. वहां, उपादान अंतःकरण—मन—वृत्ति हे. अतः उभय सम सत्तावाले होनेसे उस द्रष्टा दृश्यका सम सत्तावान संबंध हे. वेसेही स्वप्नमें समझलेना. केवल इतनाही अंतर हे के " वहां, निद्रा दोष करके स्व अंतःकरणादिकी रचना हे " इतना भान नहीं होता; तदाकारही हुवा रहता हे. अर्थात् जेसेके, सो उदासीन वा भंग पीया हुवा पुरुष संकल्प करता हुवा आकृति रचके तदाकार होके उसको देखता हे, उसके उत्तर क्षणमें स्वत्व वा यह मनोरथ मात्र हे एसा जानता हे. परंतु रचना ओर निरखने कालमें कल्पना वा सत्यासत्यभाव प्रतीत गोचर नहीं होता. वेसेही, स्वप्न क्षणमें समझलेना. जेसेके जाग्रतमें "स्वप्न देखा" एसा कहता हे, परंतु मेंने रचे वा मेरे अंतःकरणके परिणाम थे, एसा नहीं कहता; कारणके निद्राविशेषदोष हे. जब विचार करेगा तो, स्वप्न मनोरथ मात्र (संस्कार, वासना जन्य)

प्रतीत होजायगा. जो एसा नहीं मानोगे तो, स्वप्नवाल
स्त्री के भोगसे जाग्रतकी इंद्रियद्वारा वीर्यपात नहीं होना चा
हिये और होजाताहै. तथाही जन्मांधको रूपका स्वप्न होन
चाहिये (क्योंके आपकी अनिर्वचनीय अविद्या-स्वप्न
उपादान, और रूपके पूर्व जन्मवाले संस्कार तो उसके पा
भी हैं). परंतु नहीं होता इस रीतिसे स्वप्नद्रष्टा और स
रचित स्वप्न पदार्थ समसत्तावाले होनेसे उभयकी समसत्ता
रूप कोइ संबंध है, विलक्षण नहीं.-संस्काररूप होनेके कारण
जाग्रतसे विलक्षण प्रतीत होताहै; क्योंके जाग्रतके पदा
भिन्न २के संयोग वियोगजन्य हैं; और स्वप्नके वास्तविक स
स्कार मात्र परिणाम हैं. और अभ्यास रचित हैं. इत्यादि
रीतिसे मूल माया और ब्रह्मका संबंधभी समझलेना चाहिये
जो आपके सिद्धांतानुकूल विषम सत्ता मानोगे तो, जेसे
स्वप्नगत पदार्थोंका अनिर्वचनीय तादात्म्य मानते हो उस
विलक्षण द्रष्टा और जाग्रतके पदार्थों के साथ मानना पडेगा
अनिर्वचनीय नहीं. और वही ब्रह्म माया विषे कहने
हमारा प्रयोजन है. अतः मायाका ब्रह्म और ब्रह्मका माया
साथ-यह दो संबंध, परस्पर विलक्षण तथा माया-अज्ञा-
न-और उसके गुणादिका जो संबंध सो तीसरी प्रकारका
मानना पडेगा. जब यूं है तो, अनेक अव्यवस्था अनवस्था-
दि दोष सूचक एक अनिर्वचनीय अज्ञाननामा पदार्थ, न
होना चाहिये; क्योंके व्यवस्थादितो देखतेहैं अतएव नाना।

तथाही जेसे, माया और उसके गुणका स्वरूप भे
द अनिर्वचनीय है, उससे विलक्षण माया-ब्रह्मका भेद(अ-
न्योऽन्याभाव) कहा चाहिये, सोदोनों बातें आपके मतमें
नहीं हैं. जो अब मान लोगे तो, पुनः संबंधका संबंध, भेद

का भेद–इत्यादि नाना सत्ता वाले कल्पन करनेसे अव्यवस्थाही रहेगी. अतः अज्ञान–मायाको वातो पदार्थ माननाही असंगत है; ओर जो पदार्थ मानें तो, ब्रह्मके साथ उसका सत्य संबंध होनेसे माया–अज्ञान सत्य है, एसा मानना ठीक होगा. परंतु जो अज्ञान पदार्थ होतो, उसका ब्रह्म साथ कोइ संबंधभी सिद्धहो. किंतु अज्ञान पदार्थ असिद्ध है; क्योंके जो पदार्थ मानें तो, व्यापकके स्वरूपमें तो उसका प्रवेश नहीं, अतः परस्पर तादात्म्य संबंधभी नहीं. जेसेके, पृथ्वी, जल यदि स्वरूपसे पदार्थ होंतो, गंध शीत उसके स्वरूपसे भिन्न होते ओर स्वरूपमें अप्रवेश होनेसे परस्पर तादात्म्य संबंधवाले नहीं, किंतु संयोग वा व्यवहार कल्पित तादात्म्य संबंधवाले होंगे. इसी प्रकार ब्रह्म स्वरूपमें अप्रवेश होने, ब्रह्मस्वरूपेतर देश न होनेसे संबंध सहित उसकी सिद्धिही नहीं होती; जो कहोके परस्परमें समवाय हैं; तो यह कथनभी समीचीन नहीं. क्योंकि ब्रह्मेतर कोइ देश होवे तो, समवाय (नित्य), संयोग संबंध बने, परंतु ब्रह्ममें परिच्छिन्नता, छेद्यता, भेद्यताका बाध है; अतः अज्ञान वा मायाकी असिद्धि है. इस प्रकार सत्य मायाका अभाव है: परंतु जगत्के पदार्थ तो सर्वको प्रत्यक्ष प्रतीत होतेहैं; अतः इनके उपादान सावयव वा समूहात्मक परमाण्वादिकी सिद्धिहै. किसी एक माया वा अज्ञान रुपकी सिद्धि नहीं होती है. इस रीतिसे पूर्वोक्त (ईश्वर सिद्धि.) प्रसंगवत् ब्रह्मनामा पदार्थ नहीं, किंतु कार्यरुप जगत्का उपादान, तद्वत् (जड चेतन सत्य जगतवत्) चेतन अणु ओर अणु जड हैं, ओर आकाशादि स्वरुपसे हैं; परंतु ब्रह्म वा अज्ञान नहीं. इस प्रकार माननेसे जो विलक्षण संबंध मान-

नेमें पूर्व दोष कहे सो नहीं आते.

यादि हठसे अज्ञानको पदार्थ मानोगे तो, सो, ब्रह्मके सर्व देशमें है वा एक देशमें ? तहां जैसेकि, 'मैं नहीं जानता '—ऐसे प्रत्यक्षका विषय, जितने देशमें अहमत्व है उतने देशमें अज्ञानको जानता है. वैसेही " ब्रह्मके सर्व देशमें एक व्यापक है " ऐसा सिद्ध होगा. अतः सो विभु परिणामवाला अक्रिय किसीका उपादान न होगा. इस रीतिसे जगत्का उपादान न होगा. इस रीतिसे या तो, अज्ञानाभाव ठरेगा वा अज्ञान-उपादानरुपका, अभाव होगा. उभय पक्षमें आपके सिद्धांतकी हानी होगी. और जो हठसे यह कहोगे के, ' ब्रह्म स्वरुपके एक देशमें अज्ञान है ' तो शेष स्वरुपमें अपनी अप्रतीति नहीं अर्थात् ' ब्रह्म वहां तो अपनेको जानता है, और जहां अज्ञान है वहां अपनेको नहीं जानता; ' ऐसा सिद्ध होगा, परंतु ऐसा माननेसे ब्रह्मके अनुभवमेंही अपनी सावयवता माननी होगी. जो ब्रह्म निरवयव एक हो तो, उसको अपना सर्वथा ज्ञान है, ऐसाही कथन बनेगा. अज्ञान नहीं. इत्यादि रीतिसेभी ब्रह्मके अज्ञान वा अज्ञान पदार्थकी असिद्धि है.

कदाचित् दुराग्रहसे अज्ञान किसीका अज्ञान नहीं किंतु अज्ञाननामा परिच्छिन्न पदार्थ है, ऐसा मानलेवें तो, सावयव होगा वा अणु होगा. परंतु एक निरवयव नहीं होगा.—और असंभव दोष आनेसे सावयव निरवयवसे विलक्षण अनिर्वचनीय नहीं मानना पडेगा. जब यूं है तो, सत्य और ब्रह्मकी समसत्तावाला नित्य होगा. और विचित्र जगत्का उपादान माननेसे नानारूप अवयववाला होगा. अर्थात् " मैं नहीं जानता " ऐसे प्रत्यय

...रके जो स्वरुप कल्पन करते हो वा कथन योग्य समझते हो, वेसी लक्षणतावाला नहीं; किंतु परमाणुका समूहात्मक मानना पडेगा.

जो एसा कहोगेकि "कोइ पुरुष एसा प्रयोग करेकि 'मेरायन अन्य विचार वा स्थलमें था'–(यहां मन ओर वक्ता भिन्न २ ठेरे)" तहां, वेसा कहनेवाला पुरुष ओर जाननेवाला वृत्ति उपहित चेतन साक्षी हे–इस प्रयोगमें अज्ञानी पुरुष, 'मनकोतो जान्या तथा 'में हूं' इतने करके स्व सामान्य स्वरुपको कहता हे, परंतु में केसा हुं, एसा विशेष स्वरूप नहीं जानता इस (न जाने–अप्रतीति का नामही अज्ञान हे; इस रीतिसे 'अज्ञान भावरूप पदार्थ हे' एसा सिद्ध होता हे" यह मान्नाभी कथन मात्र हे; क्योंकि जेसे मनका कोई [वक्ता] ज्ञाता हे वेसे "में हुं" इस प्रयोगमेंभी, में वक्तासे भिन्न इस–[में हुं] का ज्ञाता होना चाहिये; क्योंकि में का वाच्य–में वक्ताका विषय कर्ता, प्रयोगकाल विषे, तद्भिन्न [वक्तासे भिन्न] अन्य मानोगे तबही; स्व सामान्यत्व [में का वाच्य] को साक्षी वा अनुभव प्रतीतिका विषय मान सकते हैं. (कारणकि वक्तातो बकता हे. अभिमान, संकल्प वा बकने कालमें ज्ञान परिणाम नहीं धर सकता). अन्यथा नहीं. तेसेही जब में 'ब्रह्म चेतन हुं' वा 'अणु चेतन हुं' वा 'में मध्यम हुं' एसा विशेष स्वरुप वक्ता पुरुष कहेगा वा कहता हे, तब पूर्वोक्त सामान्यांश विषयवत्, इस विशेषका अनुभव कर्ता वा जिसकी प्रतीतिका विषय सो हे, वोहभी, वक्तासे भिन्न होगा वा हे. इस (पूर्वोक्त) लेखसे यह सिद्ध हुवाकि "में एसा हुं" एसा ज्ञाता वक्ता, उस विशेष स्वरुपसे भिन्न

हे. जब एसा मानलोगे तब, ज्ञान प्राप्ति पश्चात् 'अज्ञान पदार्थथा–उसका नाश होगया;' एसा कह सकोगे–वा ज्यूं त्यूं मान लेंगे. परंतु आपको अपना पक्ष छोड देना पडेगा; क्योंकि ज्ञेय–आत्मा–ब्रह्म ओर तद्भिन्न ज्ञाता, यह दोनों अनादि अनंत मानलेने पडेगें. [जो ज्ञेयका ज्ञान नहीं मानोगे तो, अज्ञान सिद्ध नहीं होनेका]. पुनः उन विषे तिनके संबंधमेंभी पक्षापत्ति होगी. जो कोइ ब्रह्मको जानता हे वा अपने स्वरुपको जानता हे सो [व्यक्ति], अपनेको १ अपने ज्ञाताको, २ ओर वे [दोनों ज्ञेय]३-४ स्वरूप, अपनेको जानते हैं वा नहीं? इस अव्यवस्थाका निर्दोष उत्तर नहीं बननेसे यही निकलेगाकि जडवत्, ब्रह्म वा जीव किंवा कोईभी अपने स्वरुप–आपको नहीं जान सक्ता. [हां, वे चारूं जड हों वा अपनेसे भिन्न–अन्यको साधन द्वारा जानते–जानसकते हों वा प्रकाशते हों, किंवा नहीं; यह जुदा प्रसंग हे. इस प्रसंगका विषय नहीं]. जब यूं हे तो "में मेरे मनके संकल्पको जानताहुं" 'में संकल्प करताहुं' 'में नकटा' 'मेरी नाक' 'में काना' 'मेरी आंख' इत्यादि*

* इदम्, अयंको, में वा तूं नहीं कहता. परंतु में (केवाच्य) को तूं ओर तूं (वाच्य) को में कहता वा मानलेता हे; यह केसा स्वाभावतः अभ्यास–अध्यास! तद्वत् जीव सृष्टि–[यह मेरा, यह तेरा, यह उसका, यह पुत्र-पुत्री–स्त्री–काका–काकी–मित्र–शत्रु–अच्छा–बुरा–सुखकारी–दुखकारी; इन्हीं–मेरा आदिको दूसरा अन्य रुप–प्रकार–दृष्टिसे देखता वा मानता हे. यथा जिसको एक पुत्री कहता हे, उसको दूसरा पत्नी कहता हे–मानता हे. सर्प, मनुष्यको अप्रिय–दुःखद हे, परंतु सर्पनीको सर्प प्रिय सुखद हे. मुसलमान लोक काकाकी लडकीको भगनी कहते हें, पुनः उसीको अपनी पत्नी बनालेते–मानते हें. ग-

विरुद्ध प्रयोग, केवल अभ्यास मात्र, स्वाभाविक ओर परस्परके संस्कार (छाप-फोटो) द्वारा कुंभ वायुके शब्द वा कटपुतली वाक्य-वा पोपट छंद कथन वा फोनोग्राफी यंत्र समान होते हैं. ओर सर्वमें एसा होनेसे, उसकी अहंकार वा जीव इत्यादि नाम-संज्ञा रखली है" एसा सिद्ध होगा. नकि आपका अज्ञान सिद्धक उक्त विकल्प. जो संकल्प कर्त्तासे भिन्न कोई जीव वा साक्षी हो,-तो अपने अंतरमें जरा विचारीये?-अर्थात् जिस क्षणमें संकल्प होरहाहे उसी क्षणमें द्रष्टा, श्रोता नहीं हे. किंतु जो संकल्पक हे वही उत्तर क्षणमें "में संकल्प-विचार करताथा-मनके शब्द सुनताथा-आकृति रचता वा देखताथा, सो में जानता हूं, मेरा मन संकल्प करताथा-आकृति रचताथा, सो में जानता हूं" एसे परस्पर विरोध सूचक वाक्य बोलता हे. इसीसेही सिद्धहोताहेके 'में हूं' "में अपनेको नहीं जानता" एसा

गर्भवती स्व स्त्रीको छोडके, कोई विदेशमें गया हो-पीछेसे उस स्त्रीके पुत्र ओर पुत्री उत्पन्न हों ओर वे युवा हुये कहीं जाते हों. उधर उनका जनक मार्गमें मिले. इस प्रसंगमें वे परस्परको नहीं जानते. जनक, पुत्रको पीडित देखना हे परंतु, द्वेष करता हे. किंवा पुत्रीको रूपवान देखके कुदृष्टि करता हे. जब परस्परमें जानजाते हैं तो, उसी पुत्रमें पुत्रदृष्टि करलेता हे ओर पुत्रीमें पुत्रीभाव करलेता हे. पूर्वकी दृष्टिसे मनमें पछताता हे. किंवा विदेशमें गये हुये, विभूती प्राप्त सुखी पुत्रको, दुष्टके मुखसे मरा हुवा सुनके पिता रुदन करता हे-अर्थात् कुदरती पुत्र विदेशमें विद्यमान हे, परंतु मानासिक-जीवरचित-कल्पित पुत्र मरनेसे रुदन करता हे. एकही पुत्रको किसी कालमें सुखद मानता हे. किसी कालमें दुःखद मानता हे इत्यादि] हे. निदान संस्कार बलसे विलक्षण अध्यास-अभ्यास हे.

प्रयोग वा मंतव्य–अभिमान (में काना, मेरी चक्षु, मेरी नाक, में नकटा, में सुखसे सोया, मुझे कुछभी खबर नहीं, इत्यादि समान) संस्कार, तंतुरचना, स्वभाव, आकर्षण, शब्द, विद्युत्, ओर आराके मेलसे स्वाभावतः होता है; अज्ञानके आवरण होनेसे नहीं होता हे. अर्थात् अज्ञान पदार्थ नहीं हे, यह सिद्ध हुवा. जो यह कहोगेके संस्कारादि रूपकी अप्रतीति अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारसे[१] जो अहंअज्ञादि होता है; इसको में नहीं जानता, तथा संस्कारादि [उक्त पदार्थ][२] को में नहीं जानता–इस प्रतीतिका विषयही अज्ञान है. इसका समाधान यह हे के, जिस समूहात्मकमें अहंअज्ञ [भाव] होता हे तद्गत तादात्म्य वा संयोग संबंधवाले पदार्थोंको सो नहीं जानता. परंतु तेसे, तद्भिन्न अन्योंको विषय करनेकी उसमें योग्यता हे, स्वांशके विषय करनेकी उसमें योग्यता नहीं. इस प्रकार, "अज्ञाननामा पदार्थ करके नहीं जानता वा अज्ञाननामा पदार्थकी आवरण विक्षेप शक्ति करके नहीं जानता," एसा नहीं है. ओर "पूर्वोक्त प्रकारको * में नहीं जानता" यहां उस समूहात्मक पुंजमें उक्त प्रकारकी सामग्री वा विषयका सृष्टिनियमानुसार योग्य संबंध–विषय करनेरूप संबंध–नहीं है; जब गुरू, पदार्थ ज्ञान ओर योगादि साधन हों तब, उसमें, विषयकारी संबंध प्राप्त होनेसे, अन्य–स्व अतिरिक्त पदार्थों समान स्वाभावतः विषय होतेहें. १. जिसको लोकमें ज्ञान–प्रतीति–इत्यादि क

---

[१] [स्वाभावतः]. २ पूर्वोक्त संस्कार तंतु रचना वगेरे.

* स्व समूहात्मक–पुंजगत संस्कारादिका अनुमान, पर संस्कारादिका चीरफाडसे ज्ञान ओर अनुमान तथा पूर्वोक्त प्रकार–सिद्धांतका ज्ञान होता हे–विषय होतेहें.–अभ्यास-प्रयोगमें आतेहें.

ब्दसे व्यवहारतेहैं, तथा अमुकका अमुकको (समुहात्मकको) ज्ञान हुवा, इसी संज्ञासे कहतेहैं. इस पूर्वोक्त जडवादकी रीतिसे "अज्ञान पदार्थ हे" इस सिद्धांतका अभाव हो-जाता हे. यद्यपि पूर्वोक्त जड प्रकारमें उक्तकी रीतिसे अन्य दोष आतेहों, तथापि अज्ञान प्रसंगाभावि भागमें वेदांती लोक दोष नहीं देसकते. क्योंकि वेभी सत्व रज तमादि मि-श्रित समूहात्मक मध्यम परिणामवाले अंतःकरणमें उक्त वातें मानतेहैं. कोइ आभासको विशेष वढाता हे. जडवा-दसे इतनाही अंतर हेके, वेदांती उक्त व्यवहारका प्रकाशक चेतनभी मानते हैं. ओर जड वादमें सर्व विषे एसाही अ-भ्यास होनेसे पृथक संज्ञा रखी हे, अन्य अंतर नहीं. इस रीतिसे उक्त दृष्टांत वा अनुभवसे अज्ञान पदार्थकी सिद्धि नहीं होती.

जो त्रिगुणरूपही अज्ञान वा मायाका स्वरुप हे, एसा मानोगे तो, जगत्प्रसिद्ध सगुण द्रव्योंकी उत्पत्ति नहीं होनी चाहिये. क्योंके गुणसे, गुणोत्पत्ति होसकती हे—द्रव्यकी नहीं.

जो सांख्य मत समान त्रिगुणकोही परिभाषाके अंतर द्रव्य नाम मानते हो तो, शीतादि गुणोंकी उत्पत्ति नहीं होनी चाहिये. क्योंके द्रव्योंसे द्रव्यकीही उत्पत्ति होती है,—गुणकी नहीं. ओर जो उसका द्रव्य-गुण-कर्म अर्थ लेके निर्वाह करोगे तो, पूर्वोक्त सावयवतादि दोष प्राप्त होंगे. द्रव्य गुणात्मक [सगुण पंचभूतात्मक] अज्ञानको माने तोभी, पूर्वोक्त दोष आवेंगे. ओर स्व सिद्धांत त्यागना पडेगा; तथाहि अज्ञान-माया-अव्यक्त ओर अव्याकृत हैं तो, उनके कार्य व्यक्त नहीं होने चाहियें; ओर उपादेय तो आकृतिवाले प्रसिद्ध हैं.

जो माया–अज्ञान–ही सर्वका मूल कारण हो तो, अंतःकरणादि उसका निर्णय वा मंतव्यत्व नहीं करसकता. जेसे संतान "में इस माता पिताके इस रज वीर्यका हूं" एसा साक्षात्–यथार्थ–नहीं जानसकता वेसे 'जीवेश्वर, माया–अज्ञान हे–केसे हें,' इसके निर्णय करनेमें असमर्थ हें.

जो यह कहोके चेतनकी सहायताको लेकर उसका मंतव्यत्व–निर्णय वा ज्ञान करता हे; सोभी नहीं बनता, क्योंके जेसे, स्व प्रकाश स्वरुप, दीपक–पदार्थोंका प्रकाशक मात्र हे; परंतु यह इसका, यह उसका, यह एसा, यह उससे बना, यह स्व मंतव्य हे, यह कार्यरुप हे, इत्यादि निर्णय कारक वा निणयमें सहायभूत नहीं; किंतु यह सर्व काम चक्षुबुद्धि आदिके हें; वेसेही दार्ष्टांतमें समझलेना. इस प्रकार मायाको उपादान मानके जो जो माया–अज्ञान–विषे कथन करोगे. वोह मान्य नहीं होसकता. ओर प्रत्यक्ष, अनुमान, युक्ति आदिका आश्रय लेके निर्णय करोगे तो, अज्ञानकी असिद्धि ओर मायाकी सावयवता तथा अनादि अनंतता ओर निर्णय कारक उससे भिन्न सिद्ध होगा. क्योंके कार्यसे कारणका कुछ कुछ स्वरुप अवश्य जान पडता हे. प्रपंच सावयव ओर नाना हे, अतः उसका उपादान सावयव ओर नाना स्वरुपात्मक–समूहात्मक–कहने योग्य हे.

'अज्ञान–माया अभावरुप हे' एसा तो आप नहीं मानते हो. जो कदाचित् मानोगे तो, इष्ट विरुद्ध दोष (ओर वक्ष्यमाण अजातवाद प्रसंगवाले दोषों) को प्राप्त होंगे. किंतु उपादान उसको भावरुप कहना पडेगा. जब यूं हे तो, ब्रह्मभी भावरुप हे, अतः ब्रह्मभी अज्ञान जेसा हुवा. इस व्याप्ति

कहना पडेगा-कहोगे-कहते हो; परंतु एसा माननेसे आपको व्याघात, असंभव दोष होनेका है; क्योंकि भाव अभावसे विलक्षण कहके भावरूप कहना व्याघात. भाव वा अभाव-रूप नहीं मानके भावरूप कहना-मानना असंभव दोष. पुनः भावाभावको विलक्षण भावरूप कहना-मानना अनवस्था हे. इसलिये अज्ञानका अनिर्वचनीयत्वादिरूप निर्णय, सर्वथा-सर्वांश अलीक हे-नहींमानसकते. जब यूं है तो, आपकी मानीहुई रीतिसेही उसके पदार्थत्वका बाध होगा. ओर हठ करोगे तो, भावरूप ब्रह्मभी हे, अतः वोहभी अनिर्वचनीय-मिथ्या ठेरेगा.

आपकी रीतिसे ब्रह्मज्ञानकालमें अज्ञान ओर तत्कार्यका नाश मानना पडता हे-तहां, शरीर वृत्त्यादिकी प्रतीति ज्ञान पश्चात्भी ज्ञानीको स्पष्ट हे. मानोकि " ज्ञान पूर्व स्व स्वरूप अज्ञान ओर अध्यासरूपसे जगत्का अज्ञान तथा सत्य रूपसे जगत्का ज्ञान तथा, ज्ञान पीछे इन तीनों (स्व स्वरूप अप्रतीति, अध्यास रूपसे जगत्की अप्रतीति ओर वृत्ति ब्रह्मांडका सत्सत्व) का बाध हुवा. " तोभी शरीर, वृत्ति वा ब्रह्मांडकी प्रतीति हे. अतः यह ब्रह्मांड, अज्ञानका कार्य-अज्ञान रचित नहीं. किंतु अज्ञानके नाशसे जिनका नाश हुवा वेही अज्ञानके कार्य थे, यह सिद्ध हुवा.

आश्चर्य है कि आप लोक योग्य वृत्ति चेतनका योग्य विषय साथ अभेद संबंध, ' सो प्रत्यक्ष ज्ञान '-(ज्ञानका स्व-रूप) मानते हो. (वृत्ति उसकी साधक होनेसे उसकोभी ज्ञान कहते हो.-ब्रह्म चिन्मात्र हे, वृत्तिकी उपाधिसे उसको ज्ञान कहते हो); परंतु वस्तुतः स्वरूपसे ज्ञान, कोइ पदार्थ नहीं मानते, किंतु अभेद संबंधको ज्ञान कहते हो-सो अवस्था

विशेष है. इसका परिणाम सहजमें यह निकल आता है कि:-योग्य असंबंध ['वृत्ति उपहित चेतनका विषय साथ न योग्य संबंध' सो अज्ञान],-अवस्था विशेष अज्ञान है-पदार्थ नहीं. जो, "ज्ञाता वा प्रकाशक [साक्षी] का विषय [ज्ञेय] साथ असंबंध-[योग्य न संबंध वा योग्य संबंधाभाव] सोही अज्ञान;" ऐसा मानोगे तो, उसे जगत्का उपादान नहीं कहसकोगे.-द्वैतापत्ति होगी.-ज्ञेय ज्ञाता विना अज्ञानकी सिद्धि नहीं होगी.-अज्ञान, सादि सांत ठेरेगा.-अपना अपनेसे असंबंध कभी नहीं होता; इसलिये 'में नहीं जानता' इस प्रतीतिका विषय अज्ञान नहीं होगा.-वृत्ति, ब्रह्मको विषय नहीं करसकती, इसलिये सर्वदा असंबंधी माननी पडेगी; परंतु ब्रह्मको तो सर्वके साथ समीप संबंध है; अतएव असंबंधभी अज्ञानका स्वरूप नहीं; किंतु असंबंध, अवस्था विशेष है-पदार्थ नहीं. तद्वत् 'ज्ञानाभाव-अज्ञान' माननेमेंभी दोष हैं [1]

---

१ जो कहोकि "ज्ञान अभाव, अज्ञानका स्वरूप है, अतः सावयव नहीं." तो, वोह अभाव, अभावरुप है वा भावरूप है ?. प्रथम पक्षकी असिद्धि है; क्योंकि, १ अपने प्रतियोगी [अहं] के आश्रय और उसका आवरक नहोसकेगा.- ब्रह्मसे इतर देशमें होना चाहिये, सो असिद्ध है. २ प्रथम ज्ञान होके ज्ञानका अभाव हो तब उसकी सिद्धि होगी. तिस विना "ज्ञानाभाव" पदका प्रयोग नहीं बनेगा. ३ ज्ञानका विरोधि होनेसे उसकी निवृत्ति नहीं होगी; क्यों कि उन [अज्ञान, ज्ञान] का संबंध होताहे तब तो, एक दूसरेके नाशक हों, परंतु घटका घटाभावके साथ संबंध नहोने समान ज्ञान, ज्ञानाभावका असंबंध (अस्पर्श) है; अतः नाश होना नसंभव. ४ जो, ज्ञान, ज्ञान अभाव [अज्ञान] को विरोधी नहीं मानोगे तो-

इत्यादि प्रकारसे अज्ञाननाना कोई प्रकारका तत्व पदार्थ सिद्ध नहीं होता. ओर जो मानते हैं तो, अनेक दोष

भी, नाश नहीं होगा ५ वृत्ति ज्ञान, जीव आत्माके अज्ञानकी विरोधि हो, नकि अपने अज्ञानकी; तद्वत् जीव आत्मा स्व अज्ञानका नाशक नहीं सकेगा. ओर अन्यद्वारा नाश होनेसे उस [जीव] को लाभभी नहीं होसकता. व्यापक ब्रह्मको आवृत्त नहीं करसकेगा; क्योंकि अभावमें आवृत्तपना नहींहे ओर ब्रह्म–ईश्वर व्यापक हे उसके ज्ञानका अभाव कहना असंभव हे. जो मानोगे तो, व्यापक न होगा. वा आवृत्त होगा. उभयथा स्वपक्षकी हानी स्वीकारनी पडेगी. ७ ज्ञान स्वरुप [जीव वा] ब्रह्ममें तद्भावकी असिद्धि होगी. ८ सावयव भावरुप जगत्का, उसे उपादान नहीं कहसकोगे. ९ अभावरूपकी निवृत्तिही क्या? १० साधनकी निष्फलता होगी.

ओर जो दूसरा पक्ष [भावरूप] मानोगे तो, व्याघात दोष होगा.–अभावको भावरूप कहना अग्निको शीतल कहने समान हे. तथाहि उक्त दोषका परिहार न होगा; क्योंकि घटाभाव अपने स्वरूपसे भावरूप हे तोभी, प्रतियोगी अनुयोगी आदिकी अपेक्षा रखता हे. उसे पंच प्रकारके अभावोंमेंसे जोनसा मानोगे, उसीमें दोष आवेगा.–अत्यंताभाव, अन्योऽन्याभाव वा प्रध्वंसाभावरूप माननेसे, द्वैतापत्ति होगी. प्रध्वंस वा साम्यकाभाव माननेसे अज्ञान, अनादि नहीं ठेरेगा. प्रागभावरुप माननेसे, ज्ञानाभाव नहीं कहसकोगे. किंतु, ज्ञानोत्पत्ति पूर्व मानना पडेगा; परंतु ज्ञानोत्पत्ति आपके मतमें नहीं हे.–उलटा ज्ञान होनेपर अज्ञानका नाश माना हे. प्रागभावका अभाव प्रतियोगी स्वरुप होता हे; अतः ज्ञानका प्रागभाव, ज्ञानस्वरुप हुवा, नकि विरोधी. अभावरूपकी सिद्धि करनेमें द्वैतापत्तिका निवारण नहीं होसकता; इत्यादि रीति ओर दोषापत्तिसे अज्ञान, ज्ञानाभावरुप नहीं.

आतेहैं; अतएव अज्ञान प्रतिपादक और तिसबलकर जगत्-को मिथ्या सूचक प्रचलित वेदांत सिद्धांत समीचीन नहीं.

अध्यारोप-दर्शन-१६.

वेदांत पक्षमें जो, अध्यारोपापवाद नामक प्रक्रिया मानके जगत्के व्यवहारका निर्वाह और मिथ्यात्व सिद्ध किया है.-सोभी, समीचीन नहीं है, क्योंके अध्यारोप कि-सने किया ? आरोपितसे आरोपक भिन्न कहा चाहिये. त-हां, आरोपित जो सव्यवहार जगत् सो सर्व. उपादान अ-विद्या-मायासे पृथक् नहीं; अतः माया और उसके का-मन-जीवेश्वरादिमें तो आरोपकत्वका अभाव है. जो मानें तो, आत्माश्रय दोष प्राप्त होगा. तथा आरोपितसे पूर्व आरोपक होना चाहिये; तहां, आरोपित माया और ब्रह्मसे इतरका स्वीकार नहीं है; अतएव आरोप मानना सयुक्त नहीं. यदि माया-ब्रह्मसे इतर, तीसरा आरो-पक मानोगे तो, द्वैतापत्ति होगी. स्व सिद्धांतका त्याग होगा. क्योंके अनादि माया और उसके कार्यका आरोपक भी अनादि होगा. जो अनादि सो अनंत होता है, इस-लिये नित्य होनेसे द्वैत होगा.

यदि मनादि करके आरोप मानोगे तो, कार्य स-कारणके आरोप करनेमें असमर्थ, किंवा अनारोपित मना-दि अनादि अनंत होनेसे द्वैतापत्ति. जो यह कहो के ' आ-रोपक, ' आरोप करके सांत होगया. ' तो, यह कहना अयुक्त है; क्योंके अनादि सांत नहीं होता. जो उसे सा-सांत मानोगे तो, आरोपकके स्वरूपकीही असिद्धि होगी और आरोपित माया और उसके कार्य प्रपंच-समष्टि स्थू-

जीवेश्वरादिभी सादि सांत होनेसे साधन ओर मोक्ष मंतव्य निष्फल होजायंगे. किंवा आरोपित वस्तु आरोपकके अभावसे सकार्य स्वयं नाश होजायगी; अतः अज्ञान–माया–अविद्याको ज्ञाननिवर्त्तनीयमानैना उचित नहीं; ओर जो आरोपक अनादि विद्यमान मानें तो, उसकी आरोपित, उसके रहनेसे नित्य रहेगी. यदि स्व आरोपितका अभाव करेगा तोभी, स्वयं रहेगा; अतः द्वैतापत्ति होगी. तथाही उसके नित्य होनेसे उसके गुण स्वभाव–आरोपकत्वादि–रहनेसे पुनः पुनः कल्पना करेगा; इस लिये ज्ञाननिवर्त्तनीय न होनेसे आपका ज्ञान ओर मोक्ष व्यर्थ होगा. ओर द्वैतापत्ति रहेगी.

जो कहोके 'ब्रह्म करके आरोपित हे' तोभी, पूर्वोक्त[1] कल्पना प्रसंगवाले दोष आनेसे ब्रह्म सगुण ठरेगा. ओर उसके कार्य सत्य होनेकरके सकार्य माया सत्य होनेसे द्वैतापत्ति होके स्व सिद्धांत साग होगा.

जो माया–अज्ञान–विशिष्ट चेतन–मिश्रितको अध्यारोपक मानो, सोभी नहीं बनता; क्योंके 'वस्तु (ब्रह्म) में अवस्तु (माया ओर उसका कार्य प्रपंच) का आरोप' अध्यारोपका अर्थ हे; अतः विशिष्टगत मायांशमें तो, आरोपकत्व नहीं बनता. शेष रहा चेतनांश, उसमें आरोपकत्व कहनेसे पूर्व दोष प्राप्त होंगे. जो विशिष्टजन्य तीसरा नवीनोत्पन्न पदार्थ, आरोपक मानोगे तो, पूर्वोक्त* (ज्ञातृत्वादि नवीनोत्पन्न) प्रसंगानुसार दोष आवेंगे. इत्यादि दोषापत्ति करके अध्यारोप कथन असंगत होनेसे अपवादकाभी निषेध हुवा.

जो यह कहोकि 'सृष्टिको देखके बुद्धि, नाना प्रका-

---

[1] दर्शन ८ * दर्शन ९

रकी कल्पना (मत) आरोप करने पीछे अपवादमें "ब्रह्म सत्य तद्देतर मिथ्या" एसा परिणाम निकालती हे.' तो में यह कहूंगाकि, जगत् किसीकी आरोपित न हुई; किंतु "मत" (जड, चेतन, द्वैत, अद्वैतादि) आरोपित हें; यह आपके कथनका परिणाम—फल. हे. जब यूं हे तो, अध्यारोपके लक्षण न रहे.—आपने स्व पक्ष त्याग किया. ओर आपका निकाला हुवा अपवाद ठीक हे वा अन्य पक्षकारोंका ठीक हे, इसका निर्णय होना शेष रहा.

अध्यास—दर्शन—१७.

जेसे अध्यारोप माननेमें दोष कहे गये हें वेसे, अध्यास (न तिसमें तिसकी बुद्धि वा प्रतीति, किंतु अन्यथा रुप अवभास सो, अध्यासका लक्षण हे[1]) वादमेंभी समझलेना; क्योंके ब्रह्म विषे अध्यास कथन आपके सिद्धांतसेही बाधित हे. किंतु चेतन तो, तिसका प्रकाशक वा साक्षी हे, ओर अज्ञान, स्वयं अध्यासका कारण हे, अतः अज्ञान, अध्यासरुप नहीं. जीवेश्वर, बंधादिका अध्यास हो परंतु, सो अध्यास किसको हे? यह बताना चाहिये; जीवादि तो अध्यासरु हें, अतः उनको अध्यास हे, एसा कहना नहीं बनता; ओर जो, 'जीवेश्वरको अध्यास हे' एसा, मानभी लोगे, तो जीवेश्वरभी अज्ञान समान अध्यासके पूर्वकालमें हुये, एसा सिद्ध होजायगा. यदि अनध्यासरुप अनादि जीवको, अनादि अध्यास हे,[2] एसा मानोगे, तो जीवेश्वरको पूर्वोक्त नियमानु

१ ज्ञानाध्यास, अर्थाध्यासके अनेक भेद ओर विशेष लक्ष देखो वेदांतादर्श ओर वेदांत पदार्थ मंजूषा ग्रंथमें.

२ अध्यास उत्तर क्षणमें होता हे. अध्यासी, अध्यासरुप नहीं होत

सार अनादि अनंत[२] मानना पडेगा और उसी नियमकी अर्थापत्तिसे अध्यासको स्व स्वरूपसे सादि सांत[२] और प्रवाहसे अनादि[२] अनंत कहना पडेगा. तथा द्वैतापत्ति होगी. स्व पक्ष साग होगा. और जीवेश्वरको अध्यास (मिथ्या) रूप माननेसे परिशेष प्रकार अनुसार ब्रह्मको अध्यास हे. एसा सिद्ध होगा; जोके[३] सदोष मत हे.

तथाही पूर्व (सत्य वा मिथ्या) वस्तुके संस्कार विना, अध्यास नहीं होसक्ता (यह सामग्री वेदांत पक्षकोभी स्वीकार हे); अतः प्रवाहसे पूर्व पूर्व वस्तुके होनेसे, ब्रह्म और अध्यासकी सामग्री,—अज्ञान, तथा वस्तु संस्कार—यह तीन अनादि माननेसेभी द्वैतापत्ति होती हे. अर्थात् इनमेंसे (वर्त्तमान) अध्यास [बंधादि] मिथ्या होगा; परंतु, अध्यासरूप नहीं एसा जो अज्ञान, और संस्कार सो, अनादि सिद्ध होनेसे स्वरुप और प्रवाहसे अनंत ठेरेंगे; क्योंके अधिष्ठान ज्ञानसे उस अधिष्ठान अज्ञानकी निवृत्ति होगी जोकि पूर्व पूर्व वस्तु संस्कारका आकार धारता हे-सो अध्यास हे. परंतु संस्कारोंकी निवृत्तिमें सो हेतु नहीं होगा. यद्यपि अज्ञान निवृत्तिसे उसके वर्त्तमान कार्य निवृत्त होंगे, तथापि पूर्व संस्कारकी निवृत्ति नहीं होनेसे स्व सिद्धांत सागना पडेगा. जेसेके, रज्जुके ज्ञानसे उस रज्जुके अज्ञानका अभाव हुवा, जोके पूर्व सर्प संस्काराकार हुवाथा; परंतु पूर्व सर्प संस्कारका अभाव नहीं हुवा; वेसे, ब्रह्म विषे पूर्व पूर्व संस्कार आकार अज्ञान होता हे, उसके अभावसे वर्त्तमानका अभाव हुवा, परंतु अनादि पूर्व पूर्व संस्कार रहे; अतः द्वैतापत्ति रही. जो यह कहोगेके 'संस्कारका आधार जीव (अंतःकरण), अज्ञान

---

३ एक जीव वाद और उत्तर प्रसंगोंसे दोष प्रसिद्ध हें.

रचित है, अज्ञानके अभावसे संस्कार मात्रका अभाव होजा- यगा, अतः द्वैत नहीं. ' सोभी समीचीन नहीं. क्योंकि पूर्व पू- र्व संस्कारवत् जीवाकारभी अज्ञान है; अतः स्वपक्ष विरुद्ध जीव सादि सांत मानना होगा. और यह निर्णय नहीं हुवा के, अनादि अज्ञान और संस्कार तथा जीवमेंसे कोन किसके आधीन है ? अतः अज्ञान स्वरुपसे और दोनों [जीव, सं- स्कार] प्रवाहसे अनादि मानने पडेंगे. जब तीनों अनादि हूये तो जीवन कालमें यद्यपि संस्कार समान आकारधारी अज्ञानका अभाव मानसकोगे इसलिये, वर्त्तमान जीव-उ सका उपादेय-भी नहीं रहेगा; परंतु जिस संस्कारके आकार हुवा सो संस्कार, जीवके नहीं रहतेभी उस उपादानसे भिन्न रहनेसे शेष रहेगा.-उसका अधिष्ठान, ब्रह्म होगा. जब यूं है तो, पूर्वोक्त प्रकारवत् स्वरुपसे वा प्रवाहसे अनादि अनंत द्वैतापत्ति होगी. जो कहोके ' संस्कार कोई वस्तु नहीं ' तो, उसके अनुसार आकार धारनाभी, नहीं मानना पडेगा. जो जीव वृत्तिका अभ्यासही, संस्कारका स्वरूप मानोगे, तो, सो (अंतःकरण-जीव-वृत्ति) अध्यासका निमित्त, अज्ञान- का कार्य नहीं ठेरेगा; किंतु भिन्न होगा, अथवा " अज्ञान स्वाभावतः रचता है-नाना रूप होता है, संस्कार मानना जरुर नहीं, " एसा मानो, तो रज्जुमें सर्पके बदले हस्तिभी प्रतीत होना चाहिये.-शुक्तिमें वृक्षका अध्यास होजाना चा- हिये. सोतो नहीं होता; अतः अज्ञान समान अन्य सामग्री [जिसको अध्यास हुवा सो, वस्तुके संस्कार, सामान्य ज्ञा- न विशेषाज्ञानादि] भी माननेसे द्वैतापत्ति होगी, और पू- र्वोक्त दोष आवेंगे. यदि अध्यासका (सर्पादिवत्) उपादान कारण होनेसे स्वात्माश्रय दोष ग्रस्त अज्ञानकोभी, अध्यासरूप

मानोगे तो, जिन (वा जिस) को अध्यास हे वे, अध्यासके कार्य-अध्यासरूप-नहीं होनेसे-वे अध्यास भिन्न, सत्‌रूप सिद्ध हो-जानेसे द्वैतापत्ति होगी. ओर जो अज्ञान, जीव ईश्वर ओर प्रपंच-यह सर्व अध्यासरूप मानोगे, तो ब्रह्म तथा अध्यास-रूपसे इतर-जिसको अध्यास हुवा हे उसको. उससे भिन्न मानेपर पूर्वोक्त दोष निवृत्त नहीं होगा. यदि ब्रह्मकोहीं ब्रह्ममें (अपनेमें) अध्यास हे, एसा मानोगे, तो अध्यस्त [अज्ञान जीवेश्वरादि प्रपंच] के अधिष्ठान [ब्रह्म] को स्व स्वरूपका सामान्य ज्ञान ओर विशेष स्वरूपका अज्ञान होना चाहिये, तथा उस वस्तुके [प्रपंच, बंध, मोक्ष] पूर्व पूर्व संस्कार होंगे के जिसका अध्यास होनाहे, तब अध्यास होगा.-जेसेके रज्जुमें सर्प जब भासेगा के, रज्जुका सामान्य ज्ञान ओर विशेष अ-ज्ञान तथा पूर्व दृष्ट सर्प संस्कार ओर तिमिरादि होंगे; अन्यथा अध्यास नहीं होता.-प्रसंगमें ब्रह्मको स्वस्वरूपका ज्ञान वा अज्ञान कहना नहीं बनसकता; क्योंके स्व स्वरुपको कोइ नहीं जानसकता; कारणके "ज्ञाता ज्ञेय वा दृष्टा दृश्य भिन्न २ होते हें" अतः ब्रह्म ज्ञाता ओर ज्ञेय यह दो स्वरूप सिद्ध होनेसें द्वैतापत्ति होगी. ओर जो स्वरूपकाही [केवल] अज्ञान मानोगे तो, सो अज्ञान सर्वदा बना रहना चाहिये. क्योंके स्व स्वरूपके ज्ञान होनेका पूर्वोक्त रीतिसे अभाव-असंभव-बाध हे. जब यूं हे तो, उसका कार्य प्रपंच अध्यासरूप नहीं, अर्थात् "बाध हुये विना,[1]-अध्यास हे" एसा व्यपदेश सयुक्त नहीं.

कदाचित् अज्ञानको अनादि अनंत मानलोगे, तो उसका कार्य अध्यासभी, स्वरूप वा प्रवाहसे अनादि अ-

---

१ रज्जु सर्पादिके बाध हुये पश्चात्, सर्पको अध्यासरूपना सिद्ध होती हे. तिस विना अध्यास पदवी नहीं कह सकते.

नंत भावको प्राप्त हुवा सत्य है; एसा मानना पडेगा. उस द्वैतापत्ति ओर स्व पक्ष त्याग होगा.

जो अन्य सामग्री विना, केवल अज्ञान [अविद्या मात्रसेभी अध्यास मानलोगे तो, घोर तमस्थ रज्जुमेंभी स-र्पाध्यास होना चाहिये, परंतु एसा नहीं होता है; अतः ब्रह्म ओर अज्ञानसे भिन्न तिमिरादिवत् प्रपंच भासनेमें अ-न्य सामग्रीभी बतानी चाहिये जोकि, अध्यासरूप नहीं ठे-रेगी. यद्यपि वस्तुके संस्कार, अध्यासरूप वस्तुके हों, ओर अस्तित्वका सादृश्यभी हो; परंतु जेसे, रज्जु सर्प अवभा-समें संस्कार ओर रज्जुका अस्तित्व तथा संस्कारोंके अ-स्तित्वसे भिन्न तिमिरादि निमित्त हैं वेसे, अध्यासरूप सं-स्कारादिसे भिन्न दार्ष्टांतमें अन्य सामग्री माननेसे द्वैताप-त्ति होगी. *

जो यह कहोकि 'जेसे नभमें नीलताका अध्यास सामग्री विना, सर्वको होता है, वेसे ब्रह्मको अज्ञान-अवि-द्यादि सामग्री विना, अध्यास बनता है.' सोभी ठीक नहीं. नभके अज्ञान ओर दूर दोष सामग्रीसे नभमें नीलता प्रतीत होती है. [नीलता यद्यपि अध्यासरूप नहीं है. तथापि या वेदांतियोंकी रीति मानके लिखा है], अतः जेसेकि, र

* वेदांतके एक पक्षकारने जगताध्यासकी सामग्री, ब्रह्म मायाव अस्तित्त्व विलक्षणत्वादि बताये हें. ओर अंतमें सब वेदांति यह कहते हेंकि, जहां कोइभी दोष नहो वहां (नभनीलता समान) केवल अवि-द्या दोषसेही अध्यास बन सक्ता हे. परंतु विचार दृष्टिसे द्वैतापत्ति सिवा उनको छुटकारा नहीं. जहां ब्रह्म अज्ञानी नहीं ओर अज्ञान—माया अविद्याको अनादि कहा, वहांही उसकी अनंततासे द्वैतापत्ति हो हे. जेमाके प्रसंगमें सिद्ध किया ओर करेंगे.

स्वरूपका अज्ञान सामग्री माना है वेसे, अन्य कारणभी कहने पडेंगे. किंवा केवल अज्ञान मात्र माननेसे पूर्व प्रकारवत् प्रबल दोष आनेसे अध्यासकी सिद्धि नहीं होती. ओर अज्ञान, संस्कारादि सामग्री विना, जो अध्यास मानोगे तो, उसकी निवृत्तिभी सामग्रीके विना होनी चाहिये.-तत्वमस्यादि उपदेशकी आवश्यकता नहीं-तद्भिन्न निवृत्तिकी सामग्री सिद्ध नहीं होने वा अकारण स्वाभावतः होनेसे कभीभी, निवृत्त नहीं होगा. उसका परिणाम यह सिद्ध होगाकि प्रपंच अध्यासरुप नहीं किंतु सत्य हे. [विशेष दोष अध्यारोप ओर कल्पित प्रसंगवत् जान लेना.]

जो अज्ञान मानकेभी अध्यास मानोगे तो, ब्रह्म एक हे उसको स्व स्वरुपकाही अर्थात् एक अज्ञान होगा. अतः अद्यापि किसी एकको स्वरूप ज्ञान होनेसे सर्वकी निवृत्ति होजानी चाहियेथी. किंवा पूर्वोक्त नियम (ज्ञाता ज्ञेय भिन्न, स्व स्वरूप ज्ञानाभाव) से अद्यापि किसीको ज्ञान हुवा नहीं ओर न होगा. अतः अज्ञानमें, अध्याससामग्रीका अभाव सिद्ध होजाने वा अध्यासका कारण अज्ञान नित्य रहनेसे जीवेश्वर माया ओर प्रपंच अध्यासरुप नहीं, किंतु सत्य हें, यह सिद्ध होगा.

पुनः अनादि, अनिर्वचनीय, स्वात्माश्रय दोषवाला, स्वतंत्र वा परतंत्र] रुप अज्ञान करके, असामग्री अनियत, अध्यासरुप वस्तुशून्य प्रपंच, प्रतीतिका विषय होता हो तो, बंध्याके पुत्रभी प्रतीत होना चाहिये १. उक्त अज्ञान, अखंड निर्विकार कूटस्थ-ब्रह्म रूपमें, प्रपंचको, जललकीर समान कोतरता हो-ब्रह्म परिणामी सक्रिय होता हो तो. व्याघात दोष होगा. अज्ञानाधीन ब्रह्म होनेसे अज्ञानप्राप्ति श्रेय होगा;

जोकि, वेदांत पक्षके विरुद्ध हे २. उक्त अज्ञान, स्वाभावतः अपने अंशमें त्रिपुटि-प्रपंच-कोतरता हो तो, सावयव ठेरेगा. स्वात्माश्रय दोष होगा. गौरव दोष आवेगा ३. ' अज्ञान आपही नाना परिणाम, हुवा अस्पर्श्य अधिष्ठान ब्रह्म विषे [आश्रित] अध्यासरुप प्रपंचस्वरुप बनता हो,-त्रिपुटीरुप होताहो,-ब्रह्मका विवर्त्त (आगे वांचोगे) होताहो, ब्रह्ममें बंध, मोक्ष, द्वैताद्वैत इत्यादि अन्यथा प्रतीत कराता हो-अर्थात् न किसीको अध्यास, न किसीका अध्यास, न कोइ अध्यासकी सामग्री, न अध्यासको अध्यास रुपसे ज्ञाता, न कोइ दृष्टा-दृश्य-इत्यादि मानें तो, ' यह सिद्धांत किसी निमित्तका आश्रय लेता हे, वा नहीं ? अज्ञानको एसा करनेमें कोइ निमित्त हे वा स्वाभावतः करता हे ? यह दो प्रश्न उठते हें. उभय पक्षके उत्तर मिलने समय पूर्वोक्त दर्शन (८, १०, १२, १३, १५, १७, १८) ओर वक्ष्यमाण [२० वगेरे] प्रसंगगत सूचित दोष प्राप्त होंगे (दोहराके देख लेना चाहिये). प्रधानवाद (सांख्यमत) मानना पड जायगा. स्वभाववान अज्ञान अनादि अनंत मानना पडेगा. ओर इस दोषका परिहार न होगा; वोह यह हे:-अपना आप [ब्रह्म, अज्ञान, माया, अविद्या, अंतःकरण, वृत्ति, वा हरकोइ] को अध्यास होना असंभव; क्योंकि अपने समान-सजातीय पूर्व वस्तुके संस्कार हों तो, अध्यास हो, तिस विना. अध्यास होवे नहीं. प्रसंगमें अपने समान ओर संस्कार वा तिसका आधार अभिमानी, तद्भिन्न (अध्यासीसे भिन्न) नहीं; अतएव अपना अपनेको अध्यास हे, एसा कहनाही नहीं बनता. इस रीतिसे अज्ञान स्वयं तो, अध्यासरूप नहीं ठेरता. ओर उसको अध्यासका

निमि त मानें तो, पूर्वोक्त प्रकार समान संस्कारादि मान्नेसे द्वैतापत्ति होगी–अनेक दोष आवेंगे. इसलिये अज्ञान ओर तिसका परिणाम (त्रिपुटि प्रपंच, प्रधानवादवत्) अध्यासरूप–ज्ञान निवर्तनीय नहीं; किंतु सत्य हे, एसा सिद्ध होगा. ओर जब उस [अज्ञान–अध्यास] का अध्यासी द्रष्टा–ज्ञाता–उपदेष्टा–सिद्धक-र्ता, अज्ञान (अध्यास)से भिन्न मानोगे तो, पूर्वोक्त दोष प्राप्त होवेंगे ४. इसलिये प्रपंच–अज्ञान, अध्यासरूप नहीं.

इस रीतिसे विसंवादि भ्रम[1] समान, माया–अज्ञान–ओर उसके कार्य [जीव–ईश्वर–जगत् ओर उनका ज्ञान] को संवादि भ्रमरूप[2] नहीं मानसकते; किंतु ब्रह्मवत् सत्य मान्ने पडेंगे.–अध्यासरूप नहीं. जब यूं हे तो, नवीन वेदांतियोंका तमाम पक्ष–मत–मंतव्य त्याज्य होगा.

---

१ निष्फल प्रवृत्तिका जनक भ्रान्तिज्ञान ओर उसका विषय, विसंवादि भ्रम कहिये हे, यथा छिद्रनेंसे दीपककी प्रभा देखके मणि जानके प्रवृत्ति होती हे. तहां, मणि ओर उसका ज्ञान वह भ्रम हे.

२ सफल प्रवृत्तिका जनक भ्रांतिज्ञान ओर तिसका विषय सो संवादि भ्रम कहियेहे. यथा मणिकी प्रभा देखके मणिकी बुद्धि ओर प्रवृत्ति. यहां मणि प्रभा, मणि नहीं; किंतु अयथार्थ वस्तुके ज्ञानसेभी [काकतालीय न्यायवत्] वांच्छित फलकी प्राप्ति हुई. अर्थात् मणिप्रभाद्वारा मणिकी प्राप्ति हुइ हे. इसी प्रकार ब्रह्मतत्वकी उपासना फलप्रद होजाती हे.

वाचक महाशय ! यहां प्रसंगमें " अधिकारी [अंतःकरण–जीव वा ईश्वर] स्वयं अध्यासरुप–अज्ञानके कार्य हे " एसा वेदांती भाइ मानते हें. तो उनको ब्रह्म नामक मणिकी प्राप्ति केसे होगी ? नहीं. जेसे अक्रिय ब्रह्म वा आकाशादिसे वायवादिकी उत्पत्ति मान्ना

अनिर्वचनीय-दर्शन-१८.

आपके मंतव्यानुसार स्थूल सूक्ष्म व्यष्टि समष्टि प्रपंच
जगत्] का उपादान माया-अज्ञान-अविद्या किंवा माया
शिष्ट चेतन ईश्वर, अनिर्वचनीय-मिथ्या-सिद्ध नहीं होते;
योंके जो केवल रज्जु सर्प वा स्वप्नादिके दृष्टांतमात्रसेही
ह्म विषे अनादि माया मिथ्या और सांत मानते हो तो,
ज्जु सर्पादिमें जेसे अनिर्वचनीय सर्पादि ओर तिनके ज्ञा-
का अनिर्वचनीय अज्ञान-अविद्या-उपादान हे, उससे
न्न, विलक्षण (न, अनिर्वचनीय-रज्जु समान सत्तावाले
मिर-निद्रा-संस्कारादि अन्य निमित्तभी हें, तद्वत् शु
व्यापक ब्रह्ममें जगत्के उपादान अनिर्वचनीय माया-अ
नसे भिन्न, अन्य-[न-अनिर्वचनीय] निमित्तभी कह
डेंगे. ओर जब अन्य निमित्त मानें, तो वे, अनिर्वचनीय न
निसे द्वैतापत्ति होगी. उनकोभी अनिर्वचनीयरूप मानो तो,
व्यवस्था होजायगी. रज्जु सर्प ओर पूर्व दृष्ट सर्प तथातिमिर
ज्जु आदिवत् विलक्षणता-सत्ताभेद-सिद्ध न होगा. ब्रह्म
ो वेसा (रज्जुवत्) मानना पडेगा.

संभव हे, वेसेही, अयथार्थ-मिथ्या-अंतःकरणादिको ब्रह्मकी प्राप्ति
नना असंभव हे. अन्यथा स्थाणुपुरुषकोभी दृष्टा (स्थाणुदृष्टा
नुष्य)की प्राप्ति होजानी चाहिये. परंतु एसा नहीं होता. अतः उ-
दृष्टांत विषम हे.

जोकि प्रस्तुत प्रसंगसे इतर अज्ञान, अनिर्वचनीयख्याति
गेरे प्रसंगोंमें इस संवादि, विसंवादि भ्रमके मूल पर तकरार की
ई हे, उससे इन दृष्टांतोंका बाध होजाता हे; अतः विशेष खंडन
हीं लिखा हे. स्वयं जानलेने योग्य हे.

रज्जु सर्प, स्वप्न, शुक्ति रजत, नभनीलता, शंखपीतता, मृगतृष्णा, इत्यादि वेदांतसंप्रदाय प्रचलित दृष्टांत साध्य हैं; इसलिये साध्यरूप दार्ष्टांत,–इनसे सिद्ध करना योग्य नहीं है, ओर इन दृष्टांतोंद्वारा मान्य नहीं होसकता. अतः सर्वमान्य सिद्ध वा अनुभवगम्य हो. ऐसी प्रकारसे मिथ्यात्व–अनिर्वचनीयत्व–सिद्ध करदेना चाहिये. रज्जु सर्पादि अनिर्वचनीय नहीं हैं–सर्व मत वा शास्त्रकारोंका उस विषे विवाद तथा भिन्न २ मत है, तथा युक्ति अनुभवसेभी अनिर्वचनीयत्व सिद्ध नहीं होता है, सो संक्षेपसे जनाते हैं:–जहां रज्जु [सर्प] वाले स्थानमें रज्जुविषे सर्प भासे ओर रज्जु समीपही श्याम सर्पभी हो; किंवा जहां शुक्तिमें रजत भासे ओर शुक्ति पास वैसाही रजतका टुकडाभी पडा हो; तहां, रज्जुमें सर्प ओर सर्पमें रज्जु, किंवा रज्जुमें सर्प ओर सर्पमें सर्प किंवा, सर्पमें रज्जु ओर रज्जुमें रज्जु भासे;–[एसेही शुक्तिमें रजत, ओर रजतमें शुक्ति, किंवा शुक्तिमें रजत ओर रजतमें रजत, किंवा रजतमें शुक्ति ओर शुक्तिमें शुक्ति भासे]–वहां भ्रमविषयक पदार्थ–सर्पादि ओर उनका ज्ञान, अज्ञान–अविद्या–का परिणाम तथा अनिर्वचनीय सिद्ध नहीं होते; क्योंके जिस क्षणमें रज्जुविषे सर्प ओर सर्पमें सर्प भासता है, वहां पूर्वोत्तर दो क्षण हैं.–प्रथम क्षणमें रज्जुके सामान्यांशको, अंतःकरणकी वृत्ति विषय करती है, पश्चात् वहां अविद्यामें क्षोभ होके संस्कारानुसार अविद्याके तमांशका सर्पाकार ओर सत्वांशका सर्प–ज्ञानाकार परिणाम होता है. [यह वेदांत पक्षको संमत है], दूसरी क्षणमें इस उभय परिणामी अविद्याका तिरोधान होके समीपस्थ सर्पमें सर्प भासता है. अर्थात् अंतःकरणकी वृत्तिका सर्पाकार ओर सर्प-ज्ञानाकार परिणाम

होता है. पुनः जो रज्जु सर्पको देखें तो, पूर्ववत् होता है. :
प्रकार वारंवार देखनेसे अनिर्वचनीय ख्यातिकी रीतिसे
लक्षण वृत्ति उत्पन्न-नष्ट होती है; परंतु उसमें विलक्षण
ज्ञात नहीं होती, और न किसीके अनुभवमें आती है. के
शब्दमात्र मारामारी करते हैं. जिस काल उनको देख
अन्य समीप स्थलमें जाके दृष्टा पुरुष, अन्यसे कहता है
वहां दो सर्प हैं, मैंने देखे हैं. इस वृत्तिके विषय, पूर्वदृष्ट उ
य सर्पका ज्ञान और आकार है. तथापि इनमें विलक्षणता
तीत नहीं होती. अर्थात् भिन्न २ विलक्षण वृत्तिके विष
उभय सर्प, यहां एक अंतःकरणकी वृत्तिके विषय होते
तथाही दीपक लाके जब देखते हैं तो भी, वृत्तिका भेद न
जान पडता. किंतु एसा कहता है के रज्जुमें मुझको सर्प
सा, वोह अन्यथा-अयथार्थ-कल्पना थी. अब यदि दृष्ट
लमें वा कथनकालमें वा दीपक कालमें स्वप्न जागृतकी
त्तिके भेद समान, किंवा समानकाली दो वृत्तिरूप प्रत्यभि
अथवा मादक अमादक वृत्ति वा रोगी निरोगीवृत्तिके व्यवहार
भेद समान किंचितभी विलक्षणता प्रतीत होती, तब तो अवि
द्याका परिणाम और अविद्याकी वृत्ति होगी, एसा अनुभव
म्य सिद्ध होजाता, वा विश्वासरूपही मानलेते; परंतु एसी

* स्वप्नमें जाग्रतके शरीरसे अज्ञात बकना. हिस्टरिया रो
वानेशे कालमें अंतःकरण वृत्तिका अपनेको, वा अपनेको चांडा
कहना-उसके निवृत्त हुये वेसा स्मरण वा व्यवहार न होना-उ
वृत्ति व्यवहारकी स्व परको विलक्षणाता ज्ञात होना. निदान जब
अंतःकरणकी वृत्तिके व्यवहारादिकी विलक्षणता है; तो स्वरूपसे तद
भिन्न अविद्या और अंतःकरणकी वृत्तिकी विलक्षणता केसे ज्ञात न हो
अर्थात् जो वहां दो वृत्ति होती तो विलक्षणता प्रतीत होनी चाहिये

लक्षणता प्रतीत न होनेसे विश्वास वा शब्द सिवाय अन्य पुरावा नहीं.

यद्यपि जब, रज्जुमें सर्प देखते हैं तबभी, रज्जुका सामान्यांश यथार्थ वृत्तिका विषय, और सर्प अयथार्थ वृत्तिका विषय है, ऐसा मानते हो. इसी प्रकार पूर्वोक्त रज्जु सर्प और सर्प सर्पमें दो विलक्षण वृत्तिका कथन संभव है; तथापि वहां, रज्जुके ज्ञान पश्चात् और उस कालमें विलक्षणता ज्ञात नहीं होती. और यहां तो, अतादात्म्य दृष्टांत है. प्रसंगमें रज्जुकी श्यामता, लंबाइ—सामान्यांश, इदमत्वका विषय है; वैसे सर्पकी श्यामता, लंबाई—सामान्यांश है.—इदंत्व उभयमें सामान्य है. आवरणके निमित्त तिमिरादि तथा चक्षु अंतःकरणादि समान हैं ऐसी व्यवस्था हुये, एकविषे सर्पके संस्कार—आकार, अन्यमें वैसेके वैसे होनेमें, कोइ हेतु नहीं; अर्थात् अविद्याका विलक्षण क्षोभ होनेमें कोइ विशेष कारण नहीं सिद्ध होता. यदि रज्जुमें सर्प और सर्पमें रज्जु भान होता, तब तो समष्टिका एक कारण मान लेते; परंतु वहां ऐसा नहीं है. अतः एक वा नाना पुरुष देखें तोभी, वहां प्रत्येककी वृत्तिमें स्व स्व संस्कारद्वारा उभय पदार्थमें एक सर्प और एक रज्जु—(अर्थात्) अन्यथा प्रतीत होने चाहियें, यथार्थ नहीं. जो भ्रमसामग्री न होवे तो, यथार्थ प्रतीत होने चाहियें जैसाकि होताही है. इसी हेतुसे पूर्वोक्त भ्रमविषयक वृत्तिमें समानता होने योग्य है; परंतु नहीं है.

यद्यपि वृत्तिका प्रथम रज्जुआदि (अधिष्ठान) के सामान्यअंशआकार परिणाम, उत्तर क्षणमें तद्ज्ञानाकार परिणाम, और उसी वृत्तिका संस्कारानुसार (अध्या-

स) सर्पादि आकार तथा (उत्तर क्षणमें) सर्पादि ज्ञाना कार परिणाम, होना मानके, परिणामकी विलक्षणता ज्ञात होती है. तथापि उक्त सर्व परिणामोंका उपादान एक है, उसमें विलक्षणता नहीं है. अर्थात् भ्रम प्रसंगमें अविद्या वृत्ति, अधिष्ठानवृत्ति दो भिन्न२ नहीं हैं. जो कदाचित् वृत्तिकोंही अविद्याविशेष कहोगे; तो अधिष्ठान इदमत्वाकार [यथार्थ वृत्ति] ओर सर्प, सर्पज्ञान (अयथार्थवृत्ति), उभय समान हुइ; परंतु यह वात कहना, 'अग्नि शीतल' कथन समान है. अतः उभय वृत्ति समान (मिथ्या वा सत्य) ही माननी पडेगी. विलक्षण नहीं. (तद्वत् दार्ष्टांतमें ब्रह्मवृत्ति, मायावृत्ति, समान होगी, अर्थात् ब्रह्म सत्य ओर माया सर्पवत् मिथ्या न कह सकोगे. किंतु उभय सत्य वा उभय मिथ्या मानने पडेंगे.) शंकाः—यद्यपि पूर्व विद्यमान अधिष्ठानके इदमाकार जो वृत्ति हुइ, उससे उत्तर क्षणमें तिसके ज्ञानाकार वृत्ति होना संभव है; क्योंके एकही वृत्तिका ज्ञेय ओर तद्ज्ञानाकार समकाली परिणाम होना असंभव है. तेसेही सर्पाकार ओर तद्ज्ञानाकार एक कालमें वृत्तिका परिणाम नहीं होसकता. क्योंकि; ज्ञेयके विना, ज्ञेयाकार परिणाम होना असंभव है. तथापि तुम्हारी रीतिसे पूर्व कालमें ज्ञेय सर्प तो है नहीं, तो तदाकार केसे परिणाम होगा? ओर जिस कालमें सर्पज्ञानाकार परिणाम हुइ, उस कालमें जो वृत्तिका परिणाम सर्प मानें, सो तो वहां है नहीं; क्योंके जिस वृत्तिका सर्पपरिणाम हुवाथा वोही वृत्ति, रूपको बदलके तिसके ज्ञानाकारपरिणाम है; अतः भ्रमस्थल विषे अंतःकरणवृत्तिसे भिन्न, अविद्याको न मान्ना ठीक नहीं—व्यवस्था नहीं होती. एतदृष्टि अ-

विद्याका स्वीकार हे. उसमेंभी दो प्रकार हें:-जिस कालमें सर्प उत्पन्न हुवा उसी कालमें, अर्थाध्यास मानने वालोंकी रीतिसे तो, उस अविद्याजन्य सर्पाकार ओर अंतःकरण वृत्तिका सर्पज्ञान परिणाम समकाल होता हे. ओर अर्थाध्यास ज्ञानाध्यास मानने वालोंकी रीतिसे एकही अविद्याके दो अंशके सर्प ओर सर्पज्ञानाकार समकाल परिणाम होता हे. इन उभय रीतिसे सर्प-अविद्याका परिणाम, अंतःकरणकी वृत्तिसे भिन्न हे. इसी वास्ते अनिर्वचनीयत्वकी सिद्धि हे. अन्यथा प्राक्सिद्ध सर्पकी उत्पत्ति प्रतीति ओर बाध नहीं सिद्ध होता. जब यूं हे तो विलक्षणता, अर्थापत्तिसे मान सकते हें. समाधानः-उक्त शंकाका यह उत्तर हे कि:-जहां वृत्तिको भिन्न विषयकी प्रतीति हो वहां, रज्जुआदिके साथ वृत्तिका संबंध, तदाकारता, तिसकी प्रतीति (अपरोक्षता[१]) तद्ज्ञान(प्रतीति आकार परिणाम, यह तमाम कार्य, क्रमशः होकर, यह रज्जुआदि हें, एसा व्यवहार होता हे. भ्रम स्थलमें अधिष्ठानके सामान्यांश साथ वृत्तिका संबंध, तिसके सामान्यांशके आकार वृत्तिका होना, सामान्यांशकी प्रतीति (अपरोक्षता[१])-तद्ज्ञानाकार परिणाम (इस कालमें वृत्तिका तदाकार-ज्ञेयाकार-परिणाम नहीं), यह तमाम कार्य, वृत्तिकी अद्भुत योग्यतासे अत्यंत (अकथ) समीप-कालमें होकर "यह कुछ हे" एसा अप-

१ अपरोक्षत्व, प्रतीतिके निर्णयका यहां प्रसंग नहीं हे, अतः विस्तार नहीं करते. तद्वत् वृत्ति बाहिर, जाती हे वा नहीं, इसका विस्तार नहीं लिखते. वास्तवमें वृत्ति बाहिर नहीं जाती. यह प्रत्यक्ष परीक्षासे सिद्ध हे. (तत्वदर्शन नामक ग्रंथमें खंडन मंडन सहित परीक्षा प्रकार हे. जिसको इच्छा हो सो वोह ग्रंथ वांचे.)

रोक्ष वा परोक्ष व्यवहार होता है. (और कभी नहींभी ।
ता; किंतु,) तिस पीछे विशेष ज्ञानकी सामग्रीके अभाव
[" जैसे कि कभी शरीरांतर मकान सर्पादिका आकार, वृ
त्ति रखती है, किंवा वे प्रकृत्तिमें जललकीर समान वृत्ति व
रके अंकित होते हैं? और मकानादि हुयेविना उन
प्रतीति होती है–अर्थात् तदाकारवान वृत्तिही विषय होती
है, ऐसे एक वार वा वारंवार परिणाम हों, वैसेही "] स
र्पसंस्कारवाली वृत्तिका. सर्पाकार परिणाम, उसकी प्रतीति
(सर्पकी अपरोक्षता) और पीछे उसी वृत्तिका सर्पवत् ज्ञा-
नाकार परिणाम–यह कार्य क्रमशः होके 'सर्प है' वा 'य
सर्प है' ऐसा. व्यवहार होता है. जैसे शरीर अंतर वृत्तिमें
प्रथम सर्पादि आकार परिणाम और उसकी प्रतीति और
सर्पज्ञान परिणाम–वृत्ति होती है; और पीछे मेंने सर्पाकार
किया–इत्यादि व्यवहार होता है [यहां, घटादि विषयप्र-
कार समान अर्थात् विषय, विषयवृत्तिसंबंध, विषयाका-
रता, इन सर्वका अपरोक्षत्व और विषयज्ञानप्रकार जैसे
होता है वैसा प्रकार नहीं है]. तद्वत् भ्रमस्थलमेंभी सम
लेना. अब,[1] जो वृत्तिका रज्जुदेशमें गमन मानो, तब
तो, जैसे आकाशादि बाह्य स्थलमें वृत्ति आकार धरके
(कोतराके) ज्ञेय, क्रमशः ज्ञानका विषय होता है; वैसे
मान लेना. और जो विषय पास नहीं जाती किंतु, शरीर
इंद्रियस्थ रहना मानो तो, पूर्वोक्त आंतरीय दृष्टांतवत् घटा
लेना.[1] "भ्रमस्थल [स्वप्नादि] में संस्काराभ्यासबलसे अ-
ज्ञाताकार कार्य होते हैं और उक्त [मनरचित] दृष्टांतोंमें
ज्ञात परिणाम होते हैं. भ्रमस्थलमें विषय, नहीं और वृत्ति-

1 यहां वेदांत विलक्षण दो पक्ष हैं दोनोंका फल एकही है.

ही विषयरूप विषय होती है. अन्य स्थलमें विषय वा विषयकी किरणो-आकारसहित विषय, वृत्तिके विषय होते हैं;" [वृत्तिका अपरोक्षत्व सूक्ष्मदर्शीविना प्रतीत नहीं होता] इतनी बिलक्षणता है. ओर पूर्ववत् असमकाली परिणाम होना [1] संभव है. तथाही जहां वृत्ति मात्र [साक्षीका], विषय हो वहांभी करण [वृत्ति, वृत्तिके आकार हुये विना] प्रतीतिका विषय होती है, यह आपकाभी सिद्धांत है; ओर उसका व्यवहारभी स्वगम्य मानते हो. तब असंसर्गाध्यासमें एसा क्यों न मान लिया जावे? इत्यादि अनेकी रीतिसे प्रकृति, वृत्तिसे भिन्न, सर्पका उपादान मानना असमीचीन है. आपकी रीति, उपादानकी विलक्षणता दरसाये ओर भिन्न परीक्षा कराये विना, शब्दोंके * दबाव मात्रसे नहीं मान सकते ओर उसकी असमीचीनता उपर कहआये हैं. इस रीतिसे रज्जु आदिमें सर्पादि ओर उनका ज्ञान, अंतःकरणकी वृत्तिसे भिन्न नहीं. अतः वृत्तिवत् सत्य है; वृत्तिसे विलक्षण नहीं; ओर आपका उक्त नियम [" भ्रमस्थलमें परस्पर भिन्न ज्ञेय ज्ञान परिणाम वोंलि समकाली हुये विना भ्रम नहीं होसक्ता"] सर्व स्थलमें नहीं लगता.

ओर जो आपकी रीति मानलेवें तो, दोष आतेहैं; क्योंकि जहां विषयका ज्ञान होता है वहां, विषय, विषय साथ संबंध ओर वृत्तिकी तदाकारता हो, तब प्रतीत हो. आपकी रीतिसे तो अविद्याके तम भागने सर्परूप रचा ओर

1 यह समाधान अदृष्टमतके ज्ञान योग प्रसंगानुसार किया गया है. इसका विस्तार तत्वदर्शन नामक ग्रंथमें है.

* ख्याति मानने वालोंमें वा वेसे ग्रंथोंमें शब्द भंडोल विशेष होता है. अनुभव वा सार ' शून्य '.

सत्व भागने तिस सर्पका ज्ञानभाग परिणाम किया है; इस प्रकार विषय-सर्प और तद्ज्ञान परिणाम समकाली [एक कालमें] है. इससे क्या आया कि सर्प विषयकारक अविद्याकी सत्व वृत्ति, सर्पाकार नहीं हुइ. और असंबंध-विषय किये विना, सर्प ज्ञानाकार होगइ. अब यह विचारनेका है कि, जो विषयके संबंध और वृत्तिके तदाकारता विनाभी ज्ञान हो तो. सर्प के बदले माला वा जलधाराका ज्ञान क्यों न हो ? अर्थात् संस्कारवत् अविद्याका परिणाम हो; परंतु असंबंध माननेसे अविद्याके सत्वांशका अन्य ज्ञानाकार क्यों न परिणाम हो ? सर्पविना, सर्पज्ञानाकार क्यों न परिणाम हो ? आपकी रीतिसेभी, ज्ञेयवत् ज्ञान तो जबही होगा कि ज्ञेय, प्रतीतिका विषय होजावे; और विषयप्रतीति. विषय साथ वृत्ति और साक्षीके संबंध तथा वृत्तिके तदाकार हुयेविना, नहीं होती. अतः समकाल ज्ञेय और ज्ञानोत्पत्तिके अभाव [असंभव होने]से आपकी रीति ठीक नहीं है. जो यह कहोगे कि, ' अविद्याका एसाही स्वभाव है कि, कहेहुये प्रकार समान रचना करे ' तो, दार्ष्टांतमें गडबड होगी.-मायामेंसे जगत्कर्त्ता जो ईश्वर-उस ईश्वरको उडादेना पडेगा.-सांख्यमत स्वीकारना पडेगा.-वा जडवाद लेना होगा.-अव्यवस्थावाला स्वभाववाद ग्रहण होगा.-यथार्थ, अयथार्थका यथावत् भेद, सिद्ध न होगा.-स्वपक्ष साधना होगा. इत्यादि.—जो एसा कहोगे कि "अविद्या जिस क्षणमें सर्पाकार हुई, उसीक्षण [वा उससे उत्तर क्षण]में ' उस सर्पको विषय करेगी एसी ' वृत्तिरूप हुई; उसके पीछे उत्तर क्षणविषे. इस वृत्तिने सर्पको [घटादि प्रकारवत्] विषय किया है; इस लिये उक्त दोष नहीं आता. " तहां,

ज्ञानरूप अंतःकरणकी ओर अविद्याकी वृत्तिमें कुछ अंतर-विलक्षणता-भेद नहीं मालूम होता, यह उपर कहा है.-अर्थात् उक्त तमाम दोष प्राप्त होंगे. गौरव दोष होगा. पूर्व पक्षी वाले मतको अवसर मिलेगा (व्यर्थ विस्तार करना ठीक नहीं, इस लिये नहीं लिखा). *इत्यादि कारणसे उक्त मंतव्य सयुक्त नहीं.

तथाहि जब कहीं भ्रमस्थल विषे--रज्जुमें सर्प भान हो ओर अन्य स्थलमें कहे के 'वहां सर्प हे,' यह कथन यथार्थ वृत्तिका विषय हे. परंतु सर्पभान कालमें तो, अंतःकरणकी वृत्ति [यथार्थ वृत्ति.] नहीं हे; किंतु अविद्याकी वृत्तिने विषय किया हे; ओर साक्षीभास्य हुइ हे तब अंतःकरणकी वृत्ति उसकी चर्चा केसे करेगी ? यदि कहो के "अविद्याका साक्षी में लय होता हे ओर साक्षीमें अंतःकरणकी वृत्ति हे,

* प्रचलित शंका समाधानमें अपरोक्षत्व [विषयकी प्रतीतता] वृत्तिका विषयके साथ संबंध, तदाकार परिणाम, वृत्तिका पहिले विषयके आकार, उत्तर क्षणमें ज्ञानाकार परिणाम होना, इन सबका ज्ञान [ओर अपरोक्षत्व], वृत्ति शरीरसे बाहिर जाती हे वा नहीं; ओर बाहिर नहीं जाती तो, रूपादि विषयकी केसे प्रतीति होती हे; भ्रम-ज्ञान ओर उसके विषय सर्पादिकी उत्पत्ति [प्राक्सिद्ध ओर] नाशकी अप्रतीति-प्रतीति, तथा उनका आश्रय, वृत्तिउपहित चेतन साक्षी अधिष्ठान आधार हे वा क्या ?-इत्यादि प्राप्त विषयोंका निर्णय, इस लिये नहीं दिखायाकि, आगे यह वांचलोगे कि, यदि वेदांतकी रीति समान भ्रम प्रसंग मानलेवें तोभी, दृष्टांत मानने मात्रसे दार्ष्टांतकी सिद्धि नहीं होती. अतः ग्रंथका व्यर्थ विस्तार करना सफल नहीं. जिस किसीको उक्त विषय देखनेकी इच्छा हो सो, तत्वदर्शन नामक ग्रंथ गत अदृष्टमत प्रसंग ओर भ्रमनिर्णयादि विषय देखलेवे.

अतः [स्वप्न जाग्रत वा सुषुप्ति जाग्रतवत्] उसके संस्का
अंतःकरणमें अंकित होके उद्भव होते हैं;" तो [जबके का
र्यरूप अंतःकरणमें एसा होता हो तो], अंतःकरण वृत्तिवाले
ज्ञानजन्य संस्कारभी उसके कारण अविद्यामें (भी) होने चा
हियें. अर्थात् जहां सर्पमें सर्प देखके उत्तर क्षण विषे, रज्जुमें
सर्प देखा वहां, "पूर्वोक्त सर्प देखा" इसको अविद्याकी
वृत्तिका विषय कहना पडेगा. जेसेके, प्रथम क्षणमें रज्जुमें
सर्प, दूसरी क्षणमें सर्पमें सर्प, तीसरी क्षणमें उसी रज्जुमें सर्प
देखके उपराम हुये, तब पूर्व सर्पमें सर्पभास कथन वा मनमें गृ
हण, अविद्याकी वृत्तिसे हुवा हे, ऐसा [क्युं न माना जाय
अर्थात् मान्ना], सिद्ध होजायगा; क्योंके अविद्याउपहित
साक्षीके सन्मुख उस काल कार्य होनेसे अंतःकरणउपहित
साक्षीका विषय मानना पडेगा. ओर इससे विपरीतता आ
वेगी. अर्थात् भ्रम वृत्तिभी, उसी प्रकार यथार्थका स्मरण वा
कथन करके उपदेश करने योग्य हे, जेसेके यथार्थ वृत्ति, भ्र
मका स्मरण कथन ओर उपदेश करती हे. जेसे, भ्रमका वि
षय, भ्रम निवृत्ति पश्चात् कथन हे. वेसे वहांभी अंतःकरणकी
वृत्ति, निद्रा-ति-तिरोधान-पश्चात् अविद्याकी वृत्ति उद्भव हुये
कथन हे. एसा होनेसे यथार्थ अयथार्थ, अयथार्थ यथार्थ मा
नसकेंगे. परंतु एसा मानना अयुक्त हे.

वेसेही जहां ब्रह्ममें, जगत् सत्य वा अन्य प्रकारसे
भासमान होवे, किंवा जगत् सत्य, ब्रह्म नहीं वा ब्रह्म मिथ्या,
एसा प्रतीत होवे. वहां उक्त दृष्टांतसे कोइ निर्णय नहीं होता;
अर्थात् जो त्रिपुटि मात्र, अध्यास मानोगे तब तो, ब्रह्म प्र-
तीति वा मंतव्यभी अध्यास-मिथ्या वा नहीं, मानना पडेगा,
अनिश्चितरूपसे बौधमत स्वीकार होगा. ओर जो पूर्वोक्त

अर्थाध्यास मात्र मानोगे तो, दार्ष्टांतमें निरभिमानी, ज्ञातृत्व-धर्म रहित ब्रह्म तथा सर्पवत् अध्यास मिथ्या मायासे भिन्न 'माया मिथ्या-अनिर्वचनीय हे' एसे अभिमानवाला (सर्प ज्ञाता-अंतःकरण वृत्तिवत्), तीसरा मानना पडेगा. जोकि आपको अनुकूल नहीं. अतः जैसे भ्रम प्रसंगमें दीपकादिसे विलक्षणता सहित प्रतितीका विषय हुवा. वेसेही पदार्थ निर्णय ओर योगादि तथा अन्य परीक्षारूप दीपकसे यथार्थ निर्णय करने योग्य हो. वर्त्तमानवत् पर, शब्द कथन मात्र वा विश्वास मात्रसे माने योग्य यह विषय नहीं.

इत्यादि रीतिसे उक्त दृष्टांतों विषे अनेक प्रकारकी तकरार ओर शंका समाधान पक्षकारोंने कियेहें. तोभी, अंतमें साध्य रहे हें; इतनाही नहीं किंतु, अनिर्वचनीय ख्याति माननेवालोंमेंभी उसके निर्णयमें मतभेद हें, [देखो ख्यातिवाद ओर वृत्तिप्रभाकर ग्रंथ].

कदाचित् आपकी हठसे रज्जु सर्पादिके दृष्टांतमें सर्प ओर सर्प ज्ञान, अज्ञानका परिणाम ओर अनिर्वचनीय मानभी लेवें तोभी [दृष्टांतसे], "दार्ष्टांत वेसाही हे, जेसाकि हमने दृष्टांत कहा वा प्रतिज्ञा की", एसा नियम नहीं कहा जासकता. जेसे कोइ कहेके श्वान (कुत्ता), महात्मा वा महात्मा जेसा होता हे; क्योंके जेसे महात्मा, अज्ञान निद्रामें सोये हुये मनुष्योंको जगाते हें,-जिज्ञासुओंके विवेक वैराग्यरूपी धनको काम क्रोध लोभादि चोर न लेजावें, इस लिये भुसते रहते हें, संतोषी, हितेच्छु, स्वस्वामी [परमेश्वर] सिवाय अन्यके द्वारपर याचना न करने वा भीख नहीं मागनेवाले, अज्ञान रात्रिमें न सोनेवाले होतेहें. वेसेही, श्वान रातको सोये हुये मनुष्यको जगाता हे,-चोर मनुष्यका धन चोरी करके

न लेजावें, इसलिये चोरोंको देखकर भुसता है, संतोषी है- जितना मिले उसीमें संतुष्ट रहता है, हितेच्छु है, स्व स्वामीके गृह सिवाय अन्यके द्वारपर नहीं जाता, रात्रिको नहीं सोता है; अतः महात्मा जेसा है वा महात्मा है. भोवाचक ! अब जो उलटा दृष्टांत (महात्मा, श्वान जेसा है) लेवें तोभी, बनता है. परंतु विचारना चाहिये कि इस उभय दृष्टांत दार्ष्टांतसे श्वान, महात्मा वा महात्मा जेसा, वा महात्मा, श्वान वा श्वान जेसा है वा होगया ? नहीं. किंवा, संत, दुष्ट, वा दुष्ट संत जेसा है वा संत दुष्ट और दुष्ट संत है, एसा कहसकते हैं; क्योंकि संत, मिलने समय आनंददा और बिछडने कालमें दुःखदा होता है. तद्वत् दुष्ट, मिलने काल दुःखदा और अपने वियोग कालमें सुखदा होजाता है. अतः दोनों सम हैं. यहां विचारो ! क्या संत, दुष्ट वा दुष्ट समान होगया ? वा दुष्ट, संत वा संत समान होगया ? नहीं.

निदान दृष्टांतवत् दार्ष्टांत हो, एसा नियम नहीं है. किंतु, अपनी प्रतिज्ञा अनुसार दार्ष्टांतको सिद्ध किये विना, प्रतिज्ञाका स्वीकार नहीं होसक्ता.-केवल दृष्टांतके धर्म मात्रसे काम नहीं चलता, वा नहीं माना जाता, एसा सिद्ध होता है. अर्थात् दृष्टांत मात्रसे दार्ष्टांतमें, दृष्टांतवत् सर्वथा घटना हो, एसा नियम नहीं है, किंतु जो प्रतिज्ञा है उसे सिद्ध करना चाहिये. एतद्दृष्टि रज्जुमें सर्प मिथ्या हो वा न हो परंतु, तद्वत् वा अन्यथा, माया मिथ्या (अनिर्वचनीय) है वा नहीं, यह वात, सिद्ध वा अनुभवगम्य कराना चाहिये. रज्जुका सर्प वा मृगतृष्णा वा स्वप्न इत्यादि मिथ्या मानेभी, तिस स्वतंत्र अनुभव समान माया-अज्ञान-मिथ्या है, एसा नहीं मानसकते. अतः रज्जु सर्पादिके दृष्टांतसे मूलमें प्रयोजन नहीं.

तथाहि रज्जु सर्पादि किंवा जो जो दृष्टांत दोगे सो सब, मायाके कार्य हैं; अतः स्वकारणकी सिद्धिमें उपयोगी वा दृष्टांतरूप नहीं होसकते. जेसेकि स्वप्नगत (श्रुतसंस्कार बलजन्य) सींग पूंछवाले मनुष्य वा काशीसे द्वारका पूर्वमें वा काशी समान भुजनगर.देखके जाग्रत सृष्टिमें वे वेसेही हैं एसा. नही मानसकते, किंवा जेसे स्वप्नदृष्ट पदार्थोंके दृष्टांतों से, स्वप्नके पदार्थमें मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होसकता. किंवा स्वप्नगत पदार्थोंके दृष्टांतसे उसके कारण [संस्कारादि] जाग्रतके पदार्थ मिथ्या नहीं मानसकते. इसी प्रकार अज्ञान वा माया कृत, जो जो [जाग्रतादि ब्रह्मांडके] पदार्थ हैं उनके दृष्टांतसे, मायामें अनिर्वचनीयत्व [मिथ्यात्व] प्रतिपादन नहीं होसकता. किंतु तद्भिन्न दृष्टांत कहा चाहिये, सो तो आपके सिद्धांतमें नहीं मिलता. अतः अनिर्वचनीयत्व सिद्धिका अभाव है. इसी वास्ते रज्जु सर्पादिके निर्णयके झगडेमें नहीं पडते वा नहीं लिखे.

जो कहोकि "कार्यसे कारणकी परीक्षा होजाती है; अतः मायाके कार्य रज्जु सर्पादिके दृष्टांतसे मायाका मिथ्यात्व सिद्ध होजाता है." तो, उसके अन्य अंशभी मानने चाहियें. क्योंकें उपादानसे भिन्न, उपादेयमें गुण स्वभाव नहीं आते. जेसेके प्रपंचके द्रव्य गुण नाना प्रकारके हैं, (परस्पर विरोधी—तम प्रकाश, शीताग्नि. सावयव, परिच्छिन्न, परमाणु स्वरूपसे अवाशवान, भाव अभाव इत्यादि.) वेसे, उनका उपादान [निरवयव, एक, अपरिच्छिन्न, नाशवान, विरोधी धर्मवान नहीं किंतु] सावयव परिच्छिन्न, नाना [विरोधी अविरोधीसे] समूहात्मक व्यवहार मात्र एक संज्ञाकर कहने योग्य—परंतु एक स्वरूप नहीं, अविनाशी,

परस्पर विरोधी धर्म-स्वभाववान नहीं, इत्यादि प्रकारवाला होना चाहिये. जब यूं हे तो, माया-अज्ञानमें सावयवता ओर समूहात्मकता तथा अनादि अनंतपना आजायगा. ओर केवळ ब्रह्मसे इतर प्रकारकी विलक्षण* हे, इतनाही सिद्ध होगा. शेष सांख्य वा न्याय वा आर्यसमाजके सिद्धांतानुसार मानना पडेगा; क्योंके जड मायाके अवयवोंका संयोग वियोग कर्त्ता, तद्भिन्न अन्य [ईश्वर] मानना पडेगा. वैसे उसका भोक्ता जीवभी. कदाचित् स्व सिद्धांतमें इन सर्वको मिथ्या संज्ञा रखोतो, भलेही रखो; परंतु ज्ञान निवर्त्तनीय वा अनादिसांत सिद्ध न होगा, जोकि आपको अनुकुल नहीं हे.

सत्ता-दर्शन-१९.

ब्रह्मकी परमार्थ सत्ता ओर तद्देतरकी प्रातिभासिक सत्ता वा अपरमार्थरूप सत्ता [इस प्रातिभासिक अंतर जागृतादि प्रपंचकी व्यवहारिक ओर रज्जु सर्प स्वप्नादिकोंकी प्रातिभासिक सत्ता] हे; यह वेदांतका मंतव्य हे. इस विषे यह प्रश्न उठता हे के सत्ता, स्वरुपसे कोइ भिन्न पदार्थ हे अथ-

* जो ब्रह्मको सत् मानाजाय तो, सत् [भाव] विलक्षण अज्ञान-माया, एसा कहना पडेगा; क्योंकि सत् विलक्षण असत् (शून्य-अभावरूप) कोई वस्तुतः वस्तु हो तो, उसको असत् कहना नहीं बनता. ओर जब असत् कोइ वस्तु नहीं तो, 'सत् विलक्षण असत्' एसा बोध नहीं होसकता. अतः सत् विलक्षण माया हे. ओर जो मायाको सत् कहेंतो, ब्रह्म तदेतर विलक्षण मान्ना पडेगा. इतनाही अंतर हे; परंतु इससे ज्ञान बाध्य सिद्ध नहीं होसकता-ओर न माया, ओर न उसका कार्य ज्ञान बाध्य हें, एसा मान्ना होगा.

वा जिसकी सत्ता, उसीके स्वरूपका नाम मात्र हे? जो आ-
द्यपक्ष स्वीकारोगे तो, द्वैतापत्ति होगी; क्योंके सत्तावान
ब्रह्मकी सत्ता, परमार्थरूप होनेसे अनादि अनंत ब्रह्मवत् सत्
माननी पडेगी. ओर जो उत्तर पक्ष मानोगे तो, स्वप्न जा-
ग्रत समान, माया ब्रह्मकी सत्ताका भेद सिद्ध नहीं करस-
कोगे; किंतु "परिभाषा कथन मात्र-विकल्प हे, वास्तविक-
रीते स्वरूप दृष्टिसे उभय सम हें, सत्तापना कुछ नहीं," एसा
सिद्ध होगा. जब यूं हे तो, आपके सिद्धांतका उच्छेद,
तथा ब्रह्मवत् माया ओर तत् कार्य जगत् बंध मोक्ष सत्य हो-
नेसे ज्ञान बाध्य नहीं ठेरेंगे. जो अस्ति मात्र, सत्ताका स्वरूप
कहोगे, तो ब्रह्म माया-उभय भातिरूप हें; अतः उभय समान
हुये. जो भातिरूपका नाम, सत्ता कहोगे तोभी, पूर्ववत् समा-
नता होगी. जो परस्परके स्वरूप धर्मकी विलक्षणताका नाम
सत्ता कहोगे तो, जाग्रत स्वप्न समान मानके ब्रह्म मायाकोभी
समान मानना पडेगा. क्योंके स्वरूपत्व, उभयमें समान हे. के-
वल इतना अंतर हे के वोह [ब्रह्म] चेतन, ओर माया जड
हे. जो परस्परके संबंध वा भेदको सत्ता मानोगे तोभी, सम-
सत्ताका परिहार ओर विषमकी सिद्धि नहीं होगी; क्योंके
परस्परमें भेद ओर संबंध हे. अतः ब्रह्मको लेके सत्ताके नि-
त्यत्वसे द्वैतापत्ति होगी. ओर उसीसे मायाका अनादि अनंतत्व
मानना पडेगा. निदान उभयके स्वरूपसे भिन्न सत्तानामा कोइ
भिन्न पदार्थ बलात्कारसे कहना पडेगा. तब यह शंका हो-
गी के सो सत्ता सत्य वा मिथ्या? जो कहोगेके सत्य, तो ब्रह्म
समान सत्य होनेसे द्वैतापत्ति होगी. जो कहोगेके मिथ्या. तो
ब्रह्मभी मायावत् मिथ्या ठेरेगा. निदान सत्ताकी आपत्तिमे
अद्वैत भावनाका अभाव हे. समसत्ता साधक बाधक मानेसे

ब्रह्म मायाका, अधिष्ठान अध्यस्तभाव न होसकेगा. विषम सत्त साधक बाधक माननेसेभी यही दोष आवेगा. निदान ब्रह्म मायाकी समान सत्ता वा विषम सत्ता मानो; परंतु अधिष्ठान अध्यस्तभाव नहीं बनता. किंतु आप आप स्वयंभु, स्वतंत्र मानने पडेंगे. उससे द्वैत सिद्ध और स्वपक्ष त्याग होगा.

विवर्त्त-दर्शन-२०.

वेदांतपक्ष विषे माया-(अज्ञान ओर उसके कार्य) को ब्रह्मका विवर्त्त माना हे; सोभी असंगत हे; क्योंकि, अधिष्ठानसे विषम सत्तावाला अन्यथा स्वरूप [परिणाम] विवर्त्त कहाता हे; इससे यह सिद्ध होताहे कि, ब्रह्म स्वरूपसे भिन्न सत्तावाला, कोई पदार्थ हे. जैसेकि जहां, रज्जुमें सर्प भासता हे वहां, रज्जु स्वरूपसे भिन्न, सर्प स्वरुप अनिर्वचनीय[1] उत्पन्न होता हे. तहां, रज्जुका सर्प विवर्त्त कहिये हे-रज्जुसे भिन्न विषम सत्तावाला अन्यथा स्वरुप [परिणाम] हे-(अर्थात् सर्प, स्वरुपसे कुछ हे.); अब यहां, यह विवेक करना योग्य हे कि, दृश्य सर्पगत इदंता-श्यामता-लंबाइ रज्जुकी विषय होती हे वा सर्पकी ?. जो प्रथम पक्ष मानो तो सर्पके नामरुप[2]-आकार मात्र रज्जुके विवर्त्त ठैरेंगे. और शेष तमाम-रज्जुके अंश प्रदर्शित-विषय होतेहें. निदान उभय प्रतितीयमान होते हें.-अध्यस्त सर्प एक अंश [विशेषांश] का विवर्त्त हे; एकका [सामान्यका] नहीं. जब यूं हे तो, नाम रूपवाली (-सर्प) कुछ वस्तु हे वा नहीं ? जो वोह स्वरूपसे कुछ वस्तु हे, तबतो-रज्जुकी व्याप्य होगी. व्यापक नहीं;

---

१ वेदांतकी रीतिसे कहा हे.

२ नाम-शब्दभी, एक प्रकारका रूप-आकार-स्वरुप हे. प्रचलित रूढीसे तद्भिन्नरूप अर्थात नामरुप करके व्यवहार हे.

क्योंकि अध्यस्त है, विवर्त्त नहीं; कारणकि रज्जु व्यापक है–व्यापक वस्तु किसि करके आवृत्त–आच्छादित नहीं हो सकती. प्रत्युत व्याप्यको चारों ओरसे आच्छादित करने योग्य होती है; यथा लोकमान्य आकाश है. यद्यपि, रज्जु दृष्टांत विषे तो–सर्पाकारको, रज्जुके उपर उपर भाग विषे रज्जुका आवृत्त–अध्यस्त मानसकते हैं; तथापि ब्रह्मरूप अधिष्ठानमें यह वात घटित नहीं होसकती; क्योंकि "ब्रह्म, मायाके चारों ओर, और बाह्यांतर व्यापक है, माया अवर है–पर नहीं," एसा आप मानते हो; इसलिये ब्रह्मसे 'माया आवृत्त है' एसा कहना मान्ना चाहिये. और पूर्वोक्त माने हुये दृष्टांत समान-उभय [माया, ब्रह्म] की प्रतीति होनी चाहिये. तहां, मायाका अंश (प्रपंच) तो प्रतीत होता है–अनावृत्त है; परंतु ब्रह्मका कोई अंशभी प्रतीत नहीं होता. मायासे "आवृत्त होनेसे प्रतीतिका विषय नहीं," एसा मानें, तो व्यापक न होगा–परिच्छिन्न ठेरैगा. और जो (अहं अहं–इत्यादि सामान्य रूपसे) प्रतीत होना मानोगे, तो पूर्वोक्त प्रसंगवाले दोष (किसको प्रतीत होता है? मन–वृत्ति–बुद्धि वा माया वा विशिष्टका विषय नहीं, इत्यादि दोष) प्राप्त होंगे, अब जो दृष्ट विरुद्ध, माया–अविद्याको सर्वथा विवर्त्त मानलेवे तो, घोर तममेंभी, रज्जु विषे सर्पकी प्रतीति होनी चाहिये. तथा आपके अध्यासकाही उच्छेद हो जायगा. क्योंके अधिष्ठान [रज्जु ब्रह्म] के सामान्य (इदं) ज्ञान विना, अध्यास नहीं होसकता. इसरीतिसे वेदांतका विवर्त्तवाद अयुक्त है.

जो कहोके "अहमत्व अस्ति–भाति–प्रिय–यह ब्रह्मके अंश हैं, तद्वत अहमत्व वा अस्तित्व ब्रह्मका सामान्यांश

गोचर है. विशेष नहीं. अतः अध्यास, विवर्त्त बने है " सो-भी, समीचीन नहीं.-तहां, अहमत्वका संक्षेपसे पूर्व प्रसंगोंमें कथन होचुका है. शेष-पृथ्व्यादि नामरूप ओर अस्ति-भाति प्रियका विवेक करें-तो, गोचर नामरूप व्यभिचारी होते हुये स्व कारण परमाणु वा मायामय होकर अप्रतीत रूप होंगे.-वहां कारण (माया वा अज्ञान) परमाण्वादिका नाम तो जीव कल्पित हो; तथापि जो उसका मूलाकार* है-वोह कहां नष्ट होगा? अर्थात् अस्ति भाति प्रियांशके साथ रहेगा.- यद्यपि उस मूल कारणके आकारमेंभी अस्ति भाति प्रियता सिद्ध है; तथापि सो आकार उसका व्याप्य हो, व्यापक नहीं.-यदि आकारमें अस्ति भाति प्रियता प्रतीत नहीं होती; तब तो उसे अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मका विवर्त्त कहना योग्यथा. परंतु, आकारकी प्रतीति, अस्तित्वादि रहित प्रतीत नहीं होती; अतः व्याप्य हो, आवर्त्तक नहीं मानसकते. यद्यपि अस्ति भाति आदि स्वरूपमेंभी अस्तित्वादि वा आकारकी अनवस्था होनेसे यह सिद्धांत असंगत है, इसलिये उसको मानके उक्त व्याख्यान व्यर्थ है; तथापि यहां वेदांतियोंकी रीतिको मानके कथन है, अतः व्यर्थ नहीं. निदान यदि माया कुछभी (सदा सद्विलक्षण) वस्तु है तो, उसको व्याप्य मानीजासकती है, विवर्त्त नहीं. द्रव्य मात्रमें नामरूप आकारसे भिन्न, जो स्वरूप है सो, आपकी उक्त रीतिसे [जैसे सर्पके नामाकारसे इतर इदंतादि सर्प, रज्जुही है वैसे] ब्रह्म है. जैसेके पृथ्वीके परमाणुका नाम ओर आकार तो मायांश है, शेष जो अच्छेद्य स्वरूप सो, ब्रह्मस्वरूप है, उस अच्छेद्य स्वरूपकी जो भाति-

* आकृति-स्वरूप-रूप.

प्रतीति उस नामरूपकी भाति जैसी है, इन उभयमें भाति भाव तो समान है; परंतु भातिनामा व्यापकांश, नामरूप और जिसकाके नामरूप है, उस स्वरूप (मेटर में व्यापक है. एसेंही मायाके स्वरूप ओर नामरूपमें अस्ति भाति समान व्यापक हैं. जब यूं हे तो, माया-अज्ञान स्वरूपनामा विवर्त्त नहीं होगा; किंतु परिच्छिन्न होनेसे व्याप्य होगा. जो यह कहोके "अस्ति भाति प्रियसे भिन्न, जितना नामरूप हे उसके सिवाय, स्वरूप वस्तुही नहीं; केवल नामरूप मात्र है." वहां, यह शंका होतीहे कि जब माया का अभाव वा अन्य, भावरूप पदार्थ हे, तबही, अस्तित्वादिसे उसका कथन होता हे. (अन्यथा नहीं). वेसेंही ब्रह्मस्वरूप कुछ वस्तु हे, तबही, उसको हे-[अस्ति], प्रतीत होता हे-[भाति], इष्ट, सुखद [प्रिय] हे, एसा कहते हैं यहां जिसके प्रति अस्तिआदिका प्रयोग है, सो स्वरूप हे. जो कहोगेके 'अस्ति आदिही स्वरूप हैं, तद्भिन्न, स्वरूप कोइ वस्तु नहीं हे' तो, आपको एसेही माया-अज्ञान-वास्ते समझ लेना चाहिये. अर्थात् जिसका नामरूप कहते हो सो, वा जिसमें अस्ति आदि व्यापक कहते हो सो, स्वरूप हे. अतः नामरूप मात्रही नहीं, किंतु माया, स्वरूपसे वस्तु हे. ओर जो यह कहोके "ब्रह्मका अस्तिआदिही स्वरूप हे, तद्भिन्न स्वरुप, अन्य कोइ वस्तु नहीं. वेसे नामरूप मात्र मायाका स्वरुप हे, तद्भिन्न अन्य वस्तु नहीं; अतः हमारा पक्ष यथार्थ हे" सोभी नहीं बनता:-विचारना चाहियेके अस्तित्व कोइ वस्तु नहीं, किंतु किसी स्वरुपके होनेसे अस्तित्व कल्पा जाता हे. सो, किसी वा किसीके रूपमेंभी कल्पा जाता हे. वेसे किसी स्वरुपकी प्रतीति हो तब, भातिका

प्रयोग होता है; प्रतीति मात्र कोइ स्वरुप नहीं. (प्रतीतिकी भाति कहना वा उसको नाम देना अनवस्था है). जेसे ब्रह्मस्वरुपकी प्रतीतिसे, स्वरुपमें भाति कही जाती है, वेसे किसी वा किसीकेरुप-आकारमेंभी कल्पा जाता है. [किंवा ब्रह्म प्रतीत स्वरुप है, तो किसीका आकारभी प्रतीत स्वरुप है.] वेसेही प्रियता भागभी है. अर्थात जो वस्तु-स्वरुप-इष्ट हो-अनुकूल हो, सुखद हो, उसको प्रियपद करके कथन होता है. ब्रह्म जिज्ञासु, ब्रह्मके स्वरुपको ओर जडवादी, मायाके स्वरुपको प्रिय कहते हैं; इसलिये किसी वा किसीके रुप-आकार-में प्रियताका प्रयोग होता है इसरीतिसे अस्ति भाति प्रिय कोइ स्वरुप नहीं; परंतु जिसके वास्ते प्रयोग है सो स्वरुप है; वेसे नामरुप कोइ स्वरुप नहीं, किंतु जिसके वास्ते उनका प्रयोग है सो स्वरुप है. जो यह कहोगेके 'ब्रह्म, प्रिय-आनंद स्वरुप है, उसमें अस्ति भातिका प्रयोग है.' तो, यद्यपि आनंद कोइ अभिाश्रित तत्व-पदार्थ-सिद्ध नहीं होता.-विक्षेप रहित मनकी स्थिरता विशेषरुप वा अन्य अवस्थाका नाम है, तथापि जो आनंदको वस्तुभी मानें तो, वोह द्रव्य है वा गुण है? जो पहिला पक्ष मानोगे तो, चेतन स्वरुपभी द्रव्य वा व्यक्ति होगा, अर्थात् दो स्वरुप-चेतन आनंद-मिलके ब्रह्म कहाता है. एसा माननेसे द्वैतापत्ति हुइ; द्रव्य माननेसे ब्रह्म सगुण मानना पडेगा, उससेभी द्वैतापत्ति होगी, जोके आपके सिद्धांतके विरुद्ध है; ओर आनंद' भोगने योग्य वस्तु होती है; अतः उसका भोक्ता, उससे भिन्न, निस मानना पडेगा. जो नहीं मानोगे तो, उस आनंद वस्तुका अस्तित्व निरर्थक होगा. वा असिद्ध होगा. ओर जो गुण मानोगे तो, सो आगमापायि [नाशवान]

है वा नित्य है? जो नाशवान मानोगे, तो चेतन मात्र व्यक्ति रही. उसमें, अस्तित्वादिका प्रयोग होगा; यह सिद्ध हुवा. ओर जो नित्य मानोगे तो, गुण गुणी स्वरूपसे भिन्न होते हैं; अतः उभयके स्वरूपमें अस्तित्वादिका प्रयोग लगेगा.—आनंदको प्रिय कहना पडेगा.—ओर चेतन प्रकाशकोभी प्रिय कहना पडेगा.—तथा ब्रह्म सगुण होगा.—ओर द्वैतापत्ति होगी; जोके आपको संमत नहीं* है. इसरीतिसे ब्रह्म चेतन स्वरूप व्यापक है, उसमें अस्तित्वादिका प्रयोग है ओर माया, स्वरूपका नाना नामरूपात्मक है, उसमें अस्तित्वादिका जडवादी प्रयोग करते हैं ओर अस्ति भाति ओर दुःखका चेतन वादीभी प्रयोग करते हैं. जेसे ब्रह्ममें रूप—आकार, जडता ओर दुःख नहीं. वेसे मायामें चेतनता, व्यापकता, प्रियता नहीं, परंतु अस्ति भातिका प्रयोग उभयमें समान है. प्रिय अप्रियका प्रयोग अपनी २ शैलीसे है. यद्यपि ब्रह्म, माया ओर उसके कार्य (अंतःकरणादि) का विषय नहीं, अतः भातिका ब्रह्ममें प्रयोग असंभव है; तथापि आपकी रीतिसे मानके विवेचन किया है. जेसे रज्जुमें सर्पाकार भासता है, उस आकारका उपादान, अविद्याका स्वरूप है, सो सर्पाकार

---

* तद्वत् ब्रह्मके सत्य—ज्ञान—आनंद नामस्वरूप लक्षण विषे कल्पना कर्तव्य है. जो वे लक्ष्य (ब्रह्म) के लक्षण हैं तो, लक्ष्यमें तादात्म्य हुयेभी लक्ष्य स्वरूपसे भिन्न होंगे, ओर जो ब्रह्म स्वरूप हैं, तो लक्षण नहीं ठेरेंगे. जो उपाधि वा कोई अपेक्षा दृष्टि, न लक्षणाके लक्षण स्वरूप मानोगे, तो मिथ्यावादी ठेरोगे. जो लक्षणासे मानोगे तो, पूर्वोक्त दोष आवेंगे. जेसे 'सत्यादि विशेषण हैं, स्वरूप नहीं,' एसा मानोगे तो, ब्रह्मका स्वरूप सिद्ध न करसकोगे, स्व पक्ष त्याग होगा. सत्यंज्ञानमानंद, श्रुतिका बाध होगा.

परिणाम हुई, एसा मानते हो—उसका स्वरूप, आकार मात्र हे, एसा नहीं मानते; किंतु नाना आकार धरनेवाला कोइ स्वरूप हे, एसा सिद्ध होता हे. वेसेही मायाको आकार मात्र मानोगे तो, उसका उपादान अन्य कहना पडेगा. एसी अनवस्थासे अंतमें कोइ स्वरूप मानना पडेगा, जोके नाना आकार रखनेको योग्य हे.

जो यह कहोगेके "आकार दृश्य मात्र वा ब्रह्ममात्रहे. ब्रह्मको अन्यथा रुपकरके देखानेसे वा उस करके अन्यथा दीखनेसे मायाको विवर्त्त कहतेहें अर्थात् नाम रुपाकारवाली, स्वरुपसे कोइ वस्तु नहीं." तो, बंध्याके पुत्रकीभी प्रतीति होनी चाहिये.—शशशृंगाकारभी भान होना चाहिये. परंतु एसा होता तो नहीं हे ओर जो कहोके 'भ्रम बलसे होना संभव हे.' तो प्रतीतिका जो विषय हे सो स्वरूपसे कुछ वस्तु हे, एसा मानना पडेगा. क्योंके 'न हो ओर प्रतीत हो' यह सृष्टि नियमके विरुद्ध हे. यहां, यह प्रसंग नहीं हे के, जो विषय हुवा सो, समूहात्मक वा संस्कारात्मक वा वृत्तिके आकारात्मक हे वा अन्य हे, परंतु "हे" एसा तो मानना पडेगा. जेसेके कोई स्व अंतःकरणमें, कल्पनासे सिंह वा सर्प, अंतरमें कल्पे; वहां, सिंह वा सर्पाकार हे, परंतु इतना अंतर हे के, यहां वृत्तिका जो स्वरूप हे उसीका सिंहाकार स्वरूप हुवा हे, ओर वनस्थ सिंह व्यक्तिमें अन्य परमाणुओंका समूहात्मक आकार हे. इसीप्रकार जब विवर्त्तवाद ओर नामरुप अस्ति भाति प्रियवाला पक्ष लोगे, उसी समय 'स्वरुपसे माया वस्तु नहीं,' इस बालवत् मंतव्यका त्याग होगा. ओर विवर्त्तवादको छोडना पडेगा.[1]

[1] परंतु जिनका एसा विरोध धर्मवाला मंतव्य होके "नि-

ओर जो उत्तर पक्ष (-इदंतादि सर्पकी हे) लोगे; तब तो, आकार मात्रही नहीं किंतु मायाका स्वरुप स्पष्टही मान्ना पडेगा. जेसेकि स्वप्नमें जो नामरूपात्मक पदार्थ भासते हें उनका मूल स्वरुप वृत्ति, अंतःकरण वा अविद्या हे; जिनका के संस्कारबल वा निमित्तसे आकार प्रतीत होता हे. परंतु जेसे जलपर लकडी मारें ओर कुछ आकार होताहे वेसा, स्वप्नके अधिष्ठानका [विकारी, छेद्य] स्वरुप नहीं हे. जो आकार भासता हे वोह, किसी स्वरुपका नहीं मानोगे, किंतु [जेसेके जल उपर लकडी लगनेसे जलका आकार विशेष प्रतीत हुवा, वा वायु करके जलमें तरंग हुये, वेसे], ब्रह्मका मानोगे, तो, ब्रह्म जलवत् सावयव ठेरेगा. उसके बिना उसके स्वरुपसे तरंगादिवत् जगत् स्वरुप नहीं होसकता. जेसेके कनकका कुंडल, जलका बरफ, दूधका दही स्वरुप, कनकादिके सावयव स्वरूप विना नहीं होता, यह प्रसिद्ध हे. कनकका कुंडल नाम ओर आकार जो ज्ञात होता हे, उसमें नामतो कल्पित् हे; परंतु आकार कनककाही हे. अर्थात् सावयव समूहात्मक जो कनक नामा पदार्थ हे, उसके अवयवोंमें कोइ कारणसे क्रिया हुइ, वा निमित्तसे समूहात्मकका परिणामविशेष हुवा; अतः उस समूहात्मकका आकारविशेष हे. तद्भिन्न आकारनामा, कोइ पदार्थ नहीं हे, के जिसको कनकादिका विवर्त्त कहा जाय. ओर जो कनकादिकी दृष्टि नहीं रहती, उसका हेतु अभ्यास वा अध्यास हे. अन्य नहीं. इस

विकार-शुद्ध ब्रह्मका आद्य विकार आकाश, सो अस्ति-भाति-प्रिय रुप, ओर अवकाश [जो आकाशका स्वरुप सो] मिथ्या हे " [यथा पंचदशीकारका मंतव्य हे] उनको पूर्वोक्त सूक्ष्म रहस्य, केसे समझमें आवेगा !-आशा नहीं हे.

प्रकार जो माया करके जगतको ब्रह्मका आकार मानो तो दूषित पौराणिकमतसमान ब्रह्म, सक्रिय-परिणामी ओर सावयव होगा. ओर जो [जगत्] मायाका आकार मानो-तो माया, कोइ परिच्छिन्न-आकार-स्वरुपवाली, एसी सावयव वस्तु-पदार्थ हे के, जिसके नाना आकार हें. परंतु 'व्यापक ब्रह्ममें आकारमात्र मायानामा विवर्त्त हे, यह कथन असंगत हे. किंतु व्यापकविषे कोइ व्याप्य स्वरुप हे वा नहीं, यूं मानना पडेगा. अथवा सर्व जगत् सावयव ब्रह्मका परिणाम वा विकार हे, एसा (जडवाद समान) कहना होगा; क्योंकि अधिष्ठान वस्तुका जो अवास्तवसे अन्यथा भाव, उसका नाम विवर्त्त हें, एसा आपका सिद्धांत हे. तहां वेदांतीभाइ, आरंभक वा परिणामी उपादान [न्याय, सांख्य समान] नहीं मानते; किंतु विवर्त्त अधिष्ठानस्वरूप माया हे, एसा कहते हैं. अतः या तो मायानामा पदार्थ परिणामी ओर आवर्त्तक मानना पडेगा. वा तो ब्रह्मकाही अन्यथा भाव कहना पडेगा. उभय पक्षमें पूर्वोक्त दोष प्राप्त होंगे.-मायाविना अन्यथा भाव मानें, ब्रह्मको परिणामी वा सावयव कहनेसे, जडवादकी प्रतिपत्ति होगी. ओर मायाविना तथा ब्रह्मके परिणामी स्वभाव पायेविना, अन्यथा भाव मानें, वंध्या पुत्र, शशशृंगभी देख पडनेका अवसर मिलेगा; जोकि असंभव हे. तथा ब्रह्मज्ञानस्वरूपको, अपनेको अन्यथा स्वरुप देखनेमें, कोइ हेतु नहीं-ओर न संभव. जो मायाको लेके अन्यथा भाव कहोगे तो, निर्विकार ब्रह्मविषे उसका अभाव होनेसे, मायाकोही उसका उपादान (अन्यथा दिखानेका निमितोपादान) मानना पडेगा. तब पूर्वोक्त तमाम दोष आवेंगे. विवर्त्तवादका उच्छेद होगा. ब्रह्म अभिन्न निमित्तोपादान हे, इस पक्षका

बाध होगा. अन्यथा [माया वस्तु नहीं एसा मानें] जडवाद स्वीकार होगा, जोकि आपको असंमत हे. ब्रह्म अधिष्ठान हे, इस मंतव्यका बाध होजायगा. क्यों ? अध्यस्त माया वस्तुनः वस्तु नहीं,—अवस्तु हे. एसा माननेसे.

जो कहोके "जेसे नभमें मौक्तिकोंकी माला दृष्ट पडती हे, ओर वोह आकाशको भिन्नाकारसे प्रतीत करानेका हेतु होपडती हे; उस मालाका आकाशके स्वरूपमें प्रवेश नहीं—आकाशकी व्याप्य नहीं—आकाशको छेदती नहीं ओर अपना कुछ स्वरुप नहीं रखती, किंतु मोती आकारमात्र हे, सो माला नभसे विषम ओर अन्य प्रकारकी—नभकी विवर्त्त हे. वेसें, माया ओर उसके कार्यरुप माल ब्रह्मके विवर्त्त समझो-यह वेदांतका गुह्य रहस्य हे" सो वार्ताभी समीचीन नहीं; नभगत माला स्वरूपसे हे, उस स्वरुपका माला-मोती-आकार हे, नभसे सम सत्तावाली हे; कारणके कभी तो, संस्कारबलसे वृत्तिहीं मोती-मालाकार हाती हे; कभी चक्षुके वालोंमेंसे रोशनी-किरण-स्वरुपका मोती-मालाकार बनता हे; कभी चक्षुकी कीकीमें विकार होता हे, तब सूक्ष्म परमाणुओं वा वालोंके छिद्रोंका चक्षुमें प्रतिबिंब होके बाह्य प्रत्यक्ष प्रकारवत् मोती-माला-प्रतीत होता हे. अर्थात् जेसेके दो चंद्रका दर्शन कालमें[१]

१ बल करके देखने, उभय चक्षुके मध्य भागमें आडआने वा चक्षुकी कीकी फटने इत्यादि कारणसे चक्षुमें किरणे पडके जितने स्वरूप बनें वे प्रतीत होते हें. अर्थात् किरण स्वरूपही चंद्राकार होती हे-वृत्ति चंद्र पास नहीं जाती वा स्पर्श नहीं करती. हां, शीत-आह्लादजनक तो एकही चंद्र हे, एसा समझना चाहिये. नाना जो प्रतीत होते हें वा एक जो प्रतीत होता हे सोतो किरणोंका स्वरूप हे.

दो चंद्रके स्वरुप हैं वा प्रतिबिंबका स्वरुप है, वैसे नभगत मोती-माला, स्वरुपसे है,-उस स्वरूप [वृत्तिके स्वरुप] का आकारविशेष है. (उसका उपयोग कल्पना वा वृत्तिवत् समझ लेना. अतएव उपयोगकी शंका नहीं होसक्ति). इस लिये आपका कथन असंगत है. (इसी प्रकार अन्य दृष्टांतोंमें यथोचित विवेक कर्तव्य है). अतः जैसेके परमाणु आकाशके विवर्त्त नहीं, किंतु व्याप्य हैं. वैसे, सावयव वस्तु, मायाभी व्याप्य है, विवर्त्त नहीं. इतने कथनका प्रयोजन यह है के, माया, दृष्ट जगत्, ब्रह्मस्वरुप नहीं, ब्रह्मका उपादेय नहीं, किंतु माया, सावयव समूहात्मक स्वरुपसे कोइ प्रकार वा कोइ प्रकारकी सत्ता वाली [ब्रह्म भिन्न] स्वरुपसे वस्तु होनी चाहिये. वेदांत पक्ष समान 'अन हुये आकार मात्ररुप माया, चेतनकी विवर्त्त है,' एसा नहीं है. किंवा "माया ओर उसके कार्यनामा कुछभी नहीं है" एसा मानके विवर्त्त माननेका उच्छेद जानना योग्य है. हां, मायाको स्वरुपवान पदार्थ मानके व्याप्य मायाको नभ परमाणु वा नभ वर्षासमान, व्यापक ब्रह्मका विवर्त्त समझो तो, हमको दुराग्रह नहीं है. परंतु पूर्वोक्त स्वरुप[2] अप्रवेश विषय समान जो दोष आवेंगे, उनके निवारणका भार आपको अपने पर समझ लेना चाहिये. एतद्दृष्टि "उपादान कारणकाही स्व स्वरुपको न छोडके विषम सत्ताकार, कार्य रूप रूपांतरसे जो होना वा भान होना सो विवर्त्तवाद' तिस विवर्त्तवादकी असिद्धि है.[3]

---

२ ईश्वर, ब्रह्म असिद्धिका विषय ध्यानमें लेना चाहिये.

३ यहां, अभिन्न निमित्तोपादान (दर्शन १४) का प्रसंगभी याद करना चाहिये. ओरभी "परिणामीका, परिणामपीछे

निवृत्ति-दर्शन-२१.

(कल्पितकी निवृत्ति)

वेदांतीबंधु, माया-अज्ञान-को मिथ्या स्वरूप ओर अनिर्वचनीय कहके-(उसकी निवृत्ति मानके)-उसकी निवृत्ति अधिष्ठान-ब्रह्म-स्वरूप मानते हें; सोभी समीचीन नहीं हे. क्योंके "यदि माया-अज्ञान-कल्पित, मिथ्या, अध्यस्त हे तो, अधिष्ठान-ब्रह्म-के ज्ञानविना उसकी निवृत्ति नहीं होसक्ती, ओर ब्रह्मका ज्ञान, जीवादि (माया, आभास, अंतःकरणादि जड) कोइकोभी नहीं होसक्ता, ओर विशिष्ट [जड-चेतन मिले हुये] मेंभी उसके ज्ञानका अभाव हे, ओर प्रकाशस्वरूप स्वयंब्रह्मकोभी अपना ज्ञान नहीं होसकता, ओर जिसको ज्ञान होगा, उसकी निवृत्ति नहीं;-इत्यादि" उपर सिद्ध कर आये हें इससे यह आया के मूलाधिष्ठानके ज्ञानाभावसे सकार्य अध्यस्त-माया-अज्ञानकी (ज्ञान वा अन्यथा प्रकारसे) निवृत्ति न होसक्नेसे, सो व्याप्य माया, नित्य सत्य ठेरेगी; एसा होनेसे अद्वैत पक्षका उत्थान हुवा.

किसी अनादि जीवको ज्ञान होनेसे उस जीवके ईश्वर, किंवा समष्टिरूप ईश्वरकी, किंवा असमष्टि ईश्वरकी, निवृत्ति होती हे वा नहीं? तहां, जो एक एक जीवका भिन्न २ ईश्वर

पूर्वरूपमें न आना, यह कार्य-पदार्थ (दूध-दही आदि) में व्यवहारमात्र कथन हे. परंतु वस्तुतः मूल पदार्थ (दूध दही, जल, बरफ, कनक-कुंडलादिके मूल तत्व-परमाणु) में तो " परिणामीका परिणामके पूर्वोत्तर [वा वर्त्तमान] स्व स्वरूपको न छोडना " ही मान्ना पडेगा. तथापि सो परिणामी सक्रिय,परिछिन्न वा सावयव अवश्य मान्ना होगा. " यह नियम याद रहे.

(ओर भिन्न सृष्टि) मानें तो उनकी भिन्न २ निवृत्ति होनी चाहिये. परंतु अनादि जीवकी संख्या नहीं, इस लिये उन अनंत जीवोंका अंत न आनेसे, नित्य रहेंगे; अतः निवृत्तिका अभाव हे. ओर जो संख्यावाले मानोगे, तो उसका हेतु नहीं, ओर हठसे मानें तो, उनका उपादान रहनेसे अत्यंत निवृत्ति न होसकेगी. तथाहि बद्ध जीवका कल्पा हुवा (अर्थ शून्य) मुक्त ईश्वर मान्ना, बडे हास्यकी बात हे. उसने दंड क्या देना हे. तथाहि उन अनंत जीवोंके अज्ञानभी अनंत होंगे, तिससेभी आत्यंतिक निवृत्तिका असंभव होगा.

जो ईश्वर मानके जीवको ज्ञान होना मानें, तो उसके ज्ञानसे उस जीव (वा उसके जीवत्वभाव) की निवृत्ति हो; परंतु ईश्वरकी निवृत्ति नहीं होगी. जब यूं हे तो (यद्यपि अनादि संख्यासे अनंत जीवोंकी निवृत्ति असंभव–क्योंकि अनादिसे उनकी संख्याका अभाव हे, परंतु मानलोंकि) जीवोंकी निवृत्ति हो, तोभी ईश्वरकी अत्यंत निवृत्ति न होगी. ओर न उस नित्यमुक्त ईश्वरकी निवृत्तिका हेतु हे. ओर न वोह जीवकल्पित हे; किंतु शुद्ध माया विशिष्टचेतन ईश्वरका नाम ईश्वर मानते हो; इसलिये तदंश मायाकी अत्यंत निवृत्ति नहीं होगी. प्रत्युत ईश्वरके सफलार्थ जीवादिको अनादि अनंत मानना पडेगा. जो जीवोंकी समष्टिका नाम ईश्वर हे, एसा मानें तो, जेसे जेसे जीवोंका अभाव होता जाता हे, वेसे वेसे ईश्वरके अंशकाभी नाश–खंडन होता जाता हे. इसका यह परिणाम निकला कि, ईश्वर सावयव, राग–द्वेष, बंध इत्यादि विशेषणवान् हे; एसा ईश्वर जग कर्त्ता, धर्त्ता, न्यायी नहीं होसकता. उसकी मुक्ति जीवाधीन हे. अंतके जीवोंको योग्य सामग्रीके अभावसे ज्ञान नहीं होगा. ओर

तमाम जीवोंमेंसे जब ।।।) बारआना नाश होजायगे, तो चारआने ईश्वरांश रहनेसे, शेष जीवोंका पूर्णांशवत् नियामक नहोसकेगा. तदुपरांत मूल मेटर तत्वका अभाव न सिद्ध होगा. सावयव होनेसे अज्ञानप्रसंगेवाळे दोष आवेंगे.

ओर जो एकजीववाद मानके एकके अज्ञानसे निवृत्ति मानोगे [उससे निवृत्ति. शेषअधिष्ठान मानोगे] तो एक जीववाद प्रसंगवाले दोष आवेंगे. तथा आजतक किसीको ज्ञान न होनेसे भविष्यमें आशा रखनेका कोइ निर्विवाद हेतु नही मिलता. आपकी श्रुतिका उच्छेद होगा.

जो मूल जीवका बाध न मानके तदंतर अंतःकरण आभासादिकी निवृत्ति मानोगे-अर्थात् जिस जिस साभास वा केवल अंतःकरणको ज्ञान हुवा, उसीकी निवृत्ति होती है, मूल जीव (मायाविशिष्ट चेतन-साधिष्ठान साभास अज्ञान वा साधिष्ठान सप्रतिबिंब माया-अज्ञान) की निवृत्ति कभीभी नहीं होती, एसा मानोगे तो, अनादि अनंत द्वैत सिद्ध होगा. जड वा आभासरुप सादि, परिणामी अंतःकरणकी मुक्तिही क्या. स्वाभावतः नाश होने योग्य है, तदर्थ साधनकी आवश्यकता नहीं. तथा स्वपक्ष [अद्वैत वाद माया अनादिसांत] त्याग होगा.

जो कदाचित् आपका सिद्धांत क्षण वास्ते मानभी लेवें तोभी, वोह निवृत्ति अधिष्ठानसे भिन्न होगी, अधिष्ठान स्वरुप नहीं होगी. जेसे आपकी रीतिसेही रज्जुका सर्प अपने उपादान अज्ञानमें लय वा अज्ञानस्वरुप हुवा, वा रज्जु देशसे खिसके तिरोधान हुवा; परंतु, सो सर्प, रज्जुस्वरुप [वा रज्जुउपहित चेतन] वा रज्जुमें लय नहीं हुवा. ओर उसका ज्ञानभी, रज्जु ज्ञान स्वरुप [वा वृत्ति उपहित

चेतनस्वरूप] वा रज्जुमें लय नहीं हुवा; किंतु वृत्तिस्वरूप वा अंतःकरण-वृत्तिमें लय हुवा; किंवा अविद्या स्वरुपहुवा; किंवा स्वप्नसृष्टि, स्वोपादान अविद्यामें लय हुइ; वा उपादान-स्वरुप हुइ, परंतु द्रष्टा स्वरूप वा द्रष्टामें लय नहीं हुइ; वैसेही, सृष्टि वा अंतःकरणकी निवृत्ति, उसके उपादान अविद्या-माया-स्वरूप होगी; परंतु सर्वके अधिष्ठान (ब्रह्म) स्वरूप होवे नहीं. अब रही माया- इसकी निवृत्तिभी, ब्रह्ममें वा ब्रह्मस्वरुप नहीं होसक्ति, क्योंके व्यापक-निरवयव-अखंड-शुद्ध-चेतन-ब्रह्म, परिच्छिन्न, सखंड, जड मायाका उपादान नहीं; किंतु इससे विलक्षण हे, अतः मायाकी निवृत्ति ब्रह्मरूप नहीं होसक्ति. जो ब्रह्मको मायाका उपादान मानलोगे तो, ब्रह्मभी मिथ्या-सावयव होगा.-ओर उसकी निवृत्तिभी होगी. परिणाममें शून्यवाद स्वीकार लेना पडेगा. ओर जो ब्रह्ममें स्वरुपसे तिरोधान मानो, इसका यहां प्रसंग नहीं. हां. ओर जो कहोके "वहांसे माया खिसक गइ, शेष अधिष्ठानरुप रहा, अतः मायाकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप हे" सोभी हां. अर्थात् मायाकी निवृत्ति उस देशसे हुइ, अतएव उस देशका आवरण भंग होनेसे अधिष्ठानही रहा; मायाकी निवृत्तिरूप नहीं हुवा. परंतु ब्रह्मसे इतर कोइ देश नहीं हे, इसलिये ब्रह्मके अन्य देशमें रही, यह सिद्ध हुवा; इतनाही नहीं, किंतु जिसकालमें निवृत्ति हुइ ओर एकदेशसे निवृत्ति होके जिस देशमें रही, सो देश-कालभी, [उस निवृत्ति अपेक्षासे] ब्रह्म समान शेष रहनेसे, द्वैतही सिद्ध होगा. जो यह कहोगेके "जेसे स्वप्न सृष्टिकी उत्पत्ति ओर निवृत्ति देश-काल विना होती हे; परंतु अविद्या बल करके देश-कालकी कारणता, जीव वा स्वप्नसृष्टिके पदा-

थोंमें परस्पर ज्ञात होती है, वेसे निवृत्ति पीछे देश-कालकी प्रतीति, माया–अज्ञान–बल करके भासती है." इसका समाधान यह हे के, जिस कालमें अज्ञानकी निवृत्ति हुइ उस पीछे, उसका कार्य–[" निवृत्तिका देश काल भासना " सो] भी नहीं रहेगा. ओर बुद्धि वा अनुमानसे प्रतीत तो होतेहें. जेसे स्वप्नकालमें स्वप्ननिवृत्तिका अनुमान, देश–काल विना करलेतें, परंतु वोह असत्य हे; क्योंके जब जागतेहें तो. स्वप्नवाले देशकालसहित स्वप्ननिवृत्तिके देश काल शेष प्रतीत होतेहें. अंतःकरण देश ओर उत्थानादि काल, तथा स्वप्न निवृत्ति–अभाव ओर उसके संस्कार सबको अनुभवगम्य हें; वेसेही, ब्रह्मज्ञान पीछे जीवनकालमें, अज्ञान निवृत्तिके देशकाल संस्कारादि जीवनमुक्तको अनुभवगम्य हें –' नहीं हे, ' एसा हठमात्र कथन, मान्य नहीं होसकता ओर विदेह मोक्ष हुये प्रतीत नहीं होंगे, इसकी साक्षी क्या ? अर्थात् कोइभी साक्षी नहीं मिलती–नहीं हे.–प्रत्युत् ज्ञान पश्चात् दर्शन होने, ओर स्वप्ननिवृत्ति प्रतीतरूप हेतुसे, देश–काल शेष रहनेका स्पष्ट अनुमान होता हे. अतएव द्वैतापत्तिसे अधिष्ठान शेषमात्रकी सिद्धि नहीं होती. जो एसा कहोगे कि, हमारे मतमें अनुमानका स्वीकार नहीं हे. तो, में यह कहूंगाकि. अत्यंत निवृत्तिभी, किसीने अपरोक्ष–प्रत्यक्षकी ? वा अपनी निवृत्ति कोइ अपरोक्ष करसकता हे? इसबातकी सिद्धि नहीं करसकोगे. अर्थात् किसीनेभी अपरोक्ष नहीं की. ओर न कोइ करसकता हे. जेसे अपना अनादित्व, अनंतत्व ओर उत्पत्ति कोइभी विषय नहीं करसकता–असंभव हे, यह स्पष्ट हे–अनुमान विना नहीं मानसकते; वेसेही निवृत्ति संबंधमें जानलेना चाहिये. निदान निवृत्तिका कथन अनुमानविना

नहीं मानसकोगे. ओर जो अनुमान मानलिया तोभी, अविनाभाव संबंधाभाव प्रसंग प्राप्तिसे* आपका पक्ष सदोषही रहेगा.—संशय, विपरीत भावना, तथा असंभावना दोष रहित—निर्दोष न होगा. अतएव सर्व प्रकारसे द्वैत सिद्ध रहता हे-द्वैताभाव नहीं हे.—अत्यंत निवृत्ति नहीं हे. [वेदांतपक्षकी रीतिसेंभी-] सार यह हे किः—" जहां जहां जब जब स्फुरण व्यवहार हे, वहां वहां तब तब माया हे—तबही ब्रह्मका क-

* " कोइ प्रकारकीभी व्याप्ति (—अनुमान करनेका साधन विशेष) जब, स्वीकार होती हेकि, उसके अभावके अभावकी सिद्धि हो. जेसे रूप-दर्शनसे, परोक्ष चक्षू इंद्रियका अनुमान करतेहें; क्योंकि चक्षू बंध करनेपर वा अंधको श्रोत्रादिद्वारा रूपका ज्ञान नहीं होता. इसलिये चक्षू गोलकगत [रूपग्राहक—साधन विशेष—परोक्ष] इंद्रियविशेषका अनुमान मानते हें;—यहां कारण—कार्य संबंध—व्याप्ति हे. वा अविनाभाव [जिसके विना जो न हो उनका] संबंधरूप व्याप्ति हे. परंतु इसको जब व्याप्ति कहेंगे कि, रूप ग्रहणका अन्यथा अभाव सिद्ध हो; तहां, जो उसकी सिद्धि अनुमानसे करोगे तब तो, व्याप्तकीही सिद्धि नहीं होगी. अर्थात् उस अभावकी सिद्धिकर्ता व्याप्तिमें पूर्वदोष आनेसे अनुमिति-ज्ञानका विषय नहीं होनेका. अनवस्था आवेगी, ओर उसके अभावसे पहिली व्याप्तिकी सिद्धि नहीं होगी. जो अन्यथारूप ग्रहणाभावमें प्रत्यक्ष प्रमाण दोगे तो, पूर्वोक्त [प्रत्यक्षप्रमाण प्रसंग-ईश्वरप्रसंग] वाले दोष आवेंगे. तथाहि व्याप्तिका बाधक होगा. अभाव किसी इंद्रियका विषय न होनेसे अनुमानका विषय कहोगे. तो पूर्वोक्त दोष आवेंगे. इसमें प्रसिद्ध दृष्टांत यह हे कि, जो मेस्मेरिझम वा योगविद्या नहीं जानते उनको तो, चक्षुइंद्रियका दृढ अनुमान होजाता हे परंतु जिनको वोह विद्या याद हे, वोह चक्षू बंध किये—चक्षुविना, दूरस्थ रूप

कथन हे.–निवृत्ति, अनिवृत्तिका प्रयोग हे.–व्यवहार निर्वाहक, व्यवहार प्रकाशक परिणामवाली वृत्ति–जीवके विना, कुछ

रंगका यथार्थ ज्ञान करलेते हैं. अतः वे पूर्वोक्त व्याप्तिको व्यभिचार रहित सहचारी–अविनाभाव संबंधरुप व्याप्ति नहीं मानेंगे. (तद्वत अन्यश्रोत्रादि इंद्रियसंबंधमें जानलेना.)–इस लिखनेका रहस्य यह हे कि, मनुष्य अपनी बुद्धि अनुसार व्याप्ति ओर उसके उदाहरण मानता हे, परंतु सृष्टि–कुदरतकी दृष्टिसे उसकी मानी हुई समव्याप्ति परभी विश्वास नहीं किया जासकता. मानाकि इस अविश्वासका आधारभी अनुमान हे,–अर्थात् एसा क्यों न मानाजावे कि, अमुक व्याप्ति उसके अभावाभाव [नित्य–समव्याप्ति] सहित हे; तथापि एसा क्यों न माना जायकि, 'यूं (मनुष्यमान्य प्रकार) ही नहींभी हो.' निदान अनुमानका विषय, निश्चयात्मक नहीं. जल, कुदरतके नियमसे स्वाभावतः बनता हे.–स्कूलोंमें विद्यार्थींभी बनाते हें–प्रसिद्ध हे; विच्छुकी मैथुनी, ओर अमैथुनीभी सृष्टि हे; श्वेत बाल, वृद्ध ओर बालक–किशोरकेभी हें. शशशृंगाभाव न देखनेसे यह नहीं कहाजाताकि ब्रह्मांडमें शश, शृंगविनाकेही हों. विशेष कहांतक कहें, प्रसिद्ध धूम देखके अग्निका अनुमान करते हें; वहांभी, व्याप्तिदोष ओर धोका होजाता हे.–जेसेकि, ग्रामसमीप वृक्षोंमें, प्रातःकाल वा संध्यासमय, उन अग्निरहित वा सहित घन वृक्ष वा बागमें अन्यस्थानसे धूम आके रहती–फिरती हे,–किसीको धूम प्रतीत होती हे; परंतु वहां अग्नि नहीं मिलती.–किसीको यह 'धुंव हे' एसा, निश्चय होता हे तो, उन वृक्षोंमें अग्नि हुयेभी प्रवृत्ति नहीं होती.–कहीं जल कुंडोंमें उच्च उर्द्धरेखावाली धूम्र उठती हे, परंतु वहां जानेसे स्वप्रयोजन सिद्ध नहीं होता. जेसकि, गीली लकडी ओर आगके संयोग हुये धूम उठती हे. वेसेही संभव हे कि, सृष्टिमें धूम्र उठनेका अन्य प्रकारभी हो; जेसेकि मैथुनी अमै-

नहीं माना जासकता–नहीं कहा जासकता–सिद्धकार अपनी निवृत्ति सिद्ध नहीं करसकता.–माया–ब्रह्म, ब्रह्म–मायाका, एसा तो तादात्म्य हे कि, जिनका कोइ प्रकार (बुद्धिकल्पना–योग–यंत्र इत्यादि) सेभी, पृथकरण नहीं होसकता–नहीं हुं–कोईभी नहीं कहसकता–मायाविना ब्रह्म, ब्रह्मविना मायाकी, कोइ प्रकारकी सिद्धि–खंडन मंडन नहीं बनता." जब यूं हे तो अत्यंत निवृत्ति पक्ष केसे टिक सकता

थुनी–उभयथा सृष्टि देखते हें. जो साधनमें, अव्यापक ओर आप साध्यमें तथा उस (आप) में साध्य व्यापक हो–सो, उपाधि. (इसके उदाहरण–दूषण–भूषणका विस्तार, प्रसंगमें विशेष उपयोगी न जानके, नहीं लिखे हें. विस्तार देखना हो तो चार्वाकसंग्रह, बुद्धिप्रकाश, तत्वदर्शन वा न्यायके ग्रंथ देखो) एसे नाना प्रकारके स्वानुकूल लक्षण कल्पना करके, उपाधिरहितका ग्रहण बताते हें; सोभी, अपने २ पक्षके निर्वाह वासते हे. तथाहि इस रीतिको लेके–जब, किसी विषयका निर्णय करतें हें तो, निर्दोषता पूर्वक अभिप्राय सिद्ध नहीं होता. क्वचित् निर्दोष समव्याप्ति निकलती होतो हो–"यथा ज्ञाता, वक्ता, अनुमानकर्ता–अनुमान निषेधक जीव [किंवा सर्वज्ञ ईश्वर] अनादि अनंत होगा वा सादि सांत (अनादि सांत वा सादि अनंत असिद्ध कल्पना हे) होगा.–इससे इतर प्रकार न संभव. एसा निश्चित नियम हे; सोभी, सो [ज्ञातादि] अपना अनादिअनंतत्व, आप वा पर–हर कोई करके तथा अपना सादि [उत्पत्तित्व], सांतत्व (नाश–निवृत्ति) [अपनी उत्पत्ति नाश दूसरेको अपरोक्ष हो तो हो परंतु] आप करके अनुमान विना सिद्ध नहीं करसकता. नहीं मानसकता. [तद्वत असिद्ध कल्पना सादि अनंत, अनादि सांत विषे जानने योग्य हे.] किंवा हलती, जलती हुइ अग्निकी ज्वालाका फोटो काचमें देखके अदृष्ट–परोक्ष

इ. थूकक पकाड ह.

जो यह कहोके " सर्वथा निवृत्ति होगइ उसका भाव कहींभी नहीं रहा " तोभी दोषकी प्राप्ति होती हे. क्योंके जो माया वस्तुतः कुछभी नहीं वा शून्य-अभाव-रूप हे; एसा मानोगे तब तो, उसकी निवृत्तिही क्या ? वंध्या पुत्रकी

अग्निका अनुमान होना. फोटो प्रकारसेही "शरीरके " अंतरके कांटेका लंबाई चोडाइ सहित यथार्थ अनुमान होना. वगेरे. अन्यथा अविनाभाव, अभाव प्रसंगसे निर्दोष व्याप्तिका अभाव हे. मानाकि, अनुमान प्रमाण विना, जगत्का वा जीवन व्यवहार नहीं चलना.-बहुधा उपयोगमें आता हे.-यथा भोजनमेंभी प्रवृत्ति, अनुमानाधार होती हे; तथापि, न्याय ओर पक्ष रहित सूक्ष्म विचारसे देखें तो, उक्त सर्व व्यवहारमें विश्वास-अभ्यास [प्रधान] हे. जेसेकि, पूर्व अनुभव किये हुये भोजन जन्यतृप्ति संस्कार [आद्यसंस्कार स्वाभावतः वा अन्यद्वारा वा पूर्व जन्मसे क्या केसे होते हें, इसके निर्णयका यहां प्रसंग नहीं हे] से, सन्मुख आये हुये भोजनमें प्रवृत्ति होती हे,-परंतु संभव हे कि, अपनी धारनाके विरूद्ध उसमें किसीके कपटसे वा अजाने वा स्वाभावतः वा अन्यथा, कोई प्राणनाशक वा दुःखदायक विकार हो-होगया हो; ओर उसके उपयोगसे अन्यथा परिणाम निकले; अतः प्रवृत्तिका बाधक हो. इत्यादि प्रकारसे विश्वास, अभ्यासको प्रधानता हे.

जब व्यवहारिक बाबतमें एसा हे तो, जड परमाणु विशेष जन्य चेतन, जीव, ईश्वर-मोक्ष, इत्यादि सूक्ष्म-परोक्ष विषयोंमें अनुमानादिक (प्रमाणों) की क्या गति ? अर्थात् वे, संशय रहित नहीं करते.-पूर्ण उपयोगी नहींभी होते. तद्वत्, ज्ञान करके वा अन्यथा होने वाली-मानी हुई-कल्पित-किसीकोभी अद्यापि अपरोक्ष नहीं हुई जो अत्यंत निवृत्ति, तिसके संबंधमेंभी जान लेना योग्य हे.-

निवृत्ति कहनाही नही बनता. अर्थात् " कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरुप " इस कथनका अवसरही नहीं रहा. और जो सर्वथा भावरुप सत्य मानोगे तो, उसकी निवृत्ति नहीं होसक्ती. जो सत्यकी निवृत्तिभी मानलोगे तो, ब्रह्मकी निवृत्तिभी होनेसे अन्य व्यवस्था कल्पनी पडेगी, व्याघात दोष धारना पडेगा.

रज्जु ज्ञानसे सप्रकार सर्पकी निवृत्ति होती हे; भूमीज्ञानसे जल ज्ञान सिवाय अन्य मृगतृष्णा प्रकारकी निवृत्ति नहीं होती. [तद्वत् नीलतादि अनेक विषय, पूर्वोक्त उभय प्रकारके-व्यभिचार सूचक हें] इस प्रसंगमें इतना विस्तार लिखनेका यह प्रयोजन हे कि:-जीव वा मायाकी अत्यंत निवृत्तिका अनुमान मान्य नहीं होसकता.-संतोषकारक नहीं.-सदोष हे.-जो, "ज्ञान विना, (देशकाल सहित) मायाकी निवृत्ति होती हे, इसका अभाव" वा "अन्यथा अत्यंत निवृत्ति होती हे, इसका अभाव" वा "अत्यंत निवृत्ति नहीं होती, इसका अभाव" वा "अपनी अत्यंत निवृत्ति नहीं होती, इसका अभाव" अपरोक्ष-प्रत्यक्ष किया होता,-अनुभवमें आया होता; तो, अनुमान मान्नेमें प्रयास करते,-अनुमानको तपास्ते-अन्यथा नहीं-विलाप मात्र हे. अतएव इस विषय वा इस जेसे अन्य [ईश्वर, मोक्षादि] विषय संबंधमें किसीकी कल्पना-शब्द प्रमाण उपर आधार विश्वास रखने सिवाय, अन्य प्रकारसे निश्चयरुप व्यवस्था नहीं मानसकते. परंतु मतमतांतर कल्पकके कथन-शब्द प्रमाणोमें मतभेद-अंतर हे, अतः उसपरभी विश्वास नहीं ठेरता. अब रहा अनुमान, उसकी यह गति. निदान उक्त हेतु-रीति-प्रकार-अवस्था होने-रहनेसे जो, वेदांतीभाई अनुमानका स्वीकार नहीं करते-नहीं चाहते हों तो, उनकी इच्छा.-उनका पक्ष सिद्ध न होगा. तथापि समीक्षकके कथनका बाधक नहीं होता अर्थात् इस (अत्यंत निवृत्ति नहीं

जो यह कहोके 'निर्धार करने अयोग्य कुछ हे' तो, आपका 'निवृत्ति अधिष्ठानरुप सिद्धांतभी, अनिर्णीत रहा.

जो यह कहोगेके "निर्णितरुप हे अर्थात् सद्विलक्षण भावरुप वा भावाभाव सदासद्विलक्षण–अनिर्वचनीय भावरुप–मिथ्या हे" तोभी इस कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरुप नहीं होसक्ती; क्योंके अधिष्ठान और यह विलक्षण हें. अतः अधिष्ठानरुप तो बने नहीं और अन्य देशमें सिमना मानके शेष अधिष्ठान स्वस्वरुपवाला रहा. और जो उक्त प्रातिभासिक कुलक्षणी वस्तुकी निवृत्ति. पारमार्थिक अधिष्ठान स्वरुप हो तो, अधिष्ठानके शेष स्वरुपमें यह कुलक्षण होंगे.–और मिथ्या ठरेगा तथा पुनः उत्पन्न होगी तथा भाव अभाव विलक्षण कहके भावरुप कहना, व्याघात और असंभव दोषमें वेष्ठित करता हे.

जो यह कहो के "अधिष्ठानसे भिन्न अभावरुप वा शून्यरुप हो गइ, यही निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप हे." तो, "कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानस्वरुप" इस वाक्यका प्रयोजन सिद्ध नहीं हुवा; किंतु ब्रह्मदेशसे भिन्न, कहींभी रही वा न-

---

होती) विषयमें वेदांत विरोधी पक्षमें अन्य पुरावेभी हें. यथा अत्यंत निवृत्ति कत्थक कोन होगा? जो कहोकि 'होगा' तो निवृत्ति पक्षका अभाव. जो कहो कि 'नहीं' तो उसकी सिद्धिका अभाव; इत्यादि. निदान वेदांतीभाई अनुमान मानें वा न मानें–उभयथा वेदांतीके इष्टकी सिद्धि नहीं होती. और उनके असिद्ध शब्द प्रमाण वास्ते पूर्व प्रसंग याद कीजिये. जब अत्यंत निवृत्तिही सिद्ध नहीं होती, तो 'कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरूप हे' इस वातकी कल्पनाभी नहीं होसकती. तथा उसके खंडन मंडनमें प्रयत्न करना व्यर्थ जैसा हे.

हीं रही–परंतु अधिष्ठान स्वरुप नहीं हुइ, यह सिद्ध हुवा. तव उक्त भावरुप वस्तु कहां गइ. ? भावका अभाव नहीं होता. जो भावरुपका अभावरुप मानोगे तो, अभावकाभी भावरुप होगा. अर्थात् माया अभाव ओर निवृत्ति संस्कार रहनेसे–(रज्जु सर्प बाध–संस्कारवत्) पुनः अभावसे उत्पन्न होगी. ओर उसका अभावभी अधिष्ठानमें रहनेसे द्वैत बना रहेगा. जो कहोके अभाव पदार्थ नहीं, किंतु वोह शून्य हो गइ. यहभी कहना असंगत हे.–भावरुपका शून्य रुप कहना, ब्रह्मकोभी शून्य सिद्ध करदेगा.

जो यह कहो के "जेसी वोह अनिर्वचनीयथी वेसी ही निवृत्तिभी मानो" तो, यह परिणाम निकलेगा के कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरुप नहीं किंतु मिथ्या हे–अनिर्वचनीय हे. अर्थात् जेसेंके अनादि मायाको सृष्टि नियम विरुद्ध सांत मानते हो सो, मिथ्या वात हे. एसेही अनिर्वचनीयकी निवृत्ति अनिर्वचनीयरुप मानना मिथ्या हे; क्योंके अस्तित्व ओर निवृत्तिका स्वरूप विलक्षण होता हे. ओर आपके मंतव्यमें तो, निवृत्ति अनिवृत्तिसे विलक्षण निवृत्ति, एसा सिद्ध होता हे.–अर्थात् माया स्वरूपवत्‌ही निवृत्ति माननेसे यह सिद्ध हुवा के स्वरुपसे वेसेही वनी रहती हे. ओर इधर उधर होने वा मायामें लय होनेसे चेतन भाग पुनः अन्य अंतःकरणयुक्त हुवा मलिन रहता हे. सर्वथा मुक्त नहीं होता, वेसेही मायाकी निवृत्ति होगी. ओर जो एसा अर्थ करोगे के "अनिर्वचनीय अभाव वा शून्य रहजाता हे, भावरुप अनिर्वचनीय माया नहीं रहती" तो, पुनः यही कहना पडेगाके, अनिर्वचनीय भावरुप जेसेकि अभाव वा शून्यरूप होता हे, वेसेही अनिर्वचनीय अभाव वा शून्यरूपसे अनि

वचनीय भावरूप पुनः उत्पन्न होगी. इतने लेखसे यह सिद्ध हुवा के वेदांतकी रीतिसेभी सकार्य अध्यस्त मायाकी निवृत्ति अधिष्ठान-ब्रह्म चेतन स्वरुप नहीं; ओर मायाकी स्वरूपसे निवृत्ति नहीं होती. किंतु, अनादि अनंत हे. अब ब्रह्मसे विलक्षण मानना यह जुदी वात हे, परंतु अनादि सांत नहीं ओर ज्ञान निवर्तनीय नहीं.

जो यह कहोके "अनिर्वचनीय मिथ्याकी निवृत्तिही क्या ?" जो निवृत्तिही नहीं हो तो मिथ्या, कथनभी क्या ? ब्रह्मज्ञानसे क्या फल होगा ? जेसे अन्य पदार्थको जानलेते हें वेसे, वोहभी एक हे उसके ज्ञान मात्रसे मुक्त न हूये; किंतु पुनर्जन्माभावके अन्य उपायभी शोधने रहे. जो के वेदांत पक्षके विरुद्ध हें.

जो यह कहो कि "ब्रह्मादि अनादि षड पदार्थोंमेंसे जीवेश्वरके स्वरुप [ब्रह्म]की निवृत्ति नहीं होती, किंतु अनादि जीवत्व, ईश्वरत्व भावकी निवृत्ति होती हे. तद्वत् माया ओर उसके भेद तथा संबंध भावकी सत्यरुपतासे निवृत्ति होतीहे. स्वरुपसे नहीं." सो वातभी नहीं बनती. क्योंकि ब्रह्मको-अपनेको जीवत्व ईश्वरत्व जडत्वादि भाव होना असंभव; क्योंकि ज्ञान स्वरुप हे, अवस्था-परिणाम रहित शुद्ध हे. ओर तद्भिन्न अंतःकरण वगेरेमें जीवत्वादिभाव झूठ-नाकाम हे, उसकी निवृत्तिही क्या. उसकी निवृत्तिसे उस जडको लाभभी नहीं. इसी प्रकार जबाकि स्वरूपसे निवृत्ति नहीं तो, मायादि परिणामी स्वभाव, पदार्थोंका नाना परिणाम होता रहेगा. अधिष्ठान स्वरुप निवृत्ति, इस पक्षका बाध रहेगा.

निवृत्ति प्रसंग विषे वेदांतियोंके अनेक मत ओर परस्परके दूषण भूषण परस्पर जनातेहें-सदोष ओर निरर्थक जा-

नके तथा शोधक करके उक्त लेखांतरगत आजानेसे विस्तार नहीं करते. किंतु वक्ष्यमाण प्रारब्ध प्रसंगसे निवृत्तिका सिद्धांत कल्पनामात्र है, यह स्वयं सिद्ध होजायगा.

शेष-दर्शन-२२.

(अविद्या लेश, प्रारब्ध, विदेह मोक्ष)

जो अद्वैतवादी (वेदांतीभाइ) एसा कहे कि " अधिष्ठान ज्ञानसे कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरूप मत हो परंतु निवृत्ति तो होती हे. अर्थात् ब्रह्म [अधिष्ठान] के ज्ञानसे उस [अज्ञान-माया] के कार्य [प्रारब्ध तद्रचित शरीरादि.] सहित अध्यस्त मायाकी निवृत्ति होती हे. " सो कथनभी समीचीन नहीं हे; क्योंके ' जिस कालमें ब्रह्म ज्ञान हुवा उसी ज्ञानकाल (समकाल) विषे अज्ञान निवृत्त हुवा हे ' एसा मानना पडेगा. अज्ञान निवृत्त हुये विना, अधिष्ठानका ज्ञान हुवा, ' यह वात नहीं मानी जाती (वेदांत पक्षको यह वात संमत हे). जब यूं हे तो, वेदांत मतकी रीति अनुसारही.-जेसेके, ज्ञान होतेही, ज्ञानीके संचित वा क्रियमाण नष्ट होजाते हें (किंवा, एक पक्षकारकी रीतिसे " अवश्यमेव भोक्तव्यं " वाक्यको मानके उक्त ज्ञानीके संचित क्रियमाणका फल अन्य[1] सज्जन भक्त ओर पापियोंको मिलना मानलेतेहैं) वेसेही, ज्ञान होतेही ज्ञानीके प्रारब्ध ओर तिसके कार्य शरीरकाभी नाश-अभाव-निवृत्तिभी होनी चाहिये. कारणके वोहभी अज्ञान-माया का रचितहे. किंवा, मूल अज्ञानके आवरण अंशका जेसे नाश हुवा वेसे-

[1] कर्ता अन्य ओर भोक्ता अन्य, यहमत सर्वथा अयुक्त हे. यहांतो पाठकगणोंको विकल्प नहीं उठे, इस वास्ते सहेज जनायाहे.

ही, विक्षेपांश वा शक्ति मात्रंकाभी नाश होना चाहिये. क्योंके मूलाज्ञानका नाश होनेसे उसके अंश वा कार्य रहना असंभव हे. परंतु ब्रह्मज्ञानी—याज्ञवल्क्य, महाराज रामचंद्र, उद्दालक, राजा जनक, अष्टावक्र, श्री शंकराचार्यादिके[1] शरीर ओर विक्षेप ज्ञान पश्चात्भी रहेहें, उन्होंने अन्योंको उपदेशभी किया हे, यहबात जगत् प्रसिद्ध हे. एसेही अन्य जीव ब्रह्म एकताके वक्ता ब्रह्मनिष्ठोंकी व्यवस्था प्रसिद्ध हे. ओर वर्त्तमानमें प्रत्यक्ष देखते हो. इस पुरावेसे संशय रहित प्रत्यक्ष, यह सिद्ध होजाता हे कि, क्या तो—अज्ञान—माया—जिसको अध्यस्त—मिथ्या—वा ज्ञान बाध्य मानतेहो, उसका कार्य प्रारब्ध ओर तद्जन्य शरीर नहीं होगा; किंतु इनका निमितोपादान कोइ अन्य (अनादि परमाणु वा अन्य कोइ) होगा. अथवा तो—ब्रह्ममें वा ब्रह्म साथ उसका उपादान मिथ्या नहीं; किंतु सत्य व्याप्य हे. अथवा तो—ब्रह्मज्ञानसे उस (माया—अज्ञान—उसके कार्य—प्रारब्ध, शरिर) की निवृत्ति नहीं होती होगी.—किंतु माया प्रकृति के नियम वा जीवके कर्मानुसार उसका नाश (संयोग वियोग जन्यशरिर आकृतिका अभाव) होता होगा. यह तीनों वा इनमेंसे कोई सिद्ध—विकल्प, आपके मतके विरोधी हें.

जो, ज्ञानी, प्रारब्ध ओर तद्जन्य शरीरको नहीं देखता वा, उसके दुःख सुखादि नहीं मानता [जेसेके कितनेक साधुको कोइ खुलावे तो खावे, वस्त्र उढावे तो ओढे, अन्यथा इच्छा[2] नहीं होती. इत्यादि] वा, मिथ्या

---

[1] शंकराचार्यमहाराजजीका शरीर कर्म करके अर्थात् कापाली लोकोंने उनको विष दिया, तिस करके भगंदर नामारोगोत्पन्न होके नाश हुवा (देखो, शंकर दिग्विजय). [2] इच्छा विना खानपान निद्रा, मलत्यागादि नहीं होसकते.

मानता है वा, स्वप्न समान देखता है; इत्यादि रीति स्व संप्रदायके निर्वाह वा आचार्योंके लेख सिद्ध करने वास्ते मानोगे वा मानते होगे वा कहोगे; तो यह रीति वा मंतव्य वा कथन एसा है कि "जेसे कोइ खावे ओर पाखाना पेशाब न करे; किंवा न खावे ओर मोटा ताजा हुवा जीवे.- अर्थात् यथार्थ नहीं. किंवा जेसे प्रथम यह नियम बाधें कि, जिस शरीरमें चोर होने वा झूट बोलनेका संशय हो, उसके हाथमें अग्नितप्त लोहका गोला देवें; जो, चोर वा झूटा होगा तो हाथ जलेगा, साहूकार वा सच्चा होगा तो नहीं जलेगा. तिस पीछे परीक्षा करें, जो कि तदन अयुक्त है, अर्थात् सच्चा हो वा झूटा हो वा चोर हो वा साहूकार हो, परंतु अग्नितप्त गोला लेनेपर (किसी लाग दवा वा चालाकी विना) अग्नि दाहसे नहीं बच सकेगा. क्योंके सृष्टि नियम विरुद्ध है-" (पारसी लोगोंका पूज्याग्निदेव जब तब उनके पूजारी वा सच्चे वा झूटेको स्पर्श करतेहीं जला देता है. इसी प्रकार उक्त गोलेकी व्यवस्था जान लेना चाहिये). इस रीतिसे जो अपनेको ब्रह्मज्ञानी वा अहंब्रह्म मानतेहें उनकोभी प्राणभाव पर्यंत विक्षेप और प्रारब्ध तथा क्रियमाण भोग प्रसिद्ध देखतेहें. ज्ञान होतेहि शरीरका त्याग वा अभाव नहीं होता; अतः उक्त विकल्प वा दृष्टि मठ मरदी वा शब्दमात्रसे मानना, विद्वान बुद्धिमान, पदार्थज्ञानी, सृष्टि नियम के परीक्षक ओर सज्जनोंका काम नहीं है, किंतु अज्ञानी विश्वासी, धूर्त, ढोंगी वा मिथ्याभिमानिओंका काम होगा. स्वप्न विषेभी, 'स्वप्नादिवत्' मिथ्यामंतव्यमात्रसे विक्षेपादिकी निवृत्तितो; नहींहोती अतः मिथ्यामाननाभी विश्वास वा कथनमात्रहे. ओर जो यह कहोकि "जिसकालमें ब्रह्मा-

कार वृत्ति होती है, उस समय शरीरका भान नहीं होता; अतः नहीं है वा निवृत्तिरूप है, वा मिथ्या वा स्वप्नवत् वा शून्य वा अभाव रूप है.'' यह कथन वा मंतव्यभी वेसा है कि, जेसे नट वा व्यभिचारिणी स्त्री वा गणित अभ्यासी वा नाटक दृष्टा, कलादि कालमें स्व शरीरका भान नहीं रखते वा शरीरको नहीं जानते—नहीं देखते वा उसका ज्ञान नहीं है; इस हेतुको लेंके कहेंके हमारा शरीर नहीं—अभाव वा मिथ्यारूप है. किंवा कोइ रोगी स्वप्नमें अपनेको निरोगी मानलेता है.—एसा आपका कथन है. निदान समाधि कालमें ज्योतिष्मती किंवा विश्वास रुप कोइ चेतन वा शून्यादि आकार वृत्ति रहनेसे शरीरका भान नहीं होता. वहांसे निवृत्त हुये वही शरीर ओर भोग. जेसाके सुषुप्तिमें रोगी, निरोगी; ओर जागे तब वेसाका वेसा. निदान इस दृष्टांतसे निवृत्ति होगइ, एसा सिद्ध नहीं होता.

जो यह कहोके "ज्ञान होतेही यदि शरीरका अभाव हो, तो संप्रदायकाही अभाव होगा. किंतु किसीका कोइ उपदेशक नहीं मिलनेसे ज्ञान मार्गका विच्छेद होगा. इस लिये ज्ञान पश्चातभी शरीर रहता है.'' यह कथनभी बालगालीवत् है—अर्थात् यदि यह वात सत्य है के, 'अधिष्ठान ज्ञानसे अध्यस्तकी निवृत्ति हो' तो, शरीरादिक नहीं होने चाहियें ओर जो आप ज्ञान संप्रदाय रहनेकी युक्ति देते हो, सोतो ज्ञानीकी दृष्टिमें, कोइ संप्रदाय वा उपदेश योग्य, है ही नहीं; तब उक्त विकल्प केसे होगा?—नहीं बनता; उलटा एसा देखते हैं के, ज्ञान पश्चातभी जनकादि विशेष प्रवृत्तिवाले हुये हैं. इसलिये प्रारब्ध ओर तद्जन्य कार्य शरीरादि माया रचित वा ज्ञान निवर्त्तनीय

मिथ्या-नहीं अथवा सत्य परमाणुके संयोग वियोग जन्य वा सत्य मायाके परिणाम विशेष हैं एसा मानना पडेगा.

प्रश्न होता हे के सबसे प्रथम, अधिष्ठानके ज्ञानका पानेवाला कोन हुवा? जो यह कहोके ईश्वर हे; तब तो, अधिष्ठान [चेतन] के ज्ञानवाली-अहं ब्रह्मरूपसे स्वरूपका ज्ञाता जो वेदांतियोंका नित्य मुक्त ईश्वर, उसको जगत् ओर माया नहीं भासनी चाहिये; ओर जीवोंके कर्मानुसार व्यवस्था कर्त्ता अभिन्न निमित्तोपादान नहीं होना चाहिये; परंतु मानते तो हो. तथाहि उसका उपदेश वाक्य प्रमाण हे-वोह सर्वज्ञ हे-इत्यादि कथनकी असमीचीनता उपर कह आये हैं; अंतः ईश्वर विषे सो कल्पना अघटित हे.

जो आद्य उपदेशक किसी मनुष्य (वामदेवादि) को मानो तो, ज्ञान होतेही उसके शरीरका बाध होनेसे उपदेश नहीं हुवा होगा, एसा मानना पडेगा.

जो अनादिसे परमपरा एसेही होता आना, ब्रह्म ज्ञान पीछे शरीर रहना ओर उपदेश होना मानो तो, इसी प्रकार भविष्यमें अनंतकाल तक माननेसे माया-अवीद्याका अभाव माननेका स्वयं निषेध होगया.

जो यह कहोकि "जिस अंतःकरण-जीवको ज्ञान हुवा उसके उपादान ओर तत्कार्य प्रारंध ओर शरीरका अभाव होता हे; अन्यका नहीं" तो, आपके मतमें अनेक दोष आवेंगे.-संप्रदायका उछेद होना चाहियें. मायाको स्व-सिद्धांत विरूद्ध सावयव मान्ना पडेगा. सावयवसे विलक्षण नहीं ठेरेगी; क्योंके उसका एक अंश नाश हुवा अन्य नहीं. तथा उसी अधिष्ठानांश देशमें अन्य अंतःकरण आनेसे वेसेकी वेसी व्यवस्था रही. ओर प्रारब्ध-

जन्य शरीरका ज्ञान पीछे नाश तो नहीं देखते; अतः उक्त मंतव्य कथन मात्र है.

जो यह कहो के "ज्ञान हुये पीछेभी–विदेह होने पश्चात् उसके शरीर और प्राण तथा अंतःकरणका समष्टि ईश्वरमें लय होताहै और ईश्वरके लय होने साथ उसकाभी लय वा विदेह मुक्त होताहै" इस मंतव्य वा कथनकीभी कोइ साक्षी नहीं मिलती. औरभी. एसा मान्नेसे "अधिष्ठान ज्ञानसे कल्पितकी निवृत्ति" यह वेदांतका सिद्धांत साग होगा. तथाही आपकी रीतिसे तो, अबभी मायाका कार्य अविद्या, अंतःकर्णादि, माया पदके वाच्य–विशिष्ट चेतनसे भिन्न नहीं है; अतः उक्त कथन असंगत है.

जो ब्रह्मज्ञानसे अज्ञान के एकअंशकी निवृत्ति और विक्षेपांशकी अनिवृत्ति है; एसा मानोंगे तो, जेसेके स्वप्नगत् स्वप्नसिंह और स्वशरीर यह सर्व (स्वप्न, स्वप्नशरीर, स्वप्न-सिंह.) नाश हुयेभी, किंचितांश जाग्रतकालके शरीरको, भीतसे टकराता वा कंपाता है; किंवा, स्वप्नगत् स्वभोक्ता शरीर और भोग्य स्त्री तथा स्वप्नके नाश हुयेभी, उस अविद्याका किंचितांश जाग्रतरुप शरीरसे वीर्यपात कराता है. वेसेही विक्षेपांश इस शरीरके त्याग पीछेभी, अन्य शरीरोंके साथ संबध करावेगां; क्योंके स्वप्नसृष्टि "दृष्टि मात्र सृष्टिथी" उसी अविद्याके एक अंशने, पुनः जाग्रतनामासृष्टि [जिस शरीरसे वीर्यपात हुवा सो] पुनः रची. इत्यादि प्रकारसे अत्यंत निवृत्तिका अभाव होगा.

जेसे अज्ञानका कार्य अध्यास मान्ते हो, वेसे प्रारब्ध और शरीर सिद्ध नहीं होता; क्योंके रज्जु सर्प दर्शनकालमे अध्यास कथन बने नहीं, किंतु सर्प निवृत्तिकाल पीछेही कह-

ना बनता है; यह बात सर्व भ्रमवादियोंको मान्य है. तद्वत् देहादि दर्शनकालमें देहादिको अध्यास-भ्रमरुप कहना नहीं बनता ओर निवृत्ति पश्चात् कहने वाला नहीं है. इससे क्या आया? ब्रह्मज्ञान तो, हुवा परंतु, प्रारब्ध ओर शरीरका अभाव नहीं हुवा; अतएव, ब्रह्मज्ञान करके जो मूलाज्ञान, बाध होगया है; उसके कार्य, प्रारब्ध वा शरीर नहीं हैं. जो यह उसके कार्य हों तो, इस शरीर के विद्यमान-भासमान होते हुये-"यह मिथ्या अध्यासरुप है" एसा कथन असंभव वा सदोष वा संशयरुप है.-यह सिद्ध होगा-ओर जब निवृत्त होजायगा [मरजायगा] तिस पीछे साक्षी नहीं. यद्यपि पूर्व जन्मवत् उत्तर जन्मादिका अनुमान करते हैं, वेसे अनूमान होगा, तथापि उक्त दर्शनानुसार अत्यंत निवृत्तिकी साक्षीका अभाव है. श्री शंकरमहाराज, सनत्कुमार, रामादि ज्ञानीका, ज्ञान पश्चात्भी अन्य जन्म होना वेदांती भाइभी मानते हैं निदान उक्त उभय प्रकारसे प्रारब्ध ओर शरीर अज्ञानके कोइ अंशकेभी कार्य नहीं ठरते.

जो यह कहोके "जेसे घटमेंसे कपूर निकालें तोभी कपूरका गंध शेष रहती है. किंवा जेसेके किसीके मारने वास्ते तीर फेंके सो, उसको मारकेभी वेग बलसे आगे जाता है; किंवा कुंभारका चक्र घट होजाने पीछेभी पूर्व वेग बलसे थोडी देर चलता है; किंवा तालावकी पाल उपर जो फलित अंब वृक्ष उसका मूल उखाडे पीछेभी थोडे दिन फल शाखा वेसेही ज्ञात होते हैं. किंवा सर्प भ्रांतिकालमें जो चोट लगी उसका दरद भ्रांति निवृत्ति पीछेभी रहता है.-इत्यादि दृष्टांतो समान अविद्या लेश [प्रारब्ध रचित शरीर] रहेता है." तो इससे यह परि-

णाम निकला के, जेसे भूमी ज्ञानसेभी मृगजल भासना निवृत्त नहीं होता, वेसे शरीरभी भासता हे; उसके अधिष्ठान ब्रह्म वा अंतःकरण उपहित वा कूटस्थ चेतनके ज्ञानसे उसकी निवृत्ति नहीं होती. परंतु एसे विरोधी भाषण-उपदेश,-बालकहानी समाने सिद्धांतपर अफसोस आता हे, अज्ञान तो निवृत्त हो ओर उसका कार्य किंचित शेष रहे ! वाहरे भारत खंडकी अविद्या ओर-न्याय नहीं किंतु, अन्याय ! जब कपूरका अभाव कहो तो गंध कहांसे. जब तीर वा बलका अभाव-तो, वेग केसे शेष रहेगा. घटका उपादान चक्र नहीं-तो, घटोत्पत्ति पीछे चक्र अभावि होनेका नियम क्यों ? जब वृक्षके मूल-परमाणु समूह-का नाश हो (जोके शाखा फल फूलमें हे) तो फेर वृक्षही कहां? फल फूलतो स्वप्नमेंभी नहीं. रज्जु अज्ञान वा सर्पका उपादेय चोट वा दरद वा कंपन होता तो नाश होते; अन्यथा केसे नाश हो -इत्यादि दोषोंको लेकर अविद्या लेश मानना व्याघात दोष हेः

ओर इसी वास्ते यह सिद्ध होता हे के, जब अध्यस्त माया-अज्ञान-अविद्याका कार्य (प्रारब्ध-शरीरादि) ब्रह्मज्ञानसे नहीं जाते तो, माया केसे जायगी ? अर्थात् ब्रह्ममें वोह अध्यस्त-मिथ्या-नहीं, किंतु [कर्मसेभी अनिवृत्तनीय] सतरूप हे.

जो कहोके " जेसे अग्नि संयोगसे कारणरूप तंतुका प्रथम ओर कार्यरूप पटका पीछे नाश होता हे; वेसे कारणरूप अविद्याका पहिले (ब्रह्मज्ञान होतेही) ओर कार्यरूप प्रारब्ध-शरीरादिका पीछे (ज्ञानके पश्चात्) नाश होता हे," यह न्याय वा वेदांतियोंका कथन सर्वथा पक्ष वा अन्यायरूप

किंवा भूलभरा हुवा हे; क्योंके अग्नि ओर तंतुका संयोग जो हे सोही, पट ओर अग्निका संयोग हे. पटका उपादान तंतु ओर पटसाथकेसाथ नाश होते जाते हें; जो तंतुकी समाप्ति सोही पटकी समाप्ति हे. इस प्रकार अधिष्ठान ज्ञानके अत्यंत समीप-उत्तर क्षणमें वाँ ज्ञान होतेही वा अज्ञानाभाव होतेही माया-अविद्या-अज्ञानके साथ शरीर गलना चाहिये. परंतु एसा तो नहीं देख पडता.

तथाही वेदांत संप्रदायसे विद्या-ब्रह्मज्ञान-भी माया-का कार्य हे, सो कार्य स्वोपादान मायाके नाशमें असमर्थ हे. अतः ज्ञानसे सकार्य अज्ञानका नाश मानना समीचीन नहीं. जो यह कहोके " जेसे पट ओर अग्निका संयोग उन उभयका कार्य हे, सो संयोग, स्वोपादान पटका नाशक हे; इसी प्रकार माया-अज्ञान-का कार्य जो वृत्ति ज्ञान सो स्वो-पादान अज्ञानका नाशक हे. किंवा जेसे हस्त स्वोपादान श-रीरका नाश [अपघात] करके आपभी नाश होता हे. इसी प्रकार कार्यरुप वृत्ति करके माया ओर वृत्तिका नाश होजा-ता हे, " सोभी समीचीन नहीं. क्योंके पटके नाशमें पट सं-योग मात्र हेतु नहीं, किंतु अग्निका संयोग ओर अग्नि-उभय हेतु हें. इस रीतिसे ब्रह्म ओर उसके ज्ञानका संयोग-यह उभय वृत्ति अज्ञान-मायाके नाशके हेतु मानने पडेंगे. परंतु अग्निसे जब पट संयोग होगा, तबही पटका बाध होगा, वेसे ब्रह्म, माया-अज्ञानमें कहना नहीं बनता; क्योंके ब्रह्म तो, मायाका साधक हे. जो साधक न हो किंतु बाधक हो तो, उसके अध्यस्त, व्याप्यत्व ओर स्वरुपकी असिद्धि होगी. निदान ज्ञानके उपादानका एक अंश [ब्रह्म] तो, मायाका बाधक नहीं. अब रही माया-वृत्ति, सो जेसें अकेले पटसे

दिका दाह नहीं होता वेसे, माया वा तद्कार्य ज्ञानमे माया-भाविद्याका दाह नहीं होगा. इस रीतिसे स्वकारणके नाश करनेमें ब्रह्म ज्ञान हेतु नहीं.

जो यह कहोकि जेसे कोई दो पुरुष दोधारी बरछी. परस्पर पेटमें रखके बल करके परस्परमें मरजाते हें वेसे, वृत्तिज्ञान ओर अज्ञानका नाश समझलेना चाहिये. सोभी नहीं बनता; क्योंकि जो वृत्तिज्ञानने अज्ञानका नाश किया तबतो, वृत्तिज्ञानके नाश होनेकी सामग्री नहीं. ओर जो परस्परके नाशक हुये तो बरछी समान, साधक ब्रह्म ओर उभयसे भिन्न तीसरी सामग्री चाहिये. किंवा परस्परकी मल्लकुश्ती के समान नाश होतेहों तो, ब्रह्मज्ञानी महाराज जड मुरदे समान होजावें; किंतु शरीर रहित होजावें-ज्ञान होते अज्ञान नाश हो कि, तुरत अज्ञानके कार्य शरीर वृत्ति उभय प्रतीतिके विषय नहीं-एसे लुप्त-नाश पर्याय होजावें, तो जानें कि परस्पर नाशके हेतु हुये, परंतु जो एसी असंभव वार्ता होना मानलेवें तोभी, अन्य प्रपंच दृष्टि गोचर हे; अतः सो अज्ञानका कार्य न कहा जायगा. उपदेशक आचार्य, अज्ञानी-अमुक्त मानलेने होंगें. उपदेशक, प्रमाणका अभाव मानना पडेगा.

जो कहो के " ब्रह्मज्ञान वा वृत्तिज्ञान करके उसके उपादान अविद्या-माया-ओर उसके कार्य प्रारब्ध-शरीर-प्रपंचका नाश तो नहीं होता, परंतु बाधितानुवृत्ति करके (जेसेके उसर भूमिके ज्ञान हुयेभी मृगजल देखपडता हे वेसे) विक्षेप-शरीरादिक देख पडते हें.-अर्थात् पूर्व अज्ञानकालवत् सत्यरुपसे प्रतीत नहीं होते. " तो, यह परिणाम निकलेगा के "विशेष ज्ञानसे, "चेतन एक व्यापक अखंड ब्रह्म हे," एसा ध्यानमें आया. ओर माया तथा उसके कार्य शरीरादि, जड

दुःखरुप ओर परिणामी तथा ब्रह्मसे विलक्षण हैं, सत्य नहीं, एसा मानलिया; परंतु उसकी अत्यंत निवृत्ति हुइ एसा, अथवा जिसने माना सो मायाके बंधन (जन्म मरण) से राहित हुवा सो, सिद्ध न हुवा." जब यूं हे तो,—अनावृत्ति, जीव ब्रह्मकी एकता, जन्म मरण त्याग, ओर क्षीयंते चास्य कर्माणी, इत्यादि—वेदांत पक्ष सिद्ध नहीं हुवा ओर पूर्ववत् प्रवाहमें रहेगा. हां, इतना अंतर हुवा के पहिले तो, ब्रह्म ओर माया तथा स्वस्वरुपको निश्चय नहीं कियाथा ओर अब करलिया; इससे इतर फल नहीं. परंतु स्वस्वरूप निश्चयभी (जेसा के वेदांती लोक मानते हैं) यथार्थ नहीं हे; यह उपर लिखआये हें. अतः विश्वासरुप वा कथन मात्र—अयथार्थ निश्चय हुवा, सो अनर्थका हेतु हे, श्रेयका नहीं. अतएव त्याज्य होनेसे सिद्धांतकी हानी हुइ.

ओर मृगजल देख पडनेके कारण तो केवल अज्ञान नहीं, किंतु सूर्यकी रोशनीका उलट फेर ओर रजकण विशेष तथा दूरतादि कारण हैं, अतः उनकी निवृत्ति तक वेसाहि देख पडेगा. केवल भूमिज्ञानसे जलकी मान्यताका अभाव हुवा, कुछ दृष्ट स्वरुपका नहीं. इसी प्रकार ब्रह्म हो ओर सत्य हो तथा माया ओर उसके कार्य शरीरादि मिथ्या हों तो, ब्रह्मज्ञान पिछे ब्रह्मचेतनकी सत्यता ओर सकार्य मायाकी ब्रह्मसे विलक्षणता का निश्चय हुवा; परंतु उसके स्वरूप ओर विक्षेप दुःख सुखादिकी निवृत्ति नहीं हुइ. [यथा दग्धपटमें उसका मूलतो हे. सर्वथा अभाव नहीं] अतः उक्त दृष्टांतसेभी ब्रह्मज्ञान करके मिथ्या शरीर, ओर प्रारब्ध उसके कारण माया—अविद्याकी निवृत्ति नहीं. ओर अविद्या लेश नहीं, यह सिद्ध होजायगा.

इसी प्रकारको लेके "ज्ञानवानके प्राणका उत्क्रमण होगा अर्थात् ब्रह्मज्ञानीको विदेह मुक्ति होगी-पुनर्जन्म न होगा." उस वेदांत सिद्धांतका उच्छेद होसकता हे.-केवल विश्वास मात्र मंतव्य ठेरता हे; क्योंके उसकी साक्षीभी नहीं मिलती, अद्यापि कीसीनें चिठी,-कागज़भी नहीं दिये. ओर प्रेतवत् आकेभी नहीं कहा के में-मुक्त हुवा. जो [गरुडपुराणादि मंतव्यवत्] पीछे आके कहेना मानलो तो, ब्रह्मस्वरुप न हुवा, एसा सिद्ध होजायगा. किंवा प्रेत हुवा, ओर फेर पुनर्जन्म लेगा, एसा सिद्ध होगा. ओर जो विदेह मोक्षभी मिथ्या मानते होतो, ब्रह्मज्ञानका उपदेश ओर श्रवण मननादिभी व्यर्थ हें.

तथाहि विदेहमोक्ष (मोक्ष होने पीछे जन्म नहीं होता-प्राणोंका उत्क्रमण नहीं होता-पुनरावृत्ति नहीं होती-जीव संसारको प्राप्त नहीं होता) मानाही असंगत-अयुक्त हे; क्योंकि आपके सिद्धांतमें 'जीव अनादि हे-नवीन उत्पन्न होना नहीं मानते-सादि नहीं कहते हो; ओर इधर मोक्षसे अनावृत्तिभी, मानते हो.' अर्थात् इस सिद्धांतसे सृष्टिका उच्छेद होजाना चाहिये. क्योंकि सृष्टि रचना के निमित्त जो जीव हें सो [तमाम जीव, जब तब मोक्षको प्राप्त होके सृष्टिके उपादान (माया- प्रवृत्ति-पंचतत्त्व) से असंबंधी-असंसर्गी-संबंधके अयोग्य-(मुक्त होगये-वा) होंगे. तब निमित्तके अभावसे सृष्टिकी रचना नहीं होगी. जब यूं होतो, सृष्टि नियम विरुद्ध आपके मिथ्या पंचतत्त्वोंकीभी निरर्थकता मान्नी पडेगी; जोकि असंभव हे. कारणकि, ब्रह्मांडमें कोइभी वस्तु निष्फल नहीं मानसकते-नहीं सिद्ध होती; जो मानें तो, उसका होनाही व्यर्थ होगा. जीव

ओर मोक्षभी व्यर्थ मान्ने पडेंगे.-आपका तमाम पक्षभी निष्फल मानसकेंगे. एतद्दृष्टि "सर्व सफल हें" एसा सिद्ध होता हे-मान्नना पडेता हे. सार यह हे कि, एकजीव (वामदेवादि) के ज्ञानसे तो, माया-तत्वोंकी निवृत्ति हुई नहीं, केवल जीवत्व [कर्तृत्व, भोक्तृत्व, जन्म मरणादि] की निवृत्ति हुइ. जो तमाम् पंचतत्वादि-मायाकी निवृत्ति हुई होती तो, खंडन मंडन कर्त्ताकीही सिद्धि-अनुभव-प्रतीति नहीं होती. अतः मुक्त वामदेवादि समान, सर्व जीवोंमें जीवत्वकाही अभाव होगा.-मायाके कार्य-पंचतत्व,[ईश्वरभी] शेष रहेंगें. सो वे नाना गुणदोष स्वभाववाले तत्व (तमाम जीवोंके मुक्त हुये पीछे) किसे काममें आवेगें[१]-निष्फल रहें गे. परंतु यह वात असंभव हे. अतएव उक्त 'निरर्थकाभाव' नियमके बलकरके जीवोंकी मोक्षसे पुनरावृत्ति मान्नी पडेगी. उसका प्रसिद्ध परिणाम यह निकलेगाकी, अनुत्क्रमण (अपुनरावृत्ति) का सिद्धांत-मंतव्य अयुक्त ओर झूट हे. किंतु अनावृत्ति (अपुनरावृत्ति) का उपदेश वा लोभ, मिथ्या कपट-वा अज्ञानता हे.

१ जिन मतोंमें जीवोंको अनादि मानके मुक्ति (मोक्ष हुये पीछे अनावृत्ति) मानी हे, उन सर्व मतोंको यह दोष ग्रस्ता हे. ओरभी जो मत-पक्ष जीवको सादि मानके अनंत उन्नति अथवा सादि जीवकी मोक्षसे अनावृत्ति मानते हें, किंवा जीवको अनादि मानके अनंत उन्नति मानते हें, उन सर्व मतको दूषित करताहे. बुद्धिमानको चाहियेकि, जीवोंके उपादान ओर पंचतत्व-सृष्टिके उपादान-उपयोग होने योग्य जो, वर्त्तमान समान अच्छे बुरे नाना गुण कर्म स्वभाव हें उनके उपयोगपर दृष्टि डालके समझ लेवे. अप्रासंगिक होनेसे विस्तार नहीं लिखा.

इस रीतिसे कल्पित् (मिथ्या–माया–अविद्या) की निवृत्ति अधिष्ठानरुप, अविद्या लेशवत् प्रारब्धभोग ओर विदेहमोक्ष–यह तीनों मंतव्य असंगत वा विश्वास वा अज्ञानमात्र हें, सयुक्त, समीचीन नहीं.

अजात–दर्शन–२३.

जो कहो के " ब्रह्ममें माया ओर उसका कार्य प्रपंच न हुवा न हे ओर न होगा. " न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो नच साधकः न मुमुक्षुर्नवैमुक्तः[१] " इत्यादि श्रुति हें; अतः अजातवाद हे. माया नामरुप होतो, विवर्तवाद ठेरे वा मायाका स्वरुप होतो, दृष्टिसृष्टिवाद वा सृष्टिदृष्टि वाद वा अवच्छेदाभासादि वाद ओर निवृत्तिकी सिद्धिमें प्रयास हो; परंतु माया ओर तत्कार्य कुछवस्तुही नहीं हे; इसलिये तुझ मतिमंद अज्ञ [समीक्षक] का उक्त तमाम कथन वा खंडन व्यर्थ हे. " यह मंतव्यभी बालकोंकी गाली समान, अभिप्राय शून्य हे. जेसे बालक परस्पर गाली देते हें ओर उन पदोंके रहस्यको नहीं जानते हुयेभी, लडते-रोते-मरते ओर दुखित देखते हें वेसे, अजातवादकाभी कथन हे. अर्थात् प्रत्यक्षको नहीं, ओर नहीं को हां, कहके फेर नहीं वास्ते उपदेश, तकरार, संप्रदाय ओर तिसका पक्ष, जीव-ब्रह्मकी एकताका आग्रह, वर्णाश्रम निर्वाह, प्राण रक्षार्थ याचना, मतमतांतरके दोष कथन, कर्मोपासनादि तथा बंध-

---

१ यह वाक्य [श्लोक] न वेदका हे ओर न ब्राह्मण उपनिषद ग्रंथका हे. किंतु, श्रीगौडपादाचार्य कृत हे. तोभी मनमुखी वा विश्वासी वा अशोधक वेदांती भाई इसे वेदकी श्रुति कहते हें. वेदांती भाइओंके वेदकी श्रुति हे.

मोक्ष आदिके झगडे!!! वाह अजातवाद! वाह! जो अजातवाद है तो ब्रह्मकी सिद्धि नहीं करसकते. कोन करेगा? स्वयंब्रह्मतो अवाच्य-तदेतर कोन कहे, ओर मानसकेगा. अजातवाद कथन तंतव्यहीं न होसकेगा.

अजातवाद है, एसे कथनसेंही जातवाद सिद्ध होता है. वक्ता श्रोता विद्यमान होनेसें. जो यह कहो कें "तुम देखतेहो वा अज्ञ देखते हैं के वक्ता ओर सृष्टि है; परंतु हम नहीं देखते वा ज्ञानवान नहीं देखते." इसका उत्तर आपका वाक्यही बस है. यद्यपि तद्यपि घटपटादि शब्द बहुछार [वर्षा-]की आवश्यकता नहीं. व्याघात वाक्य उन्मत्तोंके सिवाय कोन कहे? ओर उसमें तकरीरभी कोन करे? हम कपोल कल्पित निकम्मे-असत् विषयमें व्यर्थकाल नहीं गुमाना चाहते.

पर अपरिहार [परसेस्वपक्ष बचाने] के लिये आपकी अजातवाद कोटीमे तो यह उत्तम शैली माननीय है कि, "यदि स्वपर पक्षनिर्णय वा परीक्षा वास्ते किसी अन्यको मध्यस्थ ठेरावें तबतो, हम स्वयं उसीसे पूछ लेवेंगे वा निर्णय कर लेवेंगे.-हमारे ग्रंथरुप मध्यस्थने जो कहा वा शिक्षकरूप, हमारे मध्यस्थने जो बताया अथवा हमारे मनमुखी प्रमाण युक्ति नामा मध्यस्थने जो हमारे मगज [मन] में उतारा सोही ठीक है. उसपर हमारा विश्वास है. तुम्हारा सुनना वा समझना ओर हमारा कहना वा सुनाना हम नहीं चाहते." तथापि इस उपरकी शैली वा उत्तर मात्रसे क्या? मनहीमें समझ रहे होगे,-संशय अशांतिकी दोडादोडके तमाशेमें लग रहे होगे, जिसकोकि दूर करने वास्ते प्रयास है. यूंतो सर्व शैलीसे उत्तम, बलनामा मध्यस्थहे.-जो चाहासो मनादिया.

फेर कालांतरमें संतानमें वोही संस्कार दृढरूप होके भासमान होगा, सत्य जानेंगे. (वाहरे नवीमोहम्मदजी–आपकी धर्म पोलीसी). आपभी उसे उपचार क्यों नहीं करते कि, जिससे ग्रंथ वा उपदेश करनेका श्रम न हो, अर्थात् बल संप बढाके एक मत होके मनमाना मनादो. कोई चूंभी न करे?

जो यह कहोकि "परमार्थ (ब्रह्म) दृष्टिमें माया ओर तत्कार्य अजात हैं–नहीं हैं,"–एसा मानो तो यूं क्यों न माना जाय कि, मायाकी दृष्टिसे ब्रह्म अजात (न था, न हे, न होगा) हे–नहीं हे? जो इष्टापत्ति कहो तो, ब्रह्मोपदेश ओर तत्प्राप्ति अर्थ साधन करनेमें प्रवृत्ति न संभव; परंतु इसके विरुद्ध उपदेश ओर कर्तव्य होता हे–करते कराते हो. अतः अजातवाद मानना बालकोंकि कथा समान हे.

तथाहि जिसकी (ब्रह्म वा मायाकी) दृष्टिसे अजात हे, सो घट, आकाशवत् जड हे, अज्ञ हे, अज्ञाता हे. इस लिये अजात? वा ज्ञाता तो हे परंतु वस्तु न होनेसे अजात? यह दो विकल्प हैं; प्रथम कल्पना मायामें संभव; न कि ब्रह्ममें. जो ब्रह्म विषे मानोगे तो. अधिष्ठान न होगा. ब्रह्म जिज्ञासा न बनेगी, स्वपक्ष त्याग होगा. ओर जो ज्ञाता–दृष्टा मानोगे तो, ज्ञेय–दृश्यकी सिद्धि होजायगी. वस्तु नहीं हे एसा हुये उसके अभाव ज्ञानेसे उसके अभावके प्रतियोगी [माया]की सिद्धि होजायगी. ओरभी पूर्वोक्त रीतिसे ब्रह्म विषे ज्ञातृत्व का अभाव हे; एतद्दृष्टि माया वा ब्रह्मका अजात कल्पक उनसे भिन्न मानना पडेगा. जब यूं होगा तो, ब्रह्मेतर दूसरा अजात कल्पक–दर्शक–निश्चयकारक माननेसे स्व सिद्धांतका त्याग होगा. किंवा जैनियोंके अनैकांतिक [स्याद्वाद]–सिद्धांत समान किसीकी दृष्टिसे 'हे' किसीकी दृष्टिसे 'नहीं हे'

किसी दृष्टिसे “ है नहीं है ” इत्यादि सदोष सिद्धांत मानना पडनेपरभी वस्तुतः अजात सिद्ध नहीं होगा; किंतु ब्रह्म वा माया-दोनों, वस्तुतः कुछ हैं. ‘ कुछभी किसी प्रकारकेभी नहीं हैं ’ एसा नहीं है. उन दोनोंमें कोइभी शुन्यरुप नहीं हैं. किसी देशकालमेंभी जो न हो-जो दृष्टश्रुत न हो उसके लिये अजातपद कथन ही संभव नहीं होता-अवसरप्रद नहीं.

अन्य मत-दर्शन-२४

विदितहो:-जेसेकि द्वैतपक्ष कई प्रकारके हैं:-यथा विशिष्टाद्वैत [न्याय-रामानुज-सांख्य-योग-आर्यसमाज वगेरे.], द्वैताद्वैत[1] (किरानी, कुरानी, ईरानी वगेरे], केवल द्वैत [जैन, मीमांसा वगेरे], शुद्ध द्वैत [परमाणुवादि वगेरे].

वेसे अद्वैत पक्षभी अनेक प्रकारके हैं. यथा बुद्धाद्वैत,[2] अभावाद्वैत, शुद्धाद्वैत[3] (हमःओ), सूफी अद्वैत[4] (हमःअजो) वगेरे. इन सर्वसे इतर केवलाद्वैत[5] [शंकरमत[6]]उत्तमहै. जो उसमेंसे मायाका सांतत्व ओर जीव ब्रह्मकी एकता-यह अंशानि-

1 द्वैतके दोपक्ष-हमः दरो (यह सर्व उसमें है), दरो हमः [सर्व उसमें है].-किंवा व्यापक व्याप्यवाद, दुसरा परिच्छिन-वाद. २ क्षणिकवाद, शून्यवाद, स्वभाववाद, दृष्टिसृष्टिवाद वगेरे. ३ यह सर्व ब्रह्म-ब्रह्मका विकार-वा इन सर्वका समूह ब्रह्म. ४ यह सर्व उस ईश्वरसे है. आद्यअंत ईश्वरही है. जगत अद्यिअंतमें नहीं. मृगतृष्णावत् है. वा ईश्वर कल्पित है-स्वप्नवत् सादिसांत है. वा अभावसे भावरुप ईश्वरने बनाइ है. ५पूर्ववत्-वगेरे. ६ उपनिषद्, अनुभवने योग्य ज्ञेय ब्रह्म पर है. उनका कोई पक्ष विशेष नहीं. द्वैत ओर अद्वैत दोनोंको अवसर देतेहैं.

कालदिया जावे ओर शेष भाग तत् संबंद्धरुपसे रखाजावे तो, एसा विलक्षण पक्ष हे कि. जिसके समान अद्यापि अन्य फिलोसोफी नहीं, ओर द्वैतवादियोंकाभी उसके साथ विरोध न हो. अद्वैतपक्षकी शाखा बहुत हें, उनमेंसे कितनीक उपर कही गई. उपरांत तदंतर कबीर[७] • आनंदभारती, मत्यभिज्ञ, नानक, थियोसोफी वगेरें हें.

यद्यपि विचारवान, सूक्ष्मदर्शीको पूर्वोक्त लेखसें सर्व पक्षोंकी असमीचीनता ज्ञात होने योग्य हे; अतः विशेष लिखना उचित नहीं; तथापि सेलभेल वाले केवल नाम मात्र जो अद्वैतवादी मत हें[८] उन पक्षोंको जनाना उचित जाना गया हे, अतः संक्षेपमें दरसाते हें.

(क) नवीन पुराणी.

[थियोसोफीकल सोसाईटी—गुप्त मत-गुप्त विद्या.]*

थियोसोफिस् मतने आर्यावर्त्तमें १९ वर्षसें जन्म पाया हे. किसी अंशमें-प्राचीन किसी अंशमें नवीन वेदांत, किसी अंशमें शुद्धाद्वैत, किसी अंशमें पुराण मत साथ मिलता हे— मिश्रण पक्ष हे. अद्यापि उनका लेख किसी विशेष पक्षपर नहीं जान पडता; इसलिये सक्रम नहीं लिख सकते. तोभी उसके प्रसिद्ध आद्य अंतके तत्व*—परिणाम संबंधित असमीचीनता—अयथार्थता संक्षेपसे जनाते हें:—

---

७ कबीरादिका अद्वैत, वेदांत जैसा हे. नाम मात्र वा शैलीमात्र अंतर हे. ८ क्योंकि सुफियोंके दो पक्ष हें उनमेंसे एक तो वेदांतपक्ष समान हे. दुसरा अभाववाद हे. कबीरादीका पूर्ववत्. इसलीये उनकी चर्चा नहीं लिखी. ९ वा उपर कहे प्रसंगसे जिनका थोडा ध्यान आवे

- * वक्ष्यमाण नोट देखनेसे उनका मत जानोगे.

१-पूर्व दर्शनमें सर्वज्ञत्वकी असिद्धि, सिद्धकीगई है; उससे उनके ब्रह्म, लोगोस, ध्यान चोहानों, दिक्षित, सर्व अनुभव पश्चात मोक्ष ओर उन्नति पक्षका अभाव सिद्ध है.

२-जीवको मध्यम, मिश्रित• (मनस-बुद्धि-आत्माका समूह-वा भान] मानते हैं; इसलिये उसको मोक्ष होना, मोक्ष साधन, मोक्ष सुख भोगना ओर अत्यंत उन्नतिका अभाव स्पष्ट है. सादि सांत जीव वास्ते उनकी मोक्ष मान्य नहीं होसकती.

३-जीवको किरण-प्रतिबिंब-आभास* मानें तो, पूर्वोक्त आभास-प्रतिबिंबवाले दोष आनेसे जीव ओर मोक्षभाव असिद्ध है.

४-' ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या ' वाले पक्षमें भी पूर्वोक्त प्रसंगवाले दोष. [दर्शनं ६-७ वगेरे याद करो].

५-ब्रह्म ओर उसकी अनंत शक्ति मानें तो,* दो स्वरूपोंका परस्परमें अप्रवेश होनेसे पूर्वोक्त ईश्वरवाद•प्रसंगवाले दोष-आवेंगे. ओर सर्वशक्तिमानत्वका अभाव उपर जनाया है, इसलिये यह पक्षभी असिद्ध है.

६-ब्रह्मको विभु ओर अनंत तथा आधारभूत मानके नित्यगतिवान* मानते हैं, यह मंतव्य अलीक है; क्योंकि गतिवान आधेय होनेयोग्य होता है.

७-ब्रह्मको निर्विकार शुद्ध व्यापक कहके उसका रुपांतर ओर परिणाम* मानना असंभव दोष -विरोधाभास.- शुद्धाद्वैत पक्षवाले दोष.(ख) देखो.

८-जीव ब्रह्मकी एकता माननेमें पूर्वदर्शनोक्त दोष आतेहैं. मनस, प्रकृत्तिका परिणाम है, उसकी एकता आत्मा वा ब्रह्मके साथ होना असंभव है.

९–पशु पक्षीमें मनुष्यवाला जीव नहीं मानते; परंतु हाथी, कुत्ता, बंदर, बैया वगेरे जानवरोंके कृत ओर पाक्षियों-की परिभाषा जाननेसे उनका अनुमान गलत हे.–मनुष्यमें ओर जानवरोंमें साधनोंका अंतर हे. भान [जीव] व्यापक आत्मा सर्वमें हे. एसा वे मानतेहैं; अतः निरंश आत्माके संबंधमें उनका मंतव्य अमान्य हे. वगेरे.*

---

* इस नोटको वांचके ओर पूर्वोक्त दर्शनोंको ध्या-नमें लेके थियोसोफिस्ट पक्षके दोष [illegible] तो, उक्त ८ दोषही बस होते हैं.

जोकि यह मत मिश्रिग पक्षमे हे १, भौतिकवादी एसे बहोतही थोडे मनुष्य निकलेंगे जोकि, इस पक्षको जा-नते हों २, इस पक्षके अनुयायिओंमें बहुतोंका मगज पुरा-णियों समान विशेष अंशमें विश्वासी, वहमी ओर सकंप देखनेमें आया हे ३, उनका लेख ओर पक्ष एक क्रमपर नहीं; किंतु अपनेको तत्व शोधक मानते हैं ४, कुछ स्पष्ट जनाये विना उक्त खंडन ध्यानमें नहीं आनेका ५, इत्या-दि कारणको लेके इस पक्षका मंतव्य, संक्षेपमें जनाना आवश्यक जानके–अनिश्चित होनेसे मूल प्रसंग योग्य नहीं समझके, इस नोटमें उसके खंडन सहित लिखते हैं. उस तमामको वांचनेसे सहेजमें जानसकोगेकि, इस मतके मुख्य पक्षका खंडन उपरके दर्शनोंमें आचुका हे. ओर इनका द्वै-त वा अद्वैत वाद हे, यह वातभी जानलोगे.

सृष्टिके भवन वा तत्व.			थियोसोफी मत प्रमाणे मनुष्य बंधारण		भवन प्रति जीवकी उपाधि.
सं.	लोक.	तत्व.	संज्ञा.		
१	सत.	महापरिनिर्वाण	० ०	अगम्य.	
२	तप.	परिनिर्वाण....	२/२ ०		
३	जन.	निर्वाण....	१ आत्मा		
४	महर.	बुद्धि भवन....	२ बुद्धि.	....	....आनंदमय कोश
५	स्वर-देवखन-स्वर्ग.	अरुपलोक....	२/२ बुद्धि—३/२ मनस (स्परचल शोल)	विज्ञान.	कारणशरीर.
		रूपलोक....	३ मनस (उपला, निचला)	मनशक्ति-इच्छा-लागणी.	
६	भुवर	उपरका कामलोक.	३/२ मनस—४/२ काम.... [हुमन शोल]	....	कामरूप.
		नीचेका कामलोक	४ काम [उत्तम, मध्यम] ४/२ काम ५/२ प्राण		

मायावी रूप.

इसलिये यह पक्ष सयुक्त नहीं. इसी सबबसे उनकी अंतरंग सभा [पुरुष प्रकृति वा ब्रह्म मायाकी संबंध दर्शक

अन्य मतों साथ थि.–[थियोसोफी] मतका मुकाबला.

संज्ञा.	थि. के तत्व.	वे–[वेदांतमत]के तत्व.
०	....	शुद्धब्रह्म.
१/२	....	शेषा–शक्ति–मायाका आधार जो ब्रह्म.
१	जबकि आत्मा, वस्तु नहीं.	माया वा अंतःकरण वा अविद्या अनवच्छिन्न चेतन.
,,	जबकि आत्मा, ब्रह्मका अंश हे.	शुद्धमाया अवच्छिन्न–मायोपहित ईश्वर-अविद्या वा अंतःकरण अवच्छिन्न वा अविद्योपहित वा अंतःकरणोपहित चेतन-कूटस्थ.
,,	जबकि ब्रह्मकी किरण हे.	शुद्धमायामें चिदाभास. अंतःकरणमें चिदाभास. } ब्रह्मका मा[illegible] ओर अविद्या जोप्रतिबिंब,[illegible]
२	बुद्धि,–जबकि ध्यान चोहानोंका अरक मानाजाय.	मायाके अंश अविद्याके शुद्धसत्वव सूक्ष्म भाग. संस्कार पाई हुई [ऋतंभ्र रुप] अंतःकरणकी वृत्ति.
	जबकि ध्यान चोहानोंका किरण हे.	अविद्याके शुद्ध सत्वांशमें ईश्वरका आभास. सत्व रजतम मिश्रित जो अंतःकरण तिसमें जो शुद्ध सत्व भाग सो बुद्धि.संकेतवृत्ति
२-३	बुद्धि–मनस.	अंतःकरणका शुद्ध सत्व भाग (बुद्धि) ओर शुद्ध रज [उपला मनस] मिले हुवे वा शुद्ध सत्व–शुद्धरज–शुद्धतमका समूह जो अंतःकरणका भाग, सो.

ओर अनुभव करानेवाली सभा] का मोह गुप्त मोहही है. तपास-
लो. खेर कुछभी हो, परंतु वेदांत, पुराणका पक्षी होनेमे पूर्व द-

संज्ञा. थी.	वेदांत.
३ मनस.	अंतःकरणके शुद्धरज, शुद्धतम ये दोनों मिलके किंवा केवल अंतःकरण. प्रकृतिके कार्य महत्तका कार्य. वा मायाके अविद्या परिणामके भागका कार्य-परिणाम.
१ उपका [उपरका]	शुद्ध वा संस्कारी अंतःकरण, वा चिदाभास.
२ निचला	इंद्रिय ग्रामाधीन वा संबंधी अंतःकरण.
जबकि उपरके मनसका भाग है.	" "
जबकि उपरके मनसकी किरण है.	अंतःकरणकी वृत्तिका ज्ञानेंद्रियों साथ-तादात्म्य वा वैसा चिदाभास.
३-४ / ३-१ मनस–काम........	रज तम प्रधानवाले अंतःकरणकी वृत्ति ओर इंद्रियोंका तादात्म्यत्व होके जो अवस्था होती है, सो.
४ काम	इंद्रिय ग्राम–इंद्रिय समूह. सूक्ष्म शरीरका एक भाग.
१ उत्तम	निर्दोष अंतःकरणाधीन इंद्रियं वा शुद्धेंद्रिय.
२ मध्यम........	दुष्ट इंद्रिय ग्राम.

र्शनोक्त दोष इस मतको लागु होते हैं, अतः पुनः लिखना

४-५ काम-प्राण....	प्राणाधीन इंद्रिय ग्राम-कर्मेंद्रिय और प्राणका समूह.
५ प्राण	सूर्य वा हिर्ण्यगर्भका सूक्ष्म तत्व-जो स्वप्नसृष्टिमेंभी होता हे.
१ सूक्ष्म	,,
२ स्थूल....	स्थूल वायु, जो शुषुप्ति कालमें अन्यको प्रतीत होती हे.
६ छाया शरीर....	सूक्ष्म शरीरपर जो विद्युत-औरा-शब्द वगेरे सूक्ष्म तत्वोंका पड हे.
७ स्थूल शरीर....	जो स्थूलभूत [रज वीर्य-खुराक]से बनता हे.-जलाया जाता हे.

इन सर्व तत्वोंमें ब्रह्म-कूटस्थ-आत्मा, अनादि अनंत, अंतःकरण [मनस-बुद्धि] अनादि सांत.-अर्थात ज्ञान पूर्वक वासना त्याग पीछे अपने उपादानमें मिल जाता हे.

जीवः-जबकि भान हे.	अविद्याके रजतमसे दबाहुवा सत्वांश वा [यही] साभास सत्वांश. वा [यही]साधिष्ठान साभास सत्वांश.
जबकि मनस बुद्धि और आत्मा-तीनों मिलके जीव संज्ञा हे.	साधिष्ठान साभास अंतःकरण-जीव वा अंतःकरण विशिष्ट चेतन,-जीव.
चेतनः-जबकिहलने चलने वालेका नाम हे.	साभास अंतःकरण. वा अंतःकरण.
जबकि ज्ञानस्वरूप ब्रह्मका नाम हो. वगेरे.	कूटस्थ-साक्षी-ब्रह्म.

च्यर्थ समझा गया हे

संज्ञा. थी.	वेदांतके दुसरे प्रकारका मुकाबला.
०...	पूर्ववत्.
०/२...	
१...	
१...	आनंदमयकोश. अविद्याअवच्छिन्नचेतन.
२/१ ३/१...	विज्ञानमयकोश (बुद्धि और ज्ञानेंद्रिय).
३ मनस...	चित्त-बुद्धि-मन-अहंकार-इन चार तत्व वा वृत्तिका समूह जो अंतःकरण, तिसमेंसे बुद्धि भाग छोडके जो हे, सो.
३/१-४/१...	मनोमयकोश [मन-ज्ञानेंद्रिय].
काम.	इंद्रियग्राम.
उत्तम...	शुद्धेंद्रिय.
मध्यम...	दुष्टेंद्रिय.
४/१-५/१...	प्राणमयकोश [प्राण-कर्मेंद्रिय].
प्राण......... ...	पूर्ववत्.
छायाशरीर...... ...	,,
स्थुलशरीर...... ...	अन्नमयकोश.

अंतःकरणसे लेके सूक्ष्म प्राण तक, सूक्ष्मशरीर कहाता हे, उसमें अन्नमयकोशसे इतर चारों कोश होते हें-स्वप्नमेंभी होतेहें और इसमेंसे मरने पीछे अंतःकरणसे सब छुटजातेहें-बे अंतरक्ष विषे उपयोगमें आते हें. स्थूलशरीर-अन्नमयकोश तो जलाया जाताहे. केवल अंतःकरण उत्तर जन्म पाताहे. [पक्षमें सूक्ष्मशरीरको उत्तरजन्म मिलताहे].

थियोसोफिस्टोंके कल्पित ढकोंसलोंके संबंधमें

एक मित्र (मरहुम थियोसेफिस्टने नाम लिखनेकी आज्ञा नहींदी.)

संज्ञा. थि.	राजयोग मत–वा वेदांतका पक्षकार.
० ... ... ०/२ ... ... १ आत्मा	पूर्ववत्.
२ बुद्धि...	कारणोपाधि.
२/१–३/१–३–३/२–४/१– ४–४/२–५/१–६	सूक्ष्मउपाधि.
६–७...	स्थूल उपाधि.

सं. थि.	बौद्ध.
०...	अक्षणिक शुद्धविज्ञान. वा शून्य.
०/२...	सवासना मूल विज्ञान.
१...	आलय विज्ञान.
२...	प्रवृत्ति विज्ञान.
२/१–३/१...	सवासना प्रवृत्ति विज्ञान.
३...	क्षणिक विज्ञान.
३/२–४/१...	परिणामी विज्ञान–विज्ञानस्कंध.
४...	स्कंधवीज.
४/२–५/१...	स्कंध परिणामाकार विज्ञान.
५...	विज्ञानका परिणाम विशेष.
६...	” ”
७...	” ”

कहा करतेथेकि "मरहूमा मडम-ब्लेवेट्स्की साधवी बाईने अदृष्टरूप हुये मुझको कहा कि मैंने जीव, ईश्वर, प्रकृति.

संज्ञा.	थि.	रिव्रस्ति मत.
० ०/२	} ...	नहीं वा. जात.
१	आत्मा...	१-खुदा. रूह.
२...		२-खुदाका दम, [illegible] हुकम-अंश.
३-३/२-४/२-४...		जीव.
५-६-७...		शरीर.

सं.	थि.	मुसल्मानी मत.
०...		जात-
०/२...		सिफात-कुदरत-शक्तिसहित खुदा.
१...		रूह (खुदाकादम-हुकम-अंश)
२...		खुदाकी कुदरतने खुदाका बनया हुवा जोहर-[illegible].
२/२-३/२...		रूहलतीफ.
३	मनस.	रूहइनसानी.
३/२-४/२...		रूहकसीफ-कवायका मजमूआ.
निचला मनस-अधमकाम.		नफ्स.
४	काम.	रूहहेवानी-व हिस्सेमुतहरिक.
४/२-५/२...		रूहसेलानी.
५	प्राण...	दम.
६	छायाशरीर.	जिस्मेलतीफ.
७	स्थूलशरीर.	जिस्मेकसीफ.

मोक्ष ओर परंब्रह्मके स्वरुप विषे जो कुछ कहा-अपनें बनाये ग्रंथोंमें लिखा हे, वोह मेंने भूल खाई हे. देवखनमें

१-(थि.) १ परब्रह्म. २ वोह अंतरजामी-सगुण-गतिवान-पोलरुप-अव्याकृत परिणामी-रुपांतर होनेवाला-वही पुरुष-वही प्रकृत्तिरुप होता हे.- व्यक्त अव्यक्तरुप धारता-हे. सूर्य सेलेकर अणु पर्यंत उसीके विविधरुप हें.

३-अविकारी, शुद्ध, निर्गुण, आधार, सर्वका मूल (अधिष्ठान), निराकार, अखंड, अव्यय, अरुप, स्वतंत्र, सच्चिदानंद, अद्वितीय, जिसका सर्व स्थल केंद्र हें, विभु-अनंत,-सर्वका लय स्थान.

मंजकूर लक्षणोंमेंसे नं. १ और नंबर ३ वेदांत पक्षभी मानता हें. नंबर ३ वाले और २ वालेमें परस्पर विरोध हे, इसलिये वेदांतपक्ष, परब्रह्म-शुद्ध चेतनके वे लक्षणके जो नं. २ में हें-थियोसोफिस्ट जिसको मानते हें, सो नहीं स्वीकारता. किंतु नंबर २ वाले लक्षण माया विशिष्ट ईश्वरके कहता हे.

परंतु शुद्धाद्वैत (वल्लभ) मत वाले, एकहीं ब्रह्मके थियोसोफिस्टों समान विरुद्ध धर्माश्रय वाले (नं १-२-३) लक्षण मानतें हें. बौद्ध मतमें थियोसोफिस्टों समान घटित होसकते हें.

वेदांती-रामानुज-आर्य समाज-पौराणी-जेनी-किरानी-कुरानी-ब्रह्मसमाजी, इस विरुद्ध पक्षको नहीं स्वकारते.

२-थियोसोफी (थियोसोफिस्टोंके मान्य ४ ग्रंथका सार) वाला कहता हे कि, ब्रह्म, पुरुष वा प्रकृति नहीं जगत, न पुरुष हे न प्रकृति, परंतु उभयरुप हे. परब्रह्म ओर प्रकृति वस्तुतः एक हें. ब्रह्म, जगतकर्त्ता नहीं; किंतु जेसे जल

जाके अपनी भूलका शोधन करके कामभुवनमे मुझको आना पडा हे. ओर अब जो मुझमे कामभुवनमें असत्य

~~~~~~

परपोटाका कर्त्ता नहीं, वेसे अनादिमे स्वभावतः भरती ओट समान होता रहता हे. ब्रह्म हे सो जगत, जगत हे सो ब्रह्मरुप नहीं; किंतु सृष्टिका आधार हे. ब्रह्म विना सृष्टिकी स्थिति नहीं—ब्रह्म भान [ज्ञान] रुप हे,—सृष्टिका ज्ञान कर्त्ता नहीं. ब्रह्म बेभान वा केसा हे, यह नहीं कहा जाता.

ब्रह्म, एक सत् हे, परंतु माया (एक हो परंतु अनेक रुप में जनाय वा जनावे सो माया) के सबबसे द्वैत—नानारुप भासता हे. आकार मात्र माया हे. एक प्रकार कहें तो वही ब्रह्म, सृष्टि हे (गुप्त ज्ञान संहिता). ध्यानचोहानों (व्यक्ति समूह—ईश्वर) कोभी द्वैत भासता हे; जगत् एसा हे जेसाके जलमें परपोटा.

(ग्रं. क.) नं. २ वाले पक्षमें कितनाक अंश वेदांतको मिलता हे. परंतु थियोसोफिस्टभाई, विवर्त्त वादकी खूबी नहीं जानते.—फिलोसोफीसे डरते हें. इसलिये मडम वा उसके चेलोंके बनाये हुये ग्रंथोंमें विरोधाभासका ठिकाना नहीं.

(समीक्षक.) इस विरोधाभास (व्यापक ब्रह्म सक्रिय—परिणामी—तम प्रकाशरुप वगेरे) का खंडन—असंभवता ओर ब्रह्मके अभिन्न निमित्तोपादानत्वका खंडन पूर्व दर्शनोंमें आचुका हे. ओर आकार, माया मात्र हे—वस्तुतः नहीं, इस पक्षके दोषभी पूर्वमें कहे गये हें. थियोसोफिका ब्रह्म, सांख्यकी प्रकृती—प्रधान समान हे; क्योंकि निराकार—निरुप ब्रह्मका साकाररुप वाला परिणाम—उपादेय मान्ना थियोसोफिस्टोंके बुद्धिमान महात्मा—गुरु—सर्वज्ञ—गुप्त दिक्षित ध्यान चोहानोंके सिवाय कोन माने!
~~~~~~

कृत नहीं हुवा तो, धारी हुई भूत योनी छोडके आर्य कुलमें जन्म लेनेवाली हुं; " एसा अपने कर्मोंके '(अलॅमंत-

(नोट)

"प्रतिबिंब. (किरण समुदाय जन्य आकृति) अज्ञान रहित नहीं होता. ओर परमात्मारूप नहीं होता. किंतु बद्ध होता हे-प्रकृतिका एक, विकारी परिणाम होता हे. आत्मा उसका साक्षी हे, (ब्लॅवत्स्कीकृत गुप्त ज्ञान संहिता)" (ध्यानमें रखिये.) " में कोन हुं? क्यों हुं? मनुष्य कोन हे? यह कोईभी नहीं जानसकता (थि.)"

३ [थि.] " पुरुष.-ब्रह्मका दिव्य संकल्प.-महत. इसकी गतिसें जगत होता हे. इससे मनुष्योंको चेतन मिलता हे." " वेदांत, इस अव्यक्तको माया विशिष्ट ईश्वर कहता हे, जिसके संकल्पसे मायामेंसे जगत हुई" [समी.] ब्रह्मको संकल्प न होसकनेका हेतु ओर इस पक्षका खंडन उपर आचुका.

४ "[थि.] प्रकृति. स्वरूपसे एक हे, परंतु नानाप्रकारके अणुकी उपादान हे. इससे चेतन उत्पन्न नहीं होता." "वेदांतके अनुकुल हे. वोह उसे माया कहता हे." [समी] मायाके एक रुप न होनेका खंडन पूर्व दर्शनोंमे आचुका.

५ (थि.) " लॉगोस. ब्रह्ममें एक प्रकारकी नाना शक्ति. इसको अपना ज्ञान होता हे इसके भानसे जगत चलतीहे." " 'वेदांत में इसको शुद्ध समष्टि ईश्वर नामसे बोलते हें." (ईश्वर प्रसंगगत ईश्वरके स्वरूपमें जो पक्ष हें उसकी नोट देखो). [समी.] शक्तिको, ज्ञान होनाही असंभव. तथा अपना ज्ञान किसीकोभी नहीं होता; इत्यादि पक्ष पूर्व दर्शनोंमें सिद्ध किये हें; अतः गुप्त ज्ञानके अभिमानियोंकी यह कल्पना असंगत हे.

लों' का परिणाम) फलसे अनुमान करती हूं;" तब मुझको पुरुष-नर अवस्थामें यथार्थ योग ओर ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति

६ [थि.] " फोहातः-ब्रह्मके संकल्पसे यह शक्ति उत्पन्न होती हे.-इसे पुरुष, प्रकृतिका संबंध [वा संबंधक] कहते हें. इस संबंधसे जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और लय होता हे " वेदांत पक्ष, इसको चिंन् जडका संबंध नाम देना हे -यह, कोइ वस्तु नहीं हे, एसा मानना पडता हे." [समी.] फोहातका उपादान ब्रह्म मानें तो, अपने संकल्पसे, अपने शरीरमेंसे ब्रह्म, इसे उत्पन्न नहीं करसकता. हठसे मानें तो, ब्रह्म एक अव्यय नहीं; किंतु सावयव-सांश ठरेगा-अधिय मानना पडेगा. जो फोहातको अनुपादानजन्य मानें, तो पुर्वोक्त मुसलमान, रिव्रस्ति मतवाले असंभव दोष [अभावमें भावोत्पत्ति असंभव हे] आवेंगे. जो फोहात कोइ वस्तु नहीं, तो गुप्त ज्ञान संहिताका यह लेखाकि, "ध्यान चोहानोंकी आज्ञामें फोहात रहती हे. हरेक परमाणुमें विजली शक्ति, फोहात ही डालती हे," असंगत होजायगा.-विरोध दोष आवेगा. जो फोहातको संबंध मात्र मानें तो, जड होगा. वोह विजली शक्ति डालनेमें असमर्थ रहेगा. तथा जो माया ब्रह्मके संबंध प्रसंगमें दोष कहे गये हें, वे दोष आवेंगे. अतः फोहातकी कल्पना अयुक्त हे.

७ (थि.) आत्माः-"परब्रह्मका अंश वा किरण [मायामें ब्रह्मका प्रतिबिंब-आभास सो आत्मा] हे; निरुप हे,-स्मृति शक्ति उसमें नहीं,-उसका कोइ शरीर नहीं, लोकसे संबंध नहीं रखता, कोइ वस्तु नहीं, आत्मा एकही हे.-भिन्न-नाना नहीं, विजली वगेरे तमाम वस्तुका मूळ हे,-मनसकी उपाधिको लेके भिन्नरुपसे भासता हे.-अमरतत्व हे." वेदांत

होगी. और जितना बन सकेगा, उतना सत्य प्रचार वास्ते उपाय
लूंगा. मुझ अदृष्टरूपद्वाराही उक्त कथन निकला है, उसकी
परीक्षा–पुरावा यह है कि, थोडेही कालमें थियोसोफीकल
सोसाईटी–थियोसोफिस्टोंके *मतकी पोल खुलनेवाली है.-
व्यर्थ द्वेष करेंगे.–पक्ष–हठपर आवेंगे. जब यह सोसाईटी
निराभिमान हुई आर्य संतान और आर्योंके सच्चे धर्मके साथ

पक्षमें इसे कूठस्थ–[अंतःकरण उपाधि है जिसकी, ऐसे
ब्रह्मके अंतःकरण अवच्छिन्न अंशको] कहते हैं. और वे
दांतका आभासवादभी ब्रह्मकी किरण [आभास] को
आत्मा नहीं कहता, किंतु चिदाभासको जड मानता है
परंतु फिलोसोफीके विरोधी थियोसोफिस्टभाई, इस भेदको
नहीं जानके पूर्वापर विरुद्ध लिख डालते हैं." [समी.] जो
आत्माको ब्रह्मका अंश मानें तो ब्रह्मके अंश प्रसंगमें (सा
वयवता–सोपाधि निरंशता वगैर प्रसंगमें) जो दोष जनाये
हैं, वे दोष आवेंगे. जो ब्रह्मके आभासको आत्मा मानें, तो
पूर्वोक्त प्रतिबिंब-आभास प्रसंगवाले दोष आवेंगे. ब्रह्मको
अंतरयामी मानके उसके अंश आत्माको स्मृति रहि
मान्ना हास्यास्पद है. ब्रह्मकी किरण मानके आत्माको उ
सका स्वरुप वा अभिन्न मान्ना कितनी बडी भूल है.–कि
रण, किरणी [जिसकी किरण है] और जिसमें किरण
पडती हैं–इन दोनोंसे भिन्न होती हैं. मजकूर नोट अनुसार
आत्मा–जड, प्रकृतिका परिणाम ठेरता है, उसको परमात्मा
का अंश वा चेतन मान्ना कैसी भूल है; अतः मडमसाहेबाका
उक्त लेख असंगत है.

८ [थि] " ध्यान चोहानों–ईश्वरः–परमात्माकी अनंत
किरणें निकलती हैं, उन नानाप्रकारकी अनंत किरणोंमें

एकमेक-संमिश्रित होगी. तब गुह्य रहस्यको पाके कृतार्थ बने-
गी. ओर धर्मसेवको करने योग्य होगी. अमीनो सिद्धोंके

[चिंगारियोंमेसे] एक किरण (सप्तमी) का नाम जीव है.
उसेही पहिला ईश्वर कहते हैं उनमेंसे ध्यानचोहानो नि-
कलते हैं.-उनका स्वरूप बनना है. अयोनिज [मानस-
पुत्र-कुमार-] ओर सात प्रकारके होतेहैं: उनमेंसे महान
चोहान वर्ग, सूर्य वगेरे ग्रहोंको बनाते हैं -उनकी रक्षा ओर
व्यवस्था करते हैं-कोइ, जीवोंके कर्म जो कि स्टारिल लाइट
(चित्रगुप्त)में अंकित होतेहैं ओर उस मुवाफिक भविष्य
शरीर बनता है. उन कर्मोंके अनुसार सूक्ष्म वगेरे शरीर
जीवोंको देने ओर यथाकर्म योनीमें डालनेकी व्यवस्था क-
रते हैं.- एसे चार महाराज हैं. कोइ, अन्य कार्य करते हैं.
यह ध्यान चोहानो, इथर समान गुप्त अदृष्ट होतेहैं, गोचर न-
हीं. ओर न्युनाधिक दरजेवाले होतेहैं. सर्व समान नहीं.
जोकि सृष्टिनियमानुकुल कार्य करते हैं-अन्यथा नहीं करसकते,
अतः [साधारण सत्कारसे विशेष] उनको पूजने स्तुति प्रा-
र्थना करनेकी जरुरत नहीं.

यह सब ध्यान चोहानो सृष्टि आरंभकालमें स्वभाव-
तः होतेहैं, उनकी उत्पत्ति वा प्रकट होनेमें कोइ मूल कारण
वा कार्य नहीं है. प्रलयकाल विषे ब्रह्म विषे लय होजाते हैं.
(जेसे शरीरका बंधारण-व्यवस्था, स्थूल शरीरगत अनंत जं-
तु करते रहते हैं. वेसे समष्टि-वैराट शरीरका बंधारण ओर
व्यवस्था. ध्यान चोहानो करते रहते हैं). सृष्टि कर्ता. धर्ता
हर्ता. कोई एक ईश्वर व्यक्ति नहीं है; किंतु व्यक्ति समूहका
नाम ईश्वर है. फोहात, ध्यानचोहानोकी आज्ञामें रहती है ओ-
र इनके संकल्पसे फोहात, परमाणुओंमें विजली शक्ति डाल-

समान खयाली गप शप ओर पौराणियोंके समान पागल्में हे. जैनियों वा नारायणस्वामियों समान अंतर बेतरनी हे. वा शो-

ती हे; तब, तमाम् ब्रह्मांडके, मेटर (परमाणुओं) का जो गोला, उसमें गति होकर सूर्य वगेरे ग्रह-उपग्रह-गृहोंकी हार वगेरे अर्थात् तमाम ब्रह्मांड बनता हे ओर फेर यथानियम ओर क्रम, ध्यानचोहानों द्वारा बिखरके लय होता हे. निदान पुरुष प्रजापति वर्गका नाम ईश्वर हे. स्वयं ईश्वर कोई वस्तु नहीं.

वेदांतपक्ष, इस ईश्वरको समिष्टरुप मानता हे. शुद्ध व्यष्टि अविद्या विशिष्ठ वा शुद्धव्यष्टि शुद्ध अंतःकरण विशिष्ट वा अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन, किंवा चिदाभास सहित शुद्ध अंतःकरणाके समूह विशिष्ट वा उपहित चेतनको ईश्वर कहता हे. किंवा चेतनको नहीं किंतु शुद्धव्यष्टि अंतःकरणोंमें जो व्यष्टि चिदाभास हे तिनके समूह-समिष्टिको ईश्वर कहता हे.-यह पक्ष वेदांतके एक पक्षकारका हे [ईश्वर प्रसंगगत नोट याद करो.]

(समीं)-व्यापक चेतन ब्रह्मकी किरणें-आभास-फोटो होना असंभव-वगेरे दोष, परिच्छिन्न ईश्वरकी असर्वज्ञता-इत्यादि बातें उपर सिद्धकरआये हें. आभास जड होता हे, उसमें व्यवस्था ओर नियममें रखनेकी सामर्थ्य नहीं. ब्रह्मसे भिन्न कोइ जीव चेतन समूहको ईश्वर मानें तो ब्रह्मांडकी अव्यवस्था; क्योंकि परिच्छिन्न ध्यान चोहानों सर्वज्ञ नहीं होसकते. नाना पदार्थ बनानेमें नाना प्रकारकी सामग्रीकी आवश्यकता होती हे. वे ध्यान चोहानों अनंत ब्रह्मांडका अंत नहीं पासकते; अतः घटित सामग्री लानेमें असमर्थ रहेंगे ब्रह्मांडके तमाम जीवोंके कर्मकी व्यवस्था चार महाराज को

धक है. शंकराचार्य तथा स्वामी दयानंदके गुप्त रहस्य जानके आर्य धर्मका महत्व समझके धर्मविषयमें जंगली परखंडियोंके

यह असंभव वात है; क्योंकि परिच्छिन्न हैं. ओर जो उनको व्यापक. सर्वशक्तिमान मानो तो ४ माननी व्यर्थ है-पुरुषकी मान्यताभी ना काम है; अतः एकही मानना योग्य है. एक माननेंमें पूर्वोक्त ईश्वर प्रसंग वाले दोष आवेंगें.

जो ध्यानचोहान स्वभावतः हैं तो, वे नित्य है-अर्थात् ब्रह्मरुप नहीं होते. ब्रह्मस्वरुपमें इतरही रहे. वा ब्रह्म एकरूप नहीं. किंतु शुद्धाद्वैतवाला जेसा-विरुद्ध धर्मवाला-अरूपी-सरूपी होगा; जोकि असंभव वात है. ओर जो हठसे एसा मानोगेकि सृष्टिके अंतमें ब्रह्मरुप होगये, तो किरणरूप न होंगे. तथा दुसरे महा कल्पमें अन्योत्पन्न होंगे. उनको पूर्व महाकल्पके रहे हुये जीवोंके कर्मका ज्ञान नहीं होगा; अतः व्यवस्था नहीं करसकेंगे. तथा सृष्टि रचनेका ज्ञान बतानेवाला तसिरा कहना-मानना पडेगा. जो एसा कहोगेकि 'एक दिक्षित (सर्वज्ञ) अनादि अनंत है ' तो पुनः उसका स्वरूप, ब्रह्मसे भिन्न मानना पडेगा.-अद्वैत तत्वकी हानी होगी. जो कहोकि 'ब्रह्मही ज्ञानवान है,' तो उसीको व्यवस्थापक मानलेना पडेगा.-नौंना ईश्वर मानना व्यर्थ है. तथाहि उनके अरकमेंसे बुद्धि उत्पन्न हुइ; इस मंतव्यका परिणाम यह निकलता है कि, वे मध्यम परिणामरुप हैं, अतः नाशवान होंगे. अणुरुप मानो तो, सूर्यादि करने योग्य नहीं. विभुरूप मानों तो, स्वरुप प्रवेश दोष, गौरव दोष; इसलिये . एकही मानना उचित होगा. किरणकी किरण मानना सायंस. सृष्टि नियम विरुद्ध है, अन्यथा अनवस्था होगी. परंतु "थि. सो. " तो ब्रह्मकी किरण आत्मा, ओर आत्माकी किरणभी

लाभार्थ आर्य धर्मकी महिमा देखानेके वास्ते देशांतरमें फि-
रके मैंने वर्तमान देशकालानुसार कल्पित रचना बनाके कु

मानती है. ब्रह्मकी किरण ध्यानचोहान-इनकी किरण बुद्धि
और पुनः बुद्धिकी किरण मान बेठी है, यह कैसी फिलासो-
फी! ब्रह्मकी किरण अर्थात् क्या? इससे सहज जान पडता
है कि किरण, ब्रह्मसे भिन्न प्रकृतिका विकार है स्वयं मडम
आचार्या, इस बातको स्वीकारती है (देखो पूर्वोक्त नोट).
और पूनः उसके विरुद्ध लेख लिखा है, वाहरे, सर्वज्ञत्वकी
शोधक! निदान

सृष्टि कर्त्ता हर्त्ता, यदि परिछिन्न ध्यान चोहानों मानें,
तो अन्य हजारों दोष आते हैं. खंडनका मूल इस ग्रंथमें आचु
का है (ईश्वर वगेरेका प्र याद करो). अतः विस्तार नह
किया. (तत्वदर्शन नामक ग्रंथमें नाना परिच्छिन्न ईश्वर प्रसं
ग विषे इस पक्षके दोष लिखेहैं. जिसको जाननेकी इच्छा हो
वोह ग्रंथ देखे) मुसलमानी पक्षका यह पक्ष छाया है-उनके
फिरश्ते और थियोसोफीके ध्यानचोहान, एक जैसे हैं.

९ (थि.) "बुद्धिः-ध्यानचोहानोंके अरकमेंसे निकल
है.-ध्यानियोंकी आत्माका किरण है.-अमरतत्व है.-अत्यंत सूक्ष्म
प्रकृतिको कहते हैं-अलंकाररुपसे आत्माका वाहन है. आत्म
बुद्धि उभय साथ रहते हैं.-सृष्टिकी तमाम हिलचाल इस
बलसे होती है.-इस उपाधिसे आत्माका प्रतिबिंब भिन्न
जान पडता है.-परमात्माके प्रतिबिंब लेनेका दर्पन है." "वेद
तपक्ष, बुद्धिको शुद्ध प्रकृति-अविद्याका सत्व-अंतःकरणका
परिणाम विशेष वा अंतःकरणका सत्वांश मानता है.-आत्मा
उपाधि कहता है-आत्माके आभास लेने योग्य स्वीकारता है
(समी) जबकि बुद्धि अमर तत्व है और प्रकृति है, तो प्रकृ

छ बीज डाला है. सो सफल हो. और खरा प्राचीन आर्य धर्म फैले, एसी मांगणी इश्वरसे करती हूं." उक्त मूल

अक्षर-' अनादि अनंत ' सिद्ध हुइ. ब्रह्मभी अनादि अनंत है. अतः दोनों अनादि अनंत ठेरे. ध्यान चोहान. ब्रह्मकी किरण. उनके आज्ञामें फोहान, फोहानद्वारा परमाणु-प्रकृतिमें बिजली पडती है. फोहान, प्रकृति पुरुषको संबंध करानेवाली है; इन तमाम मंतव्यका परिणाम यह निकलाकि. ध्यान चोहान और प्रकृति पुरुष तथा फोहान-यह तीनों स्वरूपसे भिन्न २ हैं. ध्यान चोहान. परमात्माका किरण है. और पूर्वोक्त नोट अनुसार प्रकृतिके परिणाम अज्ञ और बद्ध है; इस विरोधी लेखसे यह सिद्ध हुवा कि, " परमात्माकाही विविधरूप जगत है." परंतु यह मंतव्य असंगत है. बुद्धि. जन्य है, क्योंकि प्रकृतिका अंश है-ध्यानचोहानोंका अरक है. अतः मध्यम पदार्थ है. " मध्यम नाशवान होता है. यह नियम है; इसलिये थियोसोफीके बुद्धितत्वको अमर मानना समीचीन नहीं. ! इत्यादि.

१० [थि] मनसः-स्वर्गीय तत्व पदार्थ है.-ब्रह्मांड के महत [महाबुद्धि-समिष्टि बुद्धि] मेंसे उत्पन्न होता है-. उसमें ज्ञान और क्रिया. यह दो शक्ति हैं.-बुद्धितत्वके प्रकाशसे प्रयत्न करता है-धातु-वृक्ष-पशुपक्षियोंमें यह तत्व नहीं होता.-मनुष्य योनीमेंही आता है.-शब्द, स्पर्श वगैरे की लागणी मुझे हुइथी-अब होती है-आगे होगी. एसा भानवाला. स्मृति-विज्ञान रखनेवाला. विचारवान. विचार से आकार बनानेवाला, गतिवान. इच्छा शक्तिवाला, स्वतंत्र मरजीवाला, अहंका अभिमानी, [इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, संस्कार, स्मृति, ज्ञान, वगैरे गुणवाला] है.-इसीको कमा-

गुप्त महात्मा वा भूत बातें करते हैं वा मेस्मेरेजम क्रियाकी गुप्त दृ-ष्टिसे गुप्त मार्ग संचालक और गुप्त वृत्तांत मिलता है; इसी प्रकार

का अंश अविद्या मात्र, उपला मनस है. और अंतःकरणका तम भाग किंवा इंद्रिय ग्रामों साथ जो युक्त हुवे अंतःकरण वा अविद्या मात्र, सो नीचला मनस है. और जो नीचले मनसको उपलेका फोटो मानें तो वेदांतपक्षमें उस अंतःकरण का ग्रहण होगा जो कि, नाना मलिन छाप-संस्कार लेनेवाला, इंद्रिय संबद्ध, विषयासक्त है. किंवा मायारहित चेतनके आभासवाला अंतःकरण, नीचला और माया विशिष्ट समिष्टि उपला."

(समी.) मनस (अंतःकरण-जीवकी उपाधि) जबकि महतसे उत्पन्न होताहै, तो आदिवाला हुवा, उसका नाश होना चाहिये; अतः अमर लिखना असंगतहै. जबकि वोह इच्छा, ज्ञान शक्तिवाला स्वतंत्र है और उसको जन्म भोगने पडतेहैं, तो उस को मनुष्य शरीरमें क्यों आनापडा? जो उसके पूर्वके कर्मका फल मानें तबतो, उसकी उत्पत्ति मानना अघटित है. जो उत्पत्ति रहित अनादि मानें. तो उसका ब्रह्मस्वरूप होना और नाम निशान मिटना. यह बात गलत होजावगी. जो एसा नियम मानें कि "स्वभावतः पदार्थ बनतेहैं उनमेंसे एक मनस तत्वभी बनता है. जब धातु मूलका रूपांतर होते उन्नतिमें आते हुये, कामतत्व बनता है तब, मनसकोभी अपनी उन्नत्ति होने वास्ते उसमें आना पडता है; फेर उन्नतिकी सीमापर आता है अर्थात् मूल बिंदुसे उठके तमाम दोरा करके मूल बिंदुपर पीछा आके ठेरता है और समाप्त होता है." तो मनसका लय उसके उपादान महतत्प्रकृतिमें होना चाहिये, ब्रह्ममें नहीं. और जो उन्नतिके वा अवनतिके साधन हैं

को मिलता हे "उक्तसत् झूटका निर्णय उभय आद्यवक्ता-परीक्षकके वा रक्षकारोंपर छोडते हें ग्रं कं.") (तथा ग्रंथके साथ जो पत्रहे, उस पत्रमें

~~~~~~

वेभी स्वभावतः प्राप्त होंगे; अतः उसको स्वतंत्र नहीं मानसकते. तथा जिन वामि वगेरेको थियोसोफी बुरा कहतेहें, स्वपक्ष उत्तम बताते हें, यह उनका कहना ठबके पात्र ठेरेगा; क्योंकि स्वनतमें अच्छा बुरा तमाम अनुभव हुये विना छुटकारा नहीं. जव यूं हे तो, दुराचार अनीतिकी वृद्धि होगी; अंतः उनका स्वभाववाद साज्यहे पुनः मनसको धातु मूल पशु पक्षीका अनुभव कामतत्वद्वारा होगा, क्योंकि उसको पश्वादि योनी नहीं मिलती. जव यूं हे तो, यह क्या व्यापक नियम हुये? नहीं. मन घडत हें. इत्यादि.

११. [थि.] "कामतत्वः-यह एक शरीर होता हे, जोकि इथरमेंसे बनता हे, वा (ध्यानचोंहानोद्वारा) बनायाजाता हे, जीवको यथा कर्म मिलता हे-विषयभोक्ता, विषयसे आकर्षाने वाला. हरेक प्रकारके जुस्से लागनीको ग्रहण कर्त्ता. क्षण क्षणमें रंग बदलनेवाला. सूक्ष्मशरीरके बाह्यांतर व्यापक ओर रंगदार हे. इसकेभी दो प्रकार. हें.

१. उत्तम-कामक्रोधादिको तावे रखनेवाला.	काम शरीर, स्थूल शरीरसे बाहिर जासकता हें. सुषुप्तिमें सूक्ष्म शरीर
२ मध्यम-कामक्रोधादिके आधीन	से जुदा पडता हे. जीवके मरने पीछे कामभवन तक साथ जाता हे.

पीछे मनस तो आगे लोकोंमे जाता हे. ओर काम शरीर यथा संस्कार नाश होजाता हे."

"वेदांतपक्षमें उसे [कामतत्वको] अंतःकरणकी अवस्था विशेष वा इंद्रियग्राम वा सूक्ष्म शरीरका एक भाग कहसकते हें. उत्तम भाग-शुद्धेंद्रिय मध्यमभाग दुष्टेंद्रिय."
~~~~~~

जिन ग्रंथोंके नाम लिखेहैं उन ग्रंथोंमेंभी थि. सो. के तत्वकी तरहकी चर्चा है). इस दृष्टिसेभी विस्तार करना योग्य नहीं जाना.

१२ (थि.) "काम और मनसका अंतरः-काम मनस विषयसे खिंचता है. यथा मगज-साधन. काम करता है. मनस, स्वतंत्र विचार पूर्वक चलनेको समर्थ है."

१३ [थि] काम-मनस [साधारण मन]-यथा मगज काम करनेवाला. उच्च मनस एसा नहीं."

१४ [थि.] अंतःकरण, "उच्च और निचले काम मनसके साथ जो संबंध करता है सो."

१५ [थि] "प्राण, छाया शरीर, स्थूल शरीर-यह तीन तत्व और चोथा काम, यह चार पशु तत्व हैं. मनस-बुद्धि और आत्मा (यह त्रिपुटी) दैवी तत्वहैं; पशु, पक्षी, त्रियक-वनस्पति वा धात्वादिमें नहीं होते. मनुष्य शरीरमें उक्त सातों तत्व होते हैं पश्वादिमें पशु तत्व होते हैं."

[समी.] कामतत्वादिका विवेचन वा खंडन, इस ग्रंथका विषय नहीं; क्योंकि वे कार्यरूप हैं. इस ग्रंथमें आद्य-कारण तत्वों और अंत-परिणामकी चर्चा है. जोकि कार्योंमें त्रिकालके मूल तत्वोंके साथ तोलना पडता है, अतः उपराम होते हैं.

ब्रह्म, ईश्वर-आत्मासे इतर तत्वोंके वर्णन करनेकाभी हेतु यह है कि, उसके विना थियोसोफिस्टोंके जीव वगेरेके स्वरूप हरेकको समझमें नहीं आते.

१६-[थी] जीवः-"जीव कोइ तत्व पदार्थ नहीं. किन्तु भान है (शब्द, स्पर्शादिसे जो लागणी होती है, उसे भान कहते हैं.) उसके दो भेद हैं:—

१ सामान्य भानः-(वे भानके विरुद्ध) यथा पशु-पक्षी त्रियकादिमें है और वनस्पति धात्वादिमेंभी है.

२ विशेष भान :-लागणीके समय मुझको अमुक होता हे, मुझे लागणी (असर-दुःख-सुख) हुईथी, इस प्रकार अपनेको उससे जुदा करनेवाला जो भान सो, स्वभान [विशेष भान-अहमत्व ममत्व प्रकारी)

चेतनत्व [हलना-चलना] अणु अणुमेंभी हे ओर लागणीभी हे; अतः सामान्य जीव सर्व स्थलमें हे; परंतु जीव विशेष (कर्मका फल-दुःख सुख भोक्ता) मनुष्यमेंही हे." थियोसोर्फी.

(समी.) इसका परिणाम यह आयाकि बुद्धि-मनस, काम-मनस, काम-प्राण, काम-छाया, यहभी जीव हे; क्योंकि सामान्य भान, इन तत्वोंके शरीरमेंभी हे. मरने पीछे इनका हलना चलना ओर अछे बुरे परिणाम निकालना तथा इनके अलंतलोंके कार्य होना, थियोसोफिस्ट मानते हें. (देखो स्थूल भूवन ओर काम भूवन तथा देवखणका वर्णन. ओर भूतप्रेतोंके विभाग.)

परंतु मरने पीछे पूर्वोक्त कामादि तत्वोंका नाश होजाता हे.-उनको पुनर्जन्म नहीं लेना पड्ता.-ओर मनसको दुसरा जन्म लेना पडता हे; अतः मनस-बुद्धि-आत्मा,-इन तीनोंके समूहका नाम जीव विशेष हे.-(यह स्वरुप गुप्त ज्ञान संहितामें लिखा हे.)

(थि.) "आत्मा वा बुद्धिमात्र जीव नहीं, क्योंकि आत्मा सर्व जघे पशुतत्वोंमेंभी] हे. केवल मनस तत्व नहीं हे. प्रलयमें जीव नहीं मरता, उसे सृष्टि आरंभ कालमें उन्नति निमित्त यथा कम जन्म लेना पडता हे. जीव प्रथम शुद्ध होता हे; संबंध कामादि प्रकृतिके संबंध] से बद्ध हे"

(थि.) "सामान्य जीवका आरंभ मूल प्रकृति

(प्रधान) में से होता है. उस समय उसमें चेतन नहीं होता. फेर उन्नतिके नियमसे धातु, मूल पश्वादिरूप [शरीर] में आता जाता है. जब चार पशुतत्व योग्यतामें आवे कि, मनस जो कम दरजेमें था उसका संबंध होके उन्नतिकी तरफ चढता है. वहांतक मनस स्वतंत्र नहीं होता. मनसके संबंध पूर्व, सामान्य जीव था जो कि सर्वमें है. परंतु जडमें मंदगति होनेसे जडवत था. मनसके संबंधसे विशेष रूपमें आया. ओर बुद्धि, आत्मा मिलके पूर्ण जीव संज्ञा होगई. "

[समी.] इस पक्षमें काम, काम–मनस, मनस, मनस–बुद्धि, बुद्धि–आत्मा–इनका नाम जीव नहीं किंतु भानका नाम जीव है. ओर मनस–बुद्धि वगेरे जीवकी संज्ञा हैं; परंतु काम–प्राण–छाया–ओर स्थूल शरीर–इन पशु तत्वोंकी नहीं, एसा है. जब यूं है तो, भान नामक जीवका पश्वादिमें गमनागमन माना जासकेगा अर्थात् मनुष्यदेहमें आये पीछे पश्वादिमें नहीं जाता. किंतु तिसके पूर्व प्रथम पत्थर, पीछे वनस्पति, पीछे लियक, पीछे पक्षी, पीछे पशु हुवा. परंतु यहां यह विचारनेका है के पशु तत्व नाश होजाते हैं तब वोह भान कहां रहा.–मनसके साथ जुडगया वा क्या? ओर पशु तत्वोंमेंभी वोह भान कोनसे तत्वमें था? अथवा यह चारों उसकी उपाधिथी? अंतमें मूल प्रकृतिका तत्व माननेसे चारों तत्वसे भिन्न माना जायगा. ओर मनस–बुद्धि–आत्माके साथ मिलनेपरभी तीनोंसे भिन्न स्वरूप ठेरेगा. परंतु यह बात 'गुप्तज्ञानसंहिता'के विरुद्ध है.–वोह बुद्धि–मनस ओर आत्मा इन तीनोंको जीव कहती है.

[थि.] " जीव, लोगोसमेंसे नाना–ज्ञाना–किरणरूप पदार्थ है, (इस पक्षका जीव, पश्वादिमें नहीं है. किंतु उन्नति पाये

हुये तत्व, जब मनसके साथ मिलतें हें तब, यह चोथा पदार्थ उसमें शामिल होता हे. निदान वेदांतियोंके समान थि. सो. मतमें गडबडहे.) कहीं सूत्रात्माको जीव कहा हे.", वेदांतपक्ष इसको साभास अविद्या विशिष्ट चेतन जीव कहता हे

[थि.] " गुप्तज्ञान संहितानुसार मनस-बुद्धि ओर आत्मा इन तीनोंके समूहका नाम जीवसंज्ञा हें." [वेदांतपक्षमें अंतःकरण, चिदाभास ओर उनके अधिष्ठान कूटस्थ-इन तीनोंके समूहको जीव संज्ञा दी हे. यह संज्ञा. आत्माको परब्रह्मका अंश मानके होती हे. जो आत्माको किरण मानें तो, साधिष्ठान साभास अंतःकरण, जीव समझलेना.]

(थि) " जबतक जीवको तमाम सृष्टिका ज्ञान [सर्वज्ञता]-अनुभव न हो-वहांतक उन्नतिकी सीमा नहीं आती; स्वतंत्र नहीं होसकता. " उन्नतीकी सीमापर गये विना, तृष्णा-वासना नहीं जाती.-सो ब्रह्मके ज्ञान विना नाश नही होती; अतः ज्ञान प्राधान्य हे. वहांतक जीवको यथाकर्म अवतार लेना पडता हे. जब कल्पांतमें ज्ञान हुवा कि इसकी समाप्ति होती हे. दौरा करके अपने केंद्रपर जाता हे. ज्ञानसंहिता अनुसार-जबकि जीवकी समाप्ति होती हे तब, मनस ओर बुद्धि, आत्मामें समाजाते.-[एकरूप होके] तीनों परमात्मामें समाजाते (तद्रूप-एक स्वरुप होते) हें जीव संज्ञा वा जीवका कोइ चिन्हभी नहीं रहता.-एसा निर्वाण मोक्ष-परमात्माके अनुभव होनेपर होता हे. ज्ञान पीछे मायावी शरीर छूटजाता हे.

[समी.] भान नामा जीवको वा मनस-बुद्धि-आत्मा-इन तीनोंको अपनाही ज्ञान नहीं होसकता, तब ब्रह्म ज्ञान केसे होगा ? नहीं. सर्वज्ञत्वका अभाव हे, थि. सो.

द्धि वगेरेको ध्यानी वर्गमें मानती हे, वे सर्वज्ञ नहीं थे. [इत्या-
: उपर सिद्ध किया हे.] आभास-किरण जड हे-मनस,
कृतिका कार्य हे-आत्मा किरण हे-ब्रह्मके अंश आत्माको
ान होना वा बंध मोक्ष होना नहीं बनता-बुद्धि, अरक, वा
रण हें; अतः बुद्धि-मनस, यह दोनों ज्ञान करने योग्य
हीं. तीनोंमेंसे किसको ज्ञान हुवा ? पृथक पृथकको मानो
उस उसकी मोक्ष. जो तीनोंको होना मानो तो, वोह
न किसको ? इसका उत्तर न होगा. जो तीनों मिलके
नशक्ति नवीनोत्पन्न होना मानो, तो पूर्व दर्शनोक्त ज्ञातृ-
प्रसंग वाले दोष आवेंगे. मनसका लय उसके उपादान
द्धि (महत) में हुवा. बुद्धिका ध्यानचोहानमें होना चा-
ये. आत्मानामी किरणका तथा ध्यानचोहान ओर बुद्धि-
ब्रह्मसे इतरमें लय होना चाहिये. अन्यथा मनस-आ-
-बुद्धि, प्रकृति, ध्यानचोहान,-यह सर्व ब्रह्मरूप मान्ने पडें.
जब एसा माना तो पूर्वदर्शनोक्त असंभव दोष प्राप्त होंगे.
ा अपनेको भूलां, अपनेको अपना ज्ञान प्राप्त हुवा-इत्यादि
ंभव वातें स्वीकारनी पडेंगी. पश्वादि, मनस ओर मल
रेका अंतर-भेद नहीं मान्ना पडेगा.-न कोई बद्ध, न कोइ
ा, न साधन, न साध्य मान्ना होगा. जब यूं हो तो, थि.
के तीनुं मुख्य-उद्देश ओर गुप्तज्ञान-उपदेश वगेरे मिथ्या-
सले ठेरेंगे. तथा जीवकी उत्पत्ति, मनस वगेरेका जन्म
ाने, दुःख भोगनेका सबल कारण नहीं मिलता. स्वभाव
तो मोक्ष-उन्नति ओर उनके साधनका उच्छेद होता हे.

जो कि उपरके दर्शनोंमें इन वातोंकी सविस्तृ चर्चा
अतः यहां उपरामते हें.

१७ [थि.] "मुक्तिः-पूर्वोक्त लॅगोससे जुदा हुये जीवका

अपने स्वरुपको पहिछानके लॉगोसमें एकरुप होजानेको मुक्ति कहते हें. किंवा पूर्वोक्त जीव-(आत्मा-बुद्धि-मनस) का अपने मूल [परमात्मा]में ऐक्यताको प्राप्त होना-मुक्ति हे. तमाम भवनोंके ज्ञान होने पीछे जीव, जन्म मरणके बंधनसे छूटके मुक्त होता हे. सो मुक्ति दो प्रकारकी होती हेः—

१ निर्वाणः-अत्यंत सुख (परमानंद)में रहना. २ जीवनमुक्तिः-उन्नतिकी सीमापर पहोंचके अपनी खुशीसे परोपकार अर्थ जन्म लेके लोकोंपर उपकार करना (यथा ध्यानी-बुद्ध-पेगबर-महात्मा हुये ओर होंगे).

वस्तुतः मुक्ति कोई वस्तु नहीं किंतु एक नाटक हे"

वेदांत पक्षमेंभी एसाही हे. "में ब्रह्मस्वरुप हुं" एसा ज्ञान जब जीवको होताहे तब, बंधनकी निवृत्ति होती हे.-अर्थात् जीवको भ्रांति-अज्ञानसे अपनेमें बंध प्रतीत होताथा; सो 'तत्वमसी' "अहंब्रह्म" रुप ज्ञानसे बाध होजाता हे. उस पीछे प्रारब्ध भोगतक परोपकारी जीवनमुक्त रहता हे ओर मरने पीछे विदेह मुक्त होताहे. फेर जन्म नहीं लेता.

जिनको अवतार कहते हें [यथा विष्णु-ब्रह्मा-शिव-राम-कृष्ण वगेरे] वे नित्य मुक्त हें.-कभी बंधनको प्राप्त न हुये-न होंगे. किंतु थियोसोफीस्टोंके ध्यानचोहान वा ध्यानियों समानहें. थियोसोफीके मत अनुसार वर्त्तमानके मनुष्य जीव, उत्तर महाकल्पमें ध्यानी पुनः ध्यानचोहानोके नंबर पर पहोंचते हें, परंतु पौराणिओंके मतमें एसा नहीं.

[समी.] १ ज्ञाता ज्ञेय भिन्न होनेसे अपना अपनेको ज्ञान नहीं होता, २ कार्य [जीव] अपने कारण (ब्रह्म-प्रकृति) को नहीं जान सकता. ३ दो (लोगोस ओर उससे जुदा हुये किरण वा ब्रह्म ओर उसकी किरण-वगेरे) एक

[लोगोस-वा ब्रह्म], नहीं होते. ४-एक (ब्रह्म-लोगोस), दो [किरणके टुकडे], नहीं होते. ९ उपादान (ब्रह्म-लोगोस) से उपादेय [किरण-मनस-बुद्धि] भिन्न वा भिन्नरुप वा अन्यथा वा अन्य गुण स्वभाववाला नहीं होता.-इत्यादि नियमोंसे थियोसोफिकल सोसाइटीकी मुक्ति अमान्य-असंगत हे. कल्पना मात्र हे.

उनके ग्रंथोके इस लेख ("थि. सो. मुक्तिका मार्ग बतासकती हे") की कीमत, उनके सिद्धांतसे हरकोई जान सकता हे उनके प्रसिद्ध ग्रंथ अंतरंगसभा संबंधी ओर ब्रह्म मायाके संबंध बतानेवालेकी परीक्षा उनके विरुद्ध धर्माश्रय नामके सिद्धांतसे प्रसिद्धहे.

कदाचित वे दूसरा पक्ष-"ब्रह्म सत्यम् अन्य मिथ्या" अर्थात् ब्रह्मसे इतर लोगोस-ध्यानचोहान-फोहात-इनकी किरणे-आत्मा-बुद्धि-मनस-काम ओर त्रपुटी मात्र-नामरुप सर्व माया-अज्ञान करके भासतेहें. हमभी मयावी हें; अतः एसी कल्पना करते हें.- बंध मोक्ष नाटक हे".-इत्यादि मानें तो, उपर जो वेदांत पक्षकी असमीचीनता सूचक दोष कहेहें-वे सर्व, प्राप्त होंगे. "ब्रह्म हे,-यह सिद्धांत यथार्थ हे" इसकी साक्षी क्या? हम तुमतो मायावी हें, अतः मजकूर सिद्धांत मिथ्या हे.

१८ [थि.] " मुक्तिके साधनः-सत्कर्म, पाप संकल्पसे बचना, कुसंग त्याग, प्रेम, भक्तियोग- कर्मयोग-यमनियमादि पूर्वक योग-ध्यान-उपासना, विवेक, वैराग्य, शमदमादि, श्रद्धा, समाधान, वगेरे हें (यह बात उनके ग्रंथ मार्ग प्रकाशनी वगेरेमें प्रसिद्ध हे). इस प्रकार करनेसे नीचेका मनस शुद्ध (आरसीरुप) होवे, तब उसमें बुद्धि-मनसका प्रतिबिंब पडता हे; पीछे नीचेका मनस 'बुद्धि-मनस में हुं" एसा ज्ञान करता

है-[तब] 'तत्वमसी' रूप ज्ञान होता है, फेर मनस, मनस-बुद्धि, आत्माके साथ एकरूप होजाते हैं." मजकूर साधन, वेदांत पक्षानुसार हैं. और मजकूर एकता, "बाधसमानाधिकरण" प्रक्रिया कहोती है.-जिसका खंडन उपर दर्शनोंमें आचुका. और साधनोंके खंडन वा मंडनकी व्यवस्था साध्यवत् जानके यथायोग्य त्याग ग्रहण कर्तव्य है; इस ग्रंथका वोह विषय नहीं है.

१९ (थि.) समष्टिव्यष्टि-पिंडे ब्रह्मंडेः—

	स.	व्य.	ब्र.	पिं.	
अ.	मूलप्रकृति.	वैखरी.	परमात्मा.	आत्मा.	वेदांतपक्ष जैसा है
उ.	आद्यशक्ति.	मध्यम.	महत.	मनस.	
म.	ध्यानचोहान(ई)	पश्यंति.	विश्व.	शरीर.	
०	परब्रह्म.	परा.	वगेरे.	वगेरे.	

(समी.) उपरके लिखे हुये विषयका खंडन होनेसे इसकाभी खंडन होजाता है.

२० [थि.] सृष्टि उत्पत्ति-स्थिति-लय-[नं. १९ के अंतर]:—

१ सृष्टिकी उत्पत्तिका कथन नेति नेति कहने योग्य है-अशक्य है. [समी.] पुनः कहतेभी हैं. केसी पोपविद्या और चाल.! अपने मुखसे असत वादि हुये सत पक्षवाले बनते हैं

२-सृष्टि पूर्व, देश-काल- महत-पुरुष-प्रकृति-जीव-मोक्ष-मोक्षसाधन-कुछभी नहींथा. असत् [माया-जगत-नामरूप-शून्य] भी असतमें नहींथा. केवल अंधकार था.

३-प्रथम उपाधिसे परमात्मा. [स.] अन्याभावसे व्याघात

४-परब्रह्मको संकल्प हुवा [इसका नाम पुरुष है].जगत के उपादान प्रकृतिरूप परिणाम हुवा. ब्रह्मकी शक्तियें उद्

हुई (जिनमेंसे एक शक्ति लोगॉस हे–लोगोस नाना हुये). ब्रह्मके संकल्पसे एक फोहात नामक शक्ति हुइ (पुरुष–प्रकृतिका संबंध). महत ओर तमोगुणके अंशसे आकाश उत्पन्न हुवा [इससे वायु वगेरे परमाणु]. ब्रह्मके किरण छूटे इन किरणोंमेंसे कितनीक किरणोंमेंसे कितनेक प्रकारके ध्यान-चोहानो हुये–उन्होंने प्रकृतिके गोलेको फोहातद्वारा चक्र कर दिया -सत्–तप–जन वगेरे ७ लोक [१४ भुवन] के त्रिभाग कहलाये. (यह लोक परमाणु, आकाश समान परस्परमें ओत प्रोत हें. सूर्य पृथ्वीके समान जुदा नहीं) ग्रह, उपग्रह, हार बने. वे गोले ठंडे पडे. पहिले कल्पमें धातु [नक्कर]–मूल (बनस्पति) ओर प्राणी हुये. उद्भिज वगेरे ४खानके प्राणी क्रमशः हुये. इनकी भिन्न २ प्रकारकी जाति हार, उपग्रह ओर ग्रहोंपर क्रमशः हुई, उन्नतिके क्रमसे चार पशुतत्व पूर्ण स्वरूपमें आये. चौथे कल्पमें मनुष्य हुये. मनकी उपाधिसे आत्मा (ब्रह्मकी किरण वा अंश) नाम पडा. महत तत्वमेंसे मनस हुवा. ध्यानियोंने जन्म लिया–मानसिक सृष्टि (मनस-पुत्र) हुई. ध्यानचोहानोमेंसे बुद्धिनामक अर्क–किरण–निकला. अब मनस–बुद्धि–आत्मा तीनों मिलके जीव नाम कहाया; मनुष्य जीवोंकी अनेक जाति क्रमशः हुई. उनमें जुगलिये (नर, मादा उभय शक्तिवाले) थे. पीछे इस शक्तिके द्विभाग बने, फेर अन्य जातिके हुये, अंतमें मैथुनी [मनुष्य] सृष्टि हुई. उनको ध्यानियोंने सिखाया. एसे वे कर्मानुसार महाकल्प तक उन्नति पाते रहेंगे. पुनः उत्तर महाकल्पोंमें. इत्यादि.

५ दरमियानमें किसी कल्पमें अग्निसे किसी कल्पमें वायुसे किसी कल्पमें जलसे (इत्यादिसे) भी सृष्टिका आरंभ होताहे.

६ पशुतत्वोंकी सिद्धि, उनके ॲलमंतलोंकी हकीकत, मनुष्योंके कायिक, मानसिक कर्मोंका चित्रगुप्तमें चितार होना, मनुष्योंके संकल्पोंके ॲलमंतल, उनका अपने ओर दूसरे प्राणियोंपर असर होना, कर्मानुसार विजलीद्वारा दूसरा गुप्त शरीर बनना, मनुष्यके मरने पीछे उसके जीवको ध्यान चोहानों (४ महाराजों) की मारफत कर्मानुसार जीवको सों मिलना, उसपर ध्यानियोंकी कृतिसे छाया शरीर ओर स्थूल शरीर बनाया जाकर मिलना, इस प्रकार उन्नति अर्थ जीवका यथाकर्म जन्मपाते रहना. मरने पींछे कामतत्वका काम भवनमें जाना, उसका ओर उसके ॲलमंतलोंका उपयोग, जीवका पशुनत्वोंसे वियोग हुये देवखणमें जाना, निकृष्ट कर्म वालेका वहांसे पींछे खिंचके स्थूल भवनमें जन्म पाना, शुभ कर्म वालेका देवखण (स्वर्ग) में रहना, अगले कल्पमें तीसरा (शिव) नेत्र खुलना,—जंत्रादि समान आकाश वगेरेका ज्ञान होना, इस प्रकार होते सर्वज्ञ बनना—पींछे तत्व (ब्रह्म) ज्ञान होना, निर्वाण मुक्ति पाना वा जीवन मुक्त होना—अपनी खुशीसे परोपकार अर्थ जन्म धारना वा न धारना—पर शरीरमें प्रवेश करना वा मनो कल्पित शरीर रचके विचरना, उपकार करना, अमुक कल्पतक एसा होना, फेर निर्वाण होके ध्यान चोहान पदवीपर आना ओर अंतमें ब्रह्म विषे समाना—ब्रह्मरुप बन्ना.

निदान इस प्रकार केंद्रसे चलके सर्व ब्रह्मांडका अनुभव लेके—दौरा करके अपने केंद्र रुप पर पहोंचता है. इस प्रकार नवीन जीव बनते, भोगते ओर बिगडते तथा लय होते रहते हैं. ओर प्रकृति ओर तिसके तत्व ओर किरण तथा शक्तियोंकी उत्पत्ति, स्थिति ओर लय होता रहता है.—

एसा अनादि अनंत प्रवाह हे. जेसे सुषुप्तिमें सर्व प्रपंच लय ओर जाग्रतमें नाम रुपात्मक भासमान ओर स्वप्नमें सूक्ष्मरुप पुनः सुषुप्तिमें बिंदुरुप होता हे; वेसेही ब्रह्माकी रातमें प्रपंच, बिंदु-शून्यरुपसे, ब्रह्ममें हे. प्रकटिकरणकाल पूर्व ओर लयके पूर्वकालमें सूक्ष्मरुप तथा ब्रह्माके दिवस कालमें स्थूल (वैराट) रुप रहता हे.

७–विद्युत, इथर, शब्द, आकर्षण, तथा शक्तियोंका काम ओर विभाग, कीमिया (इथरका अधिकारी मनुष्य, सोना चांदी बना सकता हे), मंत्र, जंत्र, तंत्र, अनुष्ठान, मारन, मोहन, गृह फलादेश,–इनकी सायंस विद्यासे सिद्धि, भूतयोनी [छाया शरीर-काम शरीर-इनके ॲलमंतलोंका दर्शन ओर असर], भूतोंके फोटो खेंच लेना, मेस्मेरिझमकी विश्व दृष्टि, योगके चमत्कार, काम भवनके जिन परी, पुराणोक्त कथा सत्य-रुपालंकार वाली हें, पूर्व जन्मका स्मरण, जातियोंके नियत वर्ष-इत्यादि थियोसोफीकल सोसाइटीका मंतव्य हे.

(समी.) उपर जितनाके ७ अंकोंमें लिखगया हे, उन बातोंका एक दुसरेके साथ संबंध हे; अतः उनके यथायोग्य संबंध ओर क्रमका स्पष्टिकरण किये विना वाचक की समझमें नहीं आता. परंतु यह तमाम विषय इस ग्रंथका विषय नहीं हे; अतः उपर नाम संज्ञाभी पूरी नहीं लिखी हे.

थियोसोफिस्टोंके पूर्वोक्त मंतव्यमें बहुत दोष हें, ओर वे जनानेभी चाहियें, परंतु तमाम प्रसंग इस ग्रंथका विषय न होनेसे जितनाके इस ग्रंथमें योग्य हे, उतनेको उद्देश लक्षण सहित संक्षेपमें कहाहे, अर्थात् आद्य पदार्थ ओर परिणाम प्रसंग संबंधीकी चर्चा लिखी हे.

हम यह नहीं कहना चाहते कि उसका तमाम मंतव्य-कथन गलत है. वा जैनी, पुराणी, किरानी, कुरानी, वगेरे भाइयों के ग्रंथोंमें जैसे लेख हैं, वैसे गपोडे हैं; किंतु कितनाक विषय परीक्षा, युक्तिके अनुकूल है. यथा मेस्मेरिझमकी सचाई, जिसको जडवादी ओर आर्यसमाजी वगेरे नहीं मानते. परंतु सत्य है (मैंनेभी बहुत परीक्षाकी है); तथापि थोडी सत्यके आधार थियोसोफिस्टोंने बडे बडे गपोडे मारे हैं, वे असिद्ध हैं.

आद्य तत्व ओर परिणाम संबंधमें जितना विषय है ओर उसमें जो दोष हैं वे तमाम दोष वेदांत पक्षानुकूल पडते हैं-अर्थात् वेदांत पक्षमें जितने दोष हैं, वे तमाम थि. सो. के मंतव्यमें आते हैं. अतः पूर्वोक्त दर्शनों अनुसार इस मतका खंडन ज्ञातव्य है.

वेदांत पक्षसे कितनेक मंतव्य अपवादरूप हैं. यथा जगत् कर्त्ता कोइ १ व्यक्ति ईश्वर नहीं, वेद ईश्वर कृत नहीं, ब्रह्मका आद्य संकल्प, स्वभावतः होता है, जीवोंकी कर्म व्यवस्थापर नहीं. वगेरे. अतः पूर्व दर्शनोक्त दोष, यथा प्रसंग लगालेना चाहिये.

जबकि थि. सो. का यह पक्ष हो कि "ब्रह्मेतर सर्व (नाम-रूप-सृष्टि-त्रपुटी मात्र) माया है-मृगजलवत् है, हम मायावी हैं, अतः जीव जगत् सत्य भासता है, अन्यथा ब्रह्मेतर सर्व मिथ्या है," तो उस पक्षका सर्व प्रकारसे खंडन उपर आचुका है.

जबकि थि. सो. का यह पक्ष हो कि "एकही शुद्ध-अविकारी-अचल-ब्रह्म तम प्रकाश, शीत अग्नि वगेरे विरुद्ध धर्मवाले पदार्थाकार होता है यह व्याप्त जगत् उसीका प

रिणाम हे, यहांतककि उत्तम मध्यम सर्व उसीकारुप हे." इस बालवत् मंतव्यका खंडनभी उपर आचुका हे.

जबकि थि. सो., का यह मंतव्य हो कि "नाना प्रकार के नाना पदार्थोंके समूहका नाम ब्रह्महे ओर वे पदार्थ स्वःभावतः संयोग वियोग पाकर नाना जीव जगत् बनेताहे," इस मंतव्यंका खंडन आगे द्वैत पक्षमें हे.

निदान थि. सो. का मंतव्य सयुक्त नहीं हे. गुप्त विद्या प्रकाशक जो नाम रखा हे, यह नाम, नामही हे. इस मतमें कोइ नवीन वा अद्यापि गुप्त रहे बिषयका स्पष्टिकरण नहीं हे; किंतु पौराणियोंके समान खिचडी मत हे. इनका "ज्ञयान" ग्रंथ पुराण पक्ष जेसा हे. इनका लेख नवीन सुधारेसे पालिसवाला हे. परिभाषाके फेरसे नवीन पुराणी कल्पनाको रंगा हे. यथा–

१-जुगलिये-नरमादा जैन पक्षकी कल्पना. तिब्बत्त तातारवालोंका.पक्ष.

२-अनीश्वर वाद, कर्मवाद, मीमांसाका. [तोभी कर्म वाद, इस सोसाइटीमें पूर्ण नहीं हे.]

३-परिणाम वाद, महत-महाबुद्धि तथा मनसोत्पत्ति ओर अंधपुंगवत् जड चेतनका नित्य संबंध-उनका उपयोग-तद्वत् पुरुष प्रकृतिका उपयोग-सांख्यमतका.

४-अवतार, सर्वज्ञता ओर अलंकार, पुनर्जन्म वगेरे पुराण मतका.

५-मेस्मेरिझम, भूतप्रेत, प्रयोग, अनुष्ठान, मंत्र, जंत्र, वगेरे तंत्र ग्रंथोंका.

६-ज्ञानसे मोक्ष, मायावाद, संचित क्रियमाणका ज्ञानसे नाश होना, प्रतिबिंब वाद, जीव ब्रह्मकी एकता वगेरे

वेदांत मतका.

७-अभेदवाद, अविकृत परिणामवाद, विरुद्ध ध-र्माश्रय मंतव्य, यह शुद्धाद्वैतका.

८-अनीश्वरवाद, जडवाद, उन्नतिवाद, सृष्टि रच-नाकी शैली योरोपका.

९-पशु पक्षी त्रियकोंमें जीव नहीं, उनके कर्मका फल नहीं, कर्म व्यवस्थापक ओर गृह, उपगृह, लोक तथा पदार्थ प्रति ध्यान चोहान-ध्यानी (फिरशते)-वगेरे मान्ना पुराण, कुरान ओर बाइबल मतका.

१०-बुद्धके जो ४ पक्ष प्रसिद्ध हैं उनमेंसे कोई प-क्षभी नहीं लिया हे, तथापि शुद्धाद्वैत पक्ष निकालडालें, ओर "ब्रह्ममें हमेशे गति होती हे-उसीका रूपांतर यह ज-गत् हे," थि. सो. का इतना कथन मानलेवें तो, अनीश्वर-वादि बुद्धके क्षणिक विज्ञान वादसे मिलता हे. ओर रूपांतर हुये ब्रह्म वगेरे वादि बुद्ध पक्षोंको मानें बो, बुद्ध रहस्य ग्रंथपर थियोसोफी मत जाता हे.

११-ब्राह्मणोंने उपनिषद् न्यून करडाले, संन्यासी लोक मडम ओर थियोसोफिकल सोसाइटी मतको दोष देंगे, अपने अपने पक्षमें रहके सर्व थियोसोफी-वगेरे लेख, वर्त्तमानका सुधारा वाद वा आर्यसमाजका.

१२-गृह, उपगृह, हार, जीवोंकी जाति वगेरे जैन, पुराण मतका.

१३-सिद्धि वगेरे योग पक्ष.

१४-थियोसोफिस्टभाई न्याय, वैशेषिक, रामानुज, आर्यसमाज, वा द्वैत वादीके पक्षको नहीं लेते. खिस्ति, कुरा-नी, पौराणो, पारसी समान फिलोसोफी (तत्वविद्या) के तो

असंत विरोधी.

इत्यादि प्रकारसे खिचडी मत हे. और इसी कारणसे उनके तमाम लेख तपासो तो, पूर्वापर विरोध होयकर के अ· युक्त निकलेंगे. यथाः—ब्रह्म. जीवके स्वरुप ओर उपयोगमें विरोध हे—अयुक्त पक्षहे. कहीं तो ध्यानचोहानोको स्वभावतः होना कहा; कहीं तो भविष्य कल्पोंमें जीवोंको उस पदवीपर पहोंचना कहा; कहीं तो जीवको मिश्रित (बुद्धि—मनस—आत्मा) मध्यम वस्तु कहा; कहीं तो अमर कहा. कहीं तो "बलवान, निर्बलको मारता—दबाता हे " इस नियमको सृष्टि नियम मानलिया; कहीं तो इसके विरुद्ध पशुवधादि पक्षको निंदा. कहीं तो आकाशकी उत्पत्ति मानी; कहीं तो देशकालको अनादि अनंत मानलिया. कहीं आकाशको अवस्तु, कहीं आकाश (पोल) को ब्रह्म मानलिया. कहीं तो ब्रह्मका रुपांतर माना; कहीं तो ब्रह्मकी किरणभी मानी. कहीं तो ब्रह्मांडको व्यापक एक ब्रह्मका रुपांतर माना; कहीं तो सांतुं लोकको परस्पर ओत प्रोत (व्याप्य व्यापक, व्यापक व्याप्य) मानालिया. कहीं तो थि. सो. के मतको सातवां दर्शन लिखडाला; कहीं तो शोधक मंडली मानलिया. कहीं तो वेद, गीता, उपनिषद्को शिरोमणी मानलिया, कहीं तो उसके विरुद्ध जगत्कर्त्ता एक ईश्वरका खंडन करडाला. कहीं तो तमाम मतके आचार्य (इसु, बुद्ध, महावीर, जरतोस्त, स्वीडनबोर्ग, अरस्तु, शमशतबरेज, मौलानारुम, राम, कृष्ण, शंकर वगेरेको ध्यानचोहान—महात्मा—वा योग्य अवतार मानके प्रशंसा की हे; कहीं तो उनके पक्षका अपमान किया हे. कहीं यथा देशकाल उनको जो चलना पडा उसको नहीं निंदा हे.

जो इनके सृष्टिक्रमके असंग मंतव्यपर उतरें तो दोषोंका वारपार नहीं? कहांतक लिखें.—इसको नवीन पुराणीकी उपमा देना बस है.

तथापि इस मतकी स्थापक 'मडम 'ब्लेवॅत्स्की'को तो, इसलिये धन्यवाद देंना चाहिये के उसने - स्त्रीजाति हुयेभी कितना काम किया है. स. १८३० इ. (सं. १८८७) में जन्मी. युरोप, अमेरीका. चीन, तातार वगेरे देशोमें फिरी. स. १८७५ में अमेरीकामें मंडली स्थापि. जडवादका मुकाबला किया. स. १८७५ (संवत् १८३६) में हिंद विषे आई. स. १८८२ (१९३९) में मद्रास. इलाके आध्यार गाममें थि. सो. मंडलीने मुंह देखाया. सं. १८८४ (संवत् १९४१) में पीछे चली गई. ओर कितनेही ग्रंथ बनाये. अंतमें गुप्त ज्ञानसंहिता बनाके बेमारी पाके स. १८९१ इ. (१९४८) में मरगई. जोकि वोह हमेशे रोगी रहेतीथी तोभी. इस १६ वर्षमें युरोपके जडवादी ओर हिंदुस्थानके कितनेक इंग्रेजीखांके दिलको हला डाला. "आर्यधर्म, महिमावाला है," एसे संस्कार प्रदेशियोंके दिलमें जन्म पाने लगे. खरेखर—इसुरिव्रास्ति ओर ईरान अरबके आचार्योंसे कम न थी. उसके तीनों नियम पार पडो. वे नियम यह हैं. १ धर्म जातिके भेद निवारण पूर्वक भाईबंधी हो, एक धर्म हो. २ धर्मविद्याके ग्रंथोंका उत्तेजन. ३ तत्वज्ञानपर शोध चलाना. यह तीन मुख्य नियम थियोसोफीकल सोसाइटीके हैं. पार पडें तो अच्छाही है. यद्यपि नियम विरुद्ध इस सोसाइटीमें पक्षापक्षीकी गुप्त वास फेलने लगी है; तोभी मडमके लेख खरेखर इन्हीं नियमोंपर हैं. अतः आशा है के थि. सो. जब तब नियमोंको संभालेंगे.

माना कि जेसे अरब [गंवार] में मुहम्मद साहेबने अपना धर्म चलाया, सो वडी बात नहीं,-लोभियोंको जैन मत पसंद पडे, यह आश्चर्य नहीं-युरोपकी जंगली प्रजा, 'इसु' पर कुरबान हो, यह महतं नहीं-पंजावमें ७०० वर्षसे मुसलमानी धर्मसे छाये हुये, अपने आर्यधर्मसे नावाकिफ हुये पंजाबियोंको आर्यसमाजने सीधा किया, वहांके किरानी कुरानीको पीछा हठाया, यह आश्चर्य कारक वात नहीं,-वर्त्तमानके नामके साधु ब्राह्मणोंको पुराण, वल्लभ वगेरेका मत प्रिय हो, इसमें आश्चर्य नहीं, वेसेही इंग्रेजीखांनोंको मगज-दिलको थि-सो. हलाके चेतन वाद पर लावे, यह वात आश्चर्यकारक नहीं; क्योंकि जेसे अरव वगेरेको नवीन वात पसंद पडी, वेसेहीं अन्योंकोभी मनमें चोंटीहो. जेसे स्वामी दयानंदजीने तो, प्राचीन मतही बताया है; तोभी, भूले हुये पंजाबी वा गोप लोक उसको नवीन जानके मानते हें. वेसेहीं मडम माधवीका हे. इधर उधरसे एकत्र करके रचनाकी हे; तोभी, नवीन भूलेहुये इंग्रेजीखां (हिंदू वा युरोपियन) उसको नवीन जानके आश्चर्यमय ओर गुप्तज्ञान मानते हें. सच पूछो तो, आर्यफिलोसफरोंका अनुभव-परीक्षामें आने योग्य तत्व अभी दूर हे; तोभी. उनलोकोंने असलही मानलिया हे.

तथापि मुझे मडम पंडिताकी स्तुति हीं करना उचित है क्योंकि. उसने आर्यसमाजके नीचे आर्यधर्म महिमा गाने, जनाने वास्ते दूसरी गादी वनाई हे, जोकि प्रचलित धर्म-मत मात्रमें दूषण हें-निर्दोष सिद्ध नहीं होते, अतः किसीकी प्रशंसा घटित नहीं होती. तोभी, उन सदोषोंमेंभी कोन एसा मत हे कि जो ओरोंसे ज्यादे उत्तम हो? ओर लोक व्यवहार नीतिके अनुकुल हो? लोकोंको सुखदाई

हो? यथार्थकी छाया लेता हो? इसके उत्तरमें धर्मसंप संबंधमें थियोसोफी मत हे. शेष भागमें आर्यसमाज उत्तम हे, एसा मेरा निश्चय हे. यद्यपि यह मान सकते हैं कि पुराण, जैन पक्ष समान कायरता, वहम, निर्वलता—पराधीन फेलानेका निमित्त थि. सो. हो, तथापि वर्त्तमानकाल ओर व्यवहार दृष्टिसे तो प्रचलित नाना धर्म, संप संस्कारी हों उस चालको बतानेमें इस सोसाइटीकी चाल कुछ अच्छि समझता हुं. जो वोह, सयुक्तता आर्यसमाजसे सीखे तो ओरभी अच्छा हो. मूल यथार्थ तत्व पर पहोंचने लगे. देश धर्मकी उन्नति हो. संभव हे कि, मेरे उक्त खयाल भूलसे भरे हुये हों; क्योंकि जमानेके फेरफारसे अन्यथा परिणामभी निकलता हे. अतः आग्रह छोडता हूं.

(थि.) हमारे पक्षमें वेदके पढे हुये, लार्ड, जडज, बेरिस्टर—वकील ओर बडे बडे मनुष्य हें, अतः यह मत उत्तम हे. तुम न्यून दृष्टिसे केसे देख सकोगे?

(स्मी.) इस मतके खंडन करने वाले वा विरोधी पक्ष धारन करने वाले वेद पढे हुये, लार्ड, जडज बेरिस्टर—वकील ओर बडे बडे हें (देखो दयानंद स्वामी वेदवक्ता ओर राजा—ओर करनल वगेरे प्रसिद्ध हें). महाराणी अपने कुटुंब सहित, रूमका बादशाह, रुसका शाहनशाह, वगेरे तुम्हारे वेदिये, लार्ड जडज वगेरेसे बडे बडे अन्य धर्म पंथमें हें, अतः तुम्हारे सिद्धांतमें वोह धर्म उत्तम हे. तुम्हारा पक्ष नाकाम हे.

(थि.) थि. सो. मतमें जो जो गुप्त वातें लिखी हें, उनके पक्षका जो तुम इस चोथे कल्पके मनुष्यने खंडन किया हे, सो मान्य नहीं होसकता; क्योंकि यह वातें त्रिनेत्र-

वाले महात्माओंने बताई वा लिखी हैं, तुम्हारे जेसे मनुष्य केवल मनुष्य बुद्धि वा साधारण नियमोंपर दोडनेवाले हैं; वे बातें इन नियम ओर मनुष्य बुद्धिकी विषय नहीं. उनके तत्व, बुद्धि ओर फिलोसोफीसे पर हैं; अतः तुम्हारा खंडन व्यर्थ है.

(समी.) आपका कहना केसे स्वीकार लेवें. ? जो जो कहोगे वा बताओगे वा अपने पक्षमें लेनेको सुझाओगे, वे सब, बुद्धि ओर सृष्टि नियमके विषय होने चाहियें. अन्यथा इतनाही उत्तर बस है कि आपके तीन नेत्रसे आगे अभी सात ७ नेत्र हैं, वे जब खुलेंगे तब, हमारी बातें समझोगे; ओर आर्य सनातन धर्म जानोगे. जिसको आप महाकल्प कहते हो, उसमें ध्यानचोहानोंको सर्वज्ञ मानते हो, सो तो हमारे महाकल्पका एक पहेर है........आपका गुप्त दिक्षितही हमको बताता हे के थि. सो. का सिद्धांत यथार्थ नहीं है; नहीं तो हम एसा नहीं कहते. आपका उन्नति नामा नियम यह कहता हे कि थि सो..जबकि उन्नत्तिपर पहोंचेगी तब "बुद्ध रहस्य" वाली बातोंको गलत मानेगी; मजकूर खंडन समझमें आजायगा; ओर अपनी भूल स्वीकारने लगेगी. [जेसा सिर पेर विनाका अयुक्त प्रश्न है; वेसाही कल्पित उत्तर है]-इत्यादि क्यों न मान लिया जाय ?

(थि.) मेडम ब्लेवॅत्सकीने गुप्त महात्माओंसे पूछके वा अपनी तरफसे जो कुछ लिखा हे, वोह यथार्थ हे, परंतु उसके रहस्यको अभी हम (थियोसोफिस्ट) ही नहीं जानते, तुम तो क्या जानोगे.

[समी.] मानो कि हम ओर आप तो नहीं समझते, परंतु आपका जो सभासद समझता हो, प्रसिद्ध करे. फेर

देखें-तपासें. जितना जितना प्रसिद्ध होता जाता है उतना उतना सफा होता है. इंग्रेजीमें ग्रंथ हैं उनको धर्म फिलोसोफीके अनजान वाह वाह केसे न करें ? एसा होनाही चाहिये. जो जैन, वल्लभ, नारायणस्वामी समान गुप्त रखो तो, औरभी महिमा बढे. परंतु आप वेसा नहीं करते; अतः शोधक, जिज्ञासु मंडळीसे बाहिर नहीं कहना चाहते इस ग्रंथमें जितना लेख हे वोह सर्व यथार्थ है. परंतु उसके रहस्यको आप नहीं समझते, अथवा सर्व धर्मपंथोंके ग्रंथों वास्ते एसाही क्यों न मानलिया जाय ? निदान आप सुधरी हुइ मंडलीके सभासदोंके एसे अनुचित उपदेश अयोग्य हैं. सच्चे छुपे नहीं रहते, उनका खंडन नहीं होता. "सत्यमेव जयति" इसपर आरुढ रहो. जेसे बुद्ध देवने यथाशिष्य वा यथा देशकाल परस्पर व्याघातवाला पक्षभी बताया और लोगोंको अनुयायी किया, वेसे आपकी इच्छा होतो, अन्य पक्षों समान आपभी करें. स्वतंत्र हें परंतु जय, सत्यकी होगी. अन्यथा अन्य मतों समान हालत होगी.

शुद्धाद्वैत [वल्लभपंथ वगेरे मत] भी पुराण मतकी शाखा है. इस मतके ग्रंथ पूर्ण नहीं हैं. भक्ति सूत्रोंका अनुयायी है. उपरका भाग प्रसिद्ध है. अंतरका अपूर्णतासे वा कोई अन्य गुप्त कारणसे यथायोग्य प्रसिद्ध नहीं.

यह तमाम [जीव-पंचभूत-गति-ईश्वर वगेरे ब्रह्मांड] ब्रह्म है. " सर्व खल्विदं ब्रह्म " " श्रीकृष्णशरणंमम " यह इसका सिद्धांत है. जेसे 'कछवा' अपने अंग बाहिर निकालता है ओर सुकेड लेता है, एसे ब्रह्म, जब सृष्टिरुप परिणाम पाता है. तब ब्रह्मांड होता है. जब संकुचित करता है, तब प्रलयरूप होता है. इस प्रकार ब्रह्म-विष्णु अपनी लीला करता है. आपही जीव आपही दासरुप होता है. आकाश, काल, तम, प्रकाश, जल, शीत वगेरे तमाम उसीके परिणाम हैं. वही बंधमोक्षवाले जीवरुप होता है. वही अवतार धरता है. तमाम दृष्टश्रुतका समूह ब्रह्मरूप है. जीवोंको कर्मानुसार स्वर्ग, नर्क प्राप्ति वगेरे उसका लीलारूप खेल है. अन्यथा न अन्यथा करनेमें समर्थ है-करता है. यथा पापीको क्षमा, धर्मात्माको स्वर्ग न देना, इत्यादि करनेमें स्वतंत्र है. सर्वका प्रेरक है इसमतका विरुद्ध धर्माश्रय अविकृत परिणामवाद है.-इतना (मल मूत्ररुप) रुपांतर होतेभी पुनः ब्रह्म अपने असली स्वरुपमें आठेरता है. *

---

*व्याससूत्रपर अपूर्ण वल्लभ भाष्य [सुनते हैं] गीता, भागवत, नारद पंचरात्र वगेरे इस मतके मान्य ग्रंथ हैं. जितने गोस्वामी--आचार्य होते हैं, उनको उनके अनुयायी प्रभुजी ईश्वर-कृष्णका अवतार मानते हैं. स्वयंभी इस वातको गुप्त रूपमें स्वीकारते हैं. !

[समीक्षक] जो इस पक्षका स्वीकार हो तो, पूर्वोक्त अभिन्न निमित्तोपादान [दर्शन १४] वाले दोष प्राप्त होते हैं.- ब्रह्म विकारी ठरता है. उपादयवाले तमाम दोष [जड़-नाशवान-दुःख-दुर्गंध-छल-झूठ-राग-द्वेष-वगेरे], ब्रह्ममें मानने पड़ेंगे. यह विषय (सर्व ब्रह्म है) किसने जाना? तहां ज्ञाताके भिन्न. जगतको मानना चाहिये.-इदं पद सर्व पद का वाच्य वक्ता-ज्ञातासे भिन्न स्पष्ट है सर्व ब्रह्म, एसा माननेमें पाप-पुण्य गोहिंसा-मांस भक्षण-गोस्वामी-श्रीजी महाराजोंको सिक्षा देनी (हुईहै) मूर्त्तिखंडन, वगेरे निषिद्ध नहीं मानसकेंगे कर्मोपासनादि साधन ओर स्तुति, प्रार्थना भक्तिमार्गका उच्छेद होगा. रासलीलामें यवनादि-सर्वको शामिल करना पडेगा. ब्रह्म सावयव-सांश ठेरेगा. अधिष्ठान विना, अणु, अणु मानके समूहको ब्रह्म पदका वाच्य ठेरावें तो, अन्योऽन्याश्रयताकी असिद्धिसे यह पक्ष असमीचीन रहेगा. सर्वदा अक्रिय आकाश. ब्रह्मपदसे इतर ठेराना पडेगा, क्योंकि कछवाथे [दरयाई जानवर] समान स्वगत भेदरहित ब्रह्मका एक अंग हिले ओर दूसरा गतिमान न होवे, एसा कथन-मंतव्य बालकोंकी कहानी समान है विकृत या अविकृत-परिणाम मात्रही देश [आकाश-जंघे] विना नहीं होसकता. उनकी श्रुति प्रतिपाद्य सर्वथा निष्कलंक-व्यापक-अ-[illegible] को क्रियावान-परिणामी बताना, गोस्वामी*-यति [illegible] वा व्यभिचारीको आचार्य-गोस्वा-[illegible] था जबकि 'सर्व ब्रह्म,' तो स-[illegible]; इसलिये शुद्धाद्वैतका निषे-[illegible] अमूर्त्तः" "न तस्य प्रतिमा

अस्ति "–श्रुति वाक्यभी प्रमाण मानने चाहिये. आकाशादि निराकार–अमूर्त्त, कभीभी मूर्त्तिमान [शब्द–अग्नि–तम बिजली–आकर्षण–मन–शक्ति–राम–कृष्ण–विष्णु वगेरे मूर्त्तिवाले साकार हें]. नहीं होते–नहीं हो सकते. (ईश्वर प्रसंग वांचो). जो ब्रह्मकी नानारूप लीला मानके अल्पज्ञ कर्त्ता भोक्ता, सर्वज्ञ, अकर्त्ता, अभोक्ता, रूपसे नाना परिणामि मानें तो, एक अद्वितीयमें विरोधी धर्म असान्य होनेसे चोर साहुकारकी समानतावाले दोष आवेंगे तम प्रकाशका भेद–अभाव भावका भेद–ओर विभुपरिच्छिन्नका भेद,–यह सर्व, ब्रह्म प्रकृति ओर वस्तु मात्रकी इतरेतरत्व स्पष्ट जनारहे हें. जो, गीहूं, बाजरेके मिश्रण राशी समान [यह सर्व धान हे] एसा मानके उक्त वाक्यका अर्थ लेवें तो, परिभाषा मात्रका भेद रहता हे, जडवादि वा द्वैतमत बन जाता हे. तथापि जब जड, चेतन, ज्ञान, गति, बंध ओर मोक्षादिका विभाग विवेक करेंगे तब, पूर्वोक्त दोष प्राप्त होंगे. निमित्त विना व्यर्थ लीला करनेसे ब्रह्म उन्मादि–मूर्ख ठेरेगा. व्याससूत्रके विरुद्ध ओर किरानी, कुरानी, इरानी वगेरेके ईश्वर समान शुद्धाद्वैतका ब्रह्मभी दोषी–भोक्ता–देवाना–गांडा वा अन्यायी मानना पडेगा. थि. सो. मतवाले दोषभी आवेंगे. ओर पूर्व दर्शनोंमें जो जो अद्वैतपक्ष विषे ओर सर्वज्ञत्वादि प्रसंगमें लिखे हें वे तमाम दोष इस मत ओर लालजीके अवतारोंको ग्रसेंगे.

हडकाये हुये कुत्तेकी लालका प्रवेश होनेसे कुत्तेके काटे हुये रोगीके पेटमेंसे कुत्ते जेसे जीव निकलते हें; वेसें भृंगकी लाल ओर कीटकी योग्यतासे कीट, भृंग होता हे, एसे सारुप्य मोक्ष माने वाले वा आकाश सर्वव्यापक व्याप्य समान सालोक्य वा सामीप्य वा सायुज्य मोक्षवादि

किंवा शरीर अपेक्षासे राजा रंककी समानता समान जीवे-श्वर एक होना मान्ने वालोंकी बुद्धिपर आश्चर्य !

मोक्ष निर्णय विना उसके साधनका निर्णय असंभव; उनके विना मुमुक्षता नहीं बनती. जिस मतके संस्कारसे मुमुक्षु बनता है, उसी मतके साधनमें पडता है; परंतु जब उस मत-धर्म-पंथ तथा उसी धर्म-पंथकी मोक्ष और उसके साधन अन्य पक्षकारों द्वारा निर्णय करता है,- इस प्रकार सत्यको शोधता है तो, सत्र मत-पंथ-धर्मकी मोक्ष, उसके साधन और धर्ममें मोटी पोल निकलती है. परीक्षा वासते एक यही मत बस है. (देखो छपा हुवा पुष्टिमार्ग और लाइबल केस).

संक्षेपमें इस [शुद्धाद्वैत] प्रकारके मत बालकोंकी कल्पित कहानी समान हैं और अज्ञ-बालकोंको मोहित करते हैं. चक्कर-रासलीलामें घुमाते हैं-इस अयुक्त मतका जो निकृष्ट परिणाम निकला, वोह और इस मतके दोष लोक प्रसिद्ध हैं [देखो पुष्टिमार्ग नामक ग्रंथ और महाराजका लाइबल केस. इत्यादि कारणसे विशेष लिखना उचित नहीं समझा. उद्देश मात्र दोष जनाये हैं.

(ग.) विदेशी अद्वैत.

वक्ष्यमाण कथा कहांतक सत्य है वा असत्य होगी-सो हम नहीं कहसकते; परंतु सुनते हैं और थियोसोफिस्टोंके ग्रंथोंमें वांचते हैं. उस अनुसार लिखते हैं:-याहूदीकेबाला, क्रिश्चियनोंमें डोमीनकनब्रुका तथा फेलसूफ स्पीनोझा वगेरेका विचार तथा मुसलमानी और जरतोस्त धर्ममेंसे सूफीतरीका और चीन वगेरे देशोंमें, बुद्ध सिद्धांतसे अविरुद्ध 'लेओट्सी'

का प्रचार किया हुवा मार्ग—यह तमाम जीवेश्वरकी एकता ओर जगत्‌का मिथ्यात्व तथा अभेदसे मोक्ष [अर्थात् केवला द्वैतानुसार] मानते हें. अद्वैतज्ञानियोंमें 'स्पीनोझा' 'हेगेल' [जिसके वास्ते, "डेवीडमेसन—रीसंटब्रिटीश फिलोसोफी" विद्वानोंकी साक्षी लेके दुनियामें आखरी तत्व ज्ञानीकी पदवि देती हे] प्रसिद्ध हें. स्कोपनहोअर, पेरेसेलल्सस, जेकबंव्हीम, अेलिफास, लेवी वगेरे धर्म ओर उपनिषदानुसार अद्वैत मतमें कुशल थे. इनमेंसे मुसलमानोंके सूफियोंका मत उपर लिखे जैसा हे, यह उनके ग्रंथ पठन ओर फकीरोंके संगसे ज्ञात हुवा. अन्यके वास्ते विशेष नहीं कहसकता. तोभी इतना तो जितांना जरुर हे कि, जिस प्रकारका नवीन वेदांतियों, किरानी, पौराणी, इरानी, थियोसोफियोंका [सजातीय, विजातिय, स्वगत भेद रहित] अद्वैत हे, वेसाही उनका हो तो, असिद्ध हे जिसकी चर्चा—प्रक्रियाओंके दोष ऊपर कहे हें. ओर जो यथार्थ बोधक उपनिषदों समान हो तो, जब तक उनका मंतव्य संपूर्ण नहीं देखें - न जानें, वहांतक उनके मत विषे कुछ नहीं कहा जाता. दूसरेके लिखे वा माने हुये वा अर्थ किये हुयेपर विश्वास रखें तो, उपनिषद्‌के अर्थ द्वैत ओर अद्वैत—उभय पक्षमें लेजानेवालोंने जो कुछमानाहे सो—उभय पक्ष मानने पडेंगें. कुछ सिद्ध न होगा. तथापि जब वे वा अन्य कोई प्रकारका मत समक्ष हों, तब उसे वक्ष्यमाण "मतमान" में 'तोल' लीजे. दूषण भूषण स्वयं जान सकोगे.

[घ.] बौद्ध मत.*

बौद्ध मतमें दो पक्ष मुख्य हें.—शून्य ओर अशून्य. अ-

*बौद्धमतके स्थापक बुद्धदेवको २९०० वर्ष हुये हें. तमाम

शून्यके अद्वैत [योगाचार] ओर द्वैत (सोत्रांतिक ओर वैभाषिक) यह दो भेद हें. वस्तुतः क्षणिक पक्ष,-पिछले तीनों पक्ष-द्वैताद्वैतमें हे.

भूमंडलमें जो दो अर्बुद मनुष्य हों तो, ७० क्रिरोड बुद्धमतके हें-अर्थात् सर्व धर्मोंसे विशेप व्यापक हे. बुद्धमतकी बडी चार शाख हें; किसीका एसा कथन हें कि बुद्धने श्रोताकी बुद्धि अनुसार उपदेश किया, इसलिये मतमें भेद पड़े. उसका रहस्य प्रचलित पक्षोंसे अन्य था. किसीका यह कथन हे कि, उसके अनुयायियोंने पक्ष बना लिये. कोई उसे ईश्वरवादि कोई उसे अद्वैतवादि मानता हे. उसके सूत्र कम मिलते हें. जो मिलते हें वे खंडित नाना अर्थभेद वाले मिलते हें उसके बडे ४ पक्ष यह हें.

१ माध्यमकः—असत् ख्याति-ज्ञान अपने आपमें अवस्थित हे. जेसे रज्जुमें सर्प, न था, न हे, न होगा; अतः शून्य हे तद्वत् यह तमाम त्रिपुटी-प्रपंच हे. अर्थात् शून्यरुप हे.

२ योगाचारः—आत्मख्याति—विज्ञानसे इतर बाह्यांतर कोई पदार्थ नहीं हे, किंतु एक विज्ञान नामा पदार्थ हे. वोह क्षणिक-गतिवान परिणामी हे. क्रमशः त्रिपुटिका रुप रखता हे. जब ज्ञेय परिणाम हो तब, ज्ञान ओर ज्ञातारुप नहीं. जब ज्ञातारुप परिणाम हो तब, ज्ञेय ओर ज्ञान परिणाम नहीं. उस विज्ञानकी आलय (अहंप्रत्य) ओर प्रवृत्ति, यह दो धारा अनवच्छिन्न-क्षण क्षणमें होती रहती हें इसका निमित्त पूर्व वासना हे, वासनाके अभाव हुये विज्ञानकी स्थिति मोक्ष-निर्वाण हे. इस मतमें कारण कार्यसह वर्त्तमान वा तादात्म्य संबंध संबंधीको अपेक्षावाला मुख्य अनुमान प्रमाण हें.

३ सोत्रांतिकः—बाह्य पदार्थ मानता हे. उसका विषयी विज्ञान हे. परंतु बाह्य पदार्थ अनुमानके विषय हें प्रत्यक्ष नहीं. शेप क्षणिकवादवत्.

शून्यवादका साक्षी वास्ते शून्यका सिद्ध कर्त्ता—अनुभव करनेवाला उससे भिन्न होना चाहिये. शून्यसे नाना दृश्य पदार्थकी उत्पत्ति असंभव. इत्यादि प्रकारसे शून्यवाद समीचीन नहीं.

जो विज्ञानसे भिन्न बाह्य पदार्थ मानें तो, उनको अधिष्ठानकी अपेक्षा ओर वक्ष्यमाण द्वैत पक्षवाले दोष आवेंगे. नाना विज्ञान ओर नाना पदार्थ (ज्ञेय) माननेसे जीव, अजीव पक्ष स्वीकारनेसे द्वैत पक्षवाले दोष आवेंगे. जो एक विज्ञानका ज्ञान ओर दूसरेका ज्ञेयाकार [परोक्ष अपरोक्ष पदार्थाकार] होना मानें, तो एक दूसरेका सहचारी नियम सिद्ध न होगा; जहां एक घटको ४ मनुष्य हाथ लगाके देखें, वहां चारोंको ४ घट प्रतीत होने चाहिये; परंतु एसा नहीं होता. जो पदार्थाकार रखनेवाले विज्ञान अनंत मानोगे तो, परमाणुवाद—प्रकृतिवाद सिद्ध होगा. किंवा वेदांतपक्षका स्वप्नवाला अविद्यावाद स्वीकारना पडेगा. उसमें पूर्व दर्शनोक्त दोष आवेंगे. जो स्वप्नवत् विज्ञानाकार त्रिपुटी मानके क्षणिक विज्ञानका परिणाम मानें, ओर अंतमें विज्ञान मात्र रहनाही स्वीकारें, तोभी वेदांतपक्षवाले दोष आवेंगे, [शेष दोष वक्ष्य-

---

४ वैभाषिकः—अर्थज्ञान अन्वयित पक्ष है. अर्थज्ञाता, ज्ञेय भिन्न मानके सविकल्प, निर्विकल्प, यह दो भेद ज्ञानके मानता है. ओर विज्ञानसे भिन्न बाह्य पदार्थ प्रत्यक्षके विषयभी हैं, एसा स्वीकारता है. शेष क्षणिकवादवत्.

५ लंका वगेरे देशोंमें ईश्वरवादिभी बौद्ध हैं. ओरभी रूपांतरवाली अनेक शाखा सुनते हैं.

६ यह पक्ष द्वैताद्वैत रूपमें है. तथापि एक पक्ष अद्वैतमें गिनते हैं; इसालिये यहां प्रसंगमें लिया गया है. ओर संक्षेपमें खंडन जनाया है.

माण अंक ३ में[1] वांचोगे.]

तदुपरांत जो बौद्धमतका ईश्वरवाद पक्ष मानो तो, पूर्वोक्त ईश्वर प्रसंगवाले दोष आवेंगे.—इस प्रकार बौद्ध मतके अद्वैत (ओर द्वैतवादमेंभी?) में दोष हें.—असंगत मत हे.

(अं.२). द्वैतासिद्धि.

अद्वैतपक्षोंका उच्छेद जानके अद्वैतपक्षवादि, द्वैतपक्षके दोष जनाता हेः—

[सिद्धांति] जेसे ऊपर अद्वैत मतका समीक्षकने खंडन किया, वेसेही वोह (समीक्षक) जो जो पक्ष मानेगा सोभी अयुक्त—असंगत रहेगा. अर्थात् द्वैतमतमात्रभी समीचीन नहीं; *किंतु सदोष हे. यथा-जो कोइ द्वैतवादि ईश्वर वा शक्ति वा अन्य वस्तुको व्यापक मानता होगा उसको, पूर्व प्रसंग [व्यापकमें अन्य स्वरूपका अप्रवेश ओर अकर्तृत्व हे] समान, स्वपक्ष छोडदेना पडेगा. ओर जो अनीश्वरवादि हें (जेसेके जैन, पूर्वमीमांसा, सांख्य—ईश्वर नहीं मानते; परंतु देशकाल आत्मादिको व्यापक मानते हें), उनकोभी, पूर्व कही हुइ रीति समान स्वपक्ष त्याग करना पडेगा. ओर जो व्यापक वस्तुको नहीं माननेवाले [युरोपके फिलोसफर—हे-

---

1 अंक [३] पक्षतुला, प्रसंगगत नोट नं. ६ वांचो.

*द्वैत, द्वैताद्वैत (वक्ष्यमाण अंक ३ की पहिली नोट वांचो ईसानी, यहूदी, किरानी, कुरानी, ब्रह्म, प्रार्थनासमाजी ओर कोइ पुराणीका अनुपादान—अभावजन्य सृष्टि हे,यह मत हे; पुनर्जन्म नहीं मानते ओर जीवको सादि सांत कहते हें. यह पक्ष द्वैताद्वैत के अंतरगत हें—एसे अभाववादि, ईश्वरवादि पक्षोंकी असमीचीनता प्रसंगोपात पूर्वमें आचुकी हे.

मिल्टन, हरबर्ट-सायन्सवादि-आकर्षणवादि, चार्वाक, परमाणुवादि,-जडवादि वा परिच्छिन्न ईश्वरवादि इत्यादि] हैं. उनको, परिच्छिन्न जडादिके व्यापक अधिष्ठान माने विना, छूटका* नहीं है क्योंके जिस समय आकर्षणके स्वरूपका निर्णय करोगे वा ग्रहादिक अन्योऽन्याश्रयकी तपासपर उतरोगे, वा सृष्टिके अनादित्व ओर स्वभावतः विद्यमानके शोध पर दृष्टि डालोगे, किंवा प्रत्येक पदार्थके स्वरुप लक्षण (अणु, मध्यम वा व्यापक, सावयव वा निरवयव, भाव वा अभाव, जड वा चेतन, विरोधी, वा अविरोधी, उपादान वा उपादेय, कारण है, वा कार्य इत्यादि) पर ध्यान दोगे वा परिच्छिन्न ईश्वरकी सत्ता तपासोगे ओर अनुभव इत्यादिका निर्णय करोगे; उसीकालमें परिच्छिन्न वादकी परिसमाप्ति होजायगी. ओर जो द्वैत क्षणिकवाद [वा शून्यवाद] है, उसका परि अवसान तो, उसके मूलको निरवयव मानके परिणामी मानना वा उसको, जाननेकी अपेक्षावाला (साक्षी) सिद्ध होनेसेही सदोष जान पडेगा. एक विज्ञान वा नाना क्षणिक विज्ञानके निर्णय करनेपर अव्यवस्था

---

* अधिष्ठान विना अणु अणुमानें तो, अन्योऽन्याश्रयता नहीं बनती. ओर उस अणुवाला रस्सी [दोरी] माननेसे यथोचित व्यवस्था नहीं बनती. उस रस्सी बननेकोभी आधार चाहिये. तमाम ब्रह्मांड [अणु समूहात्मक सृष्टि] के गोलेका आधार मानना पडेगा. जेसे जलमें डुबकी मारें वहां आकाशने शरीरको अवकाशदिया; परंतु चारुं तरफके जलका भार शरीरपर नहीं मालुम होता, उसका कारण जलकी आधारता है-अर्थात् चारुं तरफसे जल महारता है यह आकाश ओर आधारका अतर है. निदान आधारविना माने छुटकारा नहीं.

ओर व्यवहारमात्रकी असिद्धि होगी तथा अपरोक्षत्वक
सर्व वादमें दोषही हे. जब किसी प्रकारकाभी द्वैत [दो प-
दार्थ] मानोगे, तब उन परस्परमें भेदवादही दोषको
सिद्ध करदेगा. जेसेके घट [परमाणवादी] का पटमें भेद
सो, भेदसहित हे वा भेदरहित हे? इसका उत्तर नहीं ब-
नेगा. घट, पट भेदसहित पटसे भेदवान हे तो, वा घट
पट भेदरहित भेदवान हे तो, वा घट पट भेदरहित भेदवान
हें तो, वा प्रतियोगी विना धर्मीमें भेदकी सिद्धि अन्योंके
भेदसे मानेंगे तो, वा घट पटके भेदोंके भेदमानने पडेंगे तो,
वा घट गत पटभेदका घटसे भेद मानेंगे तो;-निदान हरेक
रीतिसे अनवस्था, अन्योऽन्याश्रय वा आत्माश्रयादि दोष
आवेंगे. ओर जब द्वैतवादि एसा कहेगा के, 'अभाव वा
भेद कोइ पदार्थ नहीं हे, किंतु एक कल्पनामात्र हे.' तब,
'भेद हे,' एसी सिद्धिही नहीं होगी.-उसको चूपही रह-
ना पडेगा.

तथा सो भेद वा अभाव वस्तुतः कुछ हें तो, अणु
हें वा मध्यम हें वा विभूपरिमाण हें? (इन तीन परिमाणसे
इतर कोइभी वस्तु नहीं होसक्ती. तदेतर जो मानोगेसो,
कल्पितसे इतर नहीं सिद्ध करसक्के.) अब जो भेद वा अ-
भावको अणुरूप मानोगे तो, एक परमाणु विशेषका अ-
भाव, परमाणु अधिकरणसे इतर सर्व देश [आकाश] में हे,
अतः अणुरूप नहीं एसा, सिद्ध हुवा. ओर जो विभू मानो
गे तो, देशका अभाव देशवत् विभू होना चाहिये; परंतु
एक परमाणु ओर अणु अधिकारमें, विभूदेशके विभू अ-
भावको आश्रित मानना कल्पनामात्र हे वा असंभव हे तथा,
परमाणुके अणु अधिकरणसे इतर देशमें, उसका अभाव

नहीं है, इसलिये विभू नहीं है. और जो घटादि स्वरूप परिमाण समान तीनों प्रकारका परिमाण मानोगे तो, दो परिमाणका पूर्ववत् खंडन समझलेना चाहिये. शेष रहा मध्यम परिमाण भेद (अन्योऽन्याभाव) सो जन्य होना चाहिये, परंतु द्वैतवादमें नाना वस्तु अनादि हैं तो, उनका भेदभी अनादि होना चाहिये. अर्थात् अजन्य है. इसलिये अभाव वा भेदका मध्यम परिमाण कहेना असंगत होगा. और जो हठसे मानभी लेवें तो, उसकी उत्पत्ति पूर्व, भेद सिद्ध नहीं होगा. तथाही उसका उपादानभी अभावरुप कहा चाहिये. इसप्रकार उपादान अणुपरिमाण कहेना पडनेसे पूर्वोक्त दोष आवेंगे.

औरभी, जो नाना परिच्छिन्न पदार्थ हैं सो, देशवर्ती हैं वा देश रहित ? जो देश रहित कहोगे तो, क्रियाका अभाव होगा, गति विना कार्यका अभाव होगा; परंतु कार्य और गति तो देखतें हैं; अतः देशवर्ती पक्ष मानना पडेगा; तहां, देश (आकाश) कोइ वस्तु है वा नहीं ? जो देश स्वरुपसें कोइ वस्तु है तो, उसके स्वरुप भागमें परमाणु स्वरुप भाग नहीं है, एसा माननेसे देशाभाव मानना पडेगा. और उक्त दोष आवेगा. जो यह कहो के परमाणुके चारुं तरफ देश है स्वरुप भागमें नहीं तो, देश (आकाश) चालनी समान छिद्रवान लचकी मानना पडेगा. अर्थात् परमाणु समूहात्मक है; एसा माननेसे पुनः गति, प्रवेश, अप्रवेश आदिकी अव्यवस्था होगी.

औरभी, जो आकर्षण नामा पदार्थ मानके गति, स्थिति और आधारकी व्यवस्था करोगे, तो आकर्षण अणु है वा मध्यम वा विभु परिमाण है ? इस निर्णयपर जानेसे अनंत

दोष प्राप्त होंगे.–आकर्षणकीही सिद्धि न होगी वा अव्य-
वस्था रहेगी.[१] [विस्तार भयसे नहीं लिखते. बुद्धिमानने

१ आकर्षण यदि कोइ वस्तु है तो, उसका परीक्षासे नि-
र्णय कर्तव्य है:–लोष्टके खेंचनेवाले–आकर्षण वाले चंबुकके टुकडे
करें तो, उसकी उसमें रही हुइ आकर्षण वा विद्युत, न्यूनरुपमें
विभाग पा जाती है १, किंवा ग्रहोंके फिरनेसे अन्य ग्रहोंकी उनमें
रही हुइ आकर्षण, लंबी ओछी होने योग्य है २, किंवा गृहोंकी
आकर्षण, परस्परमें कहीं न कहीं अवश्य टकराने योग्य है ३, किंवा
भारी हलके पदार्थ खेंचनेमें, उसके न्यूनाधिकरुप परिणाम होते
हैं ४, किंवा नेगेटिव पाजीटवकी समान तुलना होने वास्ते उ-
सको दौरा करना पडता है, तिस विना पृथ्व्यादिकी अपनी कक्षामें
नियमत गति नहीं होसकती. ५, इत्यादि अपरोक्ष परोक्ष कारणोंसे
यदि आकर्षण कोई वस्तु हो तो, वोह मध्यम (अणु अणु समूह
परिणामी) जन्य मान्नी पडेगी. तथाही उक्त कारण ओर मध्यम
होनेसे, उसका आधार. द्रव्य–परमाणु–गृहादि पदार्थ हैं, एसा
सिद्ध होगा. जो यूं हो तो, यह प्रश्न उठता है कि, आकर्षण द्रव्य
है वा किसीकी शक्ति है वा गुण है? यदि द्रव्य मानें तो, वोह वि-
भु, स्वतंत्र, चेतन, न्यामक, इच्छा शक्तिवाली है वा इन विनाकी
है ? तहां उक्त रीतिसे विभु वगेरे विकल्प असिद्ध हैं. पराधीन काम
करने योग्य होनेसे स्वतंत्रभी नहीं. तद्वत् चेतनादि संबंधमें जान-
लेना चाहिये. एतद्दृष्टि परिच्छिन्न जड है; एसा मानें तो, परिच्छिन्न
होनेसे किसीके आधार रहने योग्य है.–स्वयं आधार नहीं जो
द्रव्य [गृहादि] की सत्ता–शक्ति वा गुण है तो, द्रव्य देशसे इतर
स्थानमें नहीं जासकती; अतएव परस्परके आधार ओर नियमकी
स्वतंत्र हेतु नहीं होगी. इत्यादि रीतिसे आकर्षण मात्र द्वारा व्यवस्था
नहीं होसकती. विद्युत विषभी एसेही ज्ञातव्य है.

पूर्व अभाव-भेद समान कल्पना करलेना चाहिये]

अब जो प्रत्येक द्रव्य ओर गुण के स्वरुप तथा उनके संबंध ओर जाति (धर्म) तथा विलक्षणत्वका विवेक करनेको उद्यत हों तो, निर्णय समय द्वैत (भेद) वादीके मन बुद्धिकी जिव्हा चप चप करने लगजायगी.२

---

२ द्रव्यके कोन देशमें गुण, स्वभाव, आकर्षण, शक्ति-सत्ता, धर्म रहता, हे ? तहां पूर्वोक्त स्वरुप अप्रवेश प्रसंगानुसार, द्रव्य गुणादि, परस्पर व्यापक व्याप्य नहीं होसकते. उपरके भागमें लिपटे हुये मानें तो, उनको [अणु अणु जन्य]-मध्यम मान्ना पडेगा. जो 'एक भागमें हें' एसा मानें तो, संयोगी तथा अणुही ठरेंगे. अतएव उनको गुणादि रुप नहीं दे सकेंगे. तादात्म्य, समवाय, भेद अभेद, वा भेदाभेद-संबंध वाले सिद्ध न होंगे. संबंध विना, द्रव्य साथ केसे रह सकेंगे ? निदान, यातो-गुणादि, स्वरुपसे कोई वस्तु नहीं होंगे, यातो द्रव्यरुप वा द्रव्यकी अवस्था होंगे. एसा, सिद्ध होनेसे, द्वैतवादीका पक्ष पदपदपर असमीचीन रहेगा.

तद्वत् शब्दप्रमाण मान्नेके मूल-शद्व स्वरुपके निर्णयमें जानलेना चाहिये.-जो सूर्यवत् शब्दरुप अपनी स्वतः प्रमाणता सिद्ध करने वा ज्ञान करानेमें समर्थ होता तो, अन्यकी अपेक्षा बिना बोध कराता. किसी (अंधादि) कोभी अन्यकी अपेक्षा नहीं होनी चाहिये. सव उसे स्वतः प्रमाण मानते; परंतु शब्दमें स्वयं शक्ति नहीं; अतः एसा नहीं होता. अर्थात् कहे हुये मंत्र-प्रमाणको वा उसके सूचन किये हुये अर्थको युक्ति, सृष्टिनियमादि प्रमाण लेके सिद्ध करना पडेगा. अन्यथा वेद मंत्रकी निंदा करना हे. जो कहे हुये मंत्रके विषयको सयुक्त सिद्ध नहीं करसकें, तो वेदका कथन अयुक्त होगा, एसा विश्वास होजाता हे इस लिये वेदादि-शब्दप्रमाणको परतः प्रमाणही मान्ना पडेगा. कारण कि "वेदादि-शब्दप्रमाण स्वत

जो द्वैतवादि जैनमत समान, अनैकांतिक (अनि-

प्रमाण हे, '' एसा निर्णय वा निश्चय वा मंतव्य, बुद्धि आधीन हे. अन्यथा अग्नि उष्ण प्रकाश रूपवानवत् सर्वको स्वतः सिद्ध प्रमाण होता. अमुक उसे प्रमाण मानता हे, अमुक नहीं मानता हे, एसा भेद नहीं होता.

इत्यादि प्रकारसे परिच्छिन्न द्वैतवाद विषे नाना दोष हैं. विशेष विस्तार देखना होतो, भेदधिक्कार, तत्वदर्शनादि ग्रंथका अवलोकन करें.

जो स्वभाव वादि वीचमें कूदे ओर कहे कि, परस्पर प्रवेश तथा कार्यमात्र स्वाभावतः होते हें ओर अमुक प्रकारके शंका समाधानादिभी स्वाभावतः होते रहते हें. तहां, स्वभाववादिसे पूछना चाहिये कि; स्वभावका लक्षण क्या हे? जड हे–चेतन हे–अणु हे वा विभु हे ? आश्रित हे कि आश्रय हे ? अणु अणुका भिन्न स्वभाव हे वा एक हे; ? उत्पन्न हुवा क्यों नाश होता हे ? अमैथुनज मनुष्य क्यों नहीं होते? विच्छु मैथुनी अमैथुनी क्यों होतेहें ? जूं वगेरे अमैथुन क्यों होतेहें स्वभावका दृष्टा तद्भिन्न हे वा अभिन्न? स्वभाव परोक्ष हे वा अपरोक्ष? स्वयं नियामक हे वा नहीं? अमुक परमाणुका अमुक परमाणुके साथ संयोगीकरण हो, अमुकके साथ न हो, इसमे योग्यतादि हेतु हें? वा स्वभाव हे वा क्या? इत्यादि प्रश्नोंके उत्तर–निर्णयमें उसका मंतव्य वाध होजायगा? स्वभाव कोइ पदार्थही सिद्ध न होगा. किंतु कार्यमात्र योग्यता, आकर्षणादि नियमोंमे होते हें; यह परिणाम निकलेगा. परस्परका परस्परमें प्रवेश स्वभावसे है, यह वात सिद्ध न होगी. स्वरूप अप्रवेशका सवाल खडाही रहेगा. जो स्वभाव पदार्थ नहीं, एसा माने, तो स्वभाववादका उच्छेद होगा निरर्थक-अलीक मत होनेसे विस्तार नहीं करते. [तत्वदर्शन नामक ग्रंथमें इस मतका सविस्तृत खंडन हे.]

श्रित, स्याद्वाद) मानके निर्वाह करनेको जावे तो, पदार्थों के स्वरुप, तिर्थकरादिकी अस्ति नास्ति, बंध, मोक्ष, कर्मफल, द्वैत, अद्वैत वा द्वैताद्वैत-इत्यादि तमाम मंतव्य-सिद्धांत कथन श्रवण ओर दृष्टमात्रमें अव्यवस्था रहेगी. सम्यकप्रकारसे कुछभी-एक निश्चय नहीं होगा.

तद्वत् अन्यमतवाद-पक्ष (भेदाभेद, सत्यासत्य,-उभय विरोधी पक्ष माननेवाले) वा शून्यवाद माननेवालोंमें असंभव, विरोध, वा दृष्ट विरुद्ध-इत्यादि दोष आते हें (अप्रसंग ओर ग्रंथ विस्तारभयसे नहीं लिखते. बुद्धिमान वास्ते उक्त कथ नही बस हे.)

इसी प्रकार अनेक युक्ति ओर सृष्टि नियम एसे हें क, व्यापक वा व्यापक व्याप्य, परिच्छिन्न वा क्षणिकादिवाद-मंतव्य अर्थात् समग्र प्रकारके द्वैताद्वैत वादमें दोष आते हें. केवल शब्द वा मनोराज्यमात्रसेही नहीं किंतु, निर्पक्ष शोधक बुद्धि परीक्षासेभी, उस शोधकके मंतव्यनामा मुखपर, वे नियम-थप्पड (तमाचा) लगादेते हें ओर उसको चुपही रहना पडेगा; किंवा स्वपक्ष त्यागना पडेगा. ओर द्वैताद्वैतसे विलक्षण कोइ सिद्धांत नहीं होसक्ता. यदि मानोगे तो उभय पक्षवाले ओर विरोध सूचक-अनेक दोष आवेंगे. अतः निर्दोषाभावसे आप (समीक्षक) का खंडनभी सदोष होगा ओर किसीके पक्षको सदोष नहीं कहसकोगे. क्योंके निर्दोष कोइभी नहीं.[1] इस कथनकी अर्थापत्तिसे यह परिणाम निकल सकता हे वा विचारवान पुरुष नि-

---

१ संस्कृत भाषामें "खण्डन खण्डखाद्यम्" नामा छोटासा ग्रंथ हे, उसके देखनेसे हमारे लेखकी यथार्थता ज्ञात होसक्ती हे त-दुपरांत ओरभी एसे ग्रंथहें.

काल सक्ता हे कि:-अन्य मतोंसे अद्वैत पक्ष उत्तम हे."
(समीक्षक) मेरी ओरसे उक्त कथनका यह उत्तर हे कि द्वैत वा अद्वैत वा अन्य पक्ष मात्र, सदोष हों वा न हों; हमको इसमें आग्रह नहीं. परंतु यह बात किंचित् विचारसे ज्ञात होसक्ती हे के, जो हे सो. ना नहीं, ओर जो. नहीं सो, हां नहीं अर्थात् जो हे सो हे. कोइ उसको ज्यूं का त्यूं जानसक्ता हो वा नहीं. इसमें कोइ विवाद नहीं; परंतु जो स्व पक्षको अन्यसे अच्छा बतावे, इतनाही नहीं किंतु हम कहें वा हमारे आचार्य वा गुरु वा ग्रंथने जो कहा, सोही ठीक हे, एसें अभिमानी भ्रमानेवालोंके दोष; जबतक नहीं दरसाये जावें तब तक, वे अन्यायसे नहीं हटते. जेसेके प्राचीनकालमें. रिव्रास्तिलोक-प्रोटेस्टंठ ओर रोमनकेथलिकने स्वधर्माभिमान करके, लाखों किरोडों मनुष्योंकी जान ली, तत्ववेत्ताओंको मारडाला २ ओर मुहम्मदिन (मुसलमानी) धर्मको चलानेवाले वा कुरान बनानेवाले नबी मुहिम्मद वा कुरान बनानेवालेजीनेतो. जिहाद [जो कुरानी धर्ममें न आवे उन-परधर्मवालोंको मारडालना उनके स्त्री पुत्र धनादिको स्वाधीन करलेना]का स्पष्ट हुकम दरसाया हे "कतलुल काफरीन" तो, उनका मुख्य उद्देश हे. निदान जेसाके अधर्मा न्याय वा धर्म द्वेष करके किरोडों जीवोंको इस पंथवालोंने मारडाला सो बात, जगत् प्रसिद्ध हे*

इन उभयसे न्यून, अन्य धर्मवालोंने भी किया ओर कर रहे हें. (वैष्णव, शैवियोंकी लडाइपर ध्यान दीजिये.) अ

२ देखो क्रिश्चियन मतदर्पन ग्रंथ ओर इंग्लांडका इतिहास.

* देखो 'तकजीबि बुराहीन अहम्मादेया'' "खब्तअहमादिया" "जिहाद" "पादरी कृत लाइफ मुहम्मद "-४ ग्रंथ.

व इनके दोष नहीं दिखायें जावें तो, उनके पूर्व पूर्वके संस्कार, इस अधर्म अन्यायसे उनको कब छूटने देंगे?[1] इस लिये हमारा खंडन धर्म द्वेषरुप नहीं. एतद्दृष्टि सदोष नहीं ओर अन्य सदोष पक्षका दोष देखाना, उलटी उनपर दया समझते हें, अर्थात् किसी प्रकारभी, वे अन्याय–अधर्म–असत्–अयथार्थताको छोडके सब मिलके सत्यको खोजें, ओरै द्वेष रहित–संपवान हुये सुखको भोगें; अन्य प्रयोजन नहीं.[1]

[अं. ३] पक्षतुला–मतमान.

पक्ष दृष्टि छोडके, सर्वके मत–पक्ष, उद्देश लक्षण परीक्षा पूर्वक समझके. उनके दूषण भूषण ओर पक्षकारकी देश काल स्वार्थी–निस्वार्थी–योग्यता-अयोग्यतावाली दृष्टि यथाशक्ति ध्यानमें लेके, योग बुद्धि करके परीक्षा-निर्णय–करोगे तो, हरकोई मत (पंथ–पंतैव्य–मजहब–धर्म–बाडे,–दीन, सिद्धांत–निर्णय–विश्वास–फिलोसोफी) के आद्य, अंत (जीव, ईश्वर, प्रकृति मोक्ष, वा तत्व निर्णय) संबंधी विषयमें निम्नलिखित दोषोंमेंसे कोइनकोइ दोष अवश्य आवेगा.* निर्दोष

---

१ (प्र.) तुमको क्या ? आप समझलो. [उ.] तुमको रोकनेसे क्या ? परधर्ममें जाने वा अन्य धर्म होनेसे क्या ? क्यों मारामारी करते हो ? आप समझलो. दूसरेकी दूसरे जानें.

* इस प्रसंगगत लिखेहुये दोष तमाम मत–[द्वैत वा अद्वैत वा शून्य–इन तीन पक्षमें वा विभुवाद, परिच्छिन्नवाद वा व्याप्य–व्यापकवाद इन तीन पक्षमें सर्व मतका समावेश होता हे–उन तमाम मत] में आवेंगे.

द्वैतमत [दो वा दोसे विशेष अमर तत्व मानने वालोंका पक्ष). वेद, १ चार्वाक, २ बुद्धमत गत ईश्वरवादि, १८ जैन, ९

रामानुज, १५ पूर्णप्रज्ञ, १३ पाशुपत, ११ शैव, १२ माधव, १६ रसेश्वर, १४ कणाद, ३ गौतम, ४ जैमानि, ७ पतंजली, ६ सांख्य, ७ पाणिनि, ९ आर्यासमाज, २० यूनानी, १० [फिसोगोरस, अरस्तु, लुकमान, घतलींमूस वगेरे फेलसूफ] आकर्षणी, १७ दहरिया, १९ जडवादि, २ परमाणुवादि, ३ हरवर्टस्पेंसर वगेरे २१ बौद्धका एक पक्ष ८ वगेरे.

अद्वैत (एक तत्ववादि)—निर्विकार, अपरिणामी मानके सृष्टिकी व्यवस्था करनेवाला **वेदांत**-पक्ष—विवर्त्तवाद शोधो.

द्वैताद्वैत [अमिश्रित एक तत्वही स्वयं नानारूप होवे और फेर असली रूपमें आजावे. किंवा एक तत्व, अभावसें भावरूप नाना पदार्थ करे और फेर अभावरूप करके आप वेसाका वेसा अद्वैतरूप रहे किंवा एक तत्वही नानारूप परिणाम धरता जावे, फेर उस पूर्वरूपमें नहीं आवे एसा मानने वाले मत.] यथा बौद्धके क्षणिकवाद वाला पक्ष ४ (बाह्य पदार्थ माननेवाले दो भेद द्वैतमें हैं. शून्यवादि शून्य पक्षमें हे. क्षणिक विज्ञानवादि इस पक्षमें हे). पुराणी १, किरानी ५, कुरानी ६, इरानी [पारसी] २, यहुदी ३, सूफी७, थियोसोफी१३, ब्रह्मसमाज ११, प्रार्थनासमाज १२, प्रतिभिज्ञ ८, कबीर ९, नानक १०, वगेरे.

शून्यः—बौद्धका शून्यवाद, अभाववाद.

इत्यादि मूलशाखा उपशाखा सहित ९६००० मत भूमंडलमें हैं, इन सर्वमें कोईनकोई वक्ष्यमाण दोष अवश्य आवेगा.

पंचदशी, सर्वदर्शन संग्रह, जैनतत्वादर्श, सत्यार्थप्रकाश, षड्दर्शन संग्रह, खाद्यखंडन (संस्कृतमें हे), हरवर्टस्पेंसरका अगम्यगम्य वाद और फिलोसोफी [मरेठीमें हे], तकजीब बुराहीन अहमदिया, क्रिश्चियनमतदर्पन, वगेरे प्रसिद्ध ग्रंथ वांचनसे एक दूसरे पक्षके दूषण भूषण जान सकते हो यहां तो मूल तत्व

न होगा. १

१.-स्वरूपसे एक अखंड, एकरस, अच्छेद्य-अभेद्य-घनं-पररहित-अपर [अर्थात् देशकाल वस्तु परिच्छेद रहित-जिसके आजु बाजु कुछ न हो] विभु वा अणु (अखंड. अव्यय-परिच्छिन्न-सक्रिय अज-अमर-अनादि-अनंत) वा मध्यम (विभु अणुसे विलक्षण) परिमाण-एक वस्तु मानके उसीको नानारूप होना-नानाप्रकारकी [तम-प्रकाश, अग्नि जल-आकाश परमाणु वगेरे परस्पर विरुद्ध धर्मवाले परिणाम-होना-रूप रखना-एसे विरुद्ध धर्मवाले पदार्थोंका अभिन्न निमित्तोपादान कारण होना. इत्यादि] स्थिति-रूप-आकृति धारन करना-होना मानना; इस पक्षमें असंभव ओर विरोध दोष. [एक वस्तु नानारूप न धर सकनेसे, विरुद्ध धर्मवालोंका एकही वस्तु उपादान न बन सकनेसे, व्यापकमें गति-परिणाम-उपादानत्व न होसकनेसे, परिच्छिन्न वस्तु व्यापकरूप न धार सकनेसे. * * *]-वेदांत, बौध, वल्लभ, थियोसोफी, सूफी, शाक्त, शैवी, वैष्णव-पौराणी-वगेरे मतमें दोष.

२-एक विभु वा अणु वा मध्यम पदार्थ मानके उसका अभावसे भावरूप-जीव, प्रकृति पदार्थ-पेदा करना, किंवा

ओर परिणाम संबंधी संक्षेपसे (व्यापक सामान्य रूपमें) सहेल प्रकार-का दोष दर्शन-खंडन प्रकार जनाते हैं; ताकि किंचित विचारवान शोधकको मतोंमें न फंसना पडे-जालमें न गुंथावे-किंतु अपने हितओरोंको जालमेंसे निकाले ओर न पडने दे.

१ विदित हो कि जो वक्ष्यमाण दोष कथन प्रकार हे, उनमेंसे कितनेक विषय पूर्व प्रसंगोंमे आयेहें, तोभी शोधकको सुगमतासे एक स्थलमें जनाय, इस लिये जानके पुनरुक्ति रखी गइ हे.

एकसे अधिक वस्तु मिलके उनसे इतर तीसरी सर्वथा न-वीन वस्तु उत्पन्न होना मानना, असंभव दोष. [अभावा भावकी उत्पत्ति न होसकनेसे.] किरानी, कुरानी, याहुदी, पारसी, ब्रह्मसमाजी, प्रार्थनासमाजी, यूरोपके फिलोसोफर जडवादीके मतमें दोष.

३-व्यापकको सक्रिय मानके जगत् कर्ता मानना, व विभुको सक्रिय मूर्त्तिमान मानके प्रबंधक-न्यामक मानना. असंभव दोष (व्यापकमें गतिका अभाव होनेसे). न्याय, वैशेषिक, आर्यासमाजी, किरानी, कुरानी, ईरानी, पौराणी, रामानुज-वल्लभ-शाक्त-वैष्णव-याहुदी मतमे दोष.

४-देशको वस्तु वा देश न मानके गति-परिणाम मानना-असंभव दोष. (अवकाश विना गति न होसकनेसे) वेदांती, बौद्ध, किरानी, कुरानी, ईरानी, याहूदी मतमें दोष.

५-आधार माने विना [द्रव्य] परमाणओंको परस्परा-श्रय मानके सृष्टिकी स्थिति म नियम मानना, अन्योऽन्या-श्रय दोष. [ब्रह्मांड नाम गोलेका आधार विना न टिकने और अन्योऽन्याश्रय दोष सिद्ध होनेसे; आकर्षण परि-च्छिन्न, मध्यम [अणु] लचकी सिद्ध होनेसे.] जडवादी-चार्वाक-बृहस्पति-आकर्षणवादि-सायंनवादि-लोकायत-यूरोपके जडवादि वगेरेके मतमें दोष.

६-समूहात्मक [विभु-अणु, व्यापक व्याप्य उभय प्रकारके पदार्थ] मानके निर्वाह करनेमें स्वरुप अप्रवेश [असंभव] दोष [एक स्वरुपहो वहां दुसरा स्वरुप न होसकनेसे. स्वरुपमें स्वरुपका प्रवेश असंभव दोष आनेसे]. वेदांत, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा, जैन, किरानी, कुरानी, ईरानी, याहुदी, पौराणी, [रामानुज, वल्लभादि

ईश्वरवादि-ब्रह्मवादि-आकाशवादि-कालवादि-वगेरेके मतमें दोष.

७-नाना विभुवादमेंभी उक्त दोष. न्याय, सांख्य-योग-जैन-वगेरेका विभुवाद है.

८-व्यापक न मानके परिच्छिन्न समूहात्मक सिद्ध करके माननेमें;

[१] पूर्वोक्त अन्योऽन्याश्रयादि दोष (४-५)

[२] शक्त्यादिकी व्यवस्था न होनेसे अव्यवस्था[१] दोष.

[३] ब्राह्मांड नामा शरीर नित्य गमन माननेसे दृष्ट विरुद्ध दोष [अर्थात् नित्य गमनसे नियम पूर्वक व्यवस्था अहोतव्य; परंतु नियम पूर्वक व्यवस्था देखते हैं]. तमाम जडवादियोंके मतमें दोष.

९-एकही वस्तुमें सर्व प्रकारकी सामर्थ्य-अन्यथा करसकना (यथा अभावसे भावरुप करे-अपना जेसा बनाले, आपकों आप पेदा करे वगेरे) मानके निर्वाह करनेमें आत्माश्रय दोष. [असंभव होनेसे. किरानी-कुरानी, ईरानी, पौरानी (रामानुज, वल्लभादि), ईश्वरवादि, थियोसोफी वगेरे मतमें दोष.

१०-देशसे अनंत (व्यापक माननेवालोंमें अज्ञान-अज्ञात दोष. [परिच्छिन्न वस्तु अनंतत्वकी सिद्धि न कर सकनेसे). जिन जिन मतमें ईश्वर वा आकाश वा ब्रह्म वा काल वा

१ गुण गुणी, शक्ति शक्तिवान, जाति व्यक्ति, भेद भेदवान, कर्म क्रियावान....के परस्परमें कोनसे अंश बाहिर भीतर हैं-? व्यापक व्याप्यरूपसे दोनोंका होना असंभव. स्वरुप अप्रवेश दोष. तथा गुण शक्ति वगेरका परिमाण (अणु, विभु वा मध्यम) क्या ? इत्यादि अव्यवस्था.

अन्य कोई व्यापक वस्तु मानी होवे, वे तमाम मत इस-दोष वाले हैं.

११-संख्यासे अनंत (परमाणु, नवीन उत्पन्न नहीं होते ओर अनंत हैं) मानने वालोंमेंभी पूर्वोक्त ओर हठ दोष हैं. "क्योंकि कल्पक, विभु नहीं, परिच्छिन्न हे. ओर अनंत व्यापकसे अज्ञात हे-अल्पज्ञ हे वोह वेसा नियम बांधसकनेमें असमर्थ हे. संभव हे कि आगे अन्य प्रकारकी व्यवस्था हो. ओर हठसे मानें तो, व्याप्तिकी सिद्धि नहीं कर सकेगा. जो फेरभी मिथ्याभिमान-दुराग्रह करे तो, ओर प्रबल दोष आता हे. वोह यह हे कि-देश अनंत हे, इस लिये जीव, परमाणु अनंत हैं. जब यह हेतु माना तो, जहां जहां देश स्वरूप वहां वहां परमाणु नहीं,-क्योंकि स्वरूपमें स्वरूपका प्रवेश नही,* यह वात सर्वको अनुभवगम्य-स्वीकारने योग्य हे; अत आकाश-देश चालनी समान सावयव हुवा. अनंत नहीं ओर देश वा ब्रह्मके विना, परमाणु किसके आधार होंगे? इस उभय विरोधी पक्षोंसे उस दुराग्रहीका पक्षही सिद्ध नहीं होता. जो अपरोक्ष समान अणु ओर आकाशको व्याप्य व्याप्य-स्वरुप प्रवेश माने ओर आकाशको चालनी समान

---

* स्थूल सूक्ष्म-सावयव निरवयव-साकार निराकार-गंध पुष्प-जल शीत-संबंध संबंधी-गुण गुणी-जाति व्यक्ति-धर्म धर्मी-शक्ति शक्तिवान-कल्पित अकल्पित-भाव अभाव-इत्यादि हरकोइ प्रकारकी स्वरुपसे जो वस्तु हो सो स्वरूपसे भिन्न २ हें, अतः एक दूसरेके स्वरुपमें प्रवेश नहीं पाती.-परस्परमें तादात्म्य वा व्याप्य व्यापक नहीं होती. यथा गुण ओर गुणीका स्वरुप देश-अधिकरण भिन्न होगा. अग्नि, रूप ओर रंगका भिन्न स्वरूपाधिकरण होगा. इत्यादि. स्वरुप अप्रवेश नियमका रहस्य हे.-यथा प्रसंग लगालेना चाहि

माने तो, असंभव अनुभव ओर युक्ति विरुद्ध दोष आवेगा. इतनाही नहीं किंतु, स्वरुप प्रवेश असंभव पक्ष माना तो, आकाशवत्–नाना विभु ओर अणुवत् नाना अणु परिमाण वाले जीव ओर आकाश (देशकाल प्रकृति) मानके ओत प्रोतरुप नाना अनंत सृष्टि मानलेंगे. जब यूंहे तो, जीव जीव प्रति सृष्टि होनेसे यह किसका घट ओर सूर्य हे ? एसा निर्णय न होनेसे व्यवस्था न होगी.–व्यवहार भंग होगा; परंतु एसा नहीं होता हे. तथाही वेदांतवाला दृष्टि सृष्टि वाद मान्ना पडेगा. वा बौद्ध वाला अज्ञात सत्ता वाला क्षणिकवाद मान्ना पडेगा. आकाश ओर परमाणु उड जांयगे * * *. जो देश-आकाश न मानें वा देशको मगजका असर वा भ्रमरूप कहें,–ओर अनंत परमाणु हें. एसा कहें, तो परमाणुओंमें गतिका व्यवहार न होगा, क्योंकि देश–पोल–जघे-आकाश विना गति नहीं होसकती. देश न मानें ओर गति मानें, यह हठ हे-इत्यादि." जडवादियोंके तमाम मत, न्याय; वै. जै. पूर्वमीमांसा वगेरे मतमें यह दोष हें.

१२–ज्ञाता ज्ञेय-दृष्टा दृश्य परस्पर भिन्न होनेके नियमसे अपने स्वरुपको आप कोई जान्नेको शक्तिमान नहीं. "में अणु हुं वा व्यापक." "में देशानंत (अपने देशके अंतको नहीं जानता-अज्ञानी) हुं वा सांत," ' में अनादि हुं वा सादि,' 'में कालानंत हुं वा सांत (नाशवान)' वगेरे, एसा जान्ना मान्नाही व्याघात हे. इत्यादि–ओरभी कितनीक वातें हें कि जिनको कोइभी नहीं जान सकता. इसलेये सर्वज्ञ (त्रिकालज्ञ-सर्व विषयोंके गुण कर्म स्वभाव, संख्या, परिमाण, संयोगवियोगकी गणना–वगेरे अक्रम कर्मका जान्ने वाला) कोई नहीं होसकता; अतः सर्वज्ञ मा-

न्नवालोंमें असंभव दोष. (जडवादीसे इतर तमाम मतमें यह दोष है.)

१३-अपरोक्षत्व-स्वतः प्रामाण्य-परतः प्रामाण्यमें दोष-अनुमानकी सिद्धमें अपरोक्षत्व; और अपरोक्षत्व-ज्ञातृत्वमें स्वयं जाननेकी अपेक्षा; परंतु उसकी असिद्धि. अतः यह पक्ष सबमें अकथ वा दुषित रहता है.

१४-ज्ञानकृति, ध्यानकृति वा प्रमाण (ज्ञानके साधन) से भिन्न जो ज्ञान वोह अणु है वा मध्यम वा महत व परमाणुओंकी जन्य अवस्था वा नवीनोत्पन्न वस्तु है? इसके निर्णयमें सर्व पक्ष विषे दोष (निर्णायक उसका विषय होता रहनेसे. वोह उसका गम्य न होसकनेसे). वेदांत इतर तमाम मतमें यह दोष है.

१५-जो कुछ है सो है, हम कहते हैं सो ठीक है बुद्धिसेपर तर्क अमान्य है, बुद्धिका विषय न होवे उसक अपनी बुद्धि अनुसार विशेषण युक्ति कल्पना थुकके पक डे हैं.-इत्यादि मानके किसीके कथनपर विश्वास करनेवा हैं, उनमें व्याघात दोष; क्योंकि जो कुछ मानते हो (वो एसा है-अगम्य है-बुद्धिसे पर है. हमारा मंतव्य यथार्थ है अन्यका नहीं.-इत्यादि जो कुच्छ मानते हो.) वोह भी बुद्धि कर मानते हैं; अतः मतप्रतिपक्षादि दोष. शब्द प्रमाणके विश्वा जो मत हैं, किंवा केवल स्वबुद्धिके आग्रह रखनेवाले पक्ष हैं, उ तमाम मत-[किरानी, कुरानी, ईरानी, पौराणी-वेदी-ब द्ध-जैन-यहूदी वगेरे और जडवादी तमाम मत] में यह दो

१६-जडवादियोंमें गुप्त मोह दोष रहता है. अ त शरीर रक्षाका मोह नहीं जासकता. ज्ञान वस्तु विषे का नहीं जाती. [अधूरे-विश्वासी जडवादि तो अवश्य

करेंगे, परंतु खरे सत्यवादि पक्के जडवादियोंसे मित्र बनके एकांतमें पूछलो.]

१७-विश्वासवादियोंमे दोषादोष. अर्थात् जैसा कि है, वैसाही विश्वासका विषय है, तो निर्दोष है, अन्यथा निकृष्ट परिणाम निकलेगा. दुःख-भ्रांतिकी विशेषता होगी. एकही विषयमें अन्य (विरुद्ध वा अन्यथा)-नाना प्रकारके विश्वास देखते हैं; अतएव विश्वास ओर उसके विषयमें संशय वा विपरीत भावनाभी संभव है.

१८-अनिश्चितवादियोंमेंभी दोष.

[१] कोन जाने क्या है ? यूं वा यूं. एसोंको भ्रांति वा संशय नहीं जाते. अधोगति रहती है.

[२] यूंभी है वूंभी है,-यूंभी संभव है-वुंभी संभव है, एसे मंतव्यवालोंकोभी संशय वा-विपरीत भावना होते हैं. ओर व्याघात, विरोधादि दोषोंमें फंसना पडता है.

१९-ब्रह्मवादि ब्रह्मको देशविना, स्वयंभू अचल मानता है, उसको आत्माश्रय दोष. देश विना केसे अचल रहेगा. वा प्रकृति, देश विना केसे परिणाम धरेगी ? [वेदांत बौद्ध. ओर एक जडवादिके मतमें दोष.]

२०-नवीन फिलोसोफर हरबर्ट स्पेन्सर वगेरे समान मूलतत्व अधिष्ठान-द्रव्य-शक्ति-देश काल-मन वगेरेको अगम्य मानके व्यवहारगम्य-गोचर विषयमात्रमें स्वपक्ष जनाते हैं, एसे पक्ष, सर्वथा समीचीन-यथार्थ नहीं माने जासकते; " मूलोनास्ति कुतो शाखा " समान वात है. उनमेंभी मजकूर दोष हैं. ओर प्रत्यक्षादिमें जो दोष रहते हैं, वे उपर दर्शनोंमें जनाये हैं.

निदान कोई पक्षभी निर्दोष नहीं. मूलतत्व (पदार्थों

का स्वरुप) और यथार्थ परिणाम-फल-अकथ-अगम्य-अनिर्वचनीय हैं. यथावत्-यथार्थ किसीकोभी ज्ञात नहीं.

२१.-जो कोई सर्व पक्षोंमें वा अनेक पक्षोंमे मिलजाता है, वोह उन सबको प्रीति पात्र नहीं होसकता;• किंतु उससे विपरीत परिणाम निकलता है; अतः सभ्यता पूर्वक सत्यको नहीं छोडके यथार्थ कहना उचित है. *

---

* कितनेक पक्षकारोंके मंतव्य जो कि साध्य रूपमें आते हैं उनमेंसे कितनेक साध्यके उदाहरण नीचे लिखते हैं:—

१. जीव जो विभु हो तो, कर्त्ता भोक्ता न होसकनेका दोष क्योंकि गतिके बिना कर्तृत्व भोक्तृत्व न संभव ओरभी उसके भोग्य व्याप्य होनेसे स्वरूप अप्रवेश दोष आनेसे दोमें एककी असिद्धि.

जो मध्यम होवे तो, उत्पत्ति नाशवाला होनेसे मोक्ष ओर उसके साधनका अभाव होगा जोकि मोक्षवादीको असंमत. ओर परलोक न वादि-[पुनर्जन्म वा मोक्ष न माननेवाले]को उसके ज्ञातृत्वादिकी सिद्धि करना नहीं बनेगा. (क. १४ याद करो.).

जो अणु परिमाण मानते हैं, उनके मतमेंभी ज्ञातृत्वादिकी सिद्धि ओर अणुमें भोक्तृत्वादिकी मान्यता असंभव होगी. ओरभी गुण गुणी, शक्ति शक्तिवान, सत्ता सत्तावानादि-परस्परके देशसे जुदा नहीं होसकनेसे जीव देशसे शरीरका इतर भाग जड,-वेदना नहोने योग्य होना चाहिये; जोकि दृष्ट विरुद्ध दोष है. कर्म-गति उसका अनादि स्वभाव होनेसे अनंत-अक्षय मोक्ष नहीं होगी.

२ मोक्ष व्यापक वस्तु हो तो प्राप्त होनेसे साधन व्यर्थ १. अणु एक होनेसे अनेक जीवोंको प्राप्ति न संभव २. नाना अणुरूप होनेसे गतिवान-परिच्छिन्न-पराधीन-आधेय-जड सिद्ध होगी. उसकी प्राप्तिसे लाभही क्या ? कुछ नहीं-शांति नहीं.

जो, मोक्ष अवस्था विशेष है तो, उत्पत्ति नाशवान होगी. सादि

अनंत न होनेसे. ओर जो नाशवान न होगी तो, जिस अनादि अनंत पदार्थकी [जीव वा जीव ओर दूसरी–ईश्वर वगेरे वस्तु मिलके दोनोंकी] अवस्था हे. उन बद्धोंको संख्य.का जब तब अंत आनेसे सृष्टिका उच्छेद होना संभव; जोकि.निरर्थकाभावसे असंभव हे. तथा अवस्थाके संबंधियोंका सादि संयोग वा परिणाम हुवा, हे, अत: वियोग ओर परिणाम बदलभी होगा.

३ जो जीवकी मोक्षसे अनावृत्ति मानते हें, उनके मतमें सृष्टि उच्छेद दोष आवेगा; क्योंकि जीव नवीनोत्पन्न नहीं होते तो. जब तब मोक्षमें जानेसे उनका अंत आवेगा. उससे जड तत्व जो भोग्य हें,–वें निरर्थक रहेंगे. परंतु निष्फलत्वका अभाव हे.

जो कहो कि जीव अनंत हें, तोभी वोह दोष निवारण नहीं होसकता; क्योंकि अनंत-१००पदम=अनंत–१०० पदम. अब यहां विचारना चाहिये कि इन १०० पदमके जीवों वासते जितने द्रव्योंका जितना उपयोग होताथा सो, उपयोग न रहा; किन्तु न्यून हुवा.–इसी प्रकार, अनंत परमाणु अनंत जीव मानकेभी व्यवस्था नहीं होती. ओर मोक्षकोजो प्राप्त हुवा–सो अनादिसे गतिवान हे; अत: उसका गतिवान स्वभाव होनेसे-आवृत्तिही माननी पडेगी.

जो मोक्षसे आवृत्ति मानें तो, वोह मोक्षही क्या? सुषुप्तिवत् अवस्था हे. " जीव निर्दोष नहीं होता; किंतु अमुक काल तक रागादि दोष तिरोधान होजाते हें. " एसा मानना पडेगा हो.

४ मोक्ष होतीभी हो तो, उसके साधन क्या? इस वातका निर्णय कठिन हे.–इसविषे मत पक्षोंमें अंतर ओर मुक्ति तथा मोक्षके स्वरूपमें विवाद होने ओर निर्दोष साक्षी न मिलनेसे, किसके कहे हुये–कोन साधन, विश्वासयोग्य हें, एसा सिद्धांत संशय रहित नहीं होता.

५ जो जीव–ईश्वर–प्रकृति–बंध–मोक्ष वगेरे वेदांत समान दृष्टि सृष्टिवादरूप,–स्वप्नवत् मिथ्या मानें तो, उनका यह कथनभी

मिथ्या होनेसे त्याज्य रहेगा. तद्वत् उनका "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का पक्षभी मिथ्या–झूठ ठरेगा.

जो शून्यवादिवत् अजात मानें तो, उसके मंतव्यको व्याघात है. शून्यका साक्षी इतर रहने और उसका कथन शून्य होजानेसे.

६ जो बौद्ध पक्ष समान 'ज्ञात (अनुमानसे वा प्रत्यक्षसे ज्ञान) अथवा अज्ञात [जिस क्षणमें ज्ञेय उसक्षणमें ज्ञाता, जिस क्षणमें ज्ञाता उस क्षणमें ज्ञेय नहीं; परंतु अनुमानसे ज्ञान–अनुमान मात्रसे सिद्ध–परोक्ष] रूप दृष्टि सृष्टि वाद मानें–जीव ब्रह्म ईश्वर आकाश प्रकृति–सर्व दृष्टि मात्रही हें, एक क्षणिक परिणामी विज्ञानही वस्तु हे, एसा स्वीकारें." तो इस पक्षमेंभी अनेक दोष हें:—

[१] एक घटके दो आदमी हाथ लगाके तपासें:–यह किसका दृष्टि सृष्टिवाद हे ? तहां, अव्यवस्था रहेगी. जीवन व्यवहार ही सिद्ध न होगा.

(२) जोस्वप्न समान तीसरेका मानें तो, आभासरूप दोनों शरीर उस तीसरे मूलरूपको कि जिसका दृष्टि सृष्टिवाद हे, नहीं जान सकते. ओर अनुमानसे मानें तो, यह अनुमान इन उभय (वादियों) का न होनेसे अमान्य हे, वा आभासरूप मिथ्या हे.

(३) क्षणिक स्थाई न होसकनेसे साध्य विषय तपास करनेसे, अनुमानकी व्याप्तिकी सिद्धि न होगी. अतएव उनका सर्व पक्ष सदोष अमान्य, कल्पनामात्र.

[४] क्षणिकत्वकी सिद्धिमें उनकी रीति सिद्धांत–मंतव्य वा क्षणिकत्व होनेसे प्रत्यक्ष ज्ञान वा प्रत्यक्षत्व वा ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञाताकी असिद्धि. आलातके वेग समान मानें तो ज्ञाता, ज्ञेयरूपका भेद अनुभव न होना चाहिये.

[५] यह मेरा यह तेरा, यह झूठ यह सत्य, इत्यादि जगत् व्यवहार न संभव होनेसे दृष्ट विरुद्ध दोष हे. ओर अमान्य.

(६) क्षणिक परिणाम रहनेमें कारण क्या ? जो स्वभाव मानें तो, उनके निर्वाण पदका उच्छेद-[स्वभावका स्वरूप असिद्ध है], जो पूर्व २ वासना-संस्कारको हेतु मानें, तो क्षणिकत्व परिणाम होनेसे वासनाकी असिद्धि. उस वासनाका स्वरूप विज्ञानसे भिन्न-विज्ञान स्वरूपसे इतर देशमें भिन्न बताना चाहिये ? सो व्यापक व्याप्यभावसे न संभव-स्वरूप प्रवेश दोष.

(७) जबकि विज्ञान, परिणाम-गतिवान हे तो, उसको देशकी अपेक्षा हे. जब यूं हे तो, पूर्वोक्त स्वरुप अप्रवेश नियम बाधक होगा. ओर दृष्टि सृष्टिवाद न ठेरेगा.

[८] विज्ञान स्वयं अमिश्रित एक स्वरूप हे, तो परिणामही असंभव; क्योंकि मध्यम-जन्य विना परिणाम नहीं होसकता. तथा हि तमप्रकाशादि विरोधी स्वभाववाले स्वरूपरूप-परिणाम नहीं होससकता. जो नानाका समूह विज्ञान हे, तो उनके मंतव्य क्षणिकत्व, निर्वाणत्व-इत्यादि पक्षका उच्छेद होजायगा.

[९] जिस क्षणमें विज्ञान, घटाकार हुवा तब ज्ञाता, ज्ञान ओर देश तथा रंग वा पंचरंग परिणाम नहीं हे. दूसरी क्षणमें ज्ञान वा ज्ञाता आकार हुवाहे-तिस क्षणमें घट परिणाम नहीं, ओर पंचरंग आकार नहीं हे; जबयूंहे तो उंगलीसे स्पर्श किया हुवा घट प्रतीत न होना चाहिये; तथा देश ओर पंचरंग किंवा खंडित घट प्रतीत नहीं होना चाहिये. परंतु इसके विपरित देखते हें

[वेदांतका दृष्टि सृष्टिवाद त्रीपुटिसहित हे, बोद्धोंका त्रीपुटि रहित हे. यह अंतर हे.]

(१०) विज्ञान एक वा नाना ? एक मानें तो, पूर्वोक्त तमाम दोष. ओर नाना मानें तो, तदुपरांत यह सूर्य ओर अस्मद युष्मदादि किस विज्ञानकी सृष्टिहे ? यह निर्णय न होसकेगा. वगेरे.

(११) बौद्धके पक्षकी सिद्धि कारक सामग्री नहीं मिलती.

अर्थात् जो सूर्य प्रकाशके समान वा वेदांतियोंके स्वप्रकाश स्वरू समान, बौद्धोंका विज्ञान, प्रकाश स्वरूप मानें तो उसके जे विषय (सिद्धांत-पक्ष वा घटादि विषय-प्रकाश्य) सो घट प्रकाश-वत् उससे भिन्न मानने पडेंगें; क्योंकि प्रकाश स्वरूपसे प्रकाश्य भिन्न होता हे. प्रकाश स्वरूपको प्रकाश्य नहीं मान सकते. इस-लिये क्षणिक परिणामी प्रकाश स्वरूप हो तो, वोह अमिश्रित अनन्य प्रकाश स्वरूपहे. नाना विषय परिणामवाला नहीं. नाना-घट, पक्षादि-विषय जो प्रकाश्य स्वरूप हें सो उससे भिन्न कहे चा-हियें. परंतु बौद्धोंमें दुसरे पदार्थका अस्वीकार हे; अतः क्षणिक विज्ञानवादकी असिद्धि हे जबकि प्रत्यक्ष-अपरोक्ष-की सिद्धि नहीं होती तो, उनका पक्ष अनुमानप्रमाणका विषय केसे होसकेगा? नहीं.

[१२] अनुमानकी व्याप्तिको तादात्म्य-कारण कार्य-संबंधरूप मानें तो, पिता पुत्रका शरीर साथ होना चाहिये.-सर्व कार्य कारणसहित साथही उत्पन्न ओर नष्ट होना चाहिये; परंतु एसा नहीं होता; अतः जेसे नविन वेदांतियोंकी कल्पितकी निवृत्ति प्रसंगगत अनुमान संबंधी जो जो दोष लिख आयेंहें वे तमाम दोष आवेंगें. अनुमान उच्छेदसे बौद्ध मतकी कल्पनाका परिअवसान आजाता हे.

[१३] जो बौद्ध (हरबर्ट युरोपियनके समान) एसा कहें कि "देश विना गति न होना जो मानते हो सो अध्यास-भ्रम हे. याद करो स्वप्नको कि जहां आकाशकी उत्पत्ति होती हे वा अन्यथा प्रतीति होती हे." इसके उत्तरमें यूं क्यों न माना जाय कि देश विना, गति-परिणाम मानना भ्रम हे-अज्ञान हे. याद करो स्वप्नगति ओर जाग्रत स्वप्न-उभयके देश काल गतिकी सदेश गति स्पष्ट हे.

७ जो, जैन समान अनैकांत [अनिश्चित-स्याद्वाद-सप्तभंगी] वाद मानें तो,

जो यह कहो के, तुम्हारे (समीक्षक)से जो अज्ञात वस्तु (जीव वा ब्रह्म वा ईश्वर वा प्रकृतिका स्वरूप वा जीव ब्रह्मकी एकता, जो के अनुभवियोंको गम्य हे) उसके खं-

---

क-घट-पुदगल-जीव-मोक्ष-सर्वज्ञता-देशकाल-इत्यादि के स्वरूप केसे हें, यह नहीं कहा जाता-अर्थात उनका निश्चय नहीं होता. जबयूहे तो, उनका तमाम धर्म-मत-मंतव्य-कथन त्याज्य रहा. ओर अनैकांत पक्षभी अनिश्चितही ठेरा.

ख-जो यह कहो कि प्रत्येकको पर्याय दृष्टिसे सत्-असत् सदासद्-वाच्यावाच्य वगेरे नाना प्रकारका, (विरोध धर्म-विशेषण वाला स्वीकारके)कहसकते हें-वा हें; परंतु एक कालमें नहीं कह सकते; तोभी उनके मुक्त,, साधन, मोक्षादिका निर्णय ओर प्रत्येककी दृष्टिसे अन्य अन्य प्रकारका होनेसे अनिश्चत हुवा त्याज्य होगा. यथा-ऋषभदेवकी दृष्टिसे वोह आपमुक्त, अन्य नहीं, अन्यकी दृष्टिसे ऋषभदेव मुक्त नहीं. इत्यादि अनेक दोष रहेंगे.- (किसीको सतशीलसे किसीको जूंजतियोंको मारनेसे मोक्ष मिलना मानलेना पडेगा-वगेरे.)

८ ख्रिस्ति-मुसलमानी, ब्रह्मसमाजी, प्रार्थनासमाजी वगेरेके मतमें अभावसे भावोत्पत्ति ओर निमित्त विना जीवोंको कर्मभोग मानना इत्यादि असंभव दोष हें.

९ सांख्य-योग-न्याय-पूर्वमीमांसा इत्यादि अन्य मतोंमेंभी मूल उक्त २० बीसों कलमवाले दोष [किसीमें कोई किसीमे कोई दोष आता हे-बुद्धिमानको चाहिये कि यथा प्रसंग उनका उपयोग लेवे]

१० तद्वत् यथोचित अन्य मतोंमें जानलेना योग्यहे.

डन करने वा जीव ब्रह्मके भेद वा द्वैत वा स्वपक्ष प्रतिपादन करनेमें कोनसा प्रमाण हे ?. जेसेके बाल ब्रह्मचारी-विद्वान बुद्धिमान-कामशास्त्रवेत्ताभी, विषयानंदके स्वरुपका यथार्थ खंडन वा मंडन नहीं करि सकता ओर न उसका कथन मान्य होसकता हे. किंवा, अन्य विषय शब्दादिका खंडन मंडन बधिरादि नहीं करसकते ओर न उनका मान्य होसकता हे; इसी प्रकार तुम्हारा (समीक्षक के मत वा खंडनका) खंडन मंडन समझलेना चाहिये. इंद्रियातीत पदार्थमें तुम भेदको सिद्ध नहीं करसकते.

इसका यह उत्तर हे के, जो आपका प्रकार मानलेवें तो, प्रत्येक पक्षकार-मतवादियोंका सिद्धांत-वा मंतव्य विश्वास करके, स्वीकारना पडेगा. तब, 'कोन सत्य हे,' एसा निर्णय न होनेसे अव्यवस्था आवेगी (संक्षेपमें उपर कहाहे, देखो अनुभव प्रसंग). वा जेसे कोइ कहे के "पाषाणकी स्त्री में, अपछराओंसेभी अधिक आनंद हे वा संखिया खानेसे अमर होजाता हे, परीक्षा करलो;" एसी व्याप्ति होनेसे आपका कथन विश्वासपात्र नहीं होसकता. तथा आपके मंडन वा उपदेशकाभी उच्छेद होजायगा, ओर आपकी रीतिसेही अगोचर जो जीव वा ब्रह्म तिसका अभेद कहना वा मानना अलीक हे.

ओर यहां तो आपसे आपके पक्ष सिद्ध करनेकी मांगनीका प्रसंग हे; न कि हमारा पक्ष स्थापनकाभी.

किंवा, जब आप यह स्वीकार लोगे के "अगोचर जीव ब्रह्मकी एकता [वा स्व मंतव्य-सिद्धांत]में कोइभी स्वतः प्रमाण नहीं मिलता," तब, हमारे उपर आक्षेप होसकेगा. उस काल तुरतही (प्रमाणाभावके विद्यमान होनेसे)

हमारे खंडनके प्रमाण-साधनकी आवश्यक्ता नहीं; एसा स्वयं स्वीकार लोगे. ओर कुछ कुछ साधन तो, आपको खंडन बांचनेसे ध्यानमे आगये होंगे. अन्यथा आपसे प्रश्नही नहीं होतो.

जरा विचार करिये के, जब किसीको फंसाना हो तो, पूछने वालेको सीधा उत्तर यह है कि, यदि तूं, शिष्यभावसे पूछता हे तो, हम कहें उसे मानले, तकरारकी आवश्यक्ता नहीं. यदि विवाद करना होतो, पंडित (मोलवी-पादरी-उपदेशकों) पास जा! यदि हमारी परीक्षा लेना हे तो, हम परीक्षा देने योग्य पंडित नहीं हैं. यदि चर्चा मात्र-लीलारूप भाषणकी इच्छा हे तो, हम व्यर्थ बकवाद करना नहीं चाहते-इत्यादि दंभ, कपट, चतुराई वा गरीबी रूप कथन वा धूर्त्ततासे उसे भुला सकते हैं; अतः आपके एसे प्रश्नोत्तरोंसे हम उदासीन हैं.

हमारा उद्देश मतवादियोंके दूषण भूषण सहित पक्ष निर्णय करनेमें हे. आग्रह पूर्वक किसीके खंडन मंडनका उद्देश नहीं हे.

हमारा पक्ष तो वही समझो कि जो सर्व मतोंके सारज्ञ, विद्वान, बुद्धिमान, परीक्षक मिलके प्रत्यक्षानुमान, सृष्टिनियम ओर युक्ति[1] तथा अनुभवसे परीक्षा पूर्वक एक मत हो-

---

१ केवल-अकेले प्रत्यक्ष वा अनुमान वा सृष्टि नियम वा बलाबल युक्ति वा अनुभव वा लाघव, गौरव वा परीक्षामें भूल होजाती है. [जिसके विस्तार करनेकी यहां आवश्यक्ता नहीं हे. कुच्छ उपर लिखभी आये हैं] अतः कितनेक मिलके मान्य कहे जाते हैं; एक नहीं.-इन सर्वका वा किसीका यथोचित उपयोग होना चाहिये. केवल 'बहु पक्षी मतमान्य,' यह मंतव्य वा नियम मान्य नहीं होसकता. जो

के-सिद्ध करके स्वीकारलेवें. वा वे निर्दोष पक्ष सिद्ध कर-
परीक्षा करदेवें. वहांतक हमारा कोइ पक्ष२ नहीं. अतए-

मानां जावे तो, संसारमें अज्ञ मनुष्य बहुत हें.-असत्यवादि
अधिक हें; उनका पक्षभीं स्वीकारना पडेगा. सर्व उलूक
'सूर्य कोई वस्तु नहीं' एसा, निश्चय करते हें. सोभी, मान
होगा. तमाम भूमीपर बौद्ध बहुत हें; उस मतको स्वीकार
लेना चाहिये. विवादकी जरुरत नहीं.

२ सर्व मतमतांतरका मूल, जबके लौकिक वा पार-
मार्थिक (मोक्ष) वा उभय सुख प्राप्ति होनेकी दृष्टिपर हे; उ-
सका इतनेमें समाधान बस हेः—" संसर्गमेंभी मूल तत्व
अपने स्वरूपको नहीं छोडते; " जेसेंकि पारदमें सुवर्ण लय
वा एकरुप होजाता हे, ताम्र श्वेत वा पीत होजाता हे, तोभी,
उनमें जो मूल परमाणु हें वे, वेसेही रहते हें. पारदादिरूप
नहीं होते. इसी प्रकार जीव विषे समझ लेना चाहिये.-
अर्थात् जो जीव जडवाद समान मिश्रित (मध्यम-जन्य) हे
तो, सादिसांत होनेसे, जब तब नाश होगा, इसलिये उस-
का बंधमोक्ष क्या. तद्वत्-अनादिसांत, सादिअनंतवालेमें
समझलेना चाहिये. ओर न, यह [उत्तरके दोनों] पक्ष सं-
भव हें. अतएव जीव अनादि अनंत निरवयव तत्व हे,
एसा मानें तो, स्वस्वरुप ओर स्वभाव त्यागका अभाव हे.
ओर कितनेभी अनंत (अमाप) जीव मानें, परंतु जब तब,
सृष्टि प्रवाह ओर तत्वोंके उपयोग होने अर्थ मोक्षसे पुनरावृत्ति
माननी पडेगी; अन्यथा सृष्टिका उच्छेद होगा. जो अणु वा
व्यापक हे तोभी, यही निर्णय रहेगा. जो किसी तत्वका
अंश हे, तोभी उक्त पक्षही मानना पडेगा. जो. सोपाधि वा
मध्यम परिणामी (सादि) हे तोभी, वही पक्ष स्थिर रहेगा.

इमसे प्रमाणादिक पूछनेकी आवश्यकता नहीं. प्रत्युत जो

जो, मिथ्या हे तो, उसका बंधमोक्ष वा निवृत्तिही क्या. जो, क्षणिक-परिणामी हे तो, सावयव (मध्यम) समान व्य-वस्था होगी. अब चाहे, उक्त पक्षोंमें पुनर्जन्मवाला जीव मानो वा, अपुनर्जन्मवाला मानो,-सर्वथा उक्त पक्षोंकी हानी नहीं. एसेही मोक्षको कोई-तत्व वा अवस्था मानके सिद्धांत होसकता हे:-अर्थात् जो, मोक्षको अवस्था विशेष [सारुप्य सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, इष्ट प्राप्ति, जीवका परिणाम विशेष इत्यादि] मानके उसे, यदि सादि अनंत मानें तो, असंभव दोष आवेगा.-हठसे मानभी लेवें तो, जीवकी अनावृत्ति होनेसे परिणामी-अवस्थावान-संयोगी जीवकी संख्या वा उपादानका जब तब अंत आनेसे सृष्टिका उच्छेद ओर तत्वोंकी निष्फलता मानना होगा, जोकि असंभव हे. जो मोक्षको अनादि अनंत वा अनादि सांत मानें तो, अनादि अनंत सिद्ध [जीव प्राप्त मोक्ष में प्रवृत्ति न संभ-व. तथा अनादि सांत (नाशवान मोक्ष) विषे जीवकी प्र-वृत्ति नहीं बनती. स्वभावतः-विना प्रयत्न सांत होके बंध-से छूट जायगा. ओर सादिसांत पक्षमें जीवकी मुख्य प्रवृत्ति व्यर्थ होगी. जो मोक्षको व्यापक एक तत्व मानें तो, सदा प्राप्त हे; प्रवृत्ति न संभव. जो अणु तत्व मानें तो, जीवोंमें विवादका हेतु होनेसे दुःखद होपडेगी. जो "मरणही मोक्ष,-मोक्ष न तत्व हे-न अवस्था हे," एसा मानें तोभी प्रयत्न वास्ते अभाव हे; क्यों-कि स्वभावतः सर्वको (प्राप्त होने योग्य) हे. इ.

[शंका] 'मरना हे' यह सर्वको प्रतीतरूप-निश्चय हे तो फेर प्रयत्न प्राप्त भोजनादिमें प्रवृत्ति व्यर्थ हे-नहीं होना चाहिये.-क्यों होती हे ? अर्थात् जेसे सादिसांत फल

स्वपक्ष यथार्थ समझते वा मानते वा परीक्षा करके जानते,

वाले भोजनादिमें प्रवृत्ति होती हे—सफल हे. वेसे मोक्षको सादिसांत मानें हुयेभी विशेष कालतक सुख [मोक्ष-स्वतंत्रता] विशेष प्राप्तहोने—रहने—भोगने अर्थ मोक्ष विषे प्रवृत्ति संभव हे—सफल हे.

•[समाधान] जेसे पशुवोंकी स्वभावतः भोजनादिमें प्रवृत्ति होती हे वेसे, मनुष्योंकोभी हे. इसी प्रकार अदृष्ट, अनिर्णित, कल्पित, वा विश्वासवाली मोक्ष प्राप्ति अर्थभी प्रवृत्ति हो; इससे उक्त पक्षोंका बाध नहीं होता. अर्थात् बंध रहने वा होनेका कारणबीज नाश नहीं हुये वा नाश नहीं हो सकते हें जिसके, एसा जीवनाम तत्व, घटीयंत्र वा घटमाल समान नित्य फिरताही रहेगा.—"पूर्ववत् स्वभावतः बंधसे मोक्ष, मोक्षसे बंध होता रहेगा.—स्वस्वरूप वा अनादि शुद्धाशुद्ध स्वभावको, कभी ओर किसी प्रकारसेभी नहीं छोड सकता." अतएव कोई प्रकारभी मानो, कुछभी हो—मोक्षवादि धर्म-मत-पंथ-बाडे—मजहब—दीनके झगडोंमें क्यो पटें. १.

किंवा यदि ईश्वर हे ओर न्यायी हे तथा हम जीव चेतन अनादि अनंत हें, तो हमको उचित हे कि, जहांतक कि हमको ज्ञात हें वा जानसकते हें; वहांतक कुदरती नियम ओर स्व अंतःकरणके विरुद्ध कृत्य [जिसको पाप कहते हें] न करें; ईश्वर हम परतंत्रोंका कुछभी नहीं बिगाड सकता.

जो ईश्वर सत्ताधारी हे ओर अन्यायी जबरदस्त हे,—अच्छेको बुरा, बुरको अच्छा फल देसकता हे वा देता हे; तो हम स्वतंत्रहीन, पराधीन, फल भोगनेमें परतंत्र-लाचार हें-

जनासकते हो वा अनुभवगम्य जानते हो ओर जिज्ञासुओं-

निर्दोष हैं-निरुपाय हैं. जो हम पूर्वमें न थे ओर ईश्वरने अपनी शक्ति वा इच्छा वा अभावसे हम (जीव)को उत्पन्न किया, तो भी हम निर्दोष हैं-जैसे स्वेच्छानुकूल उसने साधन [बुद्धि, इंद्रिय, शरीर, पदार्थ] दिये वेसे कृत्य करते वा होते हैं. बुराई भलाई ओर फल भोग उसके सिर है. जो ईश्वर हैं ओर हमारा प्रेरक हे, तो भी जोखिम उसके उपर हे; यदि हम उसकी प्रेरना नहीं मानते, तो उसके ईश्वरत्वका बाध हे.

जो, जीव ईश्वरका अंशहे, तो नित्य पवित्रहे किंवा ईश्वरही जीव-जगतस्वरुप हे, तोभी शोक, प्रयत्न करने योग्य जीव नहीं हे. जो जीव ब्रह्मका वस्तुतः अभेद हे-अर्थात् जीव पदका वाच्य लक्ष्य ब्रह्म ओर ब्रह्म पदका वाच्य वा लक्ष्य जीव हे, तोभी जीवको शोक वा प्रयत्न प्रवृत्ति योग्य नहीं हे. जो ईश्वर [ब्रह्म] की छाया-आभास वा प्रतिबिंब, जीव है, तोभी जीव जड हुवा. बुराई भलाईका जोखम, भोक्ता ईश्वर पर हे. जो जीव जड हे ओर ईश्वरकी सत्तासे गति करके कार्य करता है, तो जीव लाचार हुवा; अतः शोक योग्य नहीं. जो जीव जड वा चेतन हे-अनंत आकर्षणों के अनुकूल उसको गति करनी पडती हे ओर फल पाता हे, तोभी लाचार हुवा. अतः निर्दोष हे, शोक करने योग्य नहीं.

जो जीव कर्म करनेमें स्वतंत्र फल भोगनेमें परतंत्र हे; किंवा ईश्वर नहीं हे, तोभी जीवको इष्टकृत्य [जिनकृत्योंका परिणाम दुःख न हो-सुख मिले, अर्थात् कुदरती नियम ओर अपने आत्माके प्रतिकुल न हों, किंतु कुदरती नियम ओर अपने अंतःकरणके अनुकुलहों, एसे कृत्य] करने योग्य हें,

का हित इच्छतेहों तो, परको जनाने वा आकर्षणे वास्ते सि-
शोक वा परलोकके झगडे-इत्यादिमें पडनेकी आवश्यकता नहीं

निदान मज्कूर [ईश्वर-जीव-परलोक-परोक्षवादादि]
झगडोंमें क्योंपडें. जो हे सो हे.

ईश्वरादि प्रसंगमें जो कल्पना लिखी सो पूर्वोक्त क-
ल्पना वा निर्णयके विरुद्ध नहीं हे-एसे मंतव्यका फल वही
हे जो कि उपर लिखा. २.

किंवा—बुद्धि [मन-मगज] वीर्य (शरीर-तन)
स्वच्छ आरोग्य रहें, स्वतंत्रता बनी रहे, शारीरिक-मानसिक
दुःख न हों [जो यह बातें प्राप्त होती वा होसकती होंतो]
तिनके साधक प्रसिद्ध उपायोंमें जीवन पर्यंत प्रवृत्त रहें.
(जो उक्तबातें यथावत् प्राप्त न होसकती हों तो, हम ला-
चार हें). यदि परमार्थ वस्तुतः कुछ हे, एसा मानें तो वोह
भी, इतना हुये विना सिद्ध नहीं होनेका. उन उपायोंमेंसे
कितनेक यह हें:—

१ सत्य-जैसा देखा सुना ओर जानतेहों वेसाही
कहना ओर मान्ना-वर्तना वर्ताना [वस्तुतः जेसा हमने जा-
ना हे वेसाही हो, एसा नहीं कहसकते]. दूसरा अर्थ यह
हेः—हे. तीसरा अर्थः-हे, हे, हे,-अबाध्य-परीक्षामें वेसा
कावेसा. निदान सत्यका स्वीकार.

२ असत्य—जेसा देखा, सुना, ओर मानतेहों वेसा
न कहना-न वर्तना. [किंवा वस्तु-अर्थ-शून्य वा यथार्थसे
अन्यथा], एसे कर्म गुण त्याज्य हें-त्यागना.

३-अहिंसा-अपना ओर परका दुःखसुख समान
समझके, उपयोगी निरपराधिके तन, मन, धनको न सताना-
वैरभाव नहीं करना.

द्ध कर बतानेका आप उपर भार है. क्योंके सत्य वस्तु प्र-

४ दया, न्याय, प्रेम–किसीको दुःख–पापसे बचाना. जैसेकि, कोई मत पंथवाला किसीको बहकौता हो–अजाने वा जानता हुवा असिद्ध–कल्पित–स्वधर्ममें आने–लाने वास्ते फंसाता हो; वा कोई दुष्ट जन किसी उपकारी सज्जन वा निरपराधिके तन, मन वा धनको सताता हो तो, उसको कोई प्रकार (साम, दाम, भेद वा दंड–समझाके, . लुभाके, खंडन मंडन, उतार चढाव करके वा बालताडन समान दंड देके–इत्यादि रीति) से उक्त असत्य–पाप कर्मसे बचाना [दया है]. परंतु वोह बचानेकी रीति यथावत्–योग्य हो. अन्यथा अन्याय वा निर्दयता है तथाहि वोह रीति द्वेषरुपमें नहो; किंतु उसकी हित दृष्टिसे हो. तदुपरांत दया, न्याय, प्रेमके अर्थ लोकमें प्रसिद्ध हैं.

५–ब्रह्मचर्य–सृष्टि नियमके विरुद्ध वीर्य त्याग न होने देना वा न करना. (इसका विस्तार प्रासिद्ध ग्रंथ 'व्यवहारदर्शन' में है) यह उपाय बल, वीर्य, आरोग्यता उद्यम ओर विद्या वृद्धिके वास्ते सर्वोत्तम हैं.

६–अस्तेय–अनीति– अनधिकारसे किसीका तन मन वा धन स्वाधीन न करना वा पराधीन न कराना–न उसमें संमति देना. [चोरी, ठगी वगेरे].

७–विद्या–पदार्थ ज्ञान (वैद्यक–रसायन वगेरे) ओर हुनरकी प्राप्ति करना; क्योंकि इसके विना, विवेक नहीं होसकता. विवेकके विना यथावत्, त्याग ग्रहण [मनुष्य, ज्ञातव्य, कर्तव्य, प्राप्तव्य] नहीं होसकता. उसके विना कोई प्रकारकाभी यथायोग्य सुख (तन, मन, धन, स्त्रि, पुत्र, सत्ता–राज्य, सिद्धि वगेरेका) प्राप्त नहीं होसकता.

त्येक प्रकारसेभी सिद्ध होने योग्य है. झूट वा कल्पित सि

८ संप-हरकोई सामाजिक काम मंडली विशेषकी सम्मत्तिसे करना, एकदुसरे के दुःखमें आडे आना-रक्षाकरना-दुःखसे बचाना, केवल अपनी उन्नतिसेही संतुष्ट न होना; किंतु परस्परकी उन्नति करना,-एक जीव होके दुष्टोंका संहार करना. जो संप न होवे तो कोई वातभी नहीं बनती (परस्पर मनुष्यों तथा शरीरके अवयवोंकी-संपकी हानी से शरीरभी नहीं चलता-रोगिष्ट होजाता है-नाशहोता है). जितने अंश संप [ऐक्यभाव-एकखयाल-एकमत] में न्यूनता उतने अंश मनुष्यकी स्वतंत्रता ओर उन्नतिमें न्यूनता-खामी जानलेना चाहिये.

९ योग-आत्मोन्नति [मनेंद्रिय निग्रह ओर शुद्धि शक्ति वृद्धि] प्रकार-सूक्ष्म पदार्थों के ज्ञान पाने-होनेकी क्रिया विशेष.

१० धृत्ति, क्षमा, दम, शौच, इंद्रियनिग्रह, धीवृद्धि वगेरे पूर्वोक्त १० बातोंमेंसे उक्त कहे हुये वाधकरके शेष जो हों सो. [पूर्वोक्त बातोंके हेतु, उदाहरण विस्तार भयसे नहीं लिखे.

यद्यपि 'सत्य, असत्य, ओर यथार्थ, अयथार्थका जानना ओर तदानुसार वर्तन कठिन है; तथापि नैसर्गिक नियमानुकुलही कहना-मानना पडता है-जेसे प्रचलित नाम-महादेव, गणेश, गफूर, अबदुल्ला, हुरमजद, राम, श्रीकृष्ण, ईश्वर, विष्णु-इत्यादि रखना, बोलना, बुलाना १. छत चूती है २ मेरी चक्षु, में काना ३. मेरी नाक, में नकटा ४. में को तु ओर तु को में का वाच्य मान्ना-कहना ५. बहेन पदसे कही हुई स्त्रीको पत्नी कहना [यवन लोक काकाकी लडकीको विवाहते हैं.] ६. वेश्या-व्यभिचारणीका पुत्र न जाने

द्धांतमें कहीं न कहीं किसी न किसी प्रकारसे अवश्य दोष आवेगा. सत्यमें नहीं.

और कहे कि यही मेरा बाप है ७.-इत्यादि असत्य, वा अयथार्थ व्यवहार है.-और लोक विषे सत्य रूपमें माना जाता है मृग जलको देखके अजाना पुरुष जैल कहता है-मानता है-समझता है और पानी लेनेको दोडता है-दूसरेकोभी दोडाता है; यहां, यद्यपि वस्तुतः वोह यथार्थ [जो हो, जैसा हो, सफल प्रवृत्ति निवृत्तिका जनक हो; अवाध्य हो, वोही, वेसाही, फलप्रद जानना-मानना-होना) रूप. जल नहीं है; किंतु अयथार्थ (यथार्थसे भिन्न-बाध्यरूप-अन्यथा) है; तथापि उसका वक्ता ' असत्यवादि है,' एसा नहीं कहसकते. मानो कि परीक्षामें वोह (जल) मृगजल न हो किंतु जल हो; तब तो वक्ताको सत्यवक्ता और यथार्थवादिभी कहसकेंगे. अन्यथा अयथार्थवादि तो कहसकेंगे; परंतु असत्यवादि नहीं कहसकते. परीक्षाके पूर्व सत्यवादि तो कहसकेंगे; परंतु यथार्थ ज्ञाता-वक्ता नहीं कहसकते. जहां, रज्जुमें सर्प भासता है वहां, यदि वक्ता उसे सर्प निश्चय करता है और दूसरेको जलधारा बताता है तो, उसने ' असत्य कहा-कपट किया, ' एसा माना जायगा. यद्यपि वस्तुतः वहां, न सर्प है न जलधारा है-उभय अयथार्थ ज्ञानके विषय हैं; तथापि जलधारा असत्य और सर्प अयथार्थ और रज्जु यथार्थ पदके वाच्य होंगे. सर्प, असत्य और यथार्थका वाच्य नहीं कहा जायगा.-इत्यादि विलक्षण व्यवहार है. [एसेही, ईश्वर मोक्षादि विषयके संबंधमें जानलेना योग्य है]. उक्त लेखसे यह परिणाम निकाल सकते हैं कि " यथार्थ वादकी निश्चित सीमा नहीं-अमुक यथार्थ वक्ता है,-एसा सिद्ध होना क-

ओर यदि आप उक्त लेखको वितंडादि रुप-सदोष

ठिन हे." "तथापि" लोक व्यवहारमें, जेसे सत्य ओर असत्यका निर्वाह-संकेत, भाव, संस्कार, अभ्यास, रूढी, नीयंत, लाभ हानी विशेष पर हे. (व्यवहार विषे सत्यका अर्थ 'हे' वा 'हे, हे, हे, '-'अबाध्य' असत्यका अर्थ 'वस्तु शून्य वंध्या पुत्रवत्'-सर्व स्थलमें ग्रहण नहीं करते-नहीं होता). जो एसा न होवे तो जीवन व्यवहारही कठिन पडजाय. वेसेही व्यवहारिक यथार्थका मंतव्य, "बहुधा बुद्धि, विश्वास" पर हे; सर्वांशमें यथावत्-अबाध्य-यथार्थ नहीं कहसकते. जब यूं हे तो, परमार्थ विषयक विषय संबंधमें क्या कहना हे. एतद्दृष्टि परोक्ष वादको छोडके, विवादित पक्षको किनारे रखके-उसकी चर्चामे उदासीन हुये प्रसिद्ध-सर्व हितकारी, उन्नति कारक विषयमें प्रवृत्ति हे. ईश्वरकी अस्ति नास्ति, धर्म पंथोंके झगडमें क्यों पडें? (यद्यपि हमको चाहिये कि हिंदुओंके समान केवल स्वार्थमेंही प्रवृत्त हों, अपनी डाढी बुझावें-आपही जूता पहनें; दूसरा"अपना मा-बाप-भाईभी क्यों न दुःख पावे, हमको क्या; तथापि जीव परतंत्र हे मनुष्यका व्यवहार, सुख, जीवन, परसंबंध-पराश्रय-पराधीन हे; इसलिये "परके सुखसे अपनेको सुख, परके दुःखसे अपनेको दुःख हे"-इत्यादि गुह्य विवेकसे स्वार्थमें ही दृष्टि हे ओर व्यवहारमें स्वपरोपकार स्वपरोन्नतिका कथन हे.) २.

किंवा-हमारा पक्ष, हमारी दृष्टिसे चेतन वादमें हो, तथापि हम अपनेको उसके सिद्ध करने योग्य नहीं जानते,-वा नहीं करसकते; वा अयथार्थ पर हों. ओर न अपने मंतव्य-कल्पनाके आग्रहके विश्वासी बनना वा बनाना चाह-

वा बाल लेख समान समझके, अपनी दृष्टिमें तुच्छ मानके
स्व भार उतारनेमें उदासीन रहोगे, तो जेसेके आर्य संतान

ते हैं. ओर न आग्रहके योग्य, अपनेको समझते हैं. ओर
न आग्रह रखते हैं. ४.

किंवा–आप एसा समझलेवें कि, 'यह (मैं) संशया
त्मक हे;' अतएव इस क्षण–[इस नोट–ग्रंथ समाप्तिकाल]
तक हम कुच्छभी नहीं कहसकते.–ओर न कहना चाहते
हैं.-कोइ दोष, रहित सत्य दरसावे; एसी जिज्ञासा रखते हैं.५.

किंवा–जिन जिन मत–[पक्ष–धर्म–पंथ–दीन–मजहब,
फिलोसोफी] वालों–वादियोंने, जो जो मंतव्य–[कल्पना–
सिद्ध विषय–निर्दोषपक्ष–मानो वेसाही होय नहीं–] माना हे,
तिस तिस अनुसार सो सो मुख्य फल -हो–निर्णयका विषय
हो -अर्थात् सर्व मतोंकी रीतिसे, मानलो कि, उनकी धा-
रनानुसार, इसलोकके ओर परलोकके, तमाम सर्वोत्तम,-
सर्व मान्य.-अत्यंतदुःखमात्र रहित,-संपूर्ण ऐश्वर्य [" तन
मन, धन, स्त्री, पुत्र बंधु, राज्य, सत्ता, कीर्ति, मान, सर्व
ऋद्धि, सर्वसिद्धि.-करामातका सुख-स्वर्ग प्राप्ति अरिहंतत्व-
" कामादि सर्व दोष रहित," शांति (राग द्वेष, हर्ष शोका-
दि राहित्य–अचल आनंदघन), स्थिरता, ईश्वर–ब्रह्मज्ञान
वा तत् प्राप्ति,अपुनर्जन्मत्व, मोक्ष प्राप्ति, सर्वज्ञता, यथेच्छा
करने वा संकल्पमात्रसे मनमाना होनेकी सामर्थ्य, स्फुरणा
रहित, ईश्वरभी बनजाना, निरतिशय सुख,-अथवा जो जो
कुच्छ मानो–इच्छो–कहो सो सो सर्व–इत्यादि"] प्राप्त हुये
हों–सर्वदा प्राप्त रहें तोभी क्या? ओर यूं न हुवा– न हो-
सके–नहो, तोभी क्या? किंवा उस [पूर्वोक्त ऐश्वर्य] के
विपरीत हुवा–हे-हो, तोभी क्या? अथवा कहे हुये तीनों

को, अन्य मतवालोंने स्वधर्ममें मिला लिया.-ब्राह्मण सा
लोक केवल स्वाभिमान मात्रमेंही लीन रहे-उनके सन्मुख
न हुये-उनको आर्य करने-स्वधर्ममें मिलानेसे ग्लानी कर
रहे ओर कर रहें हें.-केवल परस्परके खंडन मंडन करने व
जये वा स्थान बनाने वा भिक्षा मांगने वा देवादिके उपास
नाके भरोसे काल व्यर्थ गुमाने वा अन्य सिटपटमें पडे रहे

प्रकारसे न्यूनाधिक (जेसा तेसा) हुवा-हे-हो, तोभी क्या
किंवा वेसा न था-न हुवा-न हे-न हो, तोभी क्या?. किंवा
कहे हुये प्रकारसे अन्यथा हुवा-हे-होगा, तोभी क्या? अवधि
सो अवधि-सीमाही.-तृष्णा सो तृष्णाही.-वासना सो वास
नाही.-संस्कार सो संस्कारही.-कामना सो कामनाही.-फुर
ना सो फुरनाही.-"हे सो हे ही."-'नहीं सो नहीं ही'.-अ
नादि स्वरूप-स्वभाव-गुण सो अनंतही '.-" अतिसे नि-
वृत्ति पूर्णता स्वभावसे."-यह नैसर्गिक अनादि अनंत नियम
अटल हें. [अतः उनकी इच्छा छोडके पूर्वोक्त-जनाना-समझना
बस हे.-इसका विशेष विस्तार करना उचित न जानके,
जीवन व्यवहार ओर आपकी मान्यता-इच्छा तथा स्व-
भाव-संस्कार-प्रकृतिपर छोडके उपराम होते हें]. हां, इस
भेद-रहस्यके जानने-मानने-प्राप्ति-जनाने-मनाने-प्राप्त कर-
ने कराने कीभी इच्छा न रहे.-इस प्रकारकी अनूपम-अकथ-
अद्भुत शांति होनेके अर्थ, यदि प्रयत्न करनेको कहो-तिसके
संबंधमें में कुच्छभी कहना-सुनाना-मनाना नहीं चाहता.
जेसे जिसको योग्य प्रतीत हो-प्रबल संस्कार हों-जेसा-
योग्य समझे वेसा करे. ६.

{ तत्वदर्शननाम ग्रंथमें इस प्रसंग
का सविस्तृत निरूपण हे. प्र. क. }

नस आर्यधर्मके उच्छेद होनेके हेतु होपडे.–ओर वे (परधर्मी) चुपाचुप अपना काम (स्वार्थ-स्वधर्म फेलाना, परका खंडन करना) कर रहे हैं.[१] वेसेही, यह लेखभी अपना काम करेगा. उससे आपके पक्षका उच्छेद होजायगा.

जो विषयके यथास्थित मनुष्योपयोगी उपयोगपर दृष्टि नहीं रखके एसा कहो कि "तुम्हारा खंडन मन॰वाणी करके हे–ओर मनादि सादि सांत हैं–उनको पूर्वोत्तरका यथावत् यथार्थ ग्रहण नहीं होसकता–ओर परोक्षका तो वर्तमानमेंभी, यथावत् ज्ञान–ग्रहण नहीं होता हे; अतएव सर्व कल्पना मात्र हे–स्वीकारने योग्य नहीं." इस विकल्पका उत्तर देनाही व्यर्थ हे.–आपको वा जितने मताभिमानी सर्वज्ञत्वके मानी हैं, उन सर्वको दोष प्राप्त होगा. जबकि आपके माने हुये नियमका आपने स्वीकार करलिया, उसी कालमें ग्रंथका आशय पूरा होजायगा.–(अर्थात् आपका सिद्धांत शून्य होजायगा-उसकी सिद्धि वा उपदेश न कर सकोगे).

ओर जो एसा कहो कि "जेसे, तुमको दुराग्रह नहीं (मत पक्ष नहीं), वेसे, हमकोभी नहीं.–कोइभी प्रकारसे मनुष्यके मनको शांति हो.–बंध मोक्षादि कल्पनाकी हायहू मिटे." तो, जडवादकी व्याप्ति होसकेगी.[२]-सर्व धर्म पंथके संस्कारोंका उत्थान योग्य होगा; जोकि असंभव ओर सुपरिणामका अजनक[३] होगा.

---

१ जोलाइ स. १८९९ (सं. १९५६) में मद्रास देश विषे मूर्त्तिपूजाकी तकरारपर एक दिनमें ६०० शनार हिंदु–मूर्त्ति पूजक, मुसलमान होगये. हा!

२ जिसके मनने जो मानालिया सो ही ठीक.–शांति.

३ मनमुखिताका प्रसार होगा.

ओर जो एसा कहो कि " किसी प्रकारसे ब्रह्म चेतन, जीव, प्रकृतिका यथार्थ ज्ञान होवे, एसा अभिप्राय हे." तो, आग्रह छोडके सत्य शैली शोधो. जो बात यथार्थ हो-निर्दोष हो-उसको शोधके-उसके प्रचारका उपाय लेके, लोकोंको भ्रांतिसे निकालना चाहिये. प्रथम अहंब्रह्मादि पक्ष मत धारो, किंतु सर्वको-सरल रीतिसे समझमें आवे, एसे प्रकारसे आर्जव पूर्वक कार्यको उठाके-आगे रखके कारण पर पहोंचाइये. तो, आशा हे कि, जो सत्य, तिरेगा उस सत्य को सर्व ग्रहण करेंगे. आगे आपकी इच्छा. स्वतंत्र हो.

मतप्रचार-दर्शन-२६.

जो यह कहोके "जेसे अन्य धर्म-पंथ-मजहब-बाडे-दीन-संप्रदाय ओर उनके अनुयायी तथा उनके उपदेशक गुरु ओर ग्रंथ,-सर्व सदोष हें ओर चलते हें, यथा, बौद्ध मतके ६० किरोड, उनसे थोडे ख्रिस्ति, उनसे थोडे यवन, ओर सबसे थोड हिंदु [२५ किरोड] हें.-इनमेंसेभी अद्वैत संप्रदायवाले" सबसे न्यून हें, वे [ख्रिस्ति, यवन, बौद्धादि]-सर्व पंथ मतवाले, स्वपंथाभिमान रखते-उपदेश करते हुये दूसरोंके संस्कार बदलके इतने बढ गये के, स्वराज्य स्थापन किये. यदि उन निर्बीज धर्मपंथवालोंमें, स्वधर्माभिमान नहीं होता ओर एक धर्मी नहीं होते तो, धनबल, राज्यबल, सत्ताबल, मनुष्यबल, वा स्वधर्मबल केसे संपादन करते? अर्थात् नहीं करसकतेथे.-ओर परस्पर मिलके जो सुख उठा रहे हें सो, नहीं उठा सकते; इसलिये तिनके समान सर्व सुखका मूल- ओर अन्य मत पंथवालोंसे न्यूनदोषवाला, एकता-संपवर्धक अद्वैत मतभी, एक प्रकारका बाडा

मानके उसकी उन्नतिकी जाय तो, क्या दोष हे? वा संभव नहीं हे के वोह अन्यसे शिरोमणि सिद्धांत सर्वको स्वपक्षमें करले? [संभव हे]. अतः सज्जन महात्माओं करके खंडनींय नहीं हे.

इसके उत्तर देनेमें हम उदासीन हें. आपका दूसरोंके समान अयथार्थ अभिमान भी हो तोभी रहो. अंधांधी व्यवहारवत्-अन्यों समान धूलमें लठ लगाते रहो; परंतु यदि, सर्व देशी,-व्यवहारानुभवी,-राज्य कार्यमें कुशल,-प्रचलित उपयोगी-सर्व विषयका ज्ञाता,-संसारको सुख देनेमें उद्यत,-जगत्‌हितैषी,-विद्वान्,-बुद्धिमान,-जितेंद्रिय,-योगी,-ओर सदाचारीसे संमति लेकर जो प्रवृत्त होंगे तो, सत्यमार्गसे उन्नति पाना संभव हे. " सत्यमेवजयति नानृतं," यह ठीक नियम हे. जेसे बौद्धमत ओर वेदांत मतमें किंचित् अंतर हे, वेसे यथार्थ सिद्धांतमें किंचित् वा विशेष अंतर हो; परंतु उक्त उपाय रचनेसे, उस सयुक्त प्रबल,-किसीसे न दबने,-न चपनेवाले-ओर अन्य कल्पित मत पंथोंको उडा देनेवाले सिद्धांतको पा सकोगे; अतएव सब वाडोंमें खंडनीय जो, प्रचलित उपपाद्य[1] रूप धर्मतत्व ओर उनके कारण[2] रूप धर्मतत्व हें, तिनके समान, आपको विशेष श्रम देना नहीं चाहते. आपका स्वधर्माभिमान, तथा वेद-ईश्वर-प्रकृति सूचक-ओर प्रेम अभेद-एकता वर्धक नीयत [भाव-

१ अमुक विधि, अमुक निषेध, यह पाप, यह पुण्य, अमुक मोक्षके साधन, अमुक नरकके साधन, इससे जीवन लाभ, इससे अलाभ, इत्यादि. स्वगुरु, वा ग्रंथगत उपदेश.

२ लोक कल्पित जीव, ईश्वर प्रकृति आदि मूल पदार्थ मात्रके स्वरुप गुण स्व स्व मंतव्य वा गुरु आचार्य ग्रंथगत मंतव्य.

ना] रहो. [3]ओर एक संप,-एक मतकी मंडली बनो.[3] अस्तु.

३ ग्रंथगत खंडनको समझके जो, परधर्मी-किरानी, कुरानी, बौद्धादि, खंडनपर उतरें तो, इस प्रातिज्ञा, उद्देशका बाध होसकेगा; एसी शंका नहीं करना चाहिये; क्योंकि (स.) इससेभी उत्तमोत्तम-अधिकतूर खंडनके ग्रंथ क्या नहीं हें? हें [देखो स्वा. चि. कृ. भाषाका न्याय प्रकाश. सर्व दर्शन संग्रह. जैनी कृ. षडदर्शन समुच्चय, पा. कृ. वेदांत दर्शन. स्वा. द. कृ. सत्यार्थ प्रकाश, वेदांती ध्वांत निवारण. रा. कृ. श्री भाष्य. जैनी कृ. वेद, वेदांत खंडन संबंधी 'निगम प्रकाश,' 'अगम प्रकाश.' सत्यामृत प्रवाह—इत्यादि]. यह तो, सामान्य वर्गके वेदांतियों वास्ते एक लघु नोट हे. इसके वाचक नवीन परधर्मीको स्व निर्मूल धर्म—मत-पक्ष-मंतव्यमें संशयोत्पन्न होना चाहिये, यह वात सहजसे ध्यानमें आसकती हे. [यहभी एक फल हे] मानो कि वोह स्व असत् पक्षसे डिगे तोभी, परखंडनकी उद्यतताका अनभाव; तथापि जिसको वेदांत मतकी उपर उपरकी वातोंके खंडनार्थ इस पुस्तकके अर्थ सहित रहस्यको सीखना होगा, उसको पूर्वोक्त (प्रवेश-टिप्पणके) ग्रंथ वांचने पडेंगे. वेदांती भाईयोंके सिवाय उन ग्रंथोंके विना, किंवा वेदांत परिभाषा ओर प्रक्रिया जाने विना, हरकोई वेदांत संबंधी ग्रंथके गुप्त आशयको नहीं पासकता ओर आशय समझे विना, किसी ग्रंथकी पंक्ति सुनाना, पोपाटिया (शूकवत्) कथन हे,-हरकोई मरयल-लघु बिल्लीकी घुरकीसेंभी, उसका टीटी करना बंध पडजायगा (पंजाबमें एसा हो रहा हे) वा, स्वयं चुप करजायगा. कुरानी धर्मका संप-जुस्से—जनून ओर बलपर तथा किरानी धर्मका संप, ओर पोलीसी उपर आधार हे. अन्योंका, विशेषतः शब्द की मारा मारीपर विचार हे. ओर हो,—जो, उक्त ग्रंथोंमेंसे कोईभी [वा, सत्यार्थ प्रकाशादि] समझके बांचालिया तो, परखंडनके बदले अपनाही खंडन

समाप्ति-दर्शन-२७.

पूर्वोक्त [दर्शन १ से २६] प्रकार-रीतिसे प्रचलित अद्वैत सिद्धांत (माया-प्रकृति-सांत मिथ्या ओर जीव ब्रह्मकी
पाके, मूहको फेरेंगे. वा वेदांत (यथार्थज्ञान-मुख्यज्ञान-ज्ञानकी सीमा-ज्ञानका पर्यवसान) के खरे रहस्य गोतनेकी जिज्ञासा होगी.

इस ग्रंथ वांचनेका फल, वेदांतास्ता-श्रद्धाका अभाव, खराबी; एसी (शंका) भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि (स.) विना समझे तो, अबभी, खराब हो रहे हें. यथार्थ न समझनेसे टके वा प्रतिष्ठा वा मोदक महाराजकी आस्ता रखते हें. यदि इसको समझेंगे तो, संशयात्मक हुये यथार्थ ग्रहण वास्ते प्रयत्न करेंगे. मुक्त,-विद्वान,-यथार्थ ज्ञानवानको इसकी आवश्यकता नहीं.-ओर न यह उनके हस्तकमलके स्पर्श करने योग्य हे-ओर न निंदा स्तुति अर्थ उनकी प्रवृत्ति. जिज्ञासुओंके संशयका उत्तेजक, यथार्थ सम्यक शोधनार्थ उच्चाटक, किसीके कथन, वा विश्वासमात्रपर आधार न रखनेके संस्कारका सहायक, यथार्थ ग्रहणको कर्तव्यरुपसे बोधक-यह लघु पुस्तक उनको हेय-निषिद्ध फलप्रद नहीं. पामरोंकी दृष्टिसे तो, निंदा स्तुति-त्याग ग्रहण-उभयथा शून्य हे. विषयीको केवल स्वमनोकामना रंजक-विषयके सिवाय, अन्य प्रिय नहीं.-उनकी इच्छाका विषय इस ग्रंथमें नहीं हे; अतएव नहीं वांचेंगे. जीवेश्वरका खंडन तो, जडवाद (यूरोप, चारवाक) ओर ईश्वर खंडन [मीमांसा, जैन, सांख्यादि] मतके प्रसिद्ध ग्रंथोंमेंभी. हे. किंतु युरोप की शैली तो एसी हे कि विना खंडनही खंडन होता जाता हे; अतएव आप महाशयोंको प्रत्युत यह ग्रंथ यूं चिताता हे कि उपायलो.-निर्दोष मत प्रचारकी कोशिश करें.-नहीं तो, आर्य संतान अतोभ्रष्ट ततोभ्रष्ट हो चली हे.-परिणाम अच्छा नहीं हे.

एकता तथा उसके जाननेके साधन) साज्य हे. नैसर्गिक नियम और युक्ति प्रमाणको नहीं सहार सकनेसे शोधक और यथार्थ दृष्टि रखते हुयेभी उसके मंडन करनेका मार्ग सिद्ध नहीं होता; तद्वत् उससे भिन्न अन्य अद्वैत-द्वैत-द्वैताद्वैत-क्षणिकादि मत विषे उपर कहा गया हे; अतः अन्य उत्तम

विचारने योग्य बात हे कि आर्यवर्त्त विषे २९ किरोड आसरे हिंदु हें उनके पुरुषार्थकी गणना कीजियेः—कमाई शून्य २४ करोड हें. ओर कमाई करने वाले ५ करोड आसरे हें.— इनकी अन्य रूढी,—व्यर्थ कृतोंको छोडके, फिलोसोफी, धर्म संबंधी संस्कार—ख्यालोंमेंसे, व्यर्थ वा अन्यथा खयाल ओर निष्फल वा अन्यथा कृति-धंधोंको निकालदें तो, सरेरास चार घंटेसे विशेष कमाई—उद्यमका समय नहीं; एसा अनुमानसे जान पडता हे. अर्थात् नाकाम धर्म संबंधी संस्कार ओर तदनुसार कृति—धंधेमें द्रव्य काल विशेष जाता हे. (विशेष वृत्तांत पुराण पोगलमें हे). निदान उद्यमसे गये, खरा धर्मतत्वभी हाथ न लगा. (श्री कृष्ण महाराज तथा स्वा. शं. स्वा. द. का आंतरीय शुभोद्देश ध्यानमें लेना योग्य हे.) क्या भूके-कंगाल-क्षुधातुर-दुःखिया, वेदांत वा धर्मके गुह्याशयको पासकते हें? नहीं.

इत्यादि दृष्टिसे उक्त शंकाओंका अवसर नहीं हे. तदुपरांत नकारखानेमें इस तूतीके शब्दकी भिणकभी, नहीं पडनेकी; अतः कोई शंका नहीं. जो इस तूतीकी आवाज सुनें, उनको योग्य हे कि, प्रथम हिंदुओंको आर्य बनावें. जब एसा, होजायगा तो, वे स्वयमेव अधिकारको प्राप्त होके, वेदांत (यथार्थज्ञान—ज्ञानकी पराकाष्टा—ब्रह्मविद्या वा फिलोसोफी) के योग्य होजायंगे, आजकल—वर्त्तमानमें उनके प्रसिद्ध दुःखोंकी निवृत्तिका उपाय लीजिये. ब्रह्मबन्नापना छुडाके सत्यपर लाइये.

श्रेयकर मार्ग अवधारण करनेकी सूचना की है वहांतक आर्य संतानके ओर अपने प्रत्यक्ष जो दुःख हैं-उनके निवारणमें प्रवृत्त हों, यह विनति स्वीकार हो.

ग्रंथको इति करने पूर्व नवीन वेदांती ओर जिनका पक्ष स्थापन किया गया हो-उन पक्षकार भाइयोंकी सेवामें इतना जिता देना उचित हे कि, यदि मेरा लेख खंडन ओर आपका पक्ष किसी योग्य प्रकारसे सिद्ध होजाय तो, मुझको स्वपक्ष त्याग, ओर सत्यपक्ष ग्रहण करनमें किंचित्भी आग्रह नहीं होगा.

एतद्दृष्टि शब्द-पदके भाव ओर स्व मत गत लक्षण तथा परिभाषा ओर अभिप्रायपर ध्यान खेंचके, सर्व लोकोपयोगी हिंदी भाषा वाले लेख द्वारा, इस ग्रंथ गत कथनके विरुद्ध-आनंद पूर्वक उत्साही होकर उतरें. शब्द व्याकरणादिकी तकरारमें काल व्यय न करें; क्योंकि सो तकरार ओर कठिन खंडन मंडन तो, अन्य ग्रंथोंमें प्रसिद्ध हें; अतः सफलतापर ध्यान रखना उचित हे.

इस ग्रंथमें कितनाक लेख वा खंडन, एसा पाओगेकि अन्य ग्रंथोंमें नहीं देखा हो. तथापि कितनेक विषयोंका जो, अन्य ग्रंथोंमें खंडन वा मंडन किया गया हेभी, सो एसा संतोषकारक नहीं जान पडता कि, इस नवीन प्रकाश कालमें ठेर सके अतः उभय प्रकारके खंडनरुप लेखके खंडन ओर पूर्वोक्त स्वपक्षके मंडनमें यथार्थताको लिये उत्तम रीतिसे उत्तरना चाहिये.

परंतु अस्वीकारणीय विषयका ग्रहण न होना चाहिये. यथाः—१ कहींका एक पद वा वाक्य लेके दोष देखाना, क्योंकि यह प्रकार निंदक, मिथ्याभिमानियोंका हे.

शोधक विवेकीका नहीं. २ अयुक्त, असंभव वा साध्य दृष्टांतोंका उपयोग करना.- जैसे पंचदशीके ध्यानदीपमें गोदावरी आदि नदियोंके स्नानसे पापकी निवृत्तिका दृष्टांत दिया है.-अजामेल ओर रावणादिको अन्यथा मोक्ष मिलना मानके उदाहरण दिया है. अथवा बाजीगरके बनाये हुये छुहारेके वृक्षको मिथ्या मानना. कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप मानना अर्थात् भगेर (दीपडे)में कुत्तेकी भ्रांति ओर उस कल्पित (कुत्ते)की निवृत्ति उसके शत्रु-अधिष्ठान [भगेर] के स्वरूप मानना. किंवा पंचदशीमें लिखा हे कि, "ईक्षणासे प्रवेशतक ईश्वर कल्पित सृष्टि, ओर जाग्रतसे मोक्ष पर्यंत जीव कल्पित सृष्टि" अक्रियसे आकाशादिकी उत्पत्ति.-इत्यादि अयुक्त असंभव बात न हो. ३ पंचदशी वगेरे कितनेक ग्रंथोंमें जिनको श्रुति वाक्य लिखा हे, उनमें बहोतसे एसे वाक्य हैं कि, चारों वेदोंमें नहीं. हैं; परंतु श्रुतिपद लिखके वाचक वा श्रोतागणको दाबा हे. वेसा नहीं हो. ४ युक्तिसे युक्तिका, बुद्धिसे बुद्धिका, विद्याका विद्यासे, अनुभवका अनुभवसे मुकाबला करना योग्य हे. अन्यथा नहीं.-इत्यादि* बातोंका ध्यान रहेगा तो, लोक हितकारी हो पडेगा.

निदान जो आपका वोह लेख-प्रत्युत्तर, पक्ष रहित, यथार्थ ओर लोक हितकारी होगा, ओर उसमें अमुक एक दोषकाही निवारण [एक शंकाका समाधान] नहीं किंतु, सर्व

---

* वासना ज्ञान विना नहीं जाती. वासनाके अभाव विना जन्म मरण नहीं टलता (वेदांत पक्षको संमत्त हे), वासना जाय ओर ज्ञान न हो वा ज्ञान हो ओर वासना रहे तो मोक्ष नहीं होता अर्थात् उभय हुये मोक्ष होना संभव हे. परंतु "युवति भोगे सदा संन्यासी" इत्यादि बातें-वाक्य-प्रचलित हुई, इसको क्या समझें? निदान एसे वा पु. कि. कु. इ. जै. के गप्पों समान लेख न हो.

दोषोंके निवारण पूर्वक सर्व रीतिसे योग्य प्रकार पूर्वक स्वप
क्षका प्रतिपादन किया गया होगा; तथा जीवन है तो, ?
स्वलेख खंडन-सत्पक्ष मंडन वांचके वा उस लेखकी प्रसि
द्धि सुनके प्रसन्न और उत्तरप्रदका आभारी हूंगा* इति.

सत्य शोधन जिज्ञासा उत्पादक पूर्वपक्ष समाप्त हुवा.

---

* [नोट] अपनी परीक्षा ओर शांति होने-इत्यादि कितनेक कारणोंको लेके में (स्ववेद्य लक्षणका अपरीक्षक)ने शिष्य समान कित नेक महाशयोंको पूर्वोक्त टीप सुनाके उत्तर मिलनेकी जिज्ञासाकी; उन मेंसे किसी महात्माने यह उत्तर दिया, "इसका भार वही उठावे कि जिसको भार हे, हम नहीं उठा सकते." एक महात्माने कहा कि "फिलोसोफी ओर खंडन मंडनमें कुछ हाथ नहीं लगता, उन्मत्त, उद्यमहीन, वा बडबाडियोंका काम हे." दो तीन महापुरुषोंने यह कहा कि "जितना कुछ धर्म पंथ, खंडन मंडन, पक्षपात ओर कृति चलरहे हें, इनसे कुछ हाथ नहीं लगता. विवेक करके, वैराग्यवान होके मन वृत्तिका निग्रह करो, निरुद्ध हुये जो कुछ होगा सो (अकथ विषय) आपही मिलजायगा. बाकी सर्व, परमार्थ संबंधी प्रचलित वातें (गप्पे) हें. (में, उक्त उत्तरकी रमजों-लक्ष्यभावको नहीं समझा). एक महाशयने उपनिषद्की स्वतः प्रमाणता, जीव ब्रह्मकी एकता वा भेद, माया अनादिसांत-इन तीन विषय-पक्षको छोडके-इनसे उपराम होके शेष कितनीक वातोंका उत्तर दिया; परंतु मेरी बुद्धिमें संतोषकारक नहीं जानपडा, इसलिये नहीं लिखा; विश्वासी, दंभी, वाचाल, शुष्क ज्ञानीजनोंको, प्रसंगोपात प्रासंगिक विषय पूछे जानेपर, उलटा मुझ कुतर्की मंदमतिके कल्पित (कर्तवी) संतोष-शांतिभी जातेथे. निदान अब सत्य शोधन वा शोधित प्राप्तिके उत्तेजनार्थ प्रसिद्धिमें डालनेकी जिज्ञासा रखताहूं. पूरी हो. इति.

(उत्तर पक्ष-सत्यज्ञ-तटस्थ)

दोहा.

विमुख न होना सत्यसे, करो न मत अन्याय;
अहित पक्ष करना नहीं, पूरव उत्तर जाय.

सूचना.

मुद्रित होतेही दिया, ग्रन्थ खुला जिसकाल;
प्रसिद्धकको यह लिखा, नोटिस छाप संभाल.
पूरव उत्तर पक्षमें, निर्दोषी जो बात;
ताको छोरे दोष जो, वाको करिये पात.
जीव ब्रह्मकी एकता, अजा अनादि सांत;
बने त्याग यह बात ज्यूं, नहीं ब्रह्म वृतांत.
इस रीति सिद्धांतको, गुरुजन कृपा धार;
सामग्री अवसर मिले, कहियेधार विचार.
सृष्टि नियम युक्ती पकर, अनूमान प्रत्यक्ष;
योग अनुभव अरु वेदसे, खेद निवारो दक्ष.
शब्दमात्र तो शब्द है, एसाही विशवास;
जल्प वितंडा वाद तज, विद्याको लो पास.

अपरोक्ष वा परोक्ष, अदृष्ट वा दृष्टके स्वरूप निर्णय वा निश्चय करनेमें इंद्रिय[ज्ञानतंतु]-बुद्धि-जीव ओर व्याप्ति अनुभवसे इतर मुख्य साधन देखनेमें नहीं आते; इसलिये जो प्रथम किसी मूल [वस्तु-ईश्वर-जीव-मोक्ष-पुनर्जन्म वा किसीको सर्वज्ञ मानके उसके वाक्य-इत्यादि] को विश्वासमात्रसे मानके-दृढ करके-कार्य-साधन वगेरेकी व्यवस्था तदानुकूल करते हैं,-यह शैली वा विषय सर्वमान्य वा यथार्थ बोधक नहीं मानी जासकती. परंतु जो व्याप्ति अनुभवद्वारा कार्यसे मूलपर पहोंचते हैं,-वे सुज्ञ अधिकारी अपनी परिमित शक्तिकी सीमातक अयथार्थपर नहीं आवेंगे. जो कुछ माना जाता हे, उसमें कोइभी सयुक्त हेतु होना चाहिये. यथा हरकोइ (आकर्षणादि) परिच्छिन्नके गति, परिणाम-देश ओर आधार विना नहीं होसकते, एसी व्याप्तिका अनुभव हे; परंतु कोइ एसा कहता वा मानता हे कि, "देश [आकाश] वा आधार कोइ वस्तुही नहीं हे किंतु देश, मगजकी असर वा जीव वृत्तिका परिणाम वा अभ्यास हे. उससे गतिके व्यापकआधारकी कल्पना करते हैं."-इस मंतव्यका निर्दोष सयुक्त हेतु नहीं मिलता. प्रत्युत् एसा माननेसे पक्षकारको व्याघातदोष आजाता हे. अर्थात् द्रव्योंकी गति माननाही असिद्ध होजाता हे, जो कि दृष्टविरुद्ध दोषवाला ओर कार्य व्यवस्थाका विरोधी पक्ष हे. किंवा कोइ कहता हे कि, 'मूल स्वरूप अगम्य हे.' परंतु पुनः उसके स्वरुप-विशेषण वा कार्यकी व्यवस्था करनेको तैयार होता वा आग्रह करता हे.* इत्यादि असंतोषक कारण-

* यथा-आद्य संस्कार प्रबल होते हैं, एक तरफी कहानी

को लेके मूल स्वरुप और उनके परिणाम-फल-निर्णयार्थ कितनेक 'नियम' सिद्ध किये गये हें,-उनका आधार सयुक्त व्याप्ति अनुभव हे; न कि विश्वासमात्र. जोकि उन सृष्टिनियमों का शोधक जिज्ञासुओंके सामने आना लोकोपयोगी समझा गया हे; अतः संक्षेपमें लिखके प्रसिद्धिमें डाले जाते हें. (जिनको सयुक्त हेतु उदाहरण सहित सविस्तृत विवेचन देखनेकी इच्छा हो उनको विचार पूर्वक मूलग्रंथ-("तत्वदर्शन" ग्रंथ) अवलोकन करना चाहिये.

गुडसेभी अधिक मीठी मालूम हुवा करती हे, मनुष्योंकी प्रकृति भिन्न २ विलक्षण और असाधारणभी होती हें, विश्वासमें वा हठपर आया हुवा पुरुष साक्षर नहीं कहाजाता; तोभी, आद्य संस्कारके रंगे हुये कानशेंससे मनुष्य लाचार होजाता हे. इन सर्व वातोंके नमूनेमें एक प्रतिष्ठित [साक्षर ब्राह्मण] की 'पेपरप्रसिद्ध' वात याद करो-जोकि स्वीडनबोर्गके ढकोंसलोंसे छाया हे-उसने स्वत्वको गंवाया हे-अमूल परधर्म स्वीकारने (ख्रिस्ति होने) को तैयार हुवा हे. ईश्वरअवतारवादि समान इसुको ईश्वरसे अन्य वा न्यून नहीं मानता-वेदियों समान बाइबलकोभी ईश्वरीपुस्तक मान बेठा हे-दुसरेकी वात वा योग्य ग्रंथ वा उचित शिक्षणको नहीं सुन्ना चाहता-विचारपर नहीं आता-सत् शोधन वा तत्वविद्या (फिलोसोफी) को पास नहीं आने देता-उच्च दृष्टिसे नहीं देखता. वाहरे विश्वास और हठ !! इसलिये जरूर हे कि, सत्मत-धर्म-शोधनार्थ एसे नियम [रुल] तलाश किये वा बनाये जावें कि जिन द्वारा मनुष्य स्वतंत्र विचार करसके और सत्यकी तरफ झुके; क्योंकि बहुधा दुसरेके कहेने सुननेसे उसके (श्रोताके) दिलमें विपरीत असरभी होजाता हे; और हठपर आनेसे अज्ञानवश अपनेको अवनतिमें डालता हे. उक्त प्रकारके जो नि

विशेष सूचना सूत्रोंकी अनुभूमिकामें है; अतः विस्तार नहीं किया. अंक क्रम मेरी तरफसे है. जो पद वा वाक्य मोटे अक्षरोंसे हैं, उनको हिंदी भाषागत "मूळ सूत्रोंका उलथा" जानना चाहिये. शेष जो अर्थ वा संबंधसूचक पद वा वाक्य हैं, उनको "मूळ अर्थोंका संक्षिप्त सार मेरी तरफसे लिखागया है" एसा समझ लेना चाहिये.

इन नियमोंसे मत-पक्ष-साध्य विषय केसे निर्णय होता है, उसकी शैली [1]यथा अवसर-सामग्री, प्रसिद्ध करनेका इरादा रखता हुं.

प्र. क.

यम बनाये जावें, वे बालकोंकोभी सिखाये जावें तो, उनके जवान होनें पर असत्य मार्गसे बचानेमें वे रक्षक होजांय. मानाकि तत्वविद्याका रहस्य किरोड मनुष्योंमेंसे एक सुनना चाहता हो. एसे किरोडोंमेंसे कोई एक अधिकारी समझता है, एसे किरोडोंमेंसे कोई एक पाता है:-एसे किरोडोंमेंसे कोई एक समझासकता है; अतः बालकोंको सीखाने योग्य यह विषय नहींभी है; तथापि जो उनको 'संस्कार' डाले जावें,-तोतेके समानभी नियम याद कराये जावें तोभी, उनको बहुत उपयोगी-लाभप्रद होपडेंगे; यह बात प्रकृतिशास्त्रज्ञों ओर अनुभवियोंकी दृष्टिसे देखो तो, स्पष्ट है. (इस लिये यह नियम नमूने दाखिल रजु करना उचित जाना गया.) १ मूल ग्रंथमें सविस्तृत है.

॥ ॐ ॥

स्वरूपनिर्णायक नियम.

तत्वदर्शन अध्याय २ के मूल सूत्रोंका संक्षेपार्थ.

१ अतः [१]नियमादिनाफुद्देश[१] ॥ अ. २ सू. १ ॥ इस लिये सत् निर्णयार्थ उसके योग्य [२]नियम [३]और तत्संबंधी आवश्यक विषयका कथन करते हैं. ॥

२ **दोष** विपरीत भावना भ्रांति–असंभावना-संशय वा अज्ञानादि आवरणका **निवारणत्वही निर्णय** वक्तव्य है; क्योंकि जो है सो है ही. ॥

३ **संज्ञाका कथन सुगमार्थ** होता है. ॥

४ **जैसे इस ग्रंथमें** स्वादि **संज्ञा** हैं. ॥ [४]

---

१ तत्वदर्शनकी पहिली अध्यायमें "**अथ सत्जिज्ञासा.**" आरंभक सूत्र है. तहां उसके विवेचनमें जनाया है:-

(१) अत्यंत दुःखरहित सुखप्राप्ति वा उन दोमेंसे एकक. (२) स्वर्गप्राप्ति. (३) सुखादिके प्रवाहका ज्ञान. (४) जीवन पर्यंत दुःखरहित सुखप्राप्ति वा इन दोमेंसे एक. (५) मरण–अभाव शून्य [६] यथार्थ निर्णय.–यह छे पक्ष–साध्य (मुख्य फल-धर्म फल)–विषे हैं. (१) कर्म (कर्म–उपासना–भक्तिआदि) (२) उपेक्षा–शून्य (३) ज्ञान (सृष्टिनियम–प्रत्यक्ष–अनुमानजन्य प्रमा) (४) विश्वास (५) समुच्चय.–यह ५ पक्ष उक्त श्रेयके साधनरुप धर्ममें हैं.

उक्त साध्य, साधनसे इतर पक्ष नहीं.

पूर्वोक्त पक्षोंमें पक्षकार जो एक दूसरेके दूषण भूषण बताते हैं सो प्रथम अध्यायमें लिख आये हैं.–अर्थात् स्वभाव, कर्म, वेदांत, न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, ओर अदृष्ट मतका सविस्तृत बयान किया गया है; उनमेंसेभी 'अदृष्ट' मतविषे कर्मयोग १, सिद्धक ओर तारकयोग २–आत्मयोग ३,–यह तीन पक्ष हैं. उनमें अन्य मतोंका खंडन, स्वपक्षमंडन दरसाया गया है. पदार्थोंका निर्णय विस्तारसे

किया गया है. तथा जैमिनी-मैमांसिक, बौद्ध, जैन, पौराणी [रामानुज-वल्लभ-शाक्त-सौर्य-स्मार्तादि]; विश्वासी "(तोरेत-जबूर-इंजील वा कुरानके माननेवाले गबर-तरसा-याहूदि-किरीनी (नसारा-ख्रिस्ति-ईसाई)-कुरानी (मुसलमान)"; थियोसोफी;-फेलसूफ [अरस्तु वगेरे यूनानी] आर्यसमाज; ब्रह्मसमाज; जडवाद (चार्वाक-दहिरिया-लोकायत, आकर्षण-परमाणु-यूरोपके फिलोसोफरोंका मत); अभाववाद, शून्यवाद, व्यवहारमत; मतोंका एक पत्र (नानक, कबीर स्वामीनारायण वगेरे छोटे छोटे वा बडे बडे अर्थात् भूमंडलमें मूल शाखा उपशाखा सहित ९६००० आसरे पंथ-धर्म-मत हैं-परंतु एसा पक्ष कोई न होगा जो उस पत्रसे बाह्य हो); तथा जीवनमत, विदूषकमत [इस मत विषे पूर्वोक्त सर्व मतोंका खंडन हे]; विभूषक मत (इसमें पूर्वोक्त मतोंके भूषण लिये हैं):-इत्यादि मत धर्मोंका वर्णन हे.

पूर्वोक्त अनेक पक्ष दर्शन श्रवण ओर परस्परमें विरोधी वा विवादित पानेसे शोधक-जिज्ञासुको यह जिज्ञासा उत्पन्न होती हे कि-उक्त मतोंमेंसे कोन वा उनमेंसे किसीका कोई किसीका कोई भाग वा उनसे भिन्न-अर्थात् श्रेयकारी कोनसा मत हे? वा सत् क्या हे?

एतदृष्टि तिस (सत्) के निर्णय होने वास्ते २ जितनोंकी आवश्यकता समझी गई उतने ३ नैसर्गिक-सृष्टिनियम वा सिद्ध नियम [जो इस अध्यायके नियम सूत्रोंके विवेचनमें सिद्ध करबताये हैं]. लिखनेका उद्देश हे. तथा साधन नियम संबंधि उपनियम-उपवाक्य ओर उपसाधनभी उसी कारणसे लिखे हैं अर्थात् पूर्व अध्यायमें प्रतिज्ञा होचुकी हे-अतः नियमादि लिखनेका उद्देश हे. यह इस सूत्रका प्रयोजन हे. १.

४-मूल ग्रंथगत 'ब्रह्मादि' संज्ञाओंमेंसे सूत्रार्थमें जो उपयोगी हैं, वेसी कितनीक संज्ञा यहां लिखते हैं, तथाहि इनमेंसेभी जो वक्ष्यमाण सूत्रार्थमें यथा प्रसंग जनाई गइ हैं, उनको छोडके-शेष (संभावनादि संज्ञा) यहां लिखी हैं. यथा प्रसंग उपयोगमें लेलेनी चाहियें.

(स्वरूप) संभावना संज्ञाः—

१	२	३	४	
स्वरूप.	विशेषणवत्न	उभय	नउभय	भावादि संज्ञा. १
भाव.	अभाव.	,,	,,	
सत्.	असत्.	,,	,,	
नित्य.	अनित्य	,,	,,	
भेद.	अभेद.	,,	,,	
एक.	नाना.	,,	,,	
अणु.	विभु.	,,	,,	परिमाणसं. २
मध्यम लचकी.	मध्यम अलचकी.	,,	,,	
अव्यक्त.	व्यक्त.	,,	,,	आकारादि संज्ञा. ३
अपरोक्ष.	परोक्ष.	,,	,,	
साकार.	निराकार.	,,	,,	
रंगी.	बेरंगी	,,	,,	
वजनी.	बेवजनी.	,,	,,	
सावयव.	निरवयव.	,,	,,	
लचकी.	अलचकी.	,,	,,	
चिद्.	जड.	,,	,,	चिदादि संज्ञा. ४
अचेतन.	अजड.	,,	,,	
चल.	अचल.	,,	,,	
आधार.	आधेय.	,,	,,	
व्यापक.	व्याप्य.	,,	,,	
उपादान.	निमित्त.	,,	,,	
कारण.	नकारण.	,,	,,	
कारण.	कार्य.	,,	,,	
मूल.	जन्य.	,,	,,	
परिणाम.	अवस्था.	,,	,,	
अनुपादान.	सोपादान.	,,	,,	

स्वरूपसे अनादि.	स्वरूपसे सादि.	,,	,,	कालादि संज्ञा. ५
स्वरूपसे अनंत.	स्वरूपसे सांत.	,,	,,	
अनादि अनंत.	सादि सांत.	,,	,,	
संख्यासे अनंत.	संख्यासे सांत.	,,	,,	
देशसे अनंत.	देशसे सांत.	,,	,,	
कालसे अनंत.	कालसे सांत.	,,	,,	

भोक्ता, भोग्य, भोग.	३,	२,	०		त्रिपुटी संज्ञा. ६
प्रकाशक, प्रकाश्य, प्रकाश	,,	,,			
द्रष्टा, दृश्य, दर्शन.	,,	,,	,,		
ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान.	,,	,,	,,		
कर्त्ता, कर्म, करण.	,,	,,	,,		

आभास, प्रत्याकृति, प्रतिबिंब, छाया, संस्कार, पांचों वा इनमेंसे २ ३—वा ४ प्रकारका वा इनसे अन्यथा. **आभासादि संज्ञा. ७**

द्रव्य, गुण, कर्म, स्वभाव, शक्ति, धर्म, योग्यता, असर, संबंध, अ-

वस्था, परिणाम, इन ११ प्रकारका, ११ मेंसे २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, वा नोनो प्रकारका, वा इन ११ से विलक्षण. **स्वरूपादि संज्ञा.** ८

अकल्पित. कल्पित.
कल्पितवत्. अकल्पितवत्.
नअकल्पित. नकल्पित.

गुण, कर्म, स्वभाव, शक्ति, (सत्ता), धर्म, योग्यता, असर, संबंध अवस्था, परिणामकी **गुणादिसं.** ९

(गुणादि संज्ञा कहनेसे कहीं 'कर्म वा असर विनाभी प्रयोग होता हे.)

इन [गुणादि] वाला वा इनमेंसे कोइ एक वा दो२ वा तीन २ वा चार २ वा पांच २ वा छे ६ वा सात २ वा आठ २ वा नो २ वा दस २ वाला किंवा इनविनाकोंकी **गुण्यादि संज्ञा.** १० .

पूर्वोक्त भावादिमें उभयथा संज्ञा मेंसे इष्ट स्वरुप कहीं कभी केसा कहीं कभी केसा १. किंवा उनमें कोई एक प्रकारका कोई दुसरे प्रकारका हो. (यथा द्रव्य, भाव अभावादिरुपवाले) २. वही, साध्य पक्षकारोंकी दृष्टिसे अन्य २ प्रकारका [यथा अभाव भावरुप वा अभावरूप] ३. **विविध संज्ञा.** ११

साध्य वस्तु परस्परकी अपेक्षासे उक्त '**भावादि**' संज्ञामें कहीजाती हे, वस्तुतः उनसे विलक्षण हे १. साध्यवस्तु अकथ, अगम्य, अज्ञात, अनिर्णीय, अनिर्वचनीय, अनुभवमात्रकी विषय, परस्पर विलक्षण २. **मौन संज्ञा.** १२.

पूर्वोक्त भावादि १२ संज्ञाके समूहका नाम '**संभावना संज्ञा.**'

(इतने प्रकारमें साध्यका स्वरूप कल्पा जासकता हे).

असंभवादि संज्ञाः—

साध्यहे ओर शून्य;	नहींहे ओर कोइ प्रकारका;
भावाभावरूप.	न भाव न अभावरुप.
सदसत्.	न सत् न असत्.
नित्यानित्य.	ननित्य नअनित्य.
भेदाभेदवान्.	नभेद नअभेदवान्
एक नाना.	न एक न नाना.
अणु विभु	न अणु न विभु.
लचकी अलचकी.	न लचकी न अलचकी.
सावयव निरवयव	न सावयव न निरवयव.
साकार निराकार	न साकार न निराकार.
रंगी विरंगी.	न रंगी न विरंगी

बजनी बेबजनी.	न बजनी नबेबजनी
चिद् जड.	न चिद् न जड.
अचिद् अजड.	नअचिद् नअजड.
एक देशकाली चलाचल.	न चल न अचल.
एक देशकाली आधाराधेय.	न आधार नआधेय.
एक देशकाली व्यापक व्याप्य	नव्यापक न व्याप्य
अभिन्नोपादान निमित्त.	न उपादान न निमित्त.
एक देशकाली एकका कारण कार्य.	न कारण न कार्य.
मूल अवस्था मूलजन्य.	न मूल न जन्य.
उक्त त्रिपुटिमें तीनों रुप.	तीनोंमेंसे एक रूपभी नहीं.
अकल्पित कल्पित.	न कल्पित न अकल्पित.
अनादि सादि.	न अनादि न सादि.
अनादि सांत.	न अनादि न सांत
सादि अनंत.	न सादि न अनंत
अनंत सांत	न अनंत न सांत.
अनादि अनंत ओर अनादि सांतभी.	न अनादि अनंत न अनादिसांत. न सादिसांत.

संख्यासे अनंत.	संख्यासे न अनंत न सांत.
देशसे अनंत सांत.	देशसे न अनंत न सांत.
कालसे अनंत सांत.	कालसे न अनंत न सांत.
बिंब (द्रव्यादिरूप), आभास, प्रतिबिंब, प्रत्याकृति, छाया, संस्कार, इन पांचो प्रकारका.	न पांचोरूप.
द्रव्य, गुण, कर्म, स्वभाव, शक्ति, धर्म, योग्यता, असर, संबंध, अवस्था, परिणाम—इन ग्याराररूप.	ग्यारमेंका इरूप नहीं.
अभाव, शून्य. असद् जन्य.	नथा ओर अनुपादा न.नवीनोत्पन्न हुवा.

न परोक्ष न अपरोक्ष. नदृष्ट,नअदृष्ट.

किंवा पूर्वोक्त प्रकारोंसे वही वस्तु कहीं कैसी कभी कैसी विरुद्ध धर्मवाली; किंवा वही एक साध्य किसीकी दृष्टिमें कैसी किसीकी दृष्टिमें तद्विरुद्ध—परस्पर विरुद्ध धर्मवाली, किंवा कोइकी अपेक्षा लेके किसीमें विरुद्ध धर्म-लक्षण आरोप करना किंवा कहे हुये प्रकारसे विलक्षण कल्पनाकी **असंभवादि संज्ञा.**

पूर्वोक्त संभावना संज्ञामें साध्यका जो स्वरुप कल्पा है उसमेंसे असंभवादि संज्ञाके अंतर

गत हो उसे निकाल देना चाहिये. क्योंकि असंभवादि संज्ञामें जो विशेषण-प्रकार-हैं वे असंभव-अप्रमाण-असिद्ध-अयुक्त हैं.

मूलस्वरूप, नित्य, अणु,-विभु, अलचकी, अचल, निराकार, वजनराहित, रंगराहित, निरवयव, अटल, आधेयत्वराहितआधार, व्यापक, अजन्य, अकार्य, अपरिणामी, अवस्थारूप नहीं, अकल्पित, अनादि अनंत स्वरूप, देशकालसे अनंत. (इतने प्रकार स्वरूपजों के नहीं होसकते; इस लिये इनकी) **स्वरूप संज्ञा.**

कार्य,जन्य, कल्पित, लचकी, सावयव, अनित्य, अवस्था, परिणाम, अमर, कारण कार्य, सादिसांत, देशकालांत, सोपादान, आभास, प्रतिबिंब, प्रत्याकृति, छाया, संस्कार, मध्यम. (इतने प्रकार मूलस्वरूपोंके नहीं होसकते; इस लिये इनकी) **स्वरूपज संज्ञा.**

पूर्वोक्त "**संभावना**" संज्ञामेंसे "**असंभवादि**" संज्ञोक्त, "**स्वरूप**" संज्ञोक्त ओर "**स्वरूपज**" संज्ञोक्त कल्पना (साध्य स्वरूप-लक्षण) को त्याग-बाध करके जो शेष विकल्प रहे हैं इनकी **स्वरूप स्वरूपज संज्ञा.** (क्योंकि वे विकल्प-विशेषण-लक्षण, मूल अनादि स्वरूप ओर कार्यरूप (स्वरूपज)—इन उभय प्रकारके पदार्थों विषे संभव होते हैं).

नोट (सूचना.)

जो साध्य (इष्ट पदार्थ निर्णयका विषय) पूर्वोक्त स्वरूप, स्वरूपज, स्वरूपस्वरूपज संज्ञामें कहे प्रकारसे अन्यथा (विरुद्ध-व्यवस्थामें पुरा न उतरे) हो, उसकी असिद्धि हे, वा अपनी कल्पना वा परीक्षासे अन्यथा हे, एसा जानना चाहिये.

अभाव, शून्य, असत् स्वरूपकी **अभावादि संज्ञा.**

अनुद्भव, उद्भव, तिरोधान, प्रादुर्भूत, लय, दृष्ट, अदृष्ट, सूक्ष्मत्वादि संज्ञोक्त, लौकिक वा अलौकिक प्रकारसे प्रत्यक्षयोग्य, न प्रत्यक्ष योग्य, किसीको अपरोक्ष, किसीको अप्रत्यक्षकी **अनुद्भवादि सं.**

अतिसमीप, अतिदूर, अतिप्रकाश, (तमादि) आवरण, समानाभिहार, प्रमाण प्रमाताकी अयो-

ग्यता, सूक्ष्मत्व, अनुद्भवत्व, तिरोधान, लय, अभाव,—प्रत्ययके अयोग्यकी **समीपादि संज्ञा.**

सूक्ष्म, स्थूल, नित्य, अनित्य, सावयव, निरवयव, पारदर्शक, साकार, निराकार, सजातीय, विजातीय, परोक्ष अपरोक्ष, विरोधी अविरोधी, गुण गुणी, जाति व्यक्ति, शक्ति शक्तिवान, संबंध संबंधी, सापेक्ष निर्पेक्ष—इत्यादिकी **सूक्ष्मादि संज्ञा.**

ममता, मंदता, कुतर्क, कुसंग, दुराग्रह, शंका, भय, अशक्ति, दृष्टादृष्ट भूत भावि प्रतिबंध की **ममतादि संज्ञा.**

संसर्ग, तादात्म्य, समवाय, संयोग,-संबंधमात्र, (अनुद्भवादि-समीपादि) की **संसर्गादि संज्ञा.**

कर्म—उपासना (यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान) के उत्तर-विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, जिज्ञासा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन (पश्चात् योगद्वारा परीक्षा ओर समाधि)की **विवेकादि सं.**

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेशकी **क्लेश संज्ञा.**

आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, इन तिन तापकी- **तापसंज्ञा.**

---

५ इष्ट विषयके उद्देश ओर लक्षण शीघ्रबोधक होते हैं. ॥

६ निरपेक्ष, लघु, व्यापक, निर्दोष, नियमाविरुद्ध ओर यथार्थ वा लक्ष्यबोधक लक्षण मान्य होते हैं. ॥

७ स्वरूप ओर तटस्थ दो प्रकारके लक्षण होते हे. ॥

८ शोधकको लाभप्रद होनेसे उपयुक्त लक्षणोंका संग्रह करना उचित हे. ॥

९ लक्षितके उपयोगार्थ लक्षणकी परीक्षा ओर अभ्यास कर्तव्य होता हे. ॥

१० सृष्टिनियम (नैसार्गिक नियम) अटल होते हैं. ॥

११ न नियम अनियम होता हे-न अनियम नियम होता हे. ॥

१२ प्रत्येक नियमोपयोगादि कार्योंका देशकाल प्रसंग ओर आधिकार प्रति उपयोग होता हे; न कि

८—शोधकके लाभार्थ उपयुक्त लक्षणोंका मूलग्रंथमें संग्रह हे.

१० इस अध्यायमें अधिकरण हैं. यथा सूत्र १० से १९ तक नियमाधिकरण हे. “इस अध्यायगत ज्ञात सृष्टि नियमोंमेंसे कितनेक प्राचीन शोधकोंके नियम एकत्र ओर सिद्ध किये गये हैं, ओर

इनकी एकही **सीमा** होती हो. ॥

१३ नियम कथनादि प्रसंगोंमें **असंगति वा पूर्वापर विरोध दोष नहींभी** माना जाता. जैसे कि नियम प्रसंगमें ज्ञात होगा. ॥

१४ सकारण **पुनरुक्तिभी** दोष नहीं कहाता. जैसे कि अक्षरोंका उपयोग हे. ॥

१५ एक देशकाल विषे परस्पर दो **विरोधी** नियमोंसे **एक साध्य** ×**असाध्य** होता हे. ॥

१६ दो वा अनेक परस्पर **विरोधी** सिद्ध नियम **होतेभी यथार्थ व्यवस्था** होजाना संभव हे ॥

१७ **असंग**-प्रसंग भिन्न विषयके निर्णय वा समाधानी **से** नियम **उदासी**-उपेक्षावाला रहता हे. ॥

१८ नियम **संबंधी वा अवांतर वाक्य** नियमादिके **सहकारी** कहाते हैं.-उनको नियमबाधक वाक्य नहीं कहा जाता. ॥

१९ कोइ विषय वा नियम अपनी वा परकी **दृष्टिसेभी कथन** किया जाता हे. ॥

२० **सुखेच्छा तथा प्राप्ति** उसके **योग्यको** होती है. अनधिकारीको नहीं. ॥

२१ **सो सुखेच्छा** जीवको स्वभावतः प्रवृत्तिमात्रका कारण अर्थात् **प्रवर्त्तक** हे. ॥

२२ दुःख ओर **न दुःखाभाव सुख** के लक्षण हैं. (किंतु अन्य हैं) ॥

२३ व्यवहारमें **नित्यानित्य** दो प्रकारके सुख माने जाते हैं. ॥

२४ सुख, विषयविनाभी होता हे न(कि) **विषयसेही**. ॥

२५ **न सजातीय सुखमेंही** अर्थात् अनुभूतके सजातिय सुखमें ही अभिलाषा-इच्छा होनेका नियम नहीं हे; किंतु अन्यमें भी होती हे. ॥

२६ जो सुखादि इष्ट **अप्राप्त** ओर **निर्दोष** हो, उसकी इच्छा होती हे. ॥

२७ जिसकी निवृत्ति वा प्राप्ति इष्ट हे-एसे प्राप्तव्य इष्टमात्रकी **प्राप्ति** पुरुष **प्रयत्नसे** होती हे. ॥

२८ इष्ट साध्यके न योग्य सा

कितनेक नवीन सिद्ध कर देखायेहैं."

× जिसको सिद्ध करना हे.

१९-सू. ३४७, ३६३, ३६४ नियमका विवेचन वांचो.

२०-पाषाणको इच्छा ओर पामर विषयीको परमार्थकी प्राप्ति नहीं होती.

धनसे इष्ट प्राप्ति नहीं होती; किंतु कर्म ज्ञानादि* इष्ट-**साध्ययोग्य साधनसे** इष्टकी प्राप्ति होतीहे.॥

२९ किसी साध्यकी सिद्धिमें जो मुख्य साधन हें वे **अन्य** साध्यके **सहकारी** साधनभी होतेहें.॥

३० **ज्ञान** नामा साधनसे वस्तु **साक्षात् ओर** अज्ञान असत् नामक **आवरणभंग**-यह दो मुख्य फल होते हें.॥

३१ **कर्म** नामक साधनसे उत्पत्त्यादि[1] मुख्य फल होता हे॥

३२ उपासनासे विक्षेपाभाव फल होता हे.॥

३३ इष्ट सिद्धिमें भूत, वर्त्तमान, ओर भावि-तीन प्रतिबंध होते हें, उन **प्रतिबंधाभावसे** (हुये) ओर सम्यक् साधन सामग्री विद्यमान हुये उनके योग्य उपयोगसे **साधनकी सफलता** (इष्टफलकी प्राप्ति) होती हे.॥

३४ बलवान **विरोधीसे** नि[illegible] बलकी **निवृत्ति** (हठना-नाश[illegible] दवना) होती हे.॥

३५ जो **श्रवण** किया उसक[illegible] **ही मननादि** (मनन-निदिध्यास[illegible]) करनेसे इष्टफल होता हे.॥

३६ बहु प्रयत्न करने पर इष्ट कार्य न हो वा लघु प्रयत्न भी भारी इष्ट कार्य तुर्त होजावे इत्यादि **विलक्षणता** (के प्रसं[illegible] भाव) **में संस्कारादि÷ हेतु** [illegible]नने चाहियें.

---

३७ ब्रह्मांडमें कोइभी वस्तु [illegible]ष्फल नहीं, किंतु सर्व **सफलही**

३८ मूलस्वरूप (आमिश्रित-[illegible] परिणामी तत्व) के मूलका अ[illegible] होनेसे **मूलामूल** हे.॥

३९ मूलस्व**रूपकी अनुत्प**[illegible] हे अर्थात् कोईभी **वस्तु** न[illegible] उत्पन्न नहीं होती.॥

४० **न नाश** अर्थात् मूल[illegible]रूपका कभी नाश नहीं होता

४१ प्रत्येक मूलस्वरूप [illegible]धिक नहीं होता हुवा, **जि**[illegible]

---

*वस्तुमात्रकी प्राप्ति वा निवृत्ति किंवा ज्ञातव्य-कर्तव्य-प्राप्तव्यमात्रके कर्म, उपासना ओर ज्ञानविना अन्य [अभाव-शून्यादि] मुख्य साधन नहीं होते. कर्म=गति, उपासना=जुडना-समीप स्थिति-गतिअभाव, ज्ञान=प्रतीति.

1 उत्पत्ति, नाश, प्राप्ति, विकार, निवृत्ति, वृद्धि.

÷संस्कार, रजवीर्य, जीवस्व[illegible] संग-संबंध.

ओर जेसा हे वेसा ओर **उतनाही** रहता हे. ॥

४२ मूलस्वरूप **संसर्गादि**[१] काल में भी **वही** होता हे—जैसाकि संसर्ग के पूर्वमें था, ओर संसर्गाभाव पीछेभी वेसाही रहेगा-जैसा कि वर्त्तमानमें हे. ॥

४३ मूलस्वरूप सर्वदा **अविकारी** रहता हे; अर्थात् न्यूनाधिक नहीं होता, परिणाम नहीं पाता, स्वरूप नहीं बदलता ओर विकार को नहीं धारता. ॥

४४ परंतु **न कार्यरूप अवस्था.** अर्थात् जो स्वरूपज (मूल स्वरूपजन्य कार्य वा अवस्था) हें वे पूर्वोक्त अनुत्पत्यादि नियमोंके विषय नहीं; किंतु उत्पन्न ओर नाश होते हें, संसर्गकालमें बदलते ओर न्यूनाधिक होते हें—अर्थात् विकारी हें. ॥

४५ स्वरूपमात्र **इतरेतर** (भिन्न-भिन्न) होते हें; परंतु स्वरूपज अपने स्वरूपसे इतर स्वरूप नहीं रखते, इस वातका ध्यान रहे. ॥

४६ **गुण गुण्यादिवत्.** अर्थात् जेसेकि—मूल गुणगुणी, जातिव्यक्ति, शक्ति शक्तिमान, असर असरवान, वाच्य वाचक, धर्म धर्मी, संबंध संबंधी, भेद भेदवान,—यदि स्वरूपसे वस्तु होंतो, वे वास्तवमें, परस्परमें स्वरूपसे भिन्न भिन्न हें. ॥

४७ तद्वत् **दृष्टा दृश्यादि** (दृष्टासे दृश्य, ज्ञातासे ज्ञेय, अधारसे आधेय, प्रकाश वा प्रकाशकसे प्रकाश्य, व्यापकसे व्याप्य, कर्त्तासे कर्म, प्रतियोगीसे अनुयोगी,—इत्यादि) भी स्वरूपसे भिन्न २ होते हें. ॥

४८ **समकाल एक** वस्तुके **दो** (दृष्टा दृश्य इत्यादि) **परिणाम नहीं** होते.—नहीं होसकते. ॥

४९ **संभावना** संज्ञामें[२] जितने प्रकार गिनाये गये हें, उनमें **स्वरूपकी भावना हे**—अर्थात् मूलस्वरूप ओर स्वरूपज उन प्रकारोंमें होने योग्य हें. ॥

५० परंतु जो **असंभवादि** संज्ञामें[२] प्रकार लिखे हें, उनको **त्यागके** स्वरूपकी संभावना ज्ञातव्य हे. ॥

५१ **दृष्ट अदृष्ट द्रव्य गुणादिवत्.** ॥

---

१ समीपता, तिरोधानता, अनुद्भवता, आवृत्तता, लय, प्रत्यक्ष न होसकने—इत्यादि. [संज्ञादेखो]

२ संज्ञा वांचो.

५२ **न अन्यथा**—अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारसे इतर स्वरूपका अस्तित्व असिद्ध हे. कारण कि जो परीक्षाकी सीमा न हो तो, असंभव कल्पना ओर अव्यवस्था माननेका अवसर मिलता हे. ॥

५३ **स्वरूप स्वरूपज संज्ञासे भिन्न उभयकी.** संभावना संज्ञोक्त कल्पनामेंसे कितनीक स्वरूप, कितनीक स्वरूपज ओर कितनीक उभयमें घटित होती हें. ॥

५४ **गुणादिके गुणादि नहीं** होते. ॥

५५ **अनादि** स्वरूप **न सांत,** ओर **न सादि अनंत** होता हे. अर्थात् सादि सांतही ओर अनादि अनंतही होता हे. ॥

५६ **स्वरूपसे** अनादि **ओर** प्रवाहसे अनादि—**यह दो भेद अनादि** पदार्थके होते हें. ॥

५७ **एक निरवयव** (अर्थात् अणु वा विभु परिमाणवाले पदार्थ) **का परिणाम नहीं** होता.

५८ **एक** निरवयव (अणु-विभु) वस्तुमेंसे एककाल विषे **न अनेक** अविरोधी वस्तु ओर न अनेक परिणाम—अवस्था होसकते हें; तो अनेक विरोधी वस्तु वा परिणाम केसे होसकेंगे ? नहीं. ॥

५९ **एक** अखंड निरवयव स्वरूप स्वयंभी **न अनेक** रुप धार सकता हे ओर न अनेक अंश वा परिणाम पासकता हे. ॥

६० **अपेक्षासे** ही **एक कर के अनेक.** अर्थात् उपादानोंकी अनेकता हो तो, एक निमित्त करकेभी अनेक कार्य होना संभव हे. ॥

६१ निमित्त अनेक हों वा एक परंतु **नाना** उपादानोंसेही **नाना** कार्य होना संभव हे. ॥

६२ **दो** कभी **एक** नहीं होते ओर **नएक** कभी **दो** होसकते हें. ॥

६३ **कारणविन** (उपादानादि*कारणके विना) **न कार्य** (कार्य नहीं होता). ॥

६४ **साधारणादि कारणदो** अर्थात् कारणमात्र साधारण ओर असाधारण-दो प्रकारके देखते हें. ॥

६५ साधारण असाधारण—यह प्रत्येक कारण **तीन वा दो** प्रकारके होते हें. अर्थात् उपादान (समवायि—परिणामी), असमवायि ओर निमित्त—यह तीन, किंवा परिणामी, निमित्त ओर निवर्त्तक य

*यह पद अधिकरणके उत्तर सूत्रोंसे लिया गया हे.

ह तीन, अथवा **उपादान** और निमित्त–यह दो. ॥

६६ पूर्वोक्त कारण **कार्यसे पूर्वही** होवे हैं. ॥

६७ उपादानादि–कुछभी भाव रुप पदार्थ **होवे तभी** उपादेय–परिणाम–अवस्थादि कार्य **होता है.** कुच्छ न हो तो–अर्थात् अभावसे भावरुप कार्य नहीं होता. ॥

६८ जिस कारणसे जो कार्य कभीभी हो– **उस** कारण**में** पूर्वही **उस** कार्य**की योग्यता** और **अधिकरणता नित्य** होती है. जेसे संयोगीमें संयोगकी होती है. ॥

६९ जो कारणमें [जिनकी] योग्यता और अधिकरणता है, उनका **उपयोग** संयोग–इच्छादि **निमित्त** और **सृष्टि नियमसे** होता है . यथा ओक्षिजन हाईड्रोजनके नियत संयोगसे जलरुप कार्य होता है. ॥

७० जिस सत्तादि प्रकारका **उपादान** होता है, तद्वत् (वेसाही) उसका **कार्य**–उपादेय होता है, अन्यथा नहीं. ॥

७१ **न भिन्न** अर्थात् अपने उपादानसे भिन्न अधिकरणमें कार्य नहीं होता और न रह सकताहै.।

७२ अपने उपादानसे **न इतर गुणसत्तावाला** कार्य होताहै.॥ और न भिन्न स्वरुप होता है.

७३ उपादान **कारणके नाशसे कार्यका नाशही** (अवश्य नाश) होजाता है. ॥

७४ **इसके** (कार्यके) **अभावसे** (नाशसे) **उसका** (उपादानका) नाश **नहीं** होता. ॥

७५ उपादान उपादेय **न परस्पर आश्रय** आश्रित भाव रखते हैं और न व्यापक **व्याप्य** भाववाले होते हैं.

७६ **निमित्त** कारण, कार्यसे **भिन्न** होताहै, **करणवत्.**–अर्थात् जेसेकि घटकार्यकी कुलाल निमित्त कारण दंडादि समान घटसे भिन्न है. ॥

७७ निमित्त कारण अपने करबने हुये **कार्यके नाश होनेमें निमित्त है भी** और निमित्त नहींभी होता है. ॥

७८ **साकार** कार्य**का निमित्त** कारण **निराकार संभव** है. **न उलटा.**–अर्थात् निराकारका साकार निमित्त नहीं होता. ॥

---

६८ कीट–लटसे भ्रंग होजाना ६८–६९ समान जानना चाहिये.

७९ निराकार-पर रहित-विभु केसीकाभी **उपादान नहीं** हो- सकता. ॥

८० उपादान ओर निमित्त कारणसे इतर-**असमवायी कारण मंतव्यभी**, अर्थात् तीसरा असमवायी कारण मानने न माननेमें लाभ हानी नहीं हे. ॥

८१ **अभिन्न निमित्तोपादान** (एकही स्वरूप एक देशकालमें एकही कार्यका निमित्त ओर उपादान-उभय कारण होने) **की असिद्धि** हे. क्योंकि उभयके स्वरूप भिन्न होते हैं. ॥

८२ उपादान **कारण स्वकार्यका अविषय** होता हे. अर्थात् कार्य, कारणका विषय (जानना) नहीं कर सकता. ॥

८३ अपने कार्यसे उपादान कारण **न्यून नहीं** होता. ॥

८४ स्वरुप स्वरुपज-पदार्थ मात्रका **परिमाण अण्वादि** (अणु, विभु वा मध्यम-इन) **तीनसे** इतर प्रकारका नहीं होता ॥

८५ जो परमाणु सिद्ध वस्तु हो तो, वे-**परमाणु गोल** होने चाहियें. ॥

८६ **सब** परमाणु **सजातीय नहीं**, किंतु विजातीयभी हैं. ॥

८७ परमाणुओंका मूल स्वरुप **अखंड** ओर **निरवयव**-अलचकी, परिच्छिन्न होना चाहिये. ॥

८८ जेसे आकाशका स्वरुप कल्पनामें नहीं आता, वेसे परमाणुका निरवयव स्वरुपभी **कल्पनासे पर** हे-बुद्धिमेंभी नहीं आता. ॥

८९ **व्यापक** कभी **परिच्छिन्न नहीं** होता-ओर **उलटाभी** अर्थात् परिच्छिन्न-सपर-कभी व्यापक नहीं होता. ॥

९० **अणु** ओर **विभु** परिमाणवाले **स्वरुप** सर्वदा **अलचकी** (संकोच विकोच रहित) होते हैं. ॥

९१ **मध्यमद्विधा** अर्थात् मध्यम परिमाणवाले **स्वरुप** लचकीही होते हैं, परंतु कोइ अलचकीभी हो, एसी संभावना कल्पनामें हे. ॥

९२ मध्यम परिमाणवाला **अलचकी** स्वरुप **अप्रसिद्ध** हे. ॥

९३ **मध्यम** परिमाणवाला स्व-

---

८१ मकडीके जालेका उपादान मकडीका शरीर हे ओर निमित्त जीव हे.

रूप, **जन्य** (संयोग वियोग जन्य-सादिसांत-स्वरुपज) होता हे. ॥

९४ **विभु** परिमाणवाले स्वरूपमें **न क्रिया** (गति-कर्म) ओर **न वजन** (गुरुत्व) होता हे.॥

९५ **अन्य** (अणु ओर मध्यम परिमाण स्वरूप) **में** क्रिया ओर गुरुत्व-**दोनों** होते हें. ॥

९६ दो **विरोधि धर्म एक** अधिकरण (देशकाल स्वरुप) वर्त्ति वा एक वस्तु**में नहीं** होते. ॥

९७ अपने किसी देशमेंभी विरोधिके **असंयोगका** (संयोग न होवे, एसा) **नियम नहीं** हे. ॥

९८ **नित्य वा अनित्य संयोगसे इतर** अन्य कोइ **साक्षात् संबंध नहीं** हे. ॥

९९ गतिवान् व्याप्यका **व्यापकसे** व्यापकके साथ समवाय संयोगसे **भिन्न** प्रकारकाभी संबंध माना जासकता हे. यथा गतिवान परमाणु ओर अटल नभका होतेभी होता जाता हे इ. ॥

१०० **क्रिया गुणवानकी** तिसके क्रिया वा गुणविन **न सिद्धि**-उपलब्धि **नहीं** होती. ॥

१०१ **कार्य, कारण ओर साधनसे** क्रमशः **कारणादि**[कारण, कार्य, साध्य] **की** अनुमानके नियम पूर्वक **सिद्धि** होसकती हे.॥

१०२ **अन्वय व्यतिरेकसे योग्यता, अयोग्यता ओर कारणताकी** सिद्धि-अनुमिति होसकती हे. ॥

१०३ पूर्वोक्त रीतिसे जो सिद्ध सो **परीक्षासिद्ध** ओर **अनुभवगम्यहोनेसे** माननीय हे. ॥

१०४ व्याप्यविना **परिशेष** अनुमानसे **परोक्ष शेषीकीभी** सिद्धि होजाती हे. यथा शब्दको क्रियावान जानके उसके आश्रयकी परोक्ष अनुमिति होती हे. ॥

१०५ लक्ष्य-वस्तु सिद्धिकी **निर्दोषता असाधारण** लक्षण **वा अनेक** एसे लक्षणोंसे कि जिनका समूह अतिव्याप्ति, अव्याप्ति ओर असंभव दोषवाला न हो-उन**से** होजाती हे. ॥

१०६ ज्ञेय वा **विषय**, किसी ज्ञाता वा विषयीका **विषय होने योग्य** हे. ॥

१०७ **हुया** (जो होचूका) अ-**नहुयेवत्** (जो हुवाही नहीं तिस जेसा) ओर **होतव्य** [सृष्टि नियमानुसार होनेवाला] **न अहोतव्य** (न होनेवाला जेसा) नहीं हो

ता (व्यवहारका विषय नहीं होता).॥

१०८ जो होचुका है सो नैसर्गिक [सृष्टि वा कुदरती] नियमसे जेसा होना चाहिये था वेसाही हुवा हे, **अनहुवा** (न होने योग्य) **न हुवा** हे, इसी प्रकार जो सृष्टि नियमसे होनेवाला हे-सो **अहोतव्य** (नहीं होने योग्य) **न होतव्य** नहीं होने योग्य हे. एसा नहीं हे; किंतु होने पीछे पूर्वार्ध वाक्यवत् विषय होगा.

१०९ **"हे सो नहीं ओर नहीं सो हे" एसा नहीं** हे. अर्थात् "हे सो हे." उसे ना ओर "नहीं हे सो नहीं हे," उसे हा नहीं कहसकते. ॥

११० जो (नित्य)भावरूप हे **उसका** कभी **अभाव** ओर जो **अभावरूप** हे **उसका** कभी **भाव नहीं** होता. ॥

१११ **कालांत देशांत**-जिसका कालसे अंत उसका देशसे भी अंत होता हे. ॥

११२ **हुवा** (जो न होकर हुवा-ओर होकर न रहा हो) **सोही फेर नहीं** होता. ॥

११३ **पूर्व हुये जैसा** कार्य होना **संभव** हे. ॥

११४ पदार्थके गुण, कर्म,स्वभावकी **परीक्षा कियेविना,** जीव द्वारा उसका **न योग्य उपयोग** अर्थात् यथायोग्य उपयोग नहीं होसकता. ॥

११५ **गुणादि-*स्वाश्रय**-गुण्यादिसे **व्यतिरिक्तवर्त्ति नहीं** अर्थात् अतिरिक्त देशमें नहीं जाते, नहीं होते ओर न रहते हैं. ॥

११६ **पदार्थकी सिद्धिमें ज्ञानकी अपेक्षा हे,न इस** (ज्ञानसिद्धि)**में उस** (ज्ञेय)**की**. ॥

११७ परंतु ज्ञानको ज्ञेयकी "व्यवहारमें अपेक्षा" हे, अन्यथा ज्ञान व्यवहार असंभव हे. **तद्वत मिथ्या ओर सत्य.** अर्थात् मिथ्यात्वकी सिद्धिमें सत्यकी अपेक्षा हे, परंतु सत्यके प्रकाश होनेमें मिथ्याकी अपेक्षा नहीं; तथापि सत्यत्व नामसे जो व्यवहार होता हे, सो मिथ्याकी अपेक्षासे होता हे; अतः व्यवहारविषे सर्वको सर्वकी अपेक्षा मानी जासकती हे.॥

११८ नित्य हो वा अनित्य,

---

१११ देश काल पदका प्रयोग सिद्ध दृष्टिसे नहीं, किंतु व्यवहार दृष्टिसे हे. अन्यथा कथन श्रवणही नहीं बनता.

*संज्ञा वांचो.

परंतु 'हे' सो अस्तित्वविशिष्ट-अस्तिरूप **सत् एकही** हे÷ अर्थात् वही अन्य भावसे वस्तुतः नहीं हो सकता. ॥

११९ **झूठ नानाभी.** अर्थात् झूठकी रचना वा आकारके वाच्य (विषय) नहीं होते हुयेभी एक वा अनेक प्रकारसे अस्तिवत् कल्पना के विषय होजाते हें.÷ ॥

१२० **उस** (झूठ)**से सत् अप्रतिपाद्य** हे ॥

१२१ **सत्यसे आवरण** (असत्)का **भंग** होजाता हे. ॥

१२२ **असत्से असत्के** आवरणका भंग होना **संभव हे**. (यथा-कल्पनासे कल्पना, रज्जु सर्पमें जलधाराका दर्शन वा इष्ट गणितमें कल्पनासे कल्पनाका अभाव होजाता हे). ॥

१२३ जीवोंके **क्रिया-ज्ञान**(दोनों)**का समकालत्व** (दोनों एक कालमें होना) उनकी दृष्टिसेभी देखते हें. ॥

१२४ परंतु वास्तवमें **एकसे** **एक देशकालमें न दो कार्य.** अर्थात् एक जीव एक कालमें **दो** कार्य नहीं करसकता, एसा नियम हे.

१२५ जेसे **ज्ञान वा क्रियाका क्रम** विचारके देखें तो शतावधान भी भिन्न भिन्न कालमें होते हें. (अज्ञोंकी दृष्टिसे समकाली हें.)

१२६ **निरपेक्ष क्षणिक** स्वभाववालेमें **स्मृति** वा उसकी **स्थिति**का **अभाव** हे. ॥

१२७ वेसेही **स्मृतिवान्में क्षणिकत्व धर्मका** अभाव ज्ञातव्य हे. ॥

१२८ **विभु** (अपरिच्छिन्न-निराकार) अगोचर हे, **तद्वत् तद्भिन्न** (अर्थात् साकार, परिच्छिन्नोंमें) **अगोचरभी** हें, सारांश यह हे कि परिच्छिन्न पदार्थ गोचर ओर अगोचरभी होते हें. ॥

१२९ **रूपरहित अपरिच्छिन्न नहीं** होता हे परंतु **रंगरहित परिच्छिन्नभी** होता हे. सारांश-अपरिच्छिन्न, रूप रंग रहित ओर परिच्छिन्न, रूपवान ओर रंगसहित तथा रंगविनाकाभी होता हे यथा-नभ परमाणु, रंग, प्रकाश वा आकर्षणादि.

१३० अनादि वा सादि-कोईकी भी अन्योऽन्याश्रयता मानना दोष हे; क्योंकि असिद्धि हे. ओर न

÷ यथा जीवके स्वरूपमें परस्पर विरोधी मत हें; परंतु वास्तवमें तो एकही प्रकारका हे. अतः नाना पक्ष अमान्य हें. ११८. ११९.

संभव हे. ॥

१३१ **न सिद्ध अनवस्थादि**.– प्रमाण सिद्ध-यथार्थ–अनवस्था, आत्माश्रयतादि दोष नहीं. जेसेकि मूल स्वरूपोंके पूर्व पूर्व संयोग वियोगका प्रवाह निर्दोष हे–यथार्थ हे. परंतु अप्रमाणता वा अव्यवस्था हो तो अनवस्थादि दोष हे. ॥

१३२ वस्तुतः स्वस्वरूप अभेदत्व ओर अविकरण भेदकी विलक्षणतासे कोइ किसीके समान नहीं हे; तथापि व्यावहारिक दृष्टि (नियम)से **सजातीय ओर सादृश्यकी समानताभी** कही जाती हे. ॥

१३३ **पूर्ववत् देशकी अपेक्षा**. (स्वरूपमात्र जहां तहां, जब तब अपनी सीमा-क्षेत्रफल पाने योग्य होताहे.)

१३४ **कारण कार्य सापेक्षक** होते हें. अर्थात् कार्यको कारणकी, निमित्तको उपादानकी ओर उपादानको निमित्तकी अपेक्षा होती हे. ॥

१३५ **यदितद्** (कारणत्व का यत्व भावसे) **भिन्न** कोई होतो वो ह **अनादिसे स्वतंत्र, असंग** होने योग्य हे. ॥

१३६ हरेक परिच्छिन्न पदार्थकी एक उपयोगसे **निवृत्ति** ओर उपयोगकी **पूर्णता** (अवधिरूपसे उपयोग) **स्वभावसे** होती रहती हे. (अर्थात पदार्थके गुणकर्म कहीं एक उपयोगमें आरहे हें, वहांसे वोह पदार्थ निवृत्त होके उसके गुणकर्म सहित दुसरे उपयोगमें आता रहता हे. एसा नैसर्गिक नियम हे). ॥

१३७ **जडमात्र** केवल **स्वयं हलाहल** (आप गति करने ओर ठेरनेमें **असमर्थ** हे.–समर्थ नहीं. ॥

१३८ **मूर्त्तमान** (परिच्छिन्न पदार्थ,**में गति** होती हे,**न अमूर्त्तमें**. ॥

१३९ पूर्वोक्त गतिको कर्म, शक्ति, वा अवस्था वा कुछभी मानो परंतु **योग्यता, अयोग्यतासे** होना न होना हे. यथा–कर्म करने योग्य मूर्त्त पदार्थमें गति स्वभावसे हे ओर अमूर्त्तमें गतिकी योग्यता नहीं; किंतु अयोग्यता हे, तथा

---

१३२ सर्प सर्प, खिजुर–छुहारा का वृक्ष, इत्यादि.

१३५ सफल (मू. ३६)के विरुद्ध हे. परंतु दृष्टि [सू. १९] पर ध्यान दो. किसीकी दृष्टिसे कथन हे.

१३६ यथा द्रव्यकी छत वा न्यूनाधिकताका क्रम देशोंप्रति बदलता रहता हे–वर्त्तमानमें आर्यावर्त्त कंगाल, यूरोप धनवान हे.

वोह गतिवान् नहीं. ॥

१४० जिसमें गतिकी योग्यता हे उसकी क्रियाका, **निमित्त** विशेषसे होने वा न होनेका **नियम** हे.॥

१४१ गति **देश अपेक्षावाली** होती हे. देशके विना नहीं होती.॥

१४२ गति **वेगजनक नहीं** होती, किंतु वेग होनेमें अन्य गुरुत्वादि कारण हें. हा—गति, वेगअवस्थाका निमित्त कारण मान सकते हें. ॥

१४३ दोके **टकरानेसे (गति)** होती हे. ॥

१४४ जब एकके धक्केसे दूसरेमें गति होती हे वहां **न बलका बदल** अर्थात् पूर्ववालेका बल दूसरेमें नहीं जाता; किंतु दूसरेके बलादि उसकी गतिके हेतु हो जाते हें.

१४५ धक्का देनेवालेके तटस्थ रहने कालमें दूसरेके **अन्य** बलादि **निमित्तोंसे** दूसरेमें गत्यादि कार्य होते हें. ॥

१४६ तुल्यबल होनेपर **संयोग स्थितिसे** (संयोगकी स्थिति पश्चात्) **गतिरुप** कार्यका **अभाव** होभी जाता हे ॥

१४७ कोई गतिकाभी **अन्यमें**

१४८ यदि कोइ निमित्तविशेष न होवे तो **हलके** पदार्थ ओर **भारी** पदार्थकी **गति विरुद्ध** देश [हलकेकी उपर ओर भारीकी नीचे देश]में होती हे.॥

१४९ **एक** (परमाण्वादि) पदार्थकी **क्रियासे अनेकमें** गति होजाती हे. ॥

१५० क्रिया **करण** (साधन)**से साध्य** होती हे. ॥

१५१ **उस** (गति-क्रिया)**विन न संयोग**—(संयोग नहीं होता).॥

१५२ एक **अधिकरणमें एकही** संयोग होता हे. ॥

१५३ संयोगियोंका **संयोग अव्याप्यवृत्ति** होता हे, अर्थात् उन संयोगियोंके एक देशवर्त्ति होता हे, सर्व देशमें नहीं. ॥

१५४ **संयोग आश्रयों** (संयोगके उपादान उभय संयोगी) **के** प्रत्यक्ष हुयेविना **अप्रत्यक्ष** रहता हे.

१५५ **तद्वत् गति**. अर्थात् गतिवान्के प्रत्यक्ष हुयेविना अप्रत्यक्ष रहती हे. ॥

१५६ **द्रव्य गुणवत् कर्मका वैधर्म्यत्व नहीं** हे. अर्थात् द्रव्यादि सामान एक कर्म (गति) ओर

दूसरे कर्ममें वैधर्म्यत्व नहीं हे.* ॥

१५७ **गुणादिका उपयोग** अनेक **निमित्त** ओर उनके तथा सृष्टिके **नियमसे** होता हे. ॥

१५८ आप–**गुण** किसीका **आधार नहीं** होसकता. ॥

१५९ **आकर्षणमें** स्वतंत्र न **पराश्रयत्व** ओर **न नियामकत्व** शक्ति वा धर्म हे. किंतु वोह पराश्रय होता हे. ॥

१६० वेसेही **विद्युत्‌मेंभी** पूर्वोक्त उभय योग्यताका अभाव हे.॥

१६१ तद्वत् **शेषा** (इथर)**मेंभी** ज्ञातव्य हे. ॥

१६२ **कर्म** (गति-शुभाशुभ क्रिया) में पराश्रयत्व ओर नियामकत्व नहीं हे, इतनाही नहीं, किंतु उसमें **अनाधारत्वभी** नहीं हे. अर्थात् पराश्रितही होता हे. ॥

१६३ कर्म समान **शक्ति** ओर **धर्ममेंभी** जानलेना चाहिये. ॥

१६४ कर्म समानही **स्वभावमें भी** समझलेना. ॥

१६५ **खंडित खंडन नहीं करता.** यथा कार्यका निमित्त न मानके कार्योत्पत्तिमें निमित्ताभावही निमित्त मानना, यह खंडित बात हे, इससे अन्य निमित्तोंका खंडन नहीं होता-इत्यादि. ॥

१६६ **न कार्यकी स्वयं उत्पत्ति** (कार्यमात्रकी स्वतः उत्पत्ति नहीं होती.) ॥

१६७ **न अभावादि** (अभाव, शून्य वा असत्-इन कोई)**से कार्य**की उत्पत्ति होती हे. ॥

१६८ **न** अकेले **निमित्त** (कारण) **वा** अकेले **उपादान** (कारण) **मात्रसे** कार्यकी उत्पत्ति होती हे. ॥

१६९ **न नाशसेही** कार्यकी उत्पत्ति होती हे. अर्थात् कोई घटादि पदार्थका नाशही अन्य घट शरावादिकी उत्पत्तिरूप नहीं होता.

१७० किंतु पूर्वघट कुंडलादिके नाश हुये पश्चात् न्यूनाधिक न हुये उनके उपादानसे जो दूसरे घट कुंडलादि उत्पन्न होते हें, उनकी पूर्वकेही **उपादानसे** उत्पत्ति होती हे; पूर्वके नाशमात्रसे नहीं.

१७१ **न असत्‌की सत्‌से** उत्पत्ति होती हे. ॥

१७२ **न असत्** (शून्य, नास्त्य)**की असत्‌से** उत्पत्ति होती हे

---

*वायु ओर पृथ्वी द्रव्य हें परंतु उनमें वैधर्म्यत्वभी हे. कर्मत्व, सर्वमें समान हे.

१७३ न सत्‌का असत्‌से उत्पत्ति होती हे. ॥

१७४ उत्पत्ति रहित सत् कहा जानेसे सत्‌की उत्पत्ति कहना, मानना व्याघात दोषयुक्त हे. ॥

१७५ उत्पत्ति नाशवाला तिसकी [अपनी] उत्पत्तिसे पूर्व ओर नाशके उत्तर न सत् न सदसत्‌का वाच्य होसकता हे ॥

१७६ वेसेही पूर्वोक्त विशेषणवालेको उत्पत्तिके पीछे ओर नाशसे पूर्व अर्थात् मध्यमें न असत् न सदसत् कह सकते हें. ॥

१७७ मूल संयोगी पदार्थोंकी संयोग वियोगरूप अवस्थाही उत्पत्ति [संयोगरूप अवस्था]ओर नाश [संयोगका वियोग होनारूप अवस्था] जानना चाहिये. अर्थात् कोईभी पदार्थ नवीन उत्पन्न वा नाश नहीं होता. ॥

१७८ गति[कर्म ओर उसका कार्य संयोग], द्रव्यादि समान स्वयं कोई पदार्थ नहीं हे, परंतु गतिवानकी देश–स्पर्शास्पर्शरूप [वा देश अस्पर्शरूप] अवस्था हे.॥

१७९ कर्मसे संयोग वियोगसे इतर, न अन्य-द्रव्यादि कार्य होतेहें.

१८० कार्यरूप द्रव्यका मूल द्रव्य ओर कार्यरूप गुणका मूल गुण उपादान होता हे. द्रव्यका गुण ओर गुणका द्रव्य, उपादान नहीं होता. ॥

१८१ द्रव्यके गुणोंका संबंध, द्रव्योंके संयोगसे भिन्न [अन्य] नहीं होता. ॥

१८२ अवयव ओर अवयवी अभिन्न होते हें. यथा घटके उपादान रजकण ओर उपादेय घट हे. उनकी भिन्नता मानना व्यवहार वा कथनमात्र हे. ॥

१८३ अवयव अवयवीका आश्रय आश्रितभाव नहीं हे. यथा शरीर ओर पद वा शिर हें. परंतु व्यवहारमें अवयवी आश्रय, अवयव आश्रित मानते हें. सो कल्पनामात्र हे.

१८४ एक [एक अवच्छेदक] में एक काल विषे दोकी अनुत्पत्ति. ॥

---

१८० पदार्थोंके विभाग जनाने वास्ते पदार्थ विशेषोंके नाम द्रव्य वा गुण संज्ञा[नाम]हे. यथा पृथ्वी द्रव्य हे–गंध गुण हे; जल द्रव्य हे, शीत गुण हे. कोई इस मंतव्यसे अन्यथा मानता हे. जिसे एक पक्षकार गुण कहता हे उसीको दूसरा द्रव्य कहता हे. इत्यादि.

१८५ **संयोग** वा **शब्दादिवत्** (यथा एक देशमें दो संयोगकी उत्पत्ति नहीं ओर एक ध्वनिमें उसी काल विषे अन्य शब्द नहीं होते)

१८६ स्व उपादानसे **अन्य** उपादेय होनेमें विद्यमान **उपादेय** [अवस्था] **प्रतिबंधक** होता हे. यथा कुंडल होवे तबतक उसी कनकका कंगन नहीं होता. ॥

१८७ जितने **परिणाम, अवस्था, ओर असत्जन्य**—कार्य होते हें वे **न नवीन पदार्थ** हें ओर **न** नवीन स्वरूप हें; किंतु मूल स्वरूपोंकीही रचनाविशेष हें, जेसे दूध, छाछजन्य दही ओर ओक्षिजन हाइड्रोजनादिजन्य शीत स्वादवान जल हें—यह नवीन पदार्थ नहीं हें. ॥

१८८ **जाति देशकाल भेदसे अवस्थाके प्रकार** होते हें. यथा—पुत्रजन्य वा द्रव्यजन्य सुख, सजातीय हुयेभी विलक्षण हें. एक ही नीलरंग देशकाल बदलनेपर गहरा, फीका वा अन्यथा जान पडता हे. ॥

१८९ **सज्ञान विषय** (विषय ओर विषय ज्ञान) **का समकाल उत्पत्ति नाशभी** होता हे. यथा स्वप्नमें सर्वको गम्य हे. ॥

१९० एक **ज्ञानसे** दूसरे **ज्ञानका बाध** होजाता हे. ॥

१९१ **उपादेय स्वोपादानका विरोधि नहीं** होता. ॥

१९२ हरकोई पदार्थके **उत्पत्ति, स्थिति** ओर **नाश तिन क्षणसे न्यूनमें नहीं** होते. ॥

१९३ **परिणामीके नाशसे परिणामका नाश** होजाता हे. **न कि विपरीत**—अर्थात्—परिणामके अभावसे परिणामीका अभाव नहीं होता. ॥

१९४ कोईभी सावयव पदार्थका जब नाश (वा रुपांतर) होता हे, तब एक क्षणमेंही नहीं होता; किंतु उसका **नाश क्रमसे** होता हे. ॥

१९५ **प्रमा** [ज्ञानस्वरूप] **का खंडन** (निषेध) **नहीं** होसकता. ॥

१९६ **खंडन प्रमेय** [ज्ञानका विषय] **होजानेसे.** ॥

१९७ तद्वत खंडनका साधन होनेसे **करणकाभी** खंडन नहीं होसकता. ॥

१९८ **स्वतःप्रमाण** [प्रामाण्य] **का प्रमाण नहीं**; क्योंकि विषयकी प्रतीति, प्रमाकी सिद्धि, **स्वयंप्रकाश** की आपत्तिसे **स्वतःप्रमाणसिद्ध हे.** त

याही अन्योऽन्याश्रय दोष आने और उसके अनुमानकी व्याप्ति •मानने में अनवस्थादि दोष प्राप्त होनेसे उसका प्रमाण नहीं माना जासकता.॥

१९९ परतः प्रमाण, प्रमाण (ज्ञानका साधन होते हुयेभी तद्वत् (स्वतःप्रमाण समान) प्रमाण नहीं होसकता है. ॥

२०० करण अपना करण [अपने ज्ञानका साधन] नहीं होसकता. ॥

२०१ केवल प्रमेयकोभी अपने ज्ञान वास्ते करणता नहीं है. ॥

२०२ प्रत्यक्ष प्रमाण आपमें [आप वास्ते] प्रमाण नहीं होसकता

२०३ तद्वत् अनुमानादिभी* अपने वास्ते आप प्रमाण सिद्ध नहीं होते. ॥

२०४ सहेज–केवल प्रतीतिमात्र विषय आधार योग्य नहीं होसकता. यथा रज्जुमें सर्प वा मृगजल वा रंगादिकी प्रतीतिमात्र आधार योग्य नहीं है. ॥

२०५ बहुवर्त्ति मतमें यथार्थत्वका नियम नहीं मान सकते.॥

२०६ यथा प्रसंग गौरव लाघवका बल योग्यतासे लिया जाता है. किसी एक गौरव वा लाघवको सबल, निर्बल नहीं माना जासकता. ॥

२०७ प्रमाणोंकी संख्या और उनके स्वरूपका वर्णन प्रमाण माननेवालेकी दृष्टिमे भिन्न भिन्न हैं.–उनमे विवादभी है. ॥

२०८ निर्दोष वृत्ति–मन–बुद्धि, इंद्रिय द्वारा अव्यपदेश, अव्यभिचारी जो उत्पन्न हुवा योग्यविषयका यथार्थ वा योग्य प्रत्यक्ष ज्ञान, उस ज्ञानका जो साधन सो योग्य प्रत्यक्ष प्रमाण (मनादिका विषय साथ सन्निकर्ष वा मनादि वा उनका परिणाम इत्यादि) लोक प्रसिद्ध व्यवहारमें* मान्य होनेका नियम है. और अन्य अनुमानादि सब प्रमाणोंका तदंतर [योग्य प्रत्यक्षमें] समावेश होजाता है ॥

---

* अनुमान. शब्द, उपमान. अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, चेष्टा, स्मृति, तुला–इत्यादि प्रमाण.

* सूक्ष्मदर्शी यंत्र और चक्षु, राजा और चर्मकार तथा पांचककी नाक त्वचा, तथा पशु पक्षी आदिकी इंद्रियों और मनुष्यकी इंद्रियोंके विषय–ज्ञानमें अंतर है.अतः व्यवहार दृष्टिमें मान्य कहा है.

२०९ **प्रत्यक्षका लिंगी होने से अनुमान** (परोक्ष प्रमाण)**भी** लोक व्यवहारमें मान्य हे. ॥

२१० **व्याप्य** [जिस लिंगसे÷ परोक्षलिंगीका÷ अनुमान होता हे–उस)के, **ज्ञानद्वारा अनुमिति** की सिद्धि मान्य होती हे; **न अन्यथा** (मनमुखी–कल्पनामात्रसे नहीं). ॥

२११ साध्य–जिसको सिद्ध करना वा जिसका अनुमान होनेका हे–उस साध्यका हेतु (लिंग, व्याप्य) **व्यभिचार रहित सहचारी** हो (अर्थात् तादात्म्य संबंध वा अविनाभाव संबंध वा कारण कार्य भाव संबंधवाला हो, सोही अपने व्यापकका व्याप्य कहाता हे. जो व्यभिचारी हो उसे हेतु वा व्याप्य नहीं कहा जासकता. ॥

२१२ हेतु होते हुये नहीं जेसा जो हेतु भासता हे, सो **निरुद्ध** हेतु अनुमिति सिद्ध–अनुमिति ज्ञान होनेका **प्रतिबंधक** होजाता हे. यथा संध्या वा प्रातः कालमें सघन वृक्षोंविषे अग्नि हुयेभी धूम ध्वंध समान फेला हुवा होता हे, सो अग्निकी अनुमिति ज्ञान होने-अनुमान होनेका प्रतिबंधक **हे–निरुद्ध हेतु हे.** ॥

२१३ साध्यका हेतु-साधक न होता हुवा हेतु समान भासनेवाला हेत्वाभास×-**दूषित हेतु अयथार्थ** अनुमिति ज्ञान**का जनक** होता हे. यथा घनवृक्षोंमें वा अन्य स्थलमें धुंध देखके, अग्निका अनुमान होना अयथार्थानुमान हे. ॥

२१४ रचित संकेत ओर प्रत्यक्षाधीन होनेसे **शब्द प्रमाण स्वतंत्र प्रमाण नहीं.** ॥

२१५ (शब्द प्रमाण) **न सर्वथा त्याज्य** हे. क्योंके अनुमानादिसे भिन्न **प्रमाणरूप होनेसे** अर्थात् व्यवहारका निर्वाहक-साधक हे; अतः **ग्रहण** योग्य हे. ॥

२१६ परंतु सो शब्द प्रमाण वक्ष्यमाण **मध्यस्थानुकुलही** ग्राह्य होता हे–अन्यथा विश्वासमात्र वा हानिकारक हे. ॥

२१७ यथार्थ **दृष्टश्रुतसे इतर**

÷जहां अग्निका धूमद्वारा वा काचगत प्रतिबिंबद्वारा अनुमान हो वहां धूम वा प्रतिबिंब, लिंग-हेतु व्याप्य ओर अग्नि, लिंगी–साध्य–व्यापक कहाते हें.

×इनके भेद, लक्षण, उदाहरण मूल ग्रंथमें हें. ॥

कपोलकल्पित **मंतव्य अनुपयोगी** है. ॥

२१८ पदार्थ **स्मृतिका हेतु संकेतभान** (कल्पित पदकी कल्पित वृत्तिसहित पद पदार्थके कल्पित संबंधका ज्ञान) **है न** कि **संकेत** (पद) मात्र. ॥

२१९ वैसेही **शाब्दबोधका*** हेतुभी संकेत भान है, ऐसा ज्ञातव्य है. ॥

२२० वक्ताके **तात्पर्य** जाननेके **विना वा संदिग्ध.** पद वा वाक्यसे **शाब्द बोध नहीं** होता.॥

२२१ **विशिष्टके वाच्यका न भिन्न ग्रहण, दुग्धवत्** (इस-समक्ष वर्त्ति क्षीर अर्थात् स्वस्वरूप संबंध सहित पृथ्वी जलादिके मिश्रणमें,-वे वा उनका स्वरूप दुग्ध पदसे इतर-भिन्न स्वरूप-नहीं माने जाते. परंतु जहां विशेष्य, विशेषण स्वरूपके विभाग जनादिये हों, वहां यह नियम लागु नहीं पडता). ॥

२२२ जहां यौगिक वा रौढिक पद वा स्वाभिप्रायके लक्षणका वक्ताने स्पष्टिकरण किया हो, ऐसे **विवेचन हुये** कथन वा लेखमें

*जेसे सत्संग पद श्रवणसे महात्मा ओर मंडली पदका बोध.

कारण पूर्वक नाना अर्थ होसकनेसेभी **व्याकरणकी बाहुल्यता** वक्ताके रहस्यकी **बाधकनहीं** होसकती.

२२३ पदके अर्थ करनेके प्रसंगविषे **तवके** (जिसभाषमें जिन पदोंको जिस कालमें रचा गया है उस कालके) **शक्यार्थ** (पद वा वाक्यका मुख्यार्थ) **होते** हुये पदकी **लक्षणा** (भावार्थ) करना वा लेना **अमान्य** है -प्रसंगको स्वीकारणीय नहीं होसकती है. ॥

२२४ तबके शक्यार्थ अनुसार अर्थ योग्यतामें **न** आता हो अर्थात् भावार्थ हो -वक्ताने भावार्थ रखा हो तो, प्रसंगानुसार अर्थात् **प्रसंगवशात् योग्यता** (आकांक्षा, योग्यता, आसति, ओर वक्ताके प्रयोजन बल)**से लक्षणा** कर्तव्य है. मनमुखी रुपसे नहीं.॥

२२५ वाक्यार्थके अन्वय न होनेसेही लक्षणा करनेका नियम नहीं है; किंतु वक्ताके **तात्पर्यानुपपत्तिकोभी** लक्षणाका **बीज** जानना चाहिये. ॥

२२६ **पदवत् चेष्टामेंभी** मुख्यार्थ ओर भावार्थ लिये जाते हैं; परंतु सो अर्थ ओर भाव **उसके** (चेष्टा प्रकरणके) **नियमसे** लिये

जाते हैं; मनमुखी नहीं. ॥

२२७ शब्द वा चेष्टा-यह उभय **संकेतभान** (संकेताभ्यास) **मात्र होनेमे** अर्थात् शब्द वा चेष्टामें अर्थ वा अभिप्राय जनानेवाली अपनी वा अन्य किसीकी सामर्थ्य नहीं होती. किंतु कल्पित संकेत. संकेती संकेत संबंध भान का नाम शब्द वा चेष्टाकी शक्ति वा लक्षणा वृत्ति हे. इसलिये मन माने अर्थ वा भाव नहीं लेसकते.

२२८ जिस प्रकारसे संकेतार्थ लेके निर्णय करते हैं वहां **सदोष** अर्थ होने वा दोष प्राप्तिपर **अन्य प्रकार** (प्रत्यक्ष-अनुमान-युक्ति-अनुभवादि) **से निर्णय** कर्तव्य हे.-शब्द विवाद त्याग देना उचित हे. ॥

२२९ ग्रंथमात्रमें प्रवर्त्तक-निवर्त्तक वाक्य अर्थात् कितनेक **विधिनिषिद्ध** बोधक वाक्य **देशकालानुसार**भी होते हैं. वे सर्व देशकाल वास्ते लागु नहीं होसकते. यथा-आपत्काल, शरीर ओर देश सोसाइटी[मंडली] संबंधी बोध बदलता रहता हे. ॥

२२७ पङ्क्ती प्रमाणका समावेश शब्द वा चेष्टामें हे.

२३० **निषिद्धका निषेधसेभी** उपदेश होता हे. जेसे बाल यति प्रति अव्यभिचारीका कथन. ॥

२३१ प्रत्येकको **ज्ञातव्य. कर्तव्य** ओर **प्राप्तव्य** उसके **अधिकारपर** होता वा होसकता वा होतव्य हे वा सफल होता हे. ॥

२३२ अन्यथा नहीं-अर्थात् वर्तमान प्रचलित **रौढिक वर्णाश्रमादि** (जाति, पुरुष, स्त्री, वीर्य, मडलीविशेष, निश्चय, विश्वासादि) मात्रपर **नहीं**. ॥

२३३ **अपूर्व वाक्यादिवत्**-(जेसे अपूर्व वाक्योंका फल उसके अधिकारीसे इतरको नहीं होता.-बधिरको शब्द ओर अंधको रूप का ज्ञान नहीं होसकता. तद्वत् ज्ञातव्यादि गुणकर्म स्वभावरूप अधिकारपर प्राप्त होने योग्य हैं. मंडली वा स्वग्रंथमात्रपर नहीं. ॥

२३४ **गुणादि** (शुभाशुभ गुण, कर्म, स्वभाव) प्राप्तिके **संस्कारादि चार** (संस्कार, रजवीर्य, संग संबंध ओर जीव स्वभाव) **मुख्य कारण** होते हैं. ॥

२३५ **शब्दमात्रसे निर्णित आधारयोग्य नहीं** होसकता. ॥

२३६ **विषय** (वाच्य)**के अ-**

पडता हे. ॥

२४३ अर्थापत्ति प्रमाणका अनुमानादि प्रमाणमें समवेश करते हें; तथापि **अर्थापत्तिको** उनसे भिन्न प्रमाणभी मानें तोभी अयोग्य नहीं है. ॥

२४४ यद्यपि स्मृति प्रमाण माननेमें बहुधा पक्षकार उदासीन हें; तथापि **स्मृतिभी** भिन्न प्रमाण मानें तोभी अयोग्य नहीं हे.॥

२४५ यद्यपि कितनेक पक्षकार चेष्टाको भिन्न प्रमाण नहीं मानते तथापि **चेष्टाकोभी** भिन्न प्रमाण माना जाय तो, अयोग्य नहीं हे; किंतु २२६–२२७ सूत्रवत् व्यवस्था होजाती हे(देखो बालक, गूंगे ओर तारादिकी चेष्टा तथा मधमाखी प्रबंध.) ॥

२४६ **अभाव** प्रमाण **विवादित** हे. कोई अभावको वस्तुही नहीं मानता. ओर जो पक्षकार इसे प्रमाण मानते हें–उनमें कोई अनुमान कोई प्रत्यक्षके अंतर मानते हें ओर कोई भिन्न प्रमाण कहता हे.

२४७ **यथार्थ संभव** प्रमाण अनुमानसे **भिन्न** सिद्ध **नहीं** होता.

२४८ **ऐतिह्य** प्रमाणभी यदि

यथार्थ बोधक हो तो, शब्द प्रमाणके अंतर्भूत हे. ॥

२४९ **मान** (देशमाप, कालमाप, वस्तुमाप—गुरुत्व) को प्रमाण मानें तोभी देशमापका प्रत्यक्षके अंतर कालमापका समावेश प्रत्यक्ष वा अनुमानके अंतर, ओर गुरुत्वका अनुमानके अंतर समावेश होता हे. किंवा यह कल्पित-साध्य-होनेसे निश्चित प्रमाणरूप नहीं. ॥

पूर्वोक्त तमाम प्रमाणोंका समावेश परोक्ष, अपरोक्ष—इन दोमें होता हे. अनुभव इनके आधिन हे; परंतु जडजरूपसे स्वतंत्रहे; अतःउसको प्रमाणपद नहीं देते. किसीने इसकोभी प्रमाण माना हे.

२५० **उद्देशादि** (उद्देश, तटस्थ-स्वरूप लक्षण, ओर प्रमाणादि) सहित (युक्त) ओर **अतिव्याप्तिआदि** (अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, ओर असंभव) दूषण **रहि**तही विषय लक्षण **मान्य** होसकता हे. ॥

२५१ प्रत्यक्षादिसे एक वा अनेक—कितनेभी प्रमाण ओर उनका केसाभी स्वरूप लक्षण मानो, परंतु विषय—प्रमेयके स्वरूपका यथार्थ **निर्णय मध्यस्थ** द्वारा परीक्षा होनेसे होसकता हे. ॥

२५२ अकेले प्रत्यक्ष वा अनुमान वा युक्ति वा अनुभव वा अन्यमें दोषकी आपत्ति होजाती हे; अतः इष्ट निर्णय वास्ते यह चार अर्थात् "**प्रत्यक्ष, अनुमान, युक्ति** (साथ) **वा सृष्टि नियम, बुद्धि, इंद्रिय साथ अनुभव**" मध्यस्थ करनेसे (मनुष्यकी सीमा तक) यथार्थ निर्णय होजाता हे. ॥

२५३ **निर्दृष्टांत विषय नहीं** होता, उसके साधर्म्यत्व, वैधर्म्यत्वका कोई न कोई भाग दृष्टांतके योग्य अवश्य होगा. ॥

२५४ दृष्टांत **एक भागमेंभी ग्रहण** होता हे. ॥

२५५ परंतु दृष्टांतका ग्रहण **योग्यतासे** होता हे. सर्व दृष्टांत सर्व स्थलमें नहीं लगाये जासकते. ॥

२५६ **दूषित** दृष्टांतका **अस्वीकार** हे. किंतु यथार्थकाही स्वीकार होता हे. ॥

---

२५० जिसका उद्देश होसकता हो. जो दूसरेसे भिन्न अपनी वा अपने लक्ष्यकी सिद्धिके योग्य हो, ओर असंभव न हो, सो लक्षणादि विषय मान्य होसकता हे.

२५७ जो दृष्टांत विकल्पमात्र वा साध्य (अनिर्णित) रूप हो उसकाभी स्वीकार नहीं किया जाता.

२५८ योग्यादियों .योगी. इंद्रजाल, सृष्टि नियम विरुद्ध देखाने मात्र चमत्कार)का अन्यथा उदाहरण भी स्विकारना नहीं चाहिये. ॥

२५९ अनुवृत्यादिवत् (जेसे योगी अनुवृत्ति अवस्थामें आकर्षण–ओरा–विद्युत् ओर संकल्प करके अर्थशून्य अन्यथा अर्थ विषय करा देते हें. वा इंद्रजालीभी चालाकी वा लागादिकसे अन्यथा देखा देते हें.–वेसे उदाहरण मान्य नहीं होते). ॥

२६० एक. पक्षकारको संमत वा साध्यरूप दृष्टांत दिया.जानेपर जो आक्षेप होवे, तो, अन्य (दूसरा सिद्ध वा उभय संमत दृष्टांत) देनेपर पूर्व आक्षेपका त्याग करना पडता हे. अर्थात् निर्णय रूप वाद प्रसंगमें उक्त अवस्थासे निग्रहकी प्राप्ति नहीं माननी चाहिये.

२६१ दृष्टांतका साधर्म्य वैधर्म्यत्व साध्यके साथ मिलाने-कहने मात्रसे साध्यकी सिद्धि नहीं होती, यथा यह जगत् मिथ्या हे; रज्जु सर्पवत्. इतना कहने मात्रसे जगत्. मिथ्या नहीं ठेरता. ॥

२६२ जो परिच्छिन्न गतिवान जड हे. सो किसीका आधेय होता हे, अनाधार नहीं होता, एसा नियम देखते हें. ॥

२६३ अतःदृश्य-परिच्छिन्न-गतिवान–जड ओर आधार आधेय एक स्थितिमें न रहनेवाले-तिनकाभी जो मूलाधार होवे तो * सो अ-अनादि, स्वयंभू, स्वतंत्र एक ओर विभु तथा चेतन होना चाहिये. ॥

२६४ जेसे इस दृश्य परिच्छिन्नका आश्रय चेतन हे–दृश्य परिच्छिन्न पदार्थ चेतनाश्रित जान पडते हें, वेसे सकल ब्रह्मांडका होने याग्य हे. ॥

२६५ क्योंकि सर्व ब्रह्मांडसमूह आधेय न हो तो, गतिवान परिच्छिन्न होनेसे एक दशामें नित्य गतिवान होना चाहिये; परंतु एक दशामें नित्य गमन न संभव हे, न सिद्ध हे ओर न देख पडता हे. अर्थात् कार्य व्यवस्थासे नित्य

---

* २६३ मनुष्यके ज्ञानकी सीमासे बाह्य अगम्य मानना पडेगा.

गमन असिद्ध, ओर आधार सिद्ध होता हे.

२६६ **स्वाश्रय** (परमाणु, आकर्षण, कर्म, स्वभावादि)**का नियामक** कोई **नियम** वा शक्त्यादि **नहीं** होसकते, अर्थात् आधेय, अपने आधारका नियामक नहीं होसकता. ॥

२६७ **संख्यासे अनंतता नहीं** (मूलस्वरूप वस्तु कोईभी वास्तविक रीते असंख्य नहीं.) ॥

२६८ **न देशकालसे पर अपेक्षासे.** अर्थात् परमाण्वादिको परिच्छिन्न अल्पज्ञ जीव अपनी अपेक्षासे अनंत कह सकता हे, परंतु देशकालकी अपेक्षासे नहीं ओर "देशकाल अनंत," यह अनंतत्व अपेक्षासे विकल्पमात्र हे.(२७१ सू० देखो) ॥

२६९ **आकाश** (देश) **अनंत होनेसे** परमाणु ओर जीव 'संख्यासे अनंत हैं' एसे होनेकी **संभावना** हे. (यह शंका सूत्र हे.) ॥

२७० पूर्वोक्त (२६९सूत्रवाले) पक्षका **प्रतिपक्ष** हे **ओर** अन्यत्र स्था 'अनवस्थादि' दोष आनेसे उक्त पक्ष मान्य **नहीं** होसकता.॥

२७१ लोकमान्य देशकालादि विभुकी 'अनंतताका, परिच्छिन्न पदार्थ ओर जीवकी अल्पज्ञताकी **अपेक्षासे कथन** किया जाता हे.

२७२ वेसेही जीवादिकी **अनंत** (देश, काल वा द्रव्य गुणादि वस्तुसे) **उन्नति** वा **अवनति**का कथन वा मंतव्य**भी** जान लेना चाहिये, अर्थात् अनंत उन्नाति वा अवनति किसीकीभी नहीं होती.॥

२७३ कोइभी **एक देशकालावच्छिन्न** (एक देशस्थ एक कालमें वा एक देशकालमें) **सर्वज्ञ नहीं** होसकता. ॥

२७४ **त्रिकालज्ञता** (सर्व भूत वर्त्तमान भविष्यका सब ज्ञान होना) **ओर सर्व शक्तिमानत्व** (सर्व शक्ति किसी एक वस्तुमें होना) **भी** किसीको प्राप्त नहीं होसकते-अर्थात् असंभव हे. ॥

२७५ **योग्यतासे जबतब जहां तहां साक्षी होनेसे सर्व विषयकत्वादिकी संभावना हे.**

---

२६२ से २७८ सूत्रका विषय विचारशील स्वतंत्र पुरुष विवेचन द्वारा जान सकता हे, हरकोइ नहीं.

---

२७५ परिच्छिन्नमें सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमानत्वका अभाव स्पष्ट हे.

२७६ **शरीर ज्ञान क्रमवत्** अर्थात् जेसे अपने शरीरके भूत, वर्त्तमान, भविष्यका क्रमशः ज्ञान होता हैं वेसे ब्रह्मांडनामा शरीरका होना संभव हे. ॥

अब यदि किसी व्यापकमें सर्व विषयकत्वादि मानें तोभी, एकही अभिमानी व्यापक, जो जो पदार्थ जिस जिस देश ओर कालमें सन्मुख होते हैं, उन उनको उन उन देश कालमें जहां तहां विषय करता हे. वेसे भूतमें जाना ओर वर्त्तमानमें जान रहा हे, भविष्यमें जानेगा; इस रीतिसे सर्व विषयक मान लेना संभव हे. ओर एकमें सर्व शक्ति नहीं होसकती [यथा अपने जेसे बनाने वा नाश करने वा विभुको परिच्छिन्न, ओर परिच्छिन्नको व्यापक करदेने-इत्यादि कार्य करनेको कोई शक्तिमान नहीं होसकता] किंतु उसकी योग्यतानुसार उसमें शक्ति हो-सर्व शक्तियोंका उपयोग जिसकी शक्ति करके होसकता हो, उस दृष्टिसे उसने सर्वशक्तिमानत्वका आरोप करसकते हें. इस प्रकारके सर्वविषयकत्वादिकी संभावना हे.

२७७ **न अकृत** (स्वतंत्र इच्छा जन्य वा अन्यथा जो होनेवाले कृत, **ओर** पूर्वोत्तर अनंत संयोग वियोगादि अनंत **प्रवाहका ज्ञान** वर्त्तमानमें सर्वथा संभव हे-अर्थात् नहीं होसकता-असंभव हे. ॥

२७८ कोईभी **अपना आप विषय** (ज्ञेय-दृश्य-प्रकाश्य-भोग्य-कर्म) **नहीं** होता; अर्थात् अपना आप विषयी (ज्ञाता-द्रष्टा-प्रकाशक-भोक्ता कर्ता) होनेका अभाव हे. क्योंकि विषय-विषयीके स्वरूप भिन्न भिन्न होते हें. ॥

२७९ लोक प्रसिद्ध (मान्य) **जीवमात्र** सर्वथा **अज्ञ वा** सर्वथा **सर्वज्ञ नहीं हें**. ॥

२८० सामान्य ज्ञानसे इतर **विशेष ज्ञान** अन्यकी **अपेक्षासे** होता हे-विशेष ज्ञान होनेमें अन्यकी अपेक्षा हे. ॥

२८१ हरकोई वस्तु **उसके योग्यको उपयोगी** होती हे. जेसे कि विशेष ज्ञान होने योग्य मनुष्यको विशेष ज्ञान उपयोगी होता हे.

२८२ **प्रकाश द्विधा चित् ओर जड** हें-सिद्ध होते हे. ॥

२८३ उनमेंसे **चित् ज्ञान** प्र-

काशरूप होने. ज्ञानका ज्ञान न होसकने, अन्य अपेक्षाविना सर्वको प्रकाशने, किसी कर ज्ञेय न होने ओर परको अपेक्षाविना स्वयं प्रतीतरूप होनेसे **स्वयं** (वा स्व) **प्रकाश** कहा जाता हे. ॥

२८४ चित् प्रकाशकोभी **व्यवहार दृष्टिसे तो सीमावाला** कहना वा मानना अयोग्य नहीं हे.॥

२८५ **अन्यथा** (वस्तुतः) प्रकाश्य–गम्य न होने ओर स्वप्रकाश होनेसे "**जैसाका तैसा,**" इतनाही कहसकते हैं.–विशेष नहीं.

२८६ इस [चित्प्रकाश] का वोह [जडप्रकाश] प्रकाश्य हे अर्थात् चित्प्रकाश, जडप्रकाशका प्रकाशक हे न कि यह [चित्प्रकाश] उस [जडप्रकाश] का प्रकाश्य हे अर्थात् जडप्रकाश, चित्प्रकाशका प्रकाशक नहीं हे. ॥

२८७ चित् ओर जड–दोनों प्रकाश स्वसमानाधिकरणवर्त्तिके प्रकाशक होते हैं. अर्थात् एक देशवर्त्ति प्रकाशसे अन्य देशवर्त्ति प्रकाश्य प्रकाश नहीं पाता-प्रकाशित नहीं होता. ॥

२८८ **अन्यथा** [जो देशप्रति प्रकाशक नहीं मानें, किंतु एक देशोपाधिअविच्छिन्न कारकेभी अन्य सर्व देश–वस्तु–का प्रकाशक माने तो] सर्वज्ञ प्रसंगवत् पूर्वमें जो सर्वज्ञ माननेमें दोष आये वा आते हैं, [वैसेही यहांभी] **दोषापत्ति** होगी. ॥

२८९ प्रकाशक वा प्रकाशका **प्रकाश्यसे विरोध नहीं** होता.

२९० वे उभय प्रकाश **उपयोग दृष्टिसे सामान्य ओर विशेष** अंश वा भेदवाले माने जाते हैं. ॥

२९१ जड प्रकाश किसी जड पदार्थका **प्रकाशक** [जडके ज्ञान होनेमें सहकारी] **नहींभी** होता. जैसे कि तम, अभाव, शब्द, दुःखादि उसके प्रकाश्य वा वोह उन उनके ज्ञान करानेमें सहकारी नहीं [परंतु वे ज्ञानप्रकाशके प्रकाश्यतो हैं].

२९२ जड **किरणें सीधी पडनेका नियम** हे.आडी टेढी नहीं.

२९३ जिन द्रव्यादिको किरणें स्पर्श करती हैं, उन स्पर्शोंवत् रूप-रंग–आकारवाली प्रतीत हो पडती हैं, एसा नियम हे. ॥

२९४ सृष्टिगत प्रत्येक किरणादि पदार्थोंकी परीक्षा करनेसे वि

चित्र दर्शन होता है.—कार्योंमें विचित्रता प्रतीत होती है. ॥

२९५ प्रतिबिंब होनेकी साम ग्री होनेसे सर्व पदार्थोंका प्रति बिंब होसकता है. ॥

२९६ निरूपमें किसी साकार निराकारका प्रतिबिंब नहीं पडता* [यह पूर्व सूत्रका अपवाद है] ॥

२९७ धर्म—धर्मी—संबंधका दूसरे वा परस्परमें अध्यास हो जाता है. ॥

२९८ अज्ञानादि (सूत्र ३०५ देखो) दोषसे अन्यथा व्यवहार संभव-न कि जेसा प्रतीत हुवा वेसाही पदार्थ हो और गोचर होता हो; किंतु जीववृत्तिका अन्यथा परिणाम है यथा रज्जुसर्प, मृग जल वा लाल कांच. ॥

२९९ सो अध्यास धर्मीके एक धर्मविशिष्टही होता है, एक कालमें अनेकका नहीं होता. ॥

३०० अध्यासका विषय, स्वाश्र यका आवरक होजाता है. यथा रज्जुका आवरक रज्जुमें सर्प है.॥

३०१ अध्यास, प्रमा (यथार्थ ज्ञान) का प्रतिबंधकभी होजाता है यथा सर्पज्ञान, रज्जुज्ञानका प्र तिबंधक है. ॥

३०२ एक कालमें दो ज्ञान न होनेसे सामग्रीभी अपने ज्ञान साथ अन्यको प्रतिबंधक होती है. जेसेकि शब्दज्ञान अन्य ज्ञान हो नेका प्रतिबंधक होता है, वेसे श ब्दभी होजाता है. ॥

३०३ प्रमा, अप्रमा (अयथार्थ ज्ञान) परस्परके अनुत्पादक होते हैं. ॥

३०४ संसर्गविना अन्यकी अन्यमें अप्रतीति. जेसेकि लाल वस्त्र और श्वेत काचके संबंधसे 'ला ल काच है' एसा अध्यास होता है अर्थात् उसकी लाली काचमें प्रतीत होती है. संबंधविना एसा नहीं होता. ॥

३०५ अज्ञानादि (सजातीय वस्तुके संस्कार, सादृश्य-प्रमेय प्रमा ता. प्रमाण दोष और अधिष्टान† का सामान्य ज्ञान, विशेष अज्ञान

---

*निरूप-निराकारकाभी प्रतिबिं ब नहीं होसकता. ॥

† जिसमें वा जिसके आधार भ्रम हो वा अन्यथा प्रतीति हो— सो. यथा रज्जु सर्प प्रसंगमें रज्जु अधिष्टान है.

–इतनी सामग्री वा दोष) **विना असंसर्गमें** अन्यथा प्रतीति नहीं होती. जैसे संसर्ग रहित रज्जुमें उक्त सामग्रीकेविना अध्यास नहीं होता.

३०६ परोक्ष भ्रम सादृश्य दोष**विना**भी होता है.–परोक्षभ्रममें सादृश्य दोषकी अपेक्षा नहीं. ॥

३०७ प्रमासे भ्रम बाध्य होने योग्य है **न कि वोह**[प्रमा ज्ञान] **इस** [भ्रांतिज्ञान] **से** बाध–निवृत्त होता है. ॥

३०८ अधिष्ठानके ज्ञानविना भ्रमसेभी पूर्व भ्रमकी निवृत्ति होजाती है जैसे कि रज्जुके ज्ञान विना जलधाराका **भ्रम** होनेपर पूर्वका **भ्रम**रूप जो सर्प और उसका ज्ञान–निवृत्त होजाता है. ॥

३०९–परंतु आधिष्ठानके **अज्ञान सहित** भ्रमकी निवृत्ति **तो उसी** अधिष्ठानके **अपरोक्ष ज्ञानसे** होती है. यथा रज्जुके अज्ञान सहित सर्प और सर्पज्ञानकी निवृत्ति तो रज्जुके अपरोक्ष ज्ञान होनेसेही होती है. ॥

३१० सामान्य रूपसे ज्ञान अज्ञान परस्पर विरोधी नहीं होते; परंतु **समान विषयक** (दोनोका एकही विषय होवे वहां) **ज्ञान, अज्ञानका परस्पर विरोध** होता है अर्थात् विशेष ज्ञानसे अज्ञानका बाध होता है. यथा-रज्जुके विशेष ज्ञानसे रज्जुका अज्ञान बाध होता है रज्जुके सामान्य ज्ञानसे बाध नहीं होता. ॥

३११ यथार्थ निश्चय हो वा अयथार्थ हो, परंतु **निश्चयका संशयसे** विरोध होता है. ॥

३१२ जो **ज्ञानग्राहक** समग्री होती है उससे **उसके धर्म** (ज्ञानत्व[१])**काभी ग्रहण** होता है.

३१३ संबंध, संबंधीके ज्ञान होनेके **नियमवत्**. अर्थात् जैसे संबंध रहित संबंधीका ज्ञान नहीं होता, किंतु संबंध सहित होता है; वैसे **ज्ञान**त्व[१] धर्मसहित **ज्ञान**[२] का **ग्रहण** होता है. ॥

३१४ **प्रमात्व**[३] **ग्रहण** होनेपर **भ्रम** वा **संशय नहीं** होता. ॥

३१५ अनुत्तर भ्रम असिद्ध है. अर्थात् **भ्रम**कालमें **भ्रम, भ्रम** रूपसे **ग्रहण** नहीं होता; किंतु **भ्र**मके उत्तर–बाध हुये पीछे उसकी सिद्धि–मान्यत होती है. ॥

३१६ परीक्षा विना किसी

---

१ प्रतीतिपना. २ प्रतीति, ३ यथार्थत्व.

क **मंतव्यमात्रसे** किसीकी नास्ति वा **अस्तित्वका** स्वीकार करलिया ही जाय, एसा **नियम नहीं** हो-सकता., ॥

३१७ यदि **मुक्ति** (मोक्षावस्था वा वस्तु) हे तो, वर्त्तमान• शरीर के **जीवते** हुये उसका **अनुभव** होने **योग्य** हे, तब मरनेके पीछे मुक्ति रहनेका निश्चय-विश्वास माना जासकता हे. ॥

३१८ **अन्यथा** (जीवते •हुये अनुभव-मुक्तिका ज्ञान न होतो) मुक्ति मानना **विकल्प, विश्वास वा अज्ञान**मात्र कहसकते हें. ॥ क्योंकिः—*

३१९ योग्य व्याप्तिकी अनुपलब्धिसे. (अर्थात् "मुक्ति हे-मोक्ष होगी" इस बातको सिद्ध करने-होनेकी योग्य सामग्रीकी प्राप्ति अद्यापि नहीं हे., एतद्दृष्टि उक्त उभय सूत्रोंका विधान हे). ॥

३२० **स्वाभाविक** किंवा **संसर्गज** मोक्ष माननेमें **अव्यवस्था** होती हे. ॥

३२१ मुक्तिको **अभावरूप**(जीवकी नास्तिरूप) माननेमेंभी अव्यवस्था होती हे. ॥

३२२ **अनावृत्तिरूपं** मोक्ष माननेपर सृष्टि होनेके हेतु जो बद्ध जीव तिनका जब तब अंत आने से संसारका **उच्छेद** ओर प्रकृति-मेंडरका निष्फलत्व† मानना पडता हे, जोकि असंभव हे. ॥

३२३ मोक्षसे शुद्ध मुक्तको जन्मादि दुःखस्थानमें पुनः **आवृत्ति** होनेमें **न** कोई प्रबल-निर्दोष **हेतु**-निमित्त-सिद्ध होता हे, ओर न सादि साधन वा सादि अवस्थाका अनंत फल वा अवस्था मानी जासकती हें. ॥

३२४ **कर्मजन्य** मुक्ति माननेमें मोक्षसे **आवृत्ति** संभव हे. ॥

३२५ हरकोई प्रकारकी आवृत्तिवाली मुक्तिमात्र **अवस्था** विशेष कही जायगी, न कि **मुक्ति**.— अर्थात् उसको सर्वथा मोक्ष नहीं कह सकते. ॥

३२६ **अमुक्त सिद्धांत** माननेसे

---

*सू. ३१८ से ३२५ तक बांचो.

†अनंत जीवोपयोगी अनंत परमाणु हें. उनमेंसे १०० महासंख जीव मोक्षमें जाने पीछे उतने परमाणु वा उतनी सामग्री निष्फल रहेगी. इ.

विशेषतः **सुख नीतिका भंग** होनाभी संभव है. ॥

३२७ **धीपर** (अगम्यमें) परिमित **धी**(बुद्धि)की **गति ओर तर्क न हीं** होसकते–व्यर्थ है, एसी शंकाका अवसर आसकता है. ॥

३२८ **सो** शंका सर्वांशमें **नहीं** बनती; क्योंकि वेसा स्वीकारनेसे **दोष, विकल्प, शंका, समाधान,** (सदोष शून्य, अभाव, स्वभाव वा कल्पित मतोंकी सिद्धि ओर व्याप्ति, किंवा सर्व प्रकारके–पक्ष मत ओर श्रवणादि साधनकी मान्यता, वादिके अगम्य ओर धीपरत्व की मान्यता तथा उक्त शंकाके अवसरके अभाव ओर समाधान) **की प्राप्ति** होने वा सर्व पक्ष दूषित ठेरनेसे पक्षि वा सिद्धांतमात्रका उच्छेद होजायगा.–इत्यादि अनेक दोष आते हैं. ॥

३२९ सर्व पक्षका खंडन हो सकता है अर्थात् **खंडन अखंड** है, एसा नियम माननेसे **व्याघात** दोष आता है; क्योंकि पक्षकारको पूर्वोक्त स्वपक्षकाभी खंडन मानना पडेगा. अर्थात् सर्वका खंडन होना नहीं माना जासकता. ॥

३३० **स्व** (अपने) को जो **अज्ञात** सो अन्य–**सर्व**को **अज्ञात** (हो, एसा) होने**का नियम नहीं** है. ॥

३३१ **प्रमात्व**के **अनिश्चय** वा **अप्रमात्व** (अयथार्थत्व)के **निश्चय** होने**से** विषयमें **अप्रवृत्ति** अर्थात् प्रवृत्ति नहीं होती. ॥

३३२ अनादि स्वरूप वा उनके गुणादि एसे (जेसेकि पाते हो) **क्यों है**? अन्यथा क्यों न हुये? इस प्रश्नकी **अनुत्पत्ति** है.–एसा सवाल आतै कहाता है. ॥

३३३ **पदार्थ अनुद्भवादि**(संज्ञा देखो) **प्रकारके** होते हैं. ॥

३३४ **समीपादि*** [कारण] **प्रत्यक्ष** होने**के प्रतिबंधक** हो- जाते हैं. ॥

३३५ **प्रमाणाभावसे प्रमेय**

---

३३२ मूल तत्व क्यों हैं? सृष्टि वा कार्यरूप पदार्थ क्यों हैं? इन दोनों प्रश्नोंका, मूल द्रव्य गुणोंका सफलत्व–उपयोग–जवाब है. अतः सूत्रोंकी इन प्रश्नोंपर दृष्टि नहीं है.

*संज्ञा देखो.

३३५ इस नियम ओर ३३६

का अभाव नहीं होता वा नहीं माना जासकता. अर्थात् " जिस प्रमाणसे प्रमेय विषय हुवा उस प्रमाणके अभाव हुये प्रमेयकाभी अभाव हुवा" किंवा " कोई वि-षय हो, परंतु उसके विषय करने योग्य कोई प्रमाण नहीं मिलता, अतः वोह विषय नहीं हे," ए-सा मानना अयुक्त हे.॥

३३६ जो कारण **सिद्ध** हे ओर **अदृष्ट** हे, एसे कारणके कार्यो त्पत्तिसे उस कार्योत्पत्तिमें उसके कारणके **व्यापारकी कल्पना** की जाती हे. यथा आकर्षण ओर अदृष्टकी अल्पना करनेमें आतीहे.

३३७ वर्त्तमानके ज्ञाततत्वोंसे इतर **अज्ञाततत्व** होनेकी **संभावना** हे.

३३८ "जो **सत्** हो सो **गोचर** हे ओर जिसे **अप्रत्यक्ष** कहते वा प्रतीत होना नहीं मान्ते हो उस का **अभाव** हे", एसा मानना चाहिये. परंतु एसा **नहींभी** अर्थात् निश्चयरूपसे उक्त नियम नहीं बांध सकते.—सिद्ध नहीं होता. ॥

३३९ हरकोई बाबत—विषय—

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

का तथा १०६ सूत्रोक्त नियम का विरोध भाव नहीं हे.

सपरीक्षा यथार्थ अनुभवका विषय न हो वहांतक अर्थात् **अनिश्चित** अवस्थामें उस विषय प्रति निश्चय रूपसे **संमति** देना **वा** वेसे प्रकारके किसी मत—पक्ष—विषयका **मंतव्य** वा वेसे मंतव्यको किसी दूसरेको मनाना—दृढाना **अयोग्य** हे (उचित नहीं हे); वेसेही उस विषयके सहभाव वास्तेभी इस कथनको लगा लेना चाहिये. ॥

३४० कोईभी विषय वा तत्व हो परंतु उसकी **असिद्धि तक** जेसेंकि उसका **न खंडन** करतेहें तद्वत् उसपर **आधार** नहीं रखना चाहिये. वा आधार नहीं रख सकते. वा आधार योग्य नहीं हे. ॥

३४१ **योग्य संभव कल्पना न अनादरणीय** हे ओर **न आधारयोग्य** हे. ॥

३४२ योग्य कल्पनाद्वारा **अन्य** विषयके निर्णयमें **प्रवेश** हो जाना **संभव होनेसे** आदरणीय हे. ओर कल्पना होनेसें सर्वथा आधार योग्य हो, एसा भी नहीं हे. इष्ट गणितवत्.

३४३ **अयोग्य** (असंभव) क-
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

ल्पनाका **अनादर** अनुचित नहीं है.

३४४ .स्वरुपशून्य व्यवहारोपयोगी **कल्पितके नियम**भी लोक विषे **व्यवस्थापर** देखते हैं (किंवा कल्पितके नियम व्यवस्था विना स्वीकार नहीं होसकते). यथा जाति, अभाव इत्यादि पदार्थोंकी मान्यता वा योजना. ॥

३४५ बुद्धिगत भेदबोधक (कल्पित) **अभाव** ओर उसके **प्रतियोगीका** परस्पर **विरोध** होता है. जेसे कि जहां घटका अभाव है, वहां घट नहीं होता. वा जहां घट हो, वहां घटाभाव नहीं होता.

३४६ **भाव**रूप पदार्थ ओर **अभाव**रूप पदार्थ**काभी** परस्पर विरोध होता है. यथा घटका प्रागभाव घटरूप नहीं, भावरूप घट ओर घटगत पटाभाव-इन उभयका स्वरूप समानाधिकरण (रूप वा) वर्त्ति नहीं. ॥

३४७ पक्षमें **अभावका अभाव** अपने **प्रतियोगी**रूप कहाता—माना जाता है. कोई पक्षकार भिन्न मानता है. ॥

३४८ **अनवस्था आरोपका विषय तत्व नहीं**. यथा सामान्य—जाति—विशेष—संबंध—धर्म—अभावादि.

३४९ यह, वोह, तूं, में, सो, —यह सब **सजातीय** वा **विजातीय** (मूर्त्त अमूर्त्त वा अपरोक्ष परोक्ष वा सूक्ष्म स्थूल) वा किसी केभी सूचक हों परंतु **इन इदमादिके वाच्य** स्वरूप परस्परमें **भिन्न** भिन्न होते हैं. ॥

३५० सूक्ष्मादि+ संज्ञोक्त सापेक्ष निरपेक्ष हरकोई प्रकारकाभी अस्तिवाच्य पदार्थ के स्वरूप भावमें अन्य पदार्थके **स्वरूपका अप्रवेश** है.-अर्थात् एक स्वरूपमें अन्यका भाव नहीं. क्योंकि **स्वरूपोंके** स्वरूपाधिकरण भिन्न भिन्न हैं. इसलिये व्यवहारमें एसे पदोंसे प्रयोग होता है कि, हरकोई प्रकारके दो पदार्थका एक देशकालमें अभाव है. यथा यदि ब्रह्म, देश, काल, जाति, संबंध, असर, शक्ति, गुण, कर्म, मन, जीव-इनका* विचार वा अभाव स्वरूपसे

+ पूर्वोक्त संज्ञा देखो.

* जीव, वा मन ओर उनके परिणाम—विचारकोभी देशकी अपेक्षा है. ॥

कुछ वस्तु होंतो, वे भिन्न भिन्न हैं—परस्परका स्वरूपाधिकरण भिन्न होनेसे परस्परके स्वरूपका परस्पर विषे अप्रवेश हे. इसी नियम से व्यापक व्याप्य भावका उच्छेद होजाता हे.गुण गुण्यादिके तादात्म्यत्वकी असिद्धि होजाती हे. ÷ ॥

३९१ लोक प्रसिद्ध **प्रकाश ओर तम** इन दोसे **भिन्न अधिकरणभी** सिद्ध होता हे यथा नभ—देश, काल, शब्दादी पदार्थोंके स्वरूपाधिकरण प्रसिद्ध हैं. ॥

३९२ **स्वरूपाधिकरणसे भिन्न देशमें नहीं.** अर्थात् स्वरूपमें स्वरूप नामा देशसे भिन्न, अन्य देश(आकाश वा स्वरुप)नहीं होता. किंवा एक स्वरूप एक काल विषे भिन्न भिन्न देशमें नहीं होता.स्वरूप देशमेंही रहता हे. ॥

३९३ स्वरुपोंका परस्पर **विलक्षणत्वं**ही गम्य होता हे, **न** कि **भेद** (स्वरुपोंका परस्परमें भेद कल्पनामांत्र जान पडता हे; क्योंकि भेदका कोई परिमाण स्वरुप—पदार्थत्व सिद्ध नहीं होता.) ॥

३९४ स्वरुपोंकी **सत्ता यत्ता में विलक्षणत्व** देख पडता हे. यथा-स्वप्नसृष्टि ओर उसके दृष्टाकी सत्तामें अंतर हे. ॥

३९५ सत्ता यत्ताके अंतर समान **उस** सत्ता यत्ता**के नियमोंमें** भी विलक्षणत्व हे. ॥

३९६ वस्तुतः स्वरुपका अन्य स्वरुपमें अप्रवेश हे; परंतु **भ्रम** स्थल वा भ्रमकालमें **स्वरूप प्रवेश** (एक स्वरुप अधिकरणमें अनेक स्वरुपोंकी तादात्म्य समान प्रतीति) **वत्** सत्ताके नियमोंमें विलक्षणता हे. ॥

३९७ **सत्ता यत्ताही** (हे ओर जो हे सोही) **विषय** अर्थात् **'हे'** कीही प्रतीति होती हे. ॥

३९८ **न अन हुई** ओर **न अन्यथा** प्रतीति होती हे. ॥

३९९ जितना ओर जेसा हो, उतना ओर वेसाही प्रतीत होनेका नियम नहीं हे; किंतु **किंचित् न्यूनभी** प्रतीत हुवा करता हे. यथा-रज्जु सर्पकी प्रतीतिमें हे. ॥

३६० परंतु ज्ञेयविना ज्ञान न होनेसे **ज्ञेयाधीन ज्ञान** कहा वा

÷सू.३६४,३६५,ओर ३४९वगेरेके विरोध निवारणार्थ मूल ग्रंथ वांचो.

माना जाता है, ज्ञेय अन्य ओर ज्ञान अन्य एसा नहीं होता. ॥

३६१ **गुण गुण्यादि** (गुण-गुणी, कर्म क्रियावान, स्वभाव स्व भाववान, शक्ति शक्तिमान, धर्म धर्मी, असर, असरकारक, ओर, अवस्था अवस्थावान,) **की** परस्पर* **समसत्ता** होती हे. ॥

३६२ **समसत्ता**वाले पदार्थ परस्परमें **साधक बाधक** होते हैं.॥

३६३ परंतु **विषम** सत्तावाले साधक बाधक हों ओर **नहींभी** होते. ॥

३६४ यदि कोई स्वरूप-विभु होतो, वोह **ब्रह्म** (व्यापक) वस्तु **एकही** होने योग्य हे; क्योंकि एक स्वरूपमें अन्य व्याप्य वा व्यापक स्वरूपका प्रवेश नहीं हो-सकता (सू. ३५० याद करो.)॥

३६५ यदि विभु कोई पदार्थ हो, ओर **तद्भिन्न** अन्य परिच्छिन्न पदार्थभी हों तो, यह (परिच्छिन्न) उस व्यापकसे **विलक्षण** सत्तावाले होने योग्य हैं. अन्यथा व्यापक व्याप्य भाव असंभव हे (सू. ३५० याद करो). ॥

३६६ **अन्य कल्पना+मेंभी** विलक्षणत्व मानना पडेगा. ॥

३६७ **सत्य** वा **असत्य दृष्ट श्रुतकेही संस्कार** होते हैं. अदृष्ट अश्रुतके नहीं. ॥

३६८ **सो** (संस्कार) **ज्ञानके आश्रयमेंही** होते हैं. अर्थात् जि

---

*गुण गुणीकी, गति गतिवानकी समसत्ता; इत्यादिरूपमें अन्वय हे.

+पूर्वोक्त विभु परिच्छिन्न कल्पनावत् केवल विभुवादमें अक्रियत्व अपरिणामत्व आनेसे नाना विचित्र परिच्छिन्न दृष्टको विभूसे विलक्षण मानना पडेगा. १. केवल परिच्छिन्नवादमें द्रव्य-गुण ओर उनके तादात्म्य-समवाय वगेरे संबंधकी दृष्टिसे एकको विलक्षण मानना पडेगा. २. गतिवान परिच्छिन्नकी सिद्धि विभु आधार को बताती हे, अतः नं. १ वत् मानना होगा. ३. क्षणिकवादमें ज्ञाता, ज्ञेय ओर ज्ञानकी दृष्टिसे किसी एकको विलक्षण मानना पडेगा.—नं. ३ वाला मत स्वीकार होजायगा ४. निदान जो कोई निर्दोष पक्ष ठेरेगा उस पक्षमें उनकी सत्ताकी विलक्षणता माने विना छुटकारा नहीं होगा. ३६६.

को ज्ञान होता हे-उसीको उस
यके संस्कार होते हैं. अन्यको
हीं. ॥

३६९ ज्ञात वा अज्ञातरूप संस्कार, ज्ञात वा अज्ञातरूपसे परो
। वा अपरोक्ष विषयमें प्रवृत्ति वा
नवृत्तिरूप **इच्छाके हेतु** होते हैं.

३७० **प्रबल संस्कारोंका** उस
फ फल हुयेविना वा **निर्बल** संस्कारोंसे **नाश नहीं** होता. ॥

३७१ जिसको जिस विषयके
जेस प्रकारके प्रबल संस्कार
होजाते हैं, उसको उसी **प्रबलानुकूल** प्रबल **निश्चय** होजाता हे.
(यहां यथार्थ अयथार्थ निश्चयका
प्रसंग नहीं हे.). ॥.

३७२ **सम्यक्** (यथार्थ ओर
पूर्ण) **प्राचीन इतिहासकी अप्राप्ति** हे (नहीं मिलसकता).॥

३७३ यथार्थ ओर संपूर्ण **सृष्टिक्रम** ओर उसके नैःसर्गिक **नियमकीभी** अप्राप्ति जाननी चाहिये.
(मनुष्य तमाम नियम नहीं जान
सकता). ॥

३७४ जबतक **निर्णय** न होजाय वहांतक हरकोइ विषय वा
तत्व जोकि **अज्ञात** वा **अदृष्ट** वा
श्रुत हे-सो श्रुत (सुनने) मात्रसे
अमंतव्य अर्थात् मानने वा स्वीकारने योग्य नहीं हे—नहीं मानना
चाहिये. ॥

३७५ किंतु **परधर्म धारणवत् दुःखद होनेसे** त्याज्य हे. ॥

३७६ **ज्ञानादि** (ज्ञान—ध्यान—
केवल—इन तीनों) **कृतिका फल
प्रसिद्ध** (सर्व मत पक्षकारोंको
मानना पडता हे—सर्वको संमतहे)

३७७ **भावना** (वासना-संस्कार—प्रकृति—स्वभाव) **ओर** म

---

३७२ यहांसे आगे विशेषतः
व्यवहार प्रसंगी वा प्रचूर्ण सूत्र हें.॥

---

३७५ सूत्रका यह रहस्य हेः—
निर्णय किये वा योग्यता-लियाकत
पेदा कियेविना स्वाधिकार छोडके
पर अधिकार ग्रहण करनेसे जेसे
ग्रहण करनेवालेको दुःख होता हे,
किंवा निर्णय कियेविना किसीके
विश्वाससे वा अधैर्य वा लोभादि
निमित्तसे जो कोई स्वधर्म छोडके
परधर्मका धारण करताहे, उसको
मरण पर्यंत प्रसिद्ध वा अप्रसिद्ध, अज्ञात वा ज्ञात दुखः रहता हे, वेसेही
अज्ञात ओर अदृष्टको सुननेमात्रसे
मान लेनेमें बाह्य वा आंतर दुःख
होभी जाता हे.

नुष्यकी **बुद्धि** (बल) का बहुत करके **विवादभी** होता रहता हे. ओर कभी नहींभी होता. (किंवा **भावना ओर बुद्धिका विवादभी**[1] होता रहता हे, यह बातभी सर्वको प्रसिद्ध हे). ॥

३७८ **योग्य इष्टमें तत्योग्य की सिद्धि, न कि केवल विश्वास** (वगेरे) **मात्रसे** सिद्धि प्राप्ति होती हे. यथा स्पर्श होने पर अपने अनुयायी पारसियोंको उनकी पूज्य-इष्ट–अग्नि दाह किये विना नहीं छोडती. ॥

३७९ आशाको जीवनका हेतुभी माना जाता हे, तथापि **आशा वास्तवमें** जीवको **बंधन हे.**

३८० उत्तमानुत्तम–भला बुरा–इष्टानिष्ट–**अनुकूलता, प्रतिकूलता स्वबुद्धि** भेदहे.–पदार्थ वा नेचर–प्रकृति–में नहीं हे. ॥

३८१ किरोडों मनुष्योंमेंसे कोई एक (विरल) सीखके उसका अनुष्ठान साधके चमत्कार देखाने योग्य होनेसे लोक दृष्टिमें अद्भुत रूपसे माने हुये जो **योगादि**

[1] कॉन्शन्स(conscience) मनका विवाद.

मत्कार मो **परीक्षासे** मानने योग्य हें, अन्यथा माननेसे महा हानी हे. किंवा **योगादिके चमत्कार परीक्षासे** सिद्ध हें; प्रचलित चमत्कारी वातें सर्वथा गप्पाष्टकरूप हों, एसाभी नहीं हे; तथापि जो सत्यवातें हें ओर चमत्कार रुप मानी जाती हें, सोभी परीक्षा कियेविना नहीं माननी चाहियें.

३८२ केवल **विशेष्य** वा **विशेषणका व्यवहार विशिष्टमेंभी** होता हे. (यथा कुंडलवाला पुरुष विद्वान हे वा सोता हे. इ.) ॥

३८३ **प्रेम-दया–न्याय भिन्न** भिन्न हें ओर **अविरोधि** होते हें; एक दूसरेके विरोधि नहीं. ॥

३८४ **यथार्थ** वातमें **लोकभय** करना **अयथार्थ**–अयोग्य हे. ॥

३८५ **लोकनीति रहित अनगुरवी वा परलोक विमुख** मनुष्योंमेंसे **पतीतभी** होजाता हे. ॥

३८६ **न के लोक अवश,–नीति अविरुद्ध–विवेकी** जन पतित होते हें(–पतित नहीं होते

३८७ पुरुषार्थही प्रारब्ध बन्ने ओर पुरुषार्थ (उद्यम–कर्म) विना न रहसकनेसे **केवल प्रारब्ध**

दि (मनुष्य) अज्ञानी वा
ी—इन पदोंका वाच्य ठेरता हे.

३८८ नाकि प्रारब्धके स्वरूपका
ता ओर कर्मोंके भेदका विभा
कर (पृथक्करण कर्त्ता) वि
की पुरुष अज्ञानी वा हठी क-
जासकता हे. ॥

३८९ शरीरधारी मात्रको
शुभ वा अशुभ वा शुभाशुभ
रागादि* (राग, द्वेष, इच्छा,
यत्न, दुःख, सुख, ज्ञान, संस्कारा
दि) स्वभावतः होते हें, परंतु वि
की योगी ओर अविवेकी असंय
मीके रागादिमें अंतर होता हे. ॥

३९० गतिवान मनकी अभ्या
सबल ओर किसी आलंबन विशेष
से कुछ काल स्थिरताभी हो
सकती हे. ॥

३९१ जीवको अपनेमेंही प्रि-
यता हे ओर परमें जो प्रियता
हे सोभी स्व प्रियतासे हे, अर्था
त् सोभी स्व प्रियताही हे. (क्यों
कि संसारमात्रमें जो जीवोंको प्रेम
हे सो अपनी प्रियताकोही लेके

*शुभेष्टमें जो राग सो शुभ राग. अशु
भमें द्वेष शुभ. अशुभमें राग अशुभ.
शुभाशुभसे उपराम सामान्य इ.

हे, इसी वास्ते बुद्धिमान—विवेकी—
परोपकारी—निष्कामी अपने दुःख
सुख समान परके दुःख सुखको
जानके उपकार (प्रत्युपकार)
किया करते हें)॥

३९२ योग्य परोपकार (पर
हित) निष्काम, बुद्धिमान, आप्त
विद्वानोंका कर्तव्य हे. क्योंकि
वोह उपकार अपनाही उपकार
हे (३९१ विचारो). ॥

३९३ कोई उत्तम हितकारक
जीवलाभक नवीन विषय जिसने
श्रमपूर्वक प्रथम उत्पन्न करके वा
शोधके परहित—शिक्षा वा कृति
द्वारा प्रचार किया, उस आद्य
प्रचारकको धन्यवाद देना वा
उसका उपकार मानना चाहिये.

३९४ व्यवहार—प्रचलित वि-
षय—ओर यथार्थ—(परमार्थ)
में अंतरभी हे. ॥

३९५ जेसे यथार्थ, सत्य
नीयनमें अंतर हे. वेसे व्यवहार
परमार्थमें अंतर हे. यथा "मेरी
आंख ओर चक्षु फूटनेपर में का
ना" यह व्यवहार यथार्थसे भि
न्न हे. ॥

३९६ विचारादिक किये बिना

केवल व्यावहारिक (संस्कार-अभ्यास-रूढी वा) दृष्टिमात्रसे मूलका यथावत् न सन्निर्णय अ थोर सत्य निर्णय नहीं होता. किंतु मध्यस्थ, परीक्षादिना सत (यथार्थ)का निर्णय होना कठिन है.

३९७ भिन्नत्व अज्ञान (भेद ओर अज्ञान वा भेदका अज्ञान-अभाव) व्यवहार उन्नति (व्यवहार ओर उन्नति वा व्यावहारिक उन्नति) का निर्वाहक है. ॥

३९८ अध्यस्तकी निवृत्ति (-कहींसे खिसजाना वा अभाव होना वा स्व उपादानमें लय होना-इत्यादि निवृत्ति) का शेष वही होता है, जोकि उस अध्यस्तका अधिकरण वा अधिष्ठान है. यथा-परमाणुके अन्य स्थलमें जानेसे शेष आकाश-देश-रहता है. ॥

३९९ सो अधिकरण वा अधिष्ठान भावरूप होनेसे अध्यस्त वा कल्पितकी न निवृत्तिरूप (अभावरूप) ही होता है. किंतु उससे भिन्न भावरूप है.॥

४०० संशय होनेका हेतु न एक किंतु ज्ञानाज्ञानसे भिन्न प्रकार ओर अनेक पक्ष दर्शन श्रवणादिरूप अनेक हेतु हैं. ॥

४०१ उस (संशय) में अनुमान भाग नियमसे (अंशरूप) होता है. ॥

४०२ संदिग्ध (संशयात्मक) अवस्थामेंही उत्तर प्रत्युत्तर ओर परीक्षा होते हैं; अन्यथा शंका समाधान करना व्यर्थ काल गुमाने समान है. ॥

४०३ शंका ओर उसके समाधान लक्षण संबंधी ओर स्वरूप संबंधी-भेदसे दो प्रकारके होते हैं. तहां लक्षण अनेक प्रकारके होनेसे लक्षण प्रति समाधान होता है, ओर स्वरूपकी यथावत् सिद्धि (ज्ञान प्राप्ति) तो परीक्षासे हुवा करती है. शब्द वा लक्षण कथनमात्रसे नहीं होती-इस प्रकार उभय भेदसे व्यवस्था कर्तव्य है. ॥

---

४०२ नियमादि सूत्रोंमें पुनरुक्ति, व्याघात, असंभव, विरोधादि दोषोंका आरोप न होसके. इसलिये इस सूत्रके विवेचनमें शंका समाधान सहित दोषोंका निवारण बनाया है. मूल ग्रंथ बांचो.

४०४ चेतन, जड [जीव, अजीव] जीव, ईश्वर, प्रकृति आदि पदार्थोंके मानने–कल्पने–वा खंडन करने वा निर्णय करने विनाभी जीवन व्यवहार होसकता है; परंतु जीवोंकी जीव **स्वभाव**, संस्कार, **सृष्टि नियम** ओर **योग्यता** होनेसे स्वाभाविकही **अगम्य** जानने–पाने वा निर्णय करनेमें प्रवृत्ति देखते हैं. जडवादकी रीतिसे जीवोंकी आद्य प्रवृत्ति संस्कारमात्रपर नहीं ठेरती है; किंतु स्वभावतः होती है. ओर इस स्वभाव वा योग्यताके उपयोग होनेमें कितनेक कारण हैं, एसा उभय पक्ष (जड, चेतन पक्ष) को मानना पडता है; अतः सर्वथा उपेक्षा होजाना कठिन है. ॥

४०५ अगम्य वा व्यावहारिक–हरकोई विषयमें आद्य प्रवृत्ति मात्र (प्रवृत्ति या निवृत्तिमात्र) **स**कंप होती है, दूसरी वार (परीक्षा वा अनुभव पीछे) **निष्कंप** होती है; इन दोनों प्रसंगोंमें **बुद्धि**, वा **विश्वास** वा बुद्धि ओर विश्वास दोनोंसे काम लिया जाता है, अर्थात् उक्त प्रसंगमें विश्वास वा बुद्धि कारण होता है (यथा बालककी आद्य प्रवृत्ति विश्वासपर वा सकंप ज्ञानतंतुपर है. अज्ञात पदार्थ प्रति युवाकीभी आद्य प्रवृत्ति सकंप होती है या बुद्धिद्वारा विश्वाससे होती है. पश्चात् निष्कंप होती है.) ॥

४०६ **स्वादि** (अपनी, शिक्षककी, पूर्व संस्कारको ओर विद्या बुद्धिकी–अर्थात् **इन चारकी** अनुकुलता–) **कृपा श्रेयप्राप्ति** की हेतु हैं, एसा नियम है. ॥

४०७ **ममत्वादि** संज्ञोक्त* श्रेय प्राप्तिके **प्रतिबंधक** होते हैं. ॥

४०८ सर्व ओरसे 'मतमान' में तुला हुवा **यथार्थ ज्ञानका** जो विषय हो सोही **मान्य** अर्थात् मानना–स्वीकारना चाहिये. खंडित नहीं. ॥

४०९ नाना मत–कल्पना ओर भिन्न भिन्न परीक्षा करके संशयादि होके चित्तमें भ्रांति, विक्षेप या अशांतिका गुप्त, गंभीर बल रहता है, उनसे महान दुःख–

*पूर्वोक्त संज्ञा सूत्र अंक ६ वांचो. अद्वैतादर्शका दर्शन २४ वांचो.

होता है, इन असह्य दुःखके निमित्तोंकी निवृत्ति पूर्वक **सत्याकर विन नं शांति.** अर्थात् उन निमित्तोंकी निवृत्ति पूर्वक शांति मिले, सो बात सत्याकरके बिना नहीं होसकती, एसा नियम संस्कारोंकी माहिमाको लेके देखते हैं.

४१० **सब ओर सत्यका संग सत्याकर.** अर्थात् सब प्रकारकी विद्याका संग्रह. बहुश्रुत होना, अनेक प्रकारके वा मतोंके ग्रंथोंका मनन पूर्वक पठन, यंत्र द्वारा पदार्थोंके विभागका दर्शन, वा पृथक्करण, विद्वान, बुद्धिमान सत्पुरुषोंका संग, परीक्षा वा निर्णयविना अन्य पक्ष-मतका अग्रहण ओर योगयुक्त हुये स्व विचार-इत्यादि-यह सब सत्य प्राप्तिकीखान (सत्याकर) कहाती है. ॥

४११ **सो** (उक्त सत्याकर) **विवेकादि[१] सहित निरंकुश** चाहिये-अर्थात् सेवन करे, तब शांतिप्रद होती है. न कि **विश्वासमात्र** मान लेनेसे शांतिदा होसकती है. ॥

४१२ **अन्यथा** (-विवेकादि-उक्त प्रकारको छोडके) जो नाना प्रकारी परस्परके विरोधी हैं उनके संबंध वा संयोगोंमें प्रवृत्त होता वा संबंध पाता है, उसे **विषवत् फल** (संशय, विपरीत भावनारूप फल) प्राप्त होता है. ॥

४१३ सत् शोधकको चाहिये कि कर्त्ता, वक्ता ओर सत् संगादिके **उद्देश** ओर उनकी **अपेक्षापर** ध्यान देके योग्यतानुसार त्याग ग्रहण करके **सार** उपर **दृष्टि** रखे. न कि केवल **विवाद** करना वा दोषोंपरही दृष्टि डालना.

४१४ उक्त प्रकार **मथन** करनेसे **सत्य.स्वयं तिर आता है** -भिन्न-प्रकाशमान होजाता है.

४१५ **दोषाभावमें** [पुनरुक्ति, असंभवादि दोषकी प्राप्ति न होवे तो] पूर्वोक्त नियम संज्ञावाले अर्थात् जिनको नियम कह सकते हैं उन **नियमोंकी अर्थापत्ति** [तथा **प्रकरणप्राप्ति**] **से उतने अन्य नियम**-उन संबंधी उनसे भिन्न अर्थात् दूसरे नियमों [तथा परिणाम निकाल सकने] की संभावना है.-बना सकते वा प्रकरण द्वारा अन्य* निकाल सकते हैं. इति. ॥

---

१ संज्ञा याद करो.

*यथा सू. ५९ की अर्थापत्ति

[सूचना.]

४१६ उक्त नियमोंसे भिन्नभी विषय निर्णयके नियम (रीति और यंत्रादि सामग्री) अनेक हैं;– प्रस्तुत नियमादि परही निर्भर–आधार नहीं है. ॥

४१७ परंतु अद्यापि जितने दृष्टश्रुत मत-पक्ष हैं उन मतोंका यथावत् निर्णय उक्त नियमादिसेभी होजाता है. (इस नियमाध्यायका विशेषतः कारणवाद और उसके अंतिम परिणाममें उपयोग है. प्रचलित कार्यरूप मतपंथोंमें प्रयोजन नहीं है).

४१८ मूल सत् तत्वप्राप्ति त

से 'सादि, सांतही' 'अनादि, अनंतही' 'अनंत, सांत नहीं'। सूत्र ३७-३८-१३६ की अर्थापत्तिसे "सृष्टि प्रवाहका उच्छेद नहीं।" सू. ३७ से 'निष्फलत्वका अभाव'। सू. २४ से "न विषयमें न विषय सुख"। सू. ३७ से ४३ तक ७ सूत्र और १०७-१०८-१३९ से 'तोभी क्या'–इत्यादि अर्थ और प्रकरण आपत्तिसे अन्य नियम और परिणाम निकलते हैं.

४१८ से ४२० तकके सूत्र

क योग्य निष्काम कर्म करने योग्य हैं. (यह कर्त्ताकी तरफसे उद्देश सूचन है और स्वाभाविक रीतिसेभी यह कथन अयोग्य नहीं.) ॥

४१९ तदभावमें (-निष्काम कर्मके रहस्य न जान सकने वा निष्काम कर्म न कर सकने पर) उत्तम सकाम कर्म कर्तव्य हैं, अर्थात् मरणपर्यंत शुभगुण प्राप्ति और उत्तम कर्मोंमें लगे रहना चाहिये.॥

४२० अन्यथा [जो यह सृष्टि क्या और क्यों ? तथा मैं कोन और क्यों ? इत्यादि जाननेका जो कुछ मुख्य फल है, उसकी प्राप्ति वा उसकी प्राप्तिके साधन वा पूर्वोक्त उत्तम निष्काम कर्म वा उत्तम *सकाम कर्मभी न हो सकें तो] कर्म स्वभाव होनेसे यथेष्ट निषिद्ध गुणकर्मकी प्राप्ति होनेपर पंचक्लेश और तीन तापयुक्त प्रवाह [जन्म मरण वा सृष्टि-प्रकृतिके वेग] में रहना पडता है. अब जो इच्छा हो सो करो. ॥

कर्त्ताकी तरफसे उपदेशमें हैं.

*सृष्टि नियम और स्वअंतःकरणके अविरुद्ध ।

४२१ विश्वासके दो परिणाम होते हैं. योग्य-यथार्थका उत्तम और अयोग्य अयथार्थ [कुविश्वास] का निकृष्ट फल निकलता है. अब इच्छा हो सो कीजिये. ॥

४२२ जो निषिद्ध सकाम कर्म और अयोग्य विश्वास रहित-एकाग्र चित्तवाले-स्वतंत्र-पूर्वोक्त अधिकार प्राप्त जिज्ञासु पुरुष हैं, उनको पूर्ववत (उद्देशादि सूत्रोक्त समान) तत्व निर्णय कर्तव्य है. ॥

४२३ निर्णित विषयके स्वरूपकी परीक्षाकी शैली (योग, मध्यस्थादि) अनेक हैं. ॥

४२४ निर्दोष सर्व शैलीका सिद्धांत फल एकही होना चाहिये; क्योंकि सत्य एकही होता है.

४२५ सत्यमेवजयते नं अनृतं (सर्वदा-जबतक-सत्यकी जय होती है, असत्यकी नहीं.) ॥

४२६ पूर्वोक्त प्रकारद्वारा सत् निर्णयसे सर्व संशय भ्रांतिका नाश और सत् दर्शन (साक्षात-प्राप्ति) फल होता है. ॥

४२७ पर कर परापर न पर [सर्व जिसके प्रकाशसे प्रकाशित एसा अलुप्त-स्वप्रकाश परसे विशिष्ट जो परापर सो पर नहीं है]. ॥

इति समाप्ति सूचक पद है. अर्थात् 'तत्वदर्शन' ग्रंथगत तत्व निर्णयकी सामग्रीका प्रतिपादक

दूसरा नियमाध्याय समाप्त हुवा.